सामाजिक विज्ञान

कक्षा — 10

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

राजकीय विद्यालयों में निःशुल्क वितरण हेतु

प्रकाशक

राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मण्डल, जयपुर

संस्करण : 2017

© माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर
© राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मण्डल, जयपुर

मूल्य :

पेपर उपयोग : 80 जी.एस.एम. मैफलीथो पेपर
आर.एस.टी.बी. वाटरमार्क

कवर पेपर : 220 जी.एस.एम. इण्डियन आर्ट
कार्ड कवर पेपर

प्रकाशक : राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मण्डल
2–2 ए, झालाना डूंगरी, जयपुर

मुद्रक :

मुद्रण संख्या :

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रानिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।

- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाऐगी।

- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

- किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन केवल प्रकाशक द्वारा ही किया जा सकेगा।

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक : सामाजिक विज्ञान

कक्षा – 10

संयोजक :–

डॉ. ग्यारसी लाल जाट

राजकीय महाविद्यालय, सीकर

लेखकगण :–

1. **डॉ. चन्द्रशेखर**
   राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर
2. **डॉ. नेमीचन्द गर्ग**
   राजकीय महाविद्यालय, जैसलमेर
3. **डॉ. भुपेन्द्र कुमार दुलड़**
   राजकीय महाविद्यालय, सीकर
4. **श्री हीरालाल जांगिड़**
   राजकीय महाविद्यालय, सीकर
5. **श्री सुरेन्द्र डी. सोनी**
   राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चुरू
6. **डॉ. बालेन्द्र सिंह, प्रधानाचार्य**
   राजकीय आदर्श उ.मा. विद्यालय, देवगाँव (बस्सी), जयपुर
7. **श्री मुकेश कुमार, प्रधानाचार्य**
   राजकीय उ.मा. विद्यालय, दूदवा, बाड़मेर
8. **श्री रवीन्द्र कुमार शर्मा, व्याख्याता**
   शैक्षिक प्रौद्योगिकी विभाग, अजमेर
9. **श्री महेन्द्र सिंह चौधरी, वरि.अध्यापक**
   राजकीय मा. विद्यालय, बझेटा सेवर, भरतपुर

निःशुल्क वितरण हेतु

पाठ्यक्रम समिति

पुस्तक : सामाजिक विज्ञान

कक्षा – 10

संयोजक :–

डॉ. देव कोठारी, भूतपूर्व प्रोफेसर
13, मेहताजी की खिड़की, मालदास स्ट्रीट, उदयपुर

सदस्य :–

1. डॉ. कमल सिंह कोठारी
राजकीय महाविद्यालय, चुरू
2. डॉ. काश्मीर कुमार भट्ट, व्याख्याता
मा.ला.व.रा. महाविद्यालय, भीलवाड़ा
3. डॉ. चन्द्रशेखर कच्छावा
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर
4. डॉ. मनोज अवस्थी, व्याख्याता
एस.पी.सी. राजकीय महाविद्यालय, अजमेर
5. श्री प्रहलाद शर्मा, डी.ई.ओ. माध्यमिक
ए.डी.ई.ओ. कार्यालय, जयपुर
6. श्री झाबर सिंह, व्याख्याता
राजकीय उ.मा. विद्यालय, सांगानेर, जयपुर
7. श्री दुर्गा शंकर पारीक, उप निरीक्षक
संस्कृत शिक्षा, तोपदड़ा, अजमेर
8. श्री देवलाल गोचर, वरि. अध्यापक
राजकीय उ.मा. विद्यालय, गुमानपुरा, कोटा
9. श्री महेन्द्र सिंह चौधरी, वरि.अध्यापक
राजकीय मा. विद्यालय, बझेटा सेवर, भरतपुर
10. श्री भोम सिंह चूंडावत, वरि.अध्यापक
राजकीय उ.मा. विद्यालय, फतहनगर, उदयपुर

दो शब्द

विद्यार्थी के लिए पाठ्यपुस्तक क्रमबद्ध अध्ययन, पुष्टीकरण, समीक्षा और आगामी अध्ययन का आधार होती है। विषय-वस्तु और शिक्षण-विधि की दृष्टि से विद्यालयी पाठ्यपुस्तक का स्तर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है। पाठ्यपुस्तकों को कभी जड़ या महिमामण्डित करने वाली नहीं बनने दी जानी चाहिए। पाठ्यपुस्तक आज भी शिक्षण-अधिगम-प्रक्रिया का एक अनिवार्य उपकरण बनी हुई है, जिसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते।

पिछले कुछ वर्षों में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम में राजस्थान की भाषागत एवं सांस्कृतिक स्थितियों के प्रतिनिधित्व का अभाव महसूस किया जा रहा था, इसे दृष्टिगत रखते हुए राज्य सरकार द्वारा कक्षा-9 से 12 के विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा अपना पाठ्यक्रम लागू करने का निर्णय लिया गया है। इसी के अनुरूप बोर्ड द्वारा शिक्षण सत्र 2016-17 से कक्षा-9 व 11 तथा सत्र 2017-18 से कक्षा-10 व 12 की पाठ्यपुस्तकें बोर्ड के निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर ही तैयार कराई गई हैं। आशा है कि ये पुस्तकें विद्यार्थियों में मौलिक सोच, चिंतन एवं अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करेंगी।

प्रो. बी.एल. चौधरी
अध्यक्ष
माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

निःशुल्क वितरण हेतु

कक्षा : X
विषय : सामाजिक विज्ञान

समय : 3.15 पूर्णांक : 80

क्र.सं.	अधिगम क्षेत्र	अंकभार
1.	इतिहास	20
2.	नागरिक शास्त्र	20
3.	भूगोल	18
4.	अर्थशास्त्र	18
5.	सड़क सुरक्षा	02
6.	स्वच्छता एवं ठोस कचरा प्रबन्धन	02

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	कालांश	अंकभार
	भाग– प्रथम		
1.	**स्वर्णिम भारत – प्रारम्भ से 1206 ई. तक –** (i) महाजनपद काल – महाजनपद राजस्थान के मुख्य जनपद– मरू–जांगल, मत्स्य, शूरसेन एवं शिबि; (ii) मौर्य, शुंग, सातवाहन, गुप्त वर्धन, चोल, चालुक्य, पल्लव, पाल, प्रतिहार, राष्ट्रकूट साम्राज्य (iii) बाह्य आक्रमण एवं आत्मसातीकरण हूण, शक एवं कुषाण	20	5
2.	**संघर्षकालीन भारत –1206 ई. से 1757 ई. तक** (i) दिल्ली सल्तनत (1206 ई.– से 1526 ई. तक) (ii) मुगलकालीन भारत (1526 ई.से 1757 ई. तक) (iii) सत्ता के साथ प्रतिरोध एवं सहयोग राजस्थान के संदर्भ में– राव शेखा, हम्मीर चौहान, महाराणा प्रताप, चन्द्रसेन, बीकानेर के रायसिंह, सवाई जयसिंह एवं अमर सिंह राठौर (iv) मराठों का इतिहास – शिवाजी के विशेष सन्दर्भ में। (v) विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य। (vi) सिक्ख धर्म का प्रादुर्भाव एवं विकास (नानक से गुरु गोविन्द सिंह, बन्दा बैरागी एवं रणजीत सिंह सहित)	25	5
3.	**अंग्रेजी साम्राज्य का प्रतिकार एवं संघर्ष –** (i) 1757 ई. से 1857 ई. तक स्वतंत्रता की चेतना (ii) जनजातीय आन्दोलन (iii) क्रान्तिकारी संगठनों का योगदान (iv) किसान आन्दोलन	25	6

	(v) राजनैतिक आन्दोलन– (अ) 1857 ई. से 1919 ई. तक (ब) 1919 ई. से 1947 ई. तक। (v) जनजातीय किसान एवं प्रजामण्डल आन्दोलन – राजस्थान के विशेष सन्दर्भ में		
4.	**विश्व का इतिहास –** यूरोप में राष्ट्रवाद का उदय : औद्योगिक क्रान्ति :– जर्मनी एवं इटली का एकीकरण ;	20	4
5.	**लोकतंत्र –** अर्थ, परिभाषाएं, विशेषताएं, कार्य प्रणाली और सहभागिता, चुनौतियाँ।	14	5
6.	**केन्द्र सरकार –** सरकार का अर्थ, अंग–व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, भारत की संसद (लोकसभा– राज्यसभा), निर्वाचन प्रकिया, योग्यताएं, कार्य– प्रणाली एवं शक्तियाँ कार्यपालिका – राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद का गठन व उसके कार्य, अधिकार व शक्तियां, विपक्ष की भूमिका। न्यायपालिका – सर्वोच्च न्यायालय का गठन, क्षेत्राधिकार व न्यायाधीशों की योग्यता।	22	7
7.	**राज्यसरकार** –विधानमण्डल (विधायिका) विधानसभा – निर्वाचन कार्य व शक्तियाँ विधान परिषद् – गठन, कार्य व भूमिका, राजस्थान विधान परिषद् के गठन की प्रक्रिया व वर्तमान स्थिति। कार्यपालिका – राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद का गठन कार्य व शक्तियां उच्च न्यायपालिका, न्यायाधीशों की योग्यता,नियुक्तियाँ एवं शक्तियाँ।	24	8
8.	**जल संसाधन –** बहुउद्देश्यीय योजनाएं, जल संरक्षण, जल प्रबन्धन, जल स्वावलम्बन। (राजस्थान के विशेष सन्दर्भ में)	9	3
9.	**कृषि –** प्रकार , प्रमुख फसलें – खाद्यान्न व व्यापारिक	8	3
10.	**खनिज व ऊर्जा संसाधन –** खनिजों के प्रकार, प्रमुख खनिज (लोहा, अयस्क तांबा, अभ्रक, एल्यूमिनियम, सीसा व जस्ता) का वितरण, ऊर्जा संसाधन के प्रकार वितरण, राजस्थान में खनिज व ऊर्जा के संसाधन।	10	3

निःशुल्क वितरण हेतु

11.	**विनिर्माण उद्योग –** प्रमुख उद्योग, लोह इस्पात, सूती वस्त्र, सीमेन्ट, कागज उद्योगों का वितरण एवं उत्पादन , औद्योगिक प्रदूषण, राजस्थान के उद्योग।	10	3
12.	**मानव संसाधन –** जनसंख्या वितरण , वृद्धि, घनत्व , साक्षरता, लिंगानुपात, ग्रामीण शहरी जनसंख्या अनुपात, राजस्थान की जनसंख्या नीति।	10	3
13.	**परिवहन एवं संचार –**परिवहन के साधन, संचार के प्रमुख माध्यम (राजस्थान के विशेष सन्दर्भ में।	8	3
14.	**आर्थिक अवधारणाएं एवं नियोजन –** अर्थव्यवस्था के क्षेत्रक, राष्ट्रीय आय का सामान्य परिचय, आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि, भारत में आर्थिक नियोजन।	12	3
15.	**भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं एवं नवीन प्रवृतियाँ –** अविकसित अर्थव्यवस्था के रूप में, विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में, आर्थिक सुधार (उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण) स्वदेशी की अवधारणा एवं कौशल विकास।	12	4
16.	**भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष चुनौतियाँ –** मूल्य वृद्धि, निर्धनता, बेरोजगारी – इनके कारण एवं निवारण के उपाय।	10	3
17.	**मुद्रा और वित्तीय संस्थाएं –** अर्थ व्यवस्था में भूमिका, ऐतिहासिक उद्गम, बचत और साख के लिए संस्थागत व गैर संस्थागत वित्तीय संस्थाएं (सामान्य परिचय), व्यापारिक बैंक, देशी बैंकर, स्थानीय साहुकार, स्वयं सहायता समूह, चिटफंड और निजी वित्तीय कम्पनियाँ।	14	4
18.	**उपभोक्ता एवं विधिक जागरूकता तथा सूचना का अधिकार** अर्थ, उपभोक्ता शोषण के कारण, प्रकार, उपभोक्ता के अधिकार एवं कर्त्तव्य, उपभोक्ता विवाद, निवारण के लिए किये गये उपाय (राजस्थान के विशेष सन्दर्भ में)। विधिक जागरूकता तथा सूचना का अधिकार।	12	4
19.	**सड़क सुरक्षा।**	10	2
20.	**स्वच्छता एवं ठोस कचरा प्रबन्धन,**		2

अनुक्रमणिका

अध्याय सं.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	स्वर्णिम भारत – प्रारम्भ से 1206 ई तक	1–20
2.	संघर्षकालीन भारत – 1206 ई. से 1757 ई. तक	21–42
3.	अंग्रेजी साम्राज्य का प्रतिकार एवं संघर्ष	43–57
4.	विश्व का इतिहास	58–68
5.	लोकतन्त्र	69–78
6.	केन्द्र सरकार	79–90
7.	राज्य सरकार	89–101
8.	जल संसाधन	102–112
9.	भारतीय कृषि	113–120
10.	खनिज व ऊर्जा संसाधन	121–130
11.	विनिर्माण उद्योग	131–138
12.	मानव संसाधन	139–149
13.	परिवहन एवं संचार	150–163
14.	आर्थिक अवधारणाएं एवं नियोजन	164–170
15.	भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं एवं नवीन प्रवृत्तियां	171–179
16.	भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष चुनौतियाँ	180–188
17.	मुद्रा और वित्तीय संस्थाएं	189–197
18.	उपभोक्ता एवं विधिक जागरूकता तथा सूचना का अधिकार	198–203
19.	सड़क सुरक्षा शिक्षा	204–209
20.	स्वच्छता एवं ठोस कचरा प्रबन्धन	210–213

निःशुल्क वितरण हेतु

अध्याय 1

स्वर्णिम भारत – प्रारम्भ से 1206 ई. तक

भारत का इतिहास एवं संस्कृति अपने प्रारम्भिक काल से ही गौरवशाली रही है। भारत 'विश्व गुरु' एवं 'सोने की चिड़िया' कहलाता था। सम्पूर्ण विश्व को परिवार के रूप में मानना (वसुधैव कुटुम्बकम्) तथा सभी के कल्याण व स्वास्थ्य की कामना (सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया) करना हमारा आदर्श है।

उत्खनन और पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी स्वरूप दिखाई देता है। समुद्र पार भारतीय प्रदेशों को दीपान्तर कहा जाता था। शक्तिशाली जलयानों में यात्रा करके भारतीय ब्रह्मदेश, श्याम, इण्डोनेशिया, मलेशिया, आस्ट्रेलिया, बोर्नियो, फिलीपींस, जापान व कोरिया तक पहुँचे और वहाँ अपना राजनैतिक व सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित किया। प्राचीन भारत में हमारे बन्दरगाह एवं नाविक शक्ति अत्यधिक विकसित थी। सिन्धु नदी में छः हजार वर्ष पूर्व चलने वाले जलयानों का उल्लेख विद्वानों ने किया है। भारतीय जल व थल दोनो मार्गों से विश्व के विभिन्न देशों में पहुँचे और वहाँ के निवासियों को अपने धर्म व संस्कृति से परिचित कराया। इन साहसी वीरों ने भारतीय दर्शनविज्ञान ज्योतिष, स्थापत्य, युद्धशास्त्र, नीतिशास्त्र, संगीत व वैदिक ग्रन्थों का विश्व में प्रसार किया। भारत की प्राचीन सभ्यताओं का हमें प्रारम्भ से ही विकसित स्वरूप दिखाई देता है।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता, वैदिक सभ्यता, रामायण एवं महाभारत कालीन सभ्यता एवं संस्कृति का काल भी भारत का स्वर्णिम काल रहा है। वेदों को विश्व ज्ञानकोश के रूप में जाना जाता है। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता स्थापत्य की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट सभ्यता है। रामायण और महाभारत भारत के विभिन्न आदर्श एवं नीति ग्रन्थों के रूप में प्रसिद्ध रहे है। हमारा महाजनपद काल गणतंत्रात्मक एवं संवैधानिक व्यवस्था का आदर्श रहा है।

उत्तरवैदिक काल में हमें विभिन्न जनपदों का अस्तित्व दिखाई देता है। इस काल तक पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार में लौह का व्यापक रूप से उपयोग किया जाने लगा था। लौह तकनीक ने लोगों के भौतिक जीवन में बड़ा परिवर्तन कर दिया तथा इससे समाज में स्थायी जीवन यापन की प्रवृत्ति सुदृढ़ हो गयी। कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य आदि के विकास ने प्राचीन जनजातीय व्यवस्था को जर्जर बना दिया तथा छोटे–छोटे जनों का स्थान बड़े जनपदों ने ग्रहण कर लिया। ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक आते–आते जनपद, महाजनपदों के रूप में विकसित हो गये।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व के प्रारम्भ में उत्तर भारत में सार्वभौम सत्ता का पूर्णतया अभाव था। सम्पूर्ण भारत अनेक स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त था। ये राज्य उत्तर–वैदिककालीन राज्यों की अपेक्षा अधिक विस्तृत तथा शक्तिशाली थे।

(i) महाजनपद काल (600–325 ई.पू.)

छठी शताब्दी ई.पू. में उत्तर भारत में अनेक विस्तृत और शक्तिशाली स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हुई, जिन्हें महाजनपदों की संज्ञा दी गई। बौद्ध ग्रंथ 'अगुत्तरनिकाय' के अनुसार उस समय 16 महाजनपद विद्यमान थे–

	महाजनपद		राजधानी
1.	काशी	:	वाराणसी
2.	कुरु	:	इन्द्रप्रस्थ
3.	अंग	:	चम्पा
4.	मगध	:	राजगृह या गिरिव्रज
5.	वज्जि	:	विदेह और मिथिला
6.	मल्ल	:	कुशावती (कुशीनारा)
7.	चेदि	:	शक्तिमती (सोत्थिवती)
8.	वत्स	:	कौशाम्बी
9.	कोशल	:	अयोध्या (बुद्धकाल में दो भाग, उत्तरी भाग की राजधानी – साकेत ; दक्षिणी भाग की राजधानी– श्रावस्ती)
10.	पांचाल	:	उत्तरी पांचाल की राजधानी – अहिच्छत्र, दक्षिणी पांचाल की राजधानी– कांपिल्य
11.	मत्स्य	:	विराटनगर
12.	शूरसेन	:	मथुरा (मेथोरा / शूरसेनाई)
13.	अश्सक	:	पोतन या पाटेली
14.	अवन्ति	:	उत्तरी अवन्ति की राजधानी – उज्जयिनी, दक्षिणी अवन्ति की राजधानी – महिष्मती
15.	गांधार	:	तक्षशिला
16.	कम्बोज	:	राजपुर / हाटक

उपर्युक्त 16 महाजनपदों में दो प्रकार के राज्य थे – राजतंत्र और गणतंत्र। कोशल, वत्स, अवन्ति और मगध उस समय सर्वाधिक शक्तिशाली राजतंत्र थे। छठी शताब्दी ई.पू. में अनेक गणतंत्रों का भी अस्तित्व था, जिनमें प्रमुख थे – कपिलवस्तु के शाक्य, सुंसुमारगिरि के भाग, अल्लकप्प के बुली, केसपुत्त के कालाम, रामग्राम के कोलिय, कुशीनारा के मल्ल, पावा के मल्ल, पिप्पलिवन के मोरिय, वैशाली के लिच्छवि और मिथिला के विदेह।

राजस्थान के प्रमुख जनपद –

वैदिक सभ्यता के विकासक्रम में राजस्थान में भी जनपदों का उदय देखने को मिलता है। यूनानी आक्रमण के कारण पंजाब की मालव, शिवी, अर्जुनायन आदि जातियाँ, जो अपने साहस और शौर्य के लिए प्रसिद्ध थीं, राजस्थान में आईं और यहीं पर निवास करने लगीं। इस प्रकार राजस्थान के पूर्वी भाग में जनपदीय शासन व्यवस्था का सूत्रपात हुआ।

प्रमुख जनपद ये थे –

जांगल –

वर्तमान बीकानेर और जोधपुर के जिले महाभारत काल में जांगलदेश कहलाते थे। कहीं–कहीं इसका नाम कुरू–जांगला और माद्रेय–जांगला भी मिलता है। इस जनपद की राजधानी अहिछत्रपुर थी, जिसे इस समय नागौर कहते हैं। बीकानेर के राजा इसी जांगल देश के स्वामी होने के कारण स्वयं को 'जांगलधर बादशाह' कहते थे। बीकानेर राज्य के राजचिह्न में भी 'जय जांगलधर बादशाह' लिखा मिलता है।

मत्स्य –

वर्तमान जयपुर के आस–पास का क्षेत्र मत्स्य महाजनपद के नाम से जाना जाता था। इसका विस्तार चम्बल के पास की पहाड़ियों से लेकर सरस्वती नदी के जांगल क्षेत्र तक था। आधुनिक अलवर और भरतपुर के कुछ भू–भाग भी इसके अन्तर्गत आते थे। इसकी राजधानी विराटनगर थी, जिसे वर्तमान में 'बैराठ' नाम से जाना जाता है। मौर्य शासक बिन्दुसार से पहले मत्स्य जनपद की स्पष्ट जानकारी का अभाव है। 'महाभारत' में कहा गया है कि शहाज नामक एक राजा ने चेदि तथा मत्स्य दोनों राज्यों पर शासन किया। मत्स्य प्रारंभ में चेदि राज्य का और कालान्तर में यह विशाल मगध साम्राज्य का अंग बन गया।

शूरसेन –

आधुनिक ब्रज क्षेत्र में यह महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी मथुरा थी। प्राचीन यूनानी लेखक इस राज्य को 'शूरसेनोई' तथा राजधानी को 'मेथोरा' कहते हैं। 'महाभारत' के अनुसार यहाँ यदु (यादव) वंश का शासन था। भरतपुर, धौलपुर तथा करौली जिलों के अधिकांश भाग शूरसेन जनपद के अन्तर्गत आते थे। अलवर जिले का पूर्वी भाग भी शूरसेन के अन्तर्गत आता था। वासुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण का संबंध इसी जनपद से था।

शिवि –

शिवि जनपद की राजधानी शिवपुर थी तथा राजा सुशिन ने उसे अन्य जातियों के साथ दस राजाओं के युद्ध में पराजित किया था। प्राचीन शिवपुर की पहचान वर्तमान पाकिस्तान के शोरकोट नामक स्थान से की जाती है। कालान्तर में दक्षिणी पंजाब की यह शिवि जाति राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में निवास करने लगी।

चित्तौड़गढ़ के पास स्थित नगरी इस जनपद की राजधानी थी। मेवाड़ के अनेक स्थानों से शिवियों के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। मन्दसौर के पास पाँच गुहालेख प्राप्त हुए हैं जिनसे शिवि जनपद का प्रसार पश्चिम से लेकर दक्षिण पूर्व तक होना ज्ञात होता है।

गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली के बावजूद इन जनपदों की राजसत्ता कुलीन परिवारों के हाथों में ही थी। इन परिवारों के प्रतिनिधि ही संथागार सभा के प्रमुखों के रूप में शासन की व्यवस्था करते थे। संथागार के सदस्य निर्धारित विषयों पर अपने विचार व्यक्त कर सकते थे। इसे 'अनयुविरोध' कहा जाता था। जो विषय विवादग्रस्त होते थे उन पर मतदान कराया जाता था। मतदान में बहुरंगी शलाकाएं काम में ली जाती थीं। संथागार जनपदों की सबसे बड़ी संस्था थी। राज्य की नीति के आधारभूत नियमों का निर्धारण इसी सभा में होता था। विशाल गणराज्यों में केन्द्रीय संथागार के अलावा प्रान्तीय संथागार भी होते थे। कालान्तर में गुटबाजी एवं आपसी फूट के कारण इन गणराज्यों का पतन हुआ। समकालीन राजतन्त्रों की विस्तारवादी नीति न्यूनाधिक रूप से इनके पतन के लिये उत्तरदायी थी।

(ii) मौर्य, शुंग, सातवाहन, गुप्त, वर्धन, पाल, राष्ट्रकूट, प्रतिहार, चोल, पल्लव एवं चालुक्य साम्राज्य

मौर्य वंश :–

सोलह महाजनपदों में से एक मगध का एक साम्राज्य के रूप में आविर्भाव हर्यंक वंश के समय हुआ और कालान्तर में मगध ने प्रायः समस्त उत्तर भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

मौर्य वंश की स्थापना–

ईसा पूर्व 326 ई. के लगभग मगध के राजसिंहासन पर नंद वंश का एक विलासी राजा घननंद सिंहासनारूढ़ था। इस समय पश्चिमोत्तर भारत सिकंदर से आक्रांत था। प्रजा अपने राजा के अत्याचारों से भी पीड़ित थी। असह्य कर–भार के कारण राज्य के लोग उससे असंतुष्ट थे। इस परिस्थिति में मगध को एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो विदेशी आक्रमण से उत्पन्न संकट को दूर करे और उसे एक सूत्र में बाँधकर चक्रवर्ती सम्राट के आदर्श को चरितार्थ करे। शीघ्र ही भारत के राजनीतिक नभमंडल पर कौटिल्य का शिष्य चंद्रगुप्त प्रकट हुआ तथा एक नवीन राजवंश 'मौर्यवंश' की स्थापना की।

चंद्रगुप्त मौर्य (322–298 ई.पू.) –

अपने गुरु चाणक्य की सहायता से अंतिम नंद शासक घननंद को पराजित कर 25 वर्ष की आयु में चंद्रगुप्त मौर्य मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। चंद्रगुप्त मौर्य ने व्यापक विजय अभियान करके प्रथम अखिल भारतीय साम्राज्य की सीपना की। 305 ई. पू. में उसने तत्कालीन यूनानी शासक सिल्यूकस निकेटर को पराजित किया। संधि हो जाने के बाद सिल्यूकस ने चंद्रगुप्त से 500 हाथी लेकर पूर्वी अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और सिंधु नदी के पश्चिम का क्षेत्र उसे दे दिया। सिल्यूकस ने अपनी पुत्री का विवाह भी चंद्रगुप्त से कर दिया और मेगस्थनीज को अपने राजदूत के रूप में उसके दरबार में भेजा। चंद्रगुप्त के विशाल साम्राज्य में काबुल, हेरात, कंधार, बलूचिस्तान, पंजाब, गंगा–यमुना का मैदान, बिहार, बंगाल, गुजरात, विन्ध्य और कश्मीर के भू–भाग सम्मिलित थे। तमिल ग्रंथ 'अहनानूरू' और 'मुरनानुरू' से विदित होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने दक्षिण भारत पर भी आक्रमण किया था। वृद्धावस्था में उसने भद्रबाहु से जैन धर्म की दीक्षा ले ली। उसने

298 ई.पू. में श्रवणबेलगोला (मैसूर) में उपवास करके अपना शरीर त्याग दिया।

बिन्दुसार (298 ई.पू.–272 ई.पू.) : बिन्दुसार चंद्रगुप्त मौर्य का पुत्र व उत्तराधिकारी था जिसे यूनानी लेखक अमित्रोचेट्स कहते थे। वायुपुराण में इसे भद्रसार तथा जैन ग्रंथों में सिंहसेन कहा गया है। उसने सुदूरवर्ती दक्षिण भारतीय क्षेत्रों को भी जीतकर मगध साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। 'दिव्यावदान' के अनुसार इसके शासनकाल में तक्षशिला में दो विद्रोह हुए, जिसका दमन करने के लिए पहले अशोक और बाद में सुसीम को भेजा गया। बिन्दुसार के राजदरबार में यूनानी शासक एन्टीयोकस प्रथम ने डायमेकस नामक व्यक्ति को राजदूत के रूप में नियुक्त किया। प्लिनी के अनुसार मिस्र नरेश फिलाडेल्फस (मेली द्वितीय) ने 'डियानीसियस' नामक मिस्री राजदूत बिन्दुसार के दरबार में भेजा था।

अशोक (273–232 ई.पू.) : जैन अनुश्रुति के अनुसार अशोक ने बिन्दुसार की इच्छा के विरुद्ध मगध के शासन पर अधिकार कर लिया। दक्षिण भारत से प्राप्त मास्की तथा गुज्जरा अभिलेखों में उसका नाम 'अशोक' मिलता है। अभिलेखों में अशोक 'देवानांपिय' तथा 'देवानांपियदस्सी' उपाधियों से विभूषित है। विदिशा की राजकुमारी से अशोक का विवाह हुआ तथा उससे पुत्री संघमित्रा तथा पुत्र महेन्द्र का जन्म हुआ। अशोक के अभिलेखों में उसकी रानी कारुवाकी का उल्लेख भी मिलता है।

राज्याभिषेक के सात वर्ष बाद अशोक ने कश्मीर तथा खोतान के अनेक क्षेत्रों को अपने साम्राज्य में मिलाया। उसके समय में मौर्य साम्राज्य में तमिल प्रदेश के अतिरिक्त समूचा भारत और अफगानिस्तान का काफी बड़ा भाग शामिल था। राज्याभिषेक के 8वें वर्ष (261 ई.पू.) में अशोक ने कलिंग पर आक्रमण किया, जिसमें 1 लाख लोग मारे गये। हाथीगुम्फा अभिलेख के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय कलिंग पर नंदराज शासन कर रहा था। इस व्यापक नरसंहार ने अशोक को विचलित कर दिया, फलतः उसने शस्त्रत्याग की घोषणा कर दी। मगध साम्राज्य के अंतर्गत कलिंग की राजधानी धौली या तोसाली बनायी गयी। श्रमण निग्रोध तथा उपगुप्त के प्रभाव में आकर अशोक बौद्धधर्म में दीक्षित हो गया और उसने भेरीघोष के स्थान पर धम्मघोष अपना लिया। बौद्ध धर्म स्वीकार करने से पूर्व 'राजतंरगिणी' (कल्हण) के अनुसार अशोक शिव का उपासक था। बाद में वह गुरु मोग्गलिपुत्रतिस्स के प्रभाव में आ गया। बराबर की पहाड़ियों में अशोक ने आजीवकों के निवास हेतु चार गुहाओं का निर्माण कराया, जिनके नाम थे – सुदामा, चापार, विश्वझोपड़ी और कर्ण। उसने राज्याभिषेक के 10वें वर्ष में बोधगया, तथा 20वें वर्ष में लुम्बिनी (कपिलवस्तु) की धम्मयात्रा की। रूम्मनदेई अभिलेख से विदित होता है कि उसने वहाँ भूमिकर की दर 1/6 से घटाकर 1/8 कर दी थी। अशोक के शिलालेखों में चोल, चेर, पांड्य और केरल के सीमावर्ती स्वतंत्र राज्य बताये गये हैं। राज्याभिषेक से सम्बन्धित लघु शिलालेख में अशोक ने स्वयं को बुद्धशाक्य कहा है।

धम्म : अशोक ने मनुष्य की नैतिक उन्नति हेतु जिन आदर्शों का प्रतिपादन किया उन्हें 'धम्म' कहा गया। अशोक के धम्म की परिभाषा दूसरे तथा सातवें स्तम्भलेख में दी गयी है। उसके अनुसार पापकर्म से निवृत्ति, विश्व कल्याण, दया, दान, सत्य एवं कर्मशुद्धि ही धम्म है। साधु स्वभाव होना, कल्याणकारी कार्य करना, पाप रहित होना, व्यवहार में मृदुता लाना, दया रखना, दान करना, शुचिता रखना, प्राणियों का वध न करना, माता–पिता व अन्य बड़ों की आज्ञा मानना, गुरु के प्रति आदर, मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों–श्रमणों के प्रति दानशीलता होना व उचित व्यवहार करना अशोक द्वारा प्रतिपादित धम्म की आवश्यक शर्तें हैं। तीसरे अभिलेख के अनुसार– धम्म में अल्प संग्रह और अल्प व्यय का भी विधान था। भब्रू शिलालेख के अनुसार अशोक ने बुद्ध के त्रिरत्नों बुद्ध, धम्म व संघ के प्रति अपनी आस्था प्रकट की।

सांची (रायसेन, मध्य प्रदेश) व सारनाथ (वाराणसी, उत्तर प्रदेश) लघु स्तंभ लेख में अशोक ने कौशाम्बी तथा पाटलीपुत्र के महामात्रों को आदेश दिया कि संघ में फूट डालने वाले भिक्षु–भिक्षुणियों को बहिष्कृत कर दिया जाये। प्रथम शिलालेख में यह विज्ञप्ति जारी की गयी कि किसी भी यज्ञ के लिए पशुओं का वध न किया जाये।

धम्म यात्रा : अशोक से पूर्व 'विहार यात्राएँ' की जाती थीं, जिनमें राजा पशुओं का शिकार करते थे। अशोक ने इनके स्थान पर धम्म यात्रा का प्रावधान किया, जिसमें बौद्ध स्थानों की यात्रा तथा ब्राह्मणों, श्रमणों व वृद्धों को स्वर्ण दान किया जाता था।

अनुसंधान : अशोक के काल में राज्य के कर्मचारियों – प्रादेशिकों राज्जुकों और युक्तकों को प्रति पांचवे वर्ष धर्म–प्रचार हेतु यात्रा पर भेजा जाता था, जिसे लेखों में 'अनुसंधान' कहा गया है।

धम्ममहामात्र : राज्याभिषेक के 14वें वर्ष में अशोक ने धम्ममहामात्रों की नियुक्ति की, जिनके मुख्य कार्य थे – जनता में धम्म का प्रचार करना, उन्हें कल्याणकारी कार्य करने तथा दानशीलता के लिए प्रोत्साहित करना, कारावास से कैदियों को मुक्त करना या उनकी सजा कम करना, उनके परिवार की आर्थिक सहायता, करना आदि।

अभिलेख :– अशोक प्रथम शासक था, जिसने अभिलेखों के माध्यम से अपनी प्रजा को संबोधित किया, जिसकी प्रेरणा उसे ईरानी राजा दारा (डेरियस–प्रथम) से मिली थी। अशोक के अधिकांश अभिलेख ब्राह्मी लिपि में हैं, जबकि पश्चिमोत्तर भारत (मन्सेरा, शाहबाजगढ़ी) से प्राप्त उसके अभिलेख खरोष्ठी लिपि में हैं। टोपरा से दिल्ली लाये गये एक स्तम्भ पर सात लेख एक साथ उत्कीर्णित हैं। दूसरे व तीसरे अभिलेख में यवन नरेश आंटियोकस द्वितीय का उल्लेख है। अशोक के अभिलेखों को पढ़ने में पहली बार सफलता जेम्स प्रिंसेप को प्राप्त हुई।

तामपर्णी (श्रीलंका) के राजा तिस्स ने अशोक से प्रभावित होकर देवनांपिय की उपाधि धारण की थी। दूसरे राज्याभिषेक के अवसर उसने अशोक को आमन्त्रित भी किया था। अशोक का पुत्र महेन्द्र बोधिवृक्ष का एक भाग लेकर वहाँ पहुँचा। यहाँ से श्रीलंका में बौद्धधर्म का पदार्पण माना जाता है।

40 वर्ष शासन करने के बाद 232 ई.पू. में अशोक की मृत्यु हो गयी।

अशोक के उत्तराधिकारी तथा मौर्य साम्राज्य का पतन –

अशोक के बाद अगले 50 वर्ष तक उसके कमजोर उत्तराधिकारियों का शासन रहा। अशोक के बाद कुणाल राजा बना जिसे दिव्यावदान में 'धर्मविवर्धन' कहा गया है। 'राजतरंगिणी' के

अनुसार उस समय जलौक कश्मीर का शासक था। तारानाथ के अनुसार अशोक का पुत्र वीरसेन गांधार का स्वतंत्र शासक बन गया था। कुणाल के अंधा होने के कारण मगध का प्रशासन उसके पुत्र सम्प्रति के हाथ में आ गया था। कुणाल के पुत्र दशरथ ने भी मगध पर शासन किया। उसने नागार्जुनी गुफाएं आजीवकों को दान में दी थी।

वृहद्रथ अंतिम मौर्य सम्राट था। उसके ब्राह्मण मंत्री पुष्यमित्र शुंग ने उसकी हत्या करके मगध में शुंग वंश के शासन की नींव डाली।

मौर्य प्रशासन :–

मौर्य काल में भारत ने पहली बार केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था की स्थापना हुई। सत्ता का केन्द्रीकरण राजा में होते हुए भी वह निरंकुश नहीं होता था। कौटिल्य ने राज्य के सात अंग निर्दिष्ट किए हैं : राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, सेना और मित्र। राजा द्वारा मुख्यमंत्री व पुरोहित की नियुक्ति उनके चरित्र की भली–भाँति जाँच के बाद ही की जाती थी। इस क्रिया को उपधा परीक्षण कहा जाता था। ये लोग मंत्रिमंडल के अंतरंग सदस्य थे। मंत्रिमंडल के अतिरिक्त परिशा मंत्रिणः भी होता था, जो एक तरह से मंत्रिपरिषद् था।

केन्द्रीय प्रशासन : अर्थशास्त्र में 18 विभागों का उल्लेख है, जिन्हें 'तीर्थ' कहा गया है। तीर्थ के अध्यक्ष को 'महामात्र' कहा गया है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तीर्थ थे – मंत्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज।

समाहर्त्ता : इसका कार्य राजस्व एकत्र करना, आय–व्यय का ब्यौरा रखना तथा वार्षिक बजट तैयार करना था।

सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) : साम्राज्य के विभिन्न भागों में कोषगृह और अन्नागार बनवाना। अर्थशास्त्र में 26 विभागाध्यक्षों का उल्लेख है, जैसे–कोषाध्यक्ष, सीताध्यक्ष (कृषि), पण्याध्यक्ष (व्यापार), सूत्राध्यक्ष (कताई, बुनाई), लूनाध्यक्ष (बूचड़खाना), विवीताध्यक्ष (चारागाह), लक्षणाध्यक्ष (मुद्रा जारी करना), मुद्राध्यक्ष, पौतवाध्यक्ष, बंधनागाराध्यक्ष, आटविक (वन विभाग का प्रमुख) इत्यादि। 'युक्त' व 'उपयुक्त' महामात्य तथा अध्यक्षों के नियंत्रण में निम्न स्तर के कर्मचारी होते थे।

प्रांतीय प्रशासन : अशोक के समय में मगध साम्राज्य के पांच प्रांतों का उल्लेख मिलता है – उत्तरापथ (तक्षशिला), अवंतिराष्ट्र (उज्जयिनी), कलिंग (तोसली), दक्षिणापथ (सुवर्णगिरि), मध्य देश (पाटलिपुत्र)। प्रांतों का शासन राजवंशीय 'कुमार' या 'आर्यपुत्र' नामक पदाधिकारियों द्वारा होता था। प्रांत विषयों में विभक्त थे, जो विषयपतियों के अधीन होते थे। जिले का प्रशासनिक अधिकारी 'स्थानिक' होता था, जो समाहर्त्ता के अधीन था। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई का मुखिया 'गोप' था, जो दस गाँवों का शासन संभालता था। समाहर्ता के अधीन प्रदेष्ट्रि नामक अधिकारी भी होता था, जो स्थानिक, गोप व ग्राम अधिकारियों के कार्यों की जाँच करता था।

नगर शासन : मेगस्थनीज के अनुसार नगर का शासन–प्रबंध 30 सदस्यों का एक मंडल करता था, जो 6 समितियों में विभक्त था– प्रथम समिति (उद्योग शिल्पों का निरीक्षण), द्वितीय समिति (विदेशियों की देख–रेख करना), तृतीय समिति (जन्म–मरण का लेखा–जोखा करना), चतुर्थ समिति (व्यापार/वाणिज्य; देखना), पांचवीं समिति (निर्मित वस्तुओं के विक्रय का निरीक्षण करना और छठी समिति (विक्रय मूल्य का दसवाँ भाग बिक्री कर के रूप में वसूलना), प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे।

सैन्य व्यवस्था : सेना के संगठन हेतु पृथक सैन्य विभाग था, जो 6 समितियों में विभक्त था। प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे। ये समितियाँ सेना के पाँच विभागों की देखरेख करती थीं ये पांच विभाग थे– पैदल, अश्व, हाथी, रथ तथा नौसेना। सैनिक प्रबंध की देखरेख करने वाला अधिकारी 'अंतपाल' कहलाता था। सीमांत क्षेत्रों का व्यवस्थापक भी 'अंतपाल' होता था। मेगस्थनीज (इंडिका) के अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य के पास 6 लाख पैदल, पचास हजार अश्वारोही, नौ हजार हाथी तथा आठ सौ रथों से सुसज्जित विराट सेना थी।

न्याय व्यवस्था : सम्राट न्याय प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी होता था। निचले स्तर पर ग्राम न्यायालय थे, जहाँ ग्रामणी और ग्रामवृद्ध अपना निर्णय देते थे। इसके ऊपर संग्रहण, द्रोणमुख, स्थानीय और जनपद स्तर के न्यायालय होते थे। सबसे ऊपर पाटलिपुत्र का केन्द्रीय न्यायालय था। ग्रामसंघ और राजा के न्यायालय के अतिरिक्त अन्य सभी न्यायालय दो प्रकार के थे।

1. धर्मस्थीय : इन न्यायालयों में निर्णय का कार्य धर्मशास्त्र में निपुण तीन धर्मस्थ या व्यावहारिक और तीन अमात्य करते थे। धर्मास्थीय एक प्रकार की दीवानी अदालत होती थी। चोरी, डाके व लूट के मामले, जिन्हें 'साहस' कहा गया है, भी धर्मस्थीय अदालतों में रखे जाते थे। कुवचन, मान–हानि, मारपीट के मामले भी धर्मस्थीय न्यायालय में ही लाये जाते थे, जिन्हें 'वाक् पारूश्य' या 'दंड पारूश्य' कहा गया है।

2. कंटकशोधन : ये फौजदारी अदालतें थीं। तीन प्रदेष्ट्रि तथा तीन अमात्य मिलकर राज्य तथा व्यक्ति के मध्य विवादों का निर्णय करते थे। नगर न्यायाधीश को 'व्यावहारिक महामात्र' तथा जनपद न्यायाधीश को 'राज्जुक' कहते थे। चाणक्य के अनुसार कानून के चार मुख्य अंग हैं – धर्म, व्यवहार, चरित्र और शासन।

मौर्यकालीन समाज : कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज कृत इंडिका तथा अशोक के अभिलेखों से मौर्यकाल की सामाजिक व्यवस्था की जानकारी मिलती है। कौटिल्य ने वर्णाश्रम व्यवस्था को सामाजिक संगठन का आधार माना है। कौटिल्य ने चारों वर्णों के व्यवसाय भी निर्धारित किए हैं। चार वर्णों के अतिरिक्त कौटिल्य ने अन्य जातियों, जैसे–निशाद, पारशव, रथकार, क्षता, वेदेहक, सूत, चांडाल आदि का उल्लेख भी किया है।मेगस्थनीज की 'इण्डिका' में भारतीय समाज का वर्गीकरण सात जातियों में किया है– दार्शनिक, किसान, पशुपालक व शिकारी, कारीगर या शिल्पी, सैनिक, निरीक्षक, समासद तथा अन्य शासक वर्ग। मेगस्थनीज ने अपने वर्गीकरण में जाति, वर्ण और व्यवसाय के अंतर को भुला दिया है।

मौर्यकाल में स्त्रियों की स्थिति को अधिक उन्नत नहीं कहा जा सकता, फिर भी स्मृतिकाल की अपेक्षा वे अधिक अच्छी स्थिति में थीं तथा उन्हें पुनर्विवाह व नियोग की अनुमति थी।

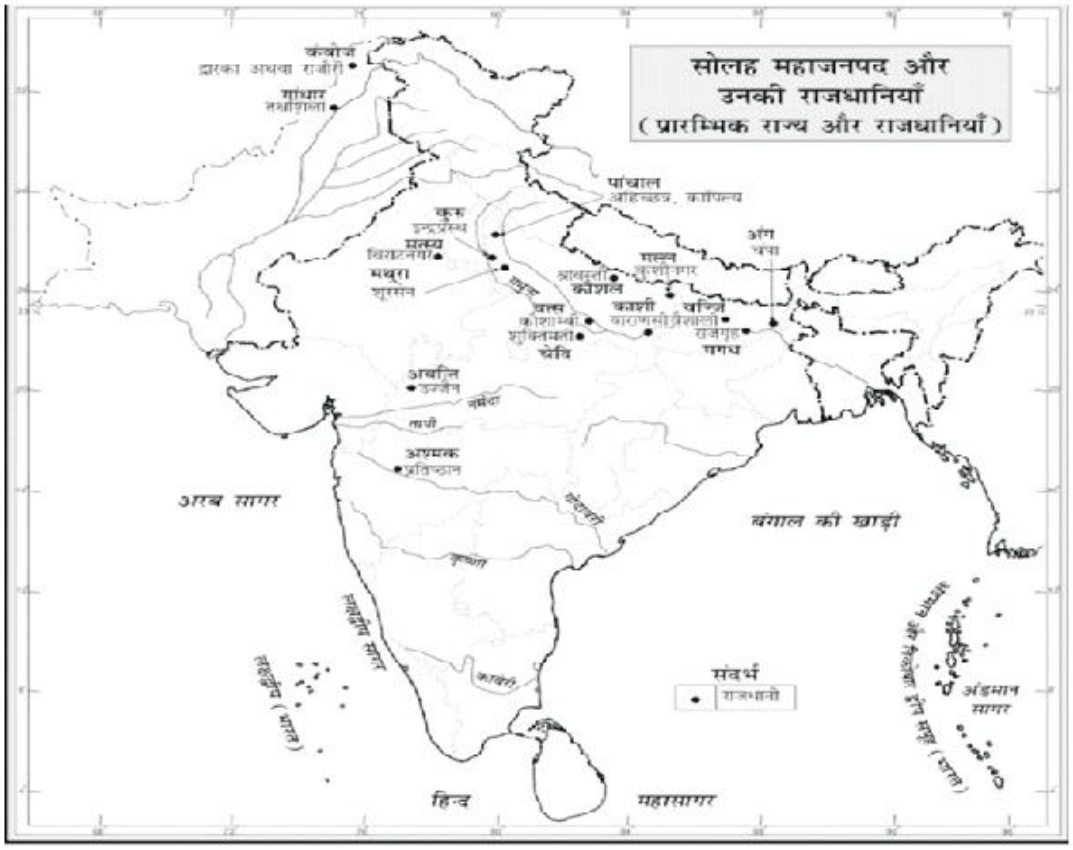

मानचित्र–1.1 महाजनपद

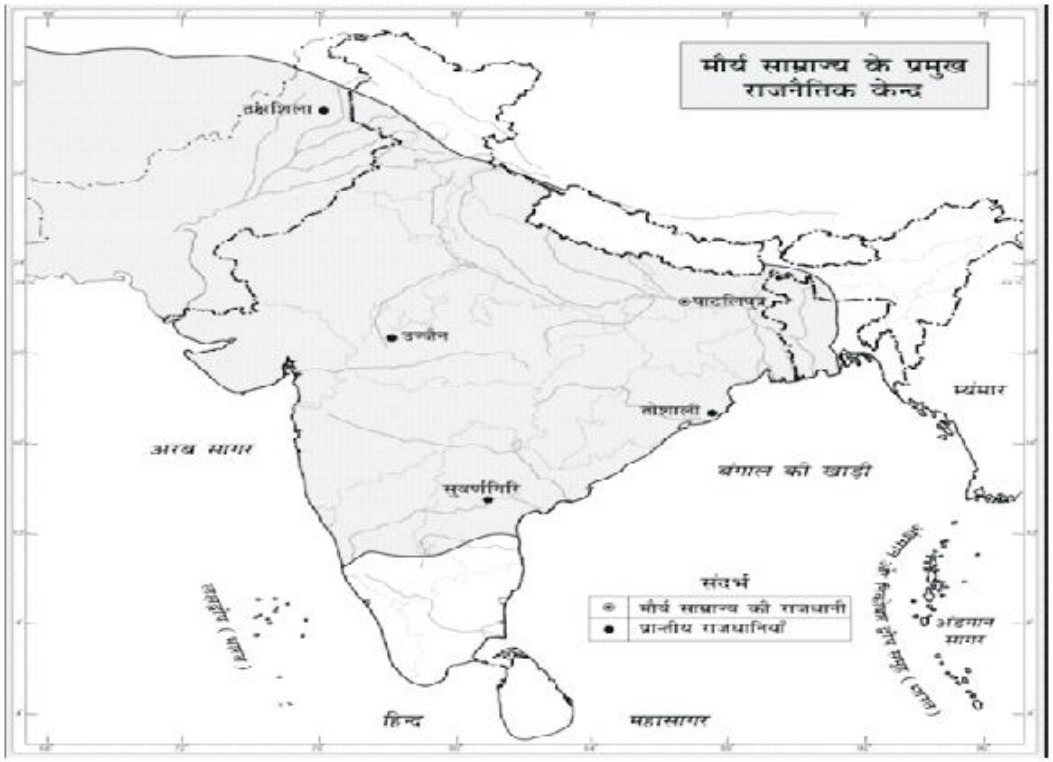

मानचित्र–1.2 मौर्य साम्राज्य

चित्र 1.3 सौंची स्तूप

चित्र 1.4 अशोक स्तम्भ

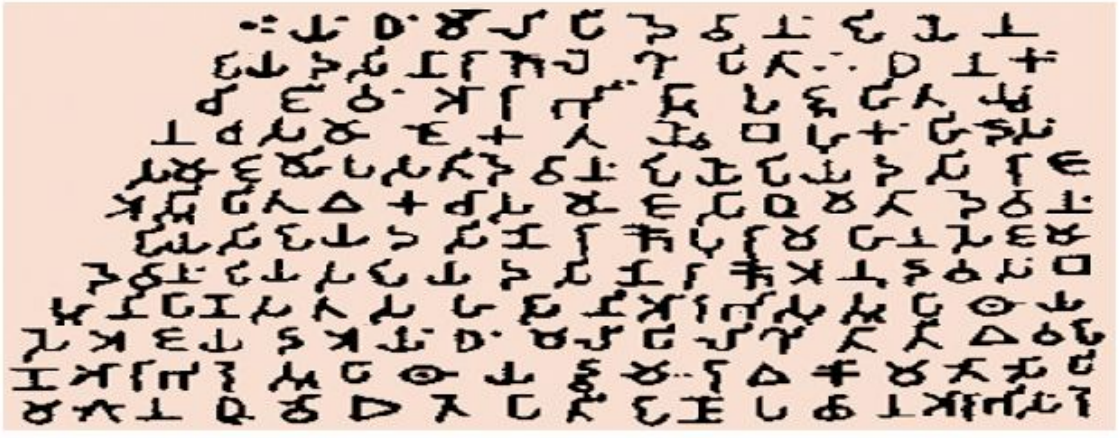

चित्र 1.5 अशोककालीन अभिलेख–लिपि

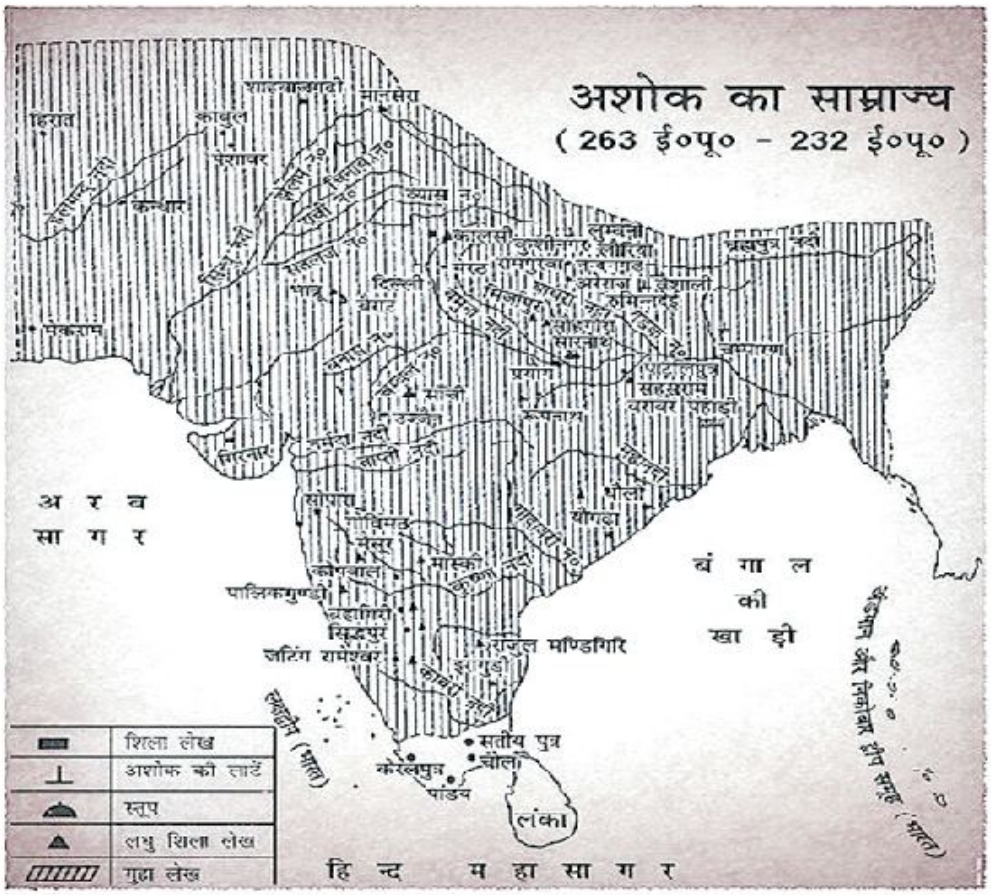

चित्र 1.6 अशोक का साम्राज्य

शुंग वंश –

इसकी स्थापना 185 ई. पू. में पुष्यमित्र शुंग ने की। मौर्य राजा वृहद्रथ का प्रधान सेनापति था। उसने उसे मार कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसने 151 ई.पू. तक राज्य किया। उसने कई युद्धों में विजय प्राप्त की और अपने राज्यकाल में दो बार अश्वमेध यज्ञ किया। सुप्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण पतंजलि अश्वमेध यज्ञ में उसका पुरोहित था।

पुष्यमित्र के बाद शुंगवंश में जो प्रमुख राजा हुए, उनके नाम थे – अग्निमित्र, ज्येष्ठमित्र, भद्रक, भागवत और देवभूति। देवभूति को उसके अमात्य वासुदेव ने लगभग 73 ई.पू. में सिंहासन से उतार दिया।

सातवाहन वंश–

आंध्र (गोदावरी और कृष्णा नदियों की घाटी) में सिमुक नामक व्यक्ति ने लगभग 60 ई. पू. में सातवाहन वंश की नींव डाली। यह राजवंश आंध्र और सातवाहन दोनों नामों से विख्यात है।

सिमुक का राज्यकाल 37 ई.पू. तक माना जाता है। उसके उपरान्त शातकर्णि प्रथम ने सातवाहन वंश की शक्ति एवं सत्ता का विस्तार किया। शातकर्णि प्रथम ने अश्वमेध यज्ञ किया और समस्त दक्षिण भारत पर अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित की। उसकी राजधानी गोदावरी नदी के तट पर स्थित प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन) नामक नगरी थी। शातकर्णि प्रथम की मृत्यु के बाद शकों के आक्रमणों के फलस्वरूप सातवाहनों की शक्ति में ह्रास होने लगा और महाराष्ट्र में शक वंश का शासन आरम्भ हुआ, जो पश्चिमी क्षत्रप वंश कहा जाता है। सातवाहन वंश के तेईसवें शासक गौतमीपुत्र शातकर्णि ने पश्चिमी क्षत्रपों की शक्ति को नष्ट करके पुनः अपने वंश की शक्ति, समृद्धि और सत्ता स्थापित की। वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि ने उज्जैन के शक महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम की पुत्री से विवाह किया। रुद्रदामन ने उससे यह समस्त भू–भाग छीन लिया, जिसे उसने पश्चिमी क्षत्रपों को पराजित करके जीता था। सातवाहन वंश के सत्ताइसवें शासक यज्ञश्री (शातकर्णि) ने उज्जयिनी के क्षत्रपों से कुछ भू–भागों को पुनः अपने अधिकार में करके अपनी वंशकीर्ति पुनः स्थापित की। यज्ञश्री ने कई प्रकार की मुद्राएँ चलाईं, जिनमें से कुछ पर जलपोत भी अंकित हैं। इससे

चित्र 1.7 सतवाहन काल के सिक्के

प्रतीत होता है कि उसका साम्राज्य समुद्र तक विस्तृत था। इस वंश के सभी शासक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने वैदिक यज्ञों और समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था को प्रतिष्ठित किया तथा विदेशी यवनों और शकों से संघर्ष करते रहे। उन्होंने बौद्ध तथा जैन विहारों तथा उपाश्रयों को भी प्रभूत अनुदान दिये। उनके शासन काल में वाणिज्य तथा व्यापार, कृषि एवं अन्य उद्योगों को विशेष प्रोत्साहन मिला तथा चाँदी, ताँबे, सीसे और कांसे की मुद्राओं का विशेष प्रचलन हुआ। उन्होंने ही सर्वप्रथम ब्राह्मणों को भूमि अनुदान (अग्रहार) देने की प्रथा आरम्भ की। सातवाहन राजाओं ने पश्चिमी दकन में अनेक चैत्य एवं विहार बनवाये, जिनमें कार्ले का चैत्य सुप्रसिद्ध है। 40 मीटर लम्बा 15 मीटर ऊँचा यह चैत्य वास्तुकला का अद्भुत उदाहरण है।

गुप्त साम्राज्य (275–550 ई.)

उत्तर भारत में कुषाण सत्ता 230 ई. के लगभग समाप्त हो गई, तब मध्य भारत का एक बड़ा भू–भाग शक मुरण्डों के शासन में आ गया, जो कि 250 ई. तक शासन करते रहे। उसके बाद 275 ई. में गुप्त वंश अस्तित्व में आया। इस वंश का संस्थापक श्रीगुप्त था। समुद्रगुप्त ने स्वयं को 'प्रयाग प्रशस्ति' में श्रीगुप्त का प्रपौत्र कहा है। श्रीगुप्त के बाद घटोत्कच गुप्त शासक हुआ। इसकी उपाधि 'महाराज' थी।

चन्द्रगुप्त प्रथम (320–335 ई.) :

घटोत्कच के बाद उसका पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्तवंश का शासक हुआ। इसने 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। उसने लिच्छिवीवंशजा कुमारदेवी से विवाह किया। चन्द्रगुप्त प्रथम ने 319 ई. में एक संवत् चलाया, जो गुप्त संवत् के नाम से प्रसिद्ध है।

समुद्रगुप्त (335–380 ई.) :

चन्द्रगुप्त प्रथम ने समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। उसका आदर्श 'दिग्विजय' और 'एकीकरण' था। वह साम्राज्यवाद में विश्वास रखता था। उसके दरबारी कवि हरिषेण ने उसकी सैनिक सफलताओं का विवरण इलाहाबाद प्रशस्ति अभिलेख में किया है। यह अभिलेख उसी स्तंभ पर उत्कीर्णित है, जिस पर अशोक का अभिलेख उत्कीर्णित है। इसके द्वारा जीते क्षेत्र को पांच समूहों में बांटा जा सकता है गंगा–यमुना दोआब के राज्य, पूर्वी हिमालय के राज्य, पूर्वी विन्ध्य क्षेत्र के आटविक राज्य, पूर्वी दकन व दक्षिण भारत के राज्य और शक एवं कुषाण राज्य। इलाहाबाद प्रशस्ति के अनुसार वह कभी भी युद्ध में नहीं हारा था। समुद्रगुप्त के पास एक शक्तिशाली नौसेना भी थी, जिससे वह विदेशों से सम्बन्ध सुदृढ़ कर सका। समुद्रगुप्त ने अवश्मेध यज्ञ भी किया। उसके सिक्कों पर 'अश्वमेध पराक्रमः' लिखा मिलता है। यह ललित कलाओं में भी निपुण था। उसे कविराज भी कहा गया है। वह संगीत में भी निपुण था। एक सिक्के पर उसकी आकृति वीणा बजाती हुई है। वह विष्णु का भक्त था, परन्तु दूसरे धर्मों का भी समान रूप से आदर करता था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय (380–412 ई.) :

चन्द्रगुप्त द्वितीय समुद्रगुप्त का पुत्र था। उसका नाम देवराज तथा देवगुप्त भी मिलता है। उसने अपने साम्राज्य को विवाह सम्बन्धों और विजयों द्वारा बढ़ाया। उसने अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह वाकाटक राजा रुद्रसेन से किया, जिसकी मृत्यु के पश्चात् प्रभावती अपने छोटे पुत्र को गद्दी पर बिठाकर राज्य की वास्तविक शासक बन गई। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पश्चिम मालवा व गुजरात को भी जीता। उज्जैन को उसने अपनी द्वितीय राजधानी बनाया। शक–विजय के पश्चात् उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की।

कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य (414–455 ई.) :

चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त शासक बना। कुमार गुप्त को ही नालंदा विश्वविद्यालय का संस्थापक माना जाता है। उसका राज्य सौराष्ट्र से बंगाल तक फैला था। अपने राज्य के अंतिम दिनों में उसे पुष्यमित्र के विद्रोह का सामना करना पड़ा था।

स्कन्दगुप्त (455–467 ई.) :

स्कन्दगुप्त ज्येष्ठ पुत्र न होते हुए भी राज्य का उत्तराधिकारी बना। जूनागढ़ अभिलेख द्वारा ज्ञात होता है कि स्कंदगुप्त ने मौर्यों द्वारा निर्मित सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार

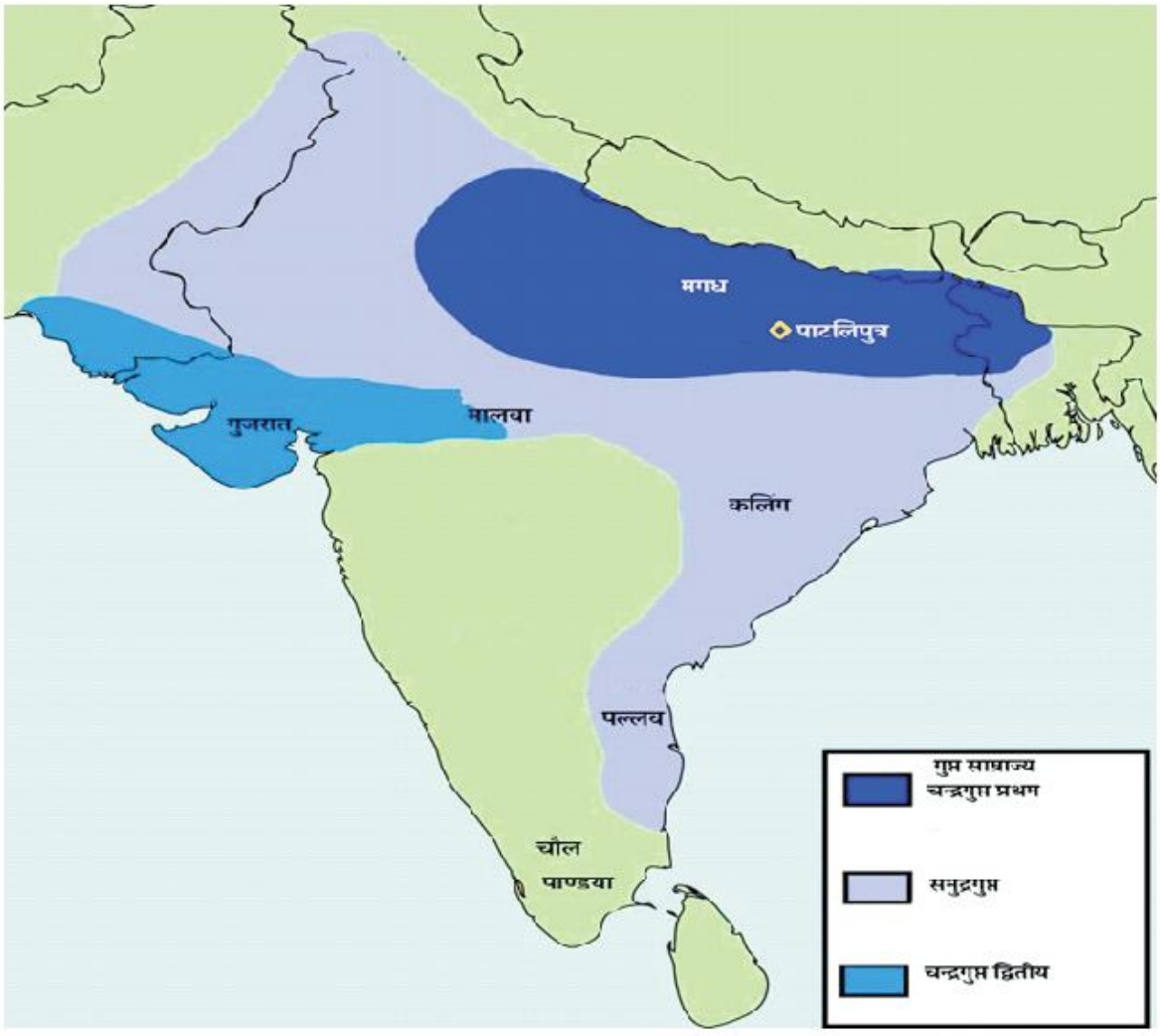

मानचित्र 1.8 गुप्त साम्राज्य

करवाया था। जूनागढ़ अभिलेख में इस बात का उल्लेख है कि सिंहासन पर बैठने के समय स्कंदगुप्त को म्लेच्छों के रूप में कुख्यात हूणों से जूझना पड़ा था। स्कंदगुप्त ने अंततः हूणों को पराजित कर दिया।

गुप्तवंश की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ :

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में गुप्त वंश का बहुत महत्व है। गुप्त सम्राट वैदिक धर्म को मानने वाले थे। समुद्रगुप्त तथा कुमारगुप्त प्रथम ने तो अश्वमेध यज्ञ भी किया था। उन्होंने बौद्ध और जैन धर्म को भी प्रश्रय दिया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय चीनी यात्री फाह्यान भारत आया था। उसके विवरणों से पता चलता है कि गुप्त साम्राज्य सुशासित था, उसमें अपराध बहुत कम होते थे और कर भार भी बहुत कम था। राजकाज की भाषा संस्कृत थी। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक तथा 'रघुवंशम्' महाकाव्य के रचयिता कालिदास, 'मृच्छकटिकम्' नाटक के लेखक शूद्रक, 'मुद्राराक्षस' नाटक के लेखक विशाखदत्त तथा सुविख्यात कोशकार अमरसिंह गुप्तकाल में ही हुए। रामायण, महाभारत तथा मनुसंहिता अपने वर्तमान रूप में गुप्त काल में ही सामने आई। गुप्तकाल में आर्यभट्ट, वराहमिहिर तथा ब्रह्मगुप्त ने गणित तथा ज्योतिर्विज्ञान के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया। इसी काल में दशमलव प्रणाली का आविष्कार हुआ, जो बाद में अरबों के माध्यम से यूरोप तक पहुँची। उस काल की वास्तुकला, चित्रकला तथा धातुकला के प्रमाण झाँसी और कानपुर के अवशेषों, अजन्ता की कुछ गुफाओं, दिल्ली में स्थित लौहस्तम्भ, नालंदा में 80 फुट ऊँची बुद्ध की ताँबे की मूर्ति तथा सुलतानगंज स्थित साढ़े सात फुट ऊँची बुद्ध की ताँबे की प्रतिमा से मिलते हैं।

गुप्तकालीन समाज :

गुप्तकालीन समाज परम्परागत रूप से चार वर्णों में विभक्त था। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। उनके कर्त्तव्य माने जाते थे – अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ और दान। क्षत्रिय का कर्त्तव्य राष्ट्र की रक्षा करना था। वैश्य का कार्य व्यापार और वाणिज्य करना था। शूद्र सेवा प्रदाता था। गुप्तकाल में जातियों के विषय में व्यवसाय का बंधन शिथिल होने लगा था, फिर भी वर्णों का आधार गुण और कर्म न होकर जन्म ही था। स्त्रियों का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था। धार्मिक कृत्यों में पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी। स्त्री–शिक्षा का प्रचलन भी था। पर्दा प्रथा नहीं थी। उस समय आठ प्रकार के विवाहों का प्रचलन था। स्वयंवर

चित्र 1.9 समुद्रगुप्त द्वारा प्रचलित स्वर्ण मुद्रा

चित्र 1.10 चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा प्रचलित स्वर्ण मुद्रा

प्रथा भी विद्यमान थी। गुप्त काल में मिश्रित जातियाँ–मूर्द्धावशिक्त, करण, अम्बष्ठ, पारशव आदि उग्र थीं। कायस्थ गुप्त युग में एक वर्ग था, परन्तु बाद में यह एक जाति के रूप में अस्तित्व में आ गया। गुप्तकालीन साहित्य में नारी का आदर्श चित्रण है। पुत्र के अभाव में पुरुष की संपत्ति पर उसकी पत्नी का प्रथम अधिकार होता था।

वर्धन वंश (पुष्यभूति वंश) –

छठी शताब्दी ई. में दिल्ली के निकट थानेश्वर में पुष्यभूति से, जो शिव का उपासक था, इस वंश का प्रारम्भ हुआ। इस वंश में तीन राजा हुए – प्रभाकरवर्धन राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद सिंहासन पर उसका बड़ा पुत्र राज्यवर्धन बैठा, किन्तु राज्याभिषेक के बाद राज्यवर्धन को युद्धों में उलझना पड़ा और बंगाल के गौड़ शासक शशांक द्वारा 606 ई. में उसका वध भी कर दिया गया। उसके बाद उसका छोटा भाई हर्षवर्धन (606–47 ई.) शासक बना, जिसने चालीस वर्ष तक राज्य करके अपनी कीर्ति का विस्तार किया। वह निस्संतान था, अतः उसकी मृत्यु के साथ ही पुष्यभूति वंश का अंत हो गया।

जिस समय हर्ष सिंहासन पर बैठा, राज्य की स्थिति अत्यन्त संकटपूर्ण थी। गौड़ (बंगाल) के राजा शशांक ने उसके बड़े भाई राज्यवर्धन का वध कर डाला था और उसकी छोटी बहिन राजश्री अपने प्राणों की रक्षा के लिए किसी अज्ञात स्थान पर चली गई थी। हर्षवर्धन ने शीघ्र ही अपनी बहिन को ढूँढ़ निकाला और कामरूप के राजा भास्करवर्मा से संधि करके शशांक के विरुद्ध एक बड़ी सेना भेज दी। यद्यपि दक्षिण में उसकी सेनाओं को लगभग 620 ई. में चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय ने नर्मदा के तट से पीछे खदेड़ दिया था। हर्ष के साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर में हिमाच्छादित पर्वतों, दक्षिण में नर्मदा नदी के तट, पूर्व में गंजाम तथा पश्चिम में वल्लभी तक विस्तृत थीं। कन्नौज इस विशाल साम्राज्य की राजधानी थी।

हर्ष ने महाराजाधिराज की पदवी धारण की। वह शिव और सूर्य की उपासना करता था। बाद में उसका झुकाव महायान बौद्ध धर्म की ओर अधिक हो गया। वह प्रति पाँचवे वर्ष, प्रयाग में गंगा और यमुना के संगम पर, एक महोत्सव करके दान आदि करता था। चीनी यात्री ह्वेन्सांग भी इस प्रकार के छठे महोत्सव में सम्मिलित हुआ था।

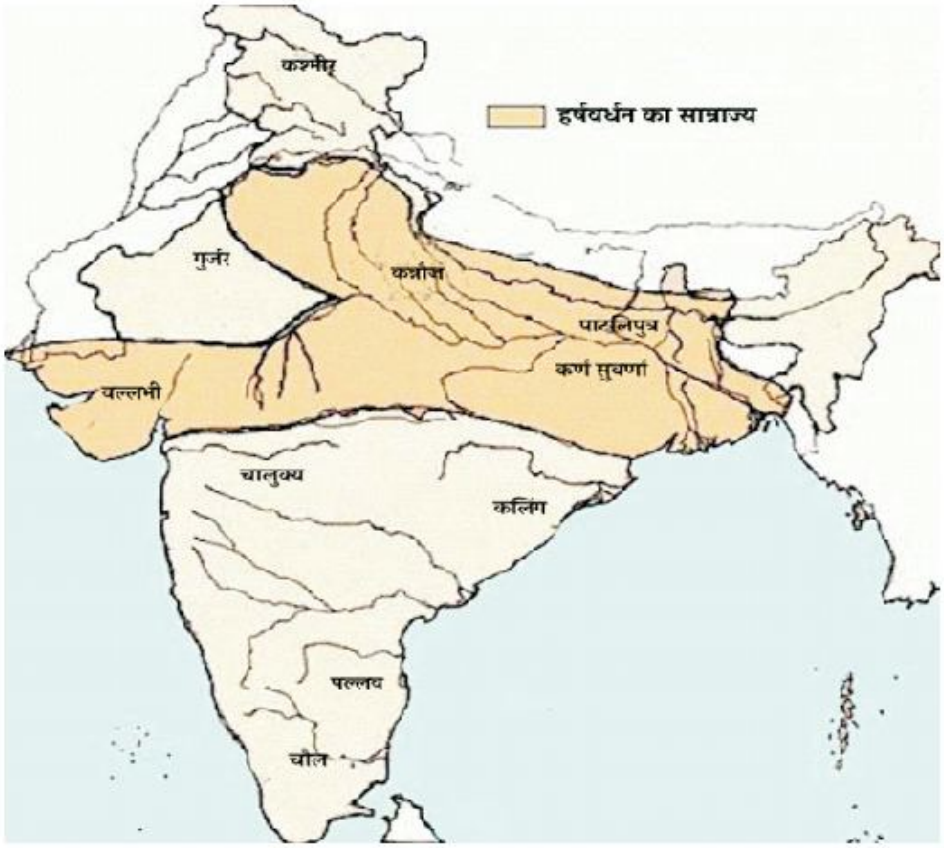

चित्र 1.11 हर्षवर्धन का साम्राज्य

चित्र 1.12 सम्राट हर्षवर्धन

पाल वंश –

इस वंश का उद्‌भव बंगाल में लगभग 750 ई. में गोपाल से माना जाता है। पालवंश का दूसरा शासक धर्मपाल इस वंश का सबसे महान् राजा था। उसने अपना राज्य कन्नौज तक विस्तृत किया और प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटों के साथ हुए त्रिकोणात्मक संघर्ष में भी अपने राज्य को सुरक्षित रखा। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी देवपाल ने भी कई युद्धों में विजय प्राप्त की। वह अपनी राजधानी को पाटलिपुत्र से बंगाल ले गया। उसकी राजसभा में सुमात्रा के राजा बालपुत्र देव का दूत आया था। देवपाल (810–850 ई.) के बाद पालवंश की राज्यशक्ति शासकों की निर्बलता तथा गुर्जर–प्रतिहार राजाओं के आक्रमणों के कारण क्षीण होने लगी। नवें राजा महीपाल प्रथम के राज्यकाल में चोल राजा राजेन्द्र प्रथम ने लगभग 1023 ई. में गंगा तक के प्रदेशों को जीत लिया। बारहवीं शताब्दी के मध्य तक पालवंश की शक्ति क्षीण हो गई।

पालवंशी राजा बौद्ध थे और उनके राज्यकाल में बौद्ध शिक्षा केन्द्रों की बड़ी उन्नति हुई। नालन्दा तथा विक्रमशिला के प्रसिद्ध महाविहारों को उनका संरक्षण प्राप्त था। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु अतिशा दसवें पाल राजा नयपाल के राज्यकाल में तिब्बत के राजा के निमंत्रण पर वहाँ भी गया था। पालवंशी राजा कला तथा वास्तुकला के महान प्रेमी थे। उन्होंने धीमान तथा विटपाल जैसे महान शिल्पियों को संरक्षण प्रदान किया। पाल–युग के अनेक जलाशय दीनापुर जिले में अभी भी बचे हुए हैं।

राष्ट्रकूट वंश –

इस राजवंश की स्थापना दन्तिदुर्ग ने 736 ई. में की थी। उसने नासिक को अपनी राजधानी बनाया। इस वंश में 14 शासक हुए।

दन्तिदुर्ग वातापी के चालुक्यों के अधीन सामन्त था। उसने अंतिम चालुक्य शासक कीर्तिवर्मा द्वितीय को पराजित करके दक्षिण में चालुक्यों की सत्ता समाप्त कर दी। कृष्ण प्रथम ने एलोरा के सुप्रसिद्ध कैलाशनाथ मन्दिर का निर्माण कराया। वंश के चौथे शासक ध्रुव ने गुर्जर प्रतिहार शासक वत्सराज को पराजित किया और पाँचवे शासक गोविन्द तृतीय ने गुर्जर प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय और पाल शासक धर्मपाल को पराजित किया। उसने राष्ट्रकूटों के साम्राज्य को मालव प्रदेश से कांची तक विस्तृत कर दिया। छठा शासक अमोघवर्ष शान्तिप्रिय था, जिसने लगभग 64 वर्षों तक राज्य किया। उसी ने मान्यखेत (मालखेड) को राष्ट्रकूटों की राजधानी बनाया। अरब यात्री सुलेमान ने अमोघवर्ष की गणना विश्व के तत्कालीन चार महान् शासकों में की। कृष्ण द्वितीय तथा इन्द्र तृतीय ने कन्नौज के तत्कालीन शासक महीपाल को पराजित करके भागने को विवश कर दिया। बारहवें शासक कृष्ण तृतीय के शासनकाल में राष्ट्रकूटों का दक्षिण के चोल शासकों से एक दीर्घकालीन संघर्ष आरंभ हुआ।

राष्ट्रकूटों का पराभव कल्याणी के चालूक्यों द्वारा हुआ। चालुक्य शासक तैलप ने 973 ई. में इस वंश के कर्क द्वितीय को पराजित करके मान्यखेत पर अधिकार कर लिया। राष्ट्रकूट शासक वैदिक धर्म के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने कई भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया। वे संस्कृत तथा कन्नड़ साहित्य के पोषक थे। अरबों ने इस वंश के शासकों को बल्हरा (बल्लराज) सम्बोधित किया है।

• गुर्जर–प्रतिहार वंश –

इस राज्य की स्थापना नागभट्ट नामक एक सामंत द्वारा 725 ई. में गुजरात में हुई, अतएव इसका नाम 'गुर्जर प्रतिहार' पड़ा। नागभट्ट प्रथम बड़ा वीर था। उसने सिंध की ओर से होने वाले अरबों के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना किया। वत्सराज इस वंश का पहला शासक था, जिसने सम्राट की पदवी धारण की। वत्सराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय ने 816 ई. के लगभग गंगा की घाटी पर हमला किया और कन्नौज पर अधिकार कर लिया। वह अपनी राजधानी भी कन्नौज ले आया। नागभट्ट द्वितीय राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय से पराजित हुआ। उसके वंशज कन्नौज तथा आसपास के क्षेत्रों पर 1018–19 ई. तक शासन करते रहे। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा भोज प्रथम था, जो मिहिरभोज के नाम से भी जाना जाता है और जो नागभट्ट द्वितीय का पौत्र था। अरब व्यापारी सुलेमान इसी के समय भारत आया था। अगला सम्राट महेन्द्रपाल था, जो 'कर्पूरमंजरी' नाटक के रचयिता महाकवि राजशेखर का शिष्य और संरक्षक था। महेन्द्र का पुत्र महिपाल राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय से बुरी तरह पराजित हुआ। महिपाल के समय गुर्जर–प्रतिहार राज्य का पतन होने लगा। उसके बाद के राजाओं – भोज द्वितीय, विनायकपाल, महेन्द्रपाल द्वितीय, देवपाल, महिपाल द्वितीय और विजयपाल ने 1013 ई. तक अपने राज्य को कायम रखा। महमूद गजनवी के हमले के समय कन्नौज का शासक राज्यपाल था। राज्यपाल बिना लड़े भाग खड़ा हुआ। बाद में उसने महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली। इससे आसपास के राजपूत राजा बहुत नाराज हुए। महमूद गजनवी के लौट जाने पर कालिंजर के चन्देल राजा गण्ड के नेतृत्व में राजपूत राजाओं ने उसे मार डाला और उसके स्थान पर त्रिलोचनपाल को गद्‌दी पर बैठाया। कन्नौज में गहड़वाल अथवा राठौर वंश का उद्‌भव होने पर 11वीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में बाड़ी के गुर्जर–प्रतिहार वंश को सदा के लिए उखाड़ दिया गया। गुर्जर प्रतिहार वंश के शासकों ने अरबों को आगे नहीं बढ़ने दिया।

चोल वंश (उत्तरवर्ती चोल राज्य) :

यह प्राचीन दक्षिणापथ के तीन प्रमुख राज्यों में से एक था। अन्य दो राज्य थे – पाण्ड्य और चेर अथवा केरल। अशोक के अभिलेखों में इस राज्य का वर्णन एक स्वतंत्र राज्य के रूप में हुआ है। चोल राज्य के निवासी तमिलभाषी थे। उन्होंने तमिल भाषा में उच्च कोटि के साहित्य लेखन को प्रोत्साहित किया। तिरुवल्लुवर रचित 'कुरल' इसका अच्छा उदाहरण है। करिकाल (लगभग 100 ई.) चोलवंश का एक राजा हुआ, जिसने पुहार या पुगार नगर की नींव डाली। उसने सिंहल से युद्ध किया और युद्धबंदियों से कावेरी नदी के किनारे सौ मील लम्बे बाँध का निर्माण कराया। वह चोलों की राजधानी को उरगपुर (उरयूर) से कावेरीपत्तनम् ले गया। चोल राजा विजयालय के पुत्र और उत्तराधिकारी आदित्य (लगभग 880–907 ई.) ने पल्लव नरेश अपराजित को हराया था। आदित्य के पुत्र परान्तक प्रथम ने पल्लवों की शक्ति को पूरी तरह कुचल दिया था। उसने पाण्ड्यों की राजधानी मदुरा पर भी अधिकार कर लिया था।

चोल राजराज प्रथम (985–1013 ई.) सम्पूर्ण मद्रास, मैसूर, कूर्ग और सिंहलद्वीप (श्रीलंका) को अपने अधीन करके पूरे दक्षिणी भारत का एकछत्र सम्राट बन गया था। उसने अपनी राजधानी तंजोर में भगवान शिव का राजराजेश्वर (वृहदेश्वर) मंदिर बनवाया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी राजेन्द्र प्रथम (1016–44 ई.) के पास शक्तिशाली नौसेना थी, जिसने पेगू, मर्तबान तथा अण्डमान–निकोबार द्वीपों को जीता। उसने बंगाल और बिहार के शासक महिपाल से युद्ध किया। उसकी सेनाएँ कलिंग पार करके ओड़ (उड़ीसा), दक्षिण कोसल, बंगाल और मगध होती हुई गंगा तक भी पहुंची। इस विजय के उपलक्ष्य में उसने 'गंगैकोंड' की उपाधि धारण की। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी राजाधिराज (1044–54 ई.) चालुक्य राजा सोमेश्वर के साथ हुए कोप्पम के युद्ध में मारा गया, परन्तु वीर राजेन्द्र (1034–69 ई.) ने चालुक्यों को कुडल–संगमम् के युद्ध में परास्त कर पिछली हार का बदला ले लिया। चोलों में शीघ्र ही उत्तराधिकार के लिए युद्ध छिड़ गया। इसके फलस्वरूप सिंहासन राजेन्द्र कुलोतुंग प्रथम (1070–1122 ई.) को प्राप्त हुआ। राजेन्द्र कुलोत्तुंग की मां चोल राजकुमारी और पिता चालुक्य राज्य का स्वामी था। इस प्रकार कुलोत्तुंग ने चालुक्य–चोलों के एक नये वंश की स्थापना की। उसने चालीस वर्षों तक शासन किया।

चोल प्रशासन :

चोलों का प्रशासन ग्राम–पंचायत प्रणाली पर आधारित था। प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण चोल राज्य छः प्रांतों में बँटा हुआ था, जिनको 'मण्डलम्' कहा जाता था। मण्डलम् के उप–विभाग 'कोट्टम्' कोट्टम के उपविभाग 'नाडु', 'कुर्रम' और ग्राम होते थे। अभिलेखों में नाडु की सभा को नाट्टर और नगर की श्रेणियों को 'नगरत्तार' कहा गया है। गाँव के प्रतिनिधि प्रतिवर्ष नियमतः निर्वाचित होते थे। प्रत्येक मण्डलम् को तो स्वायत्तता

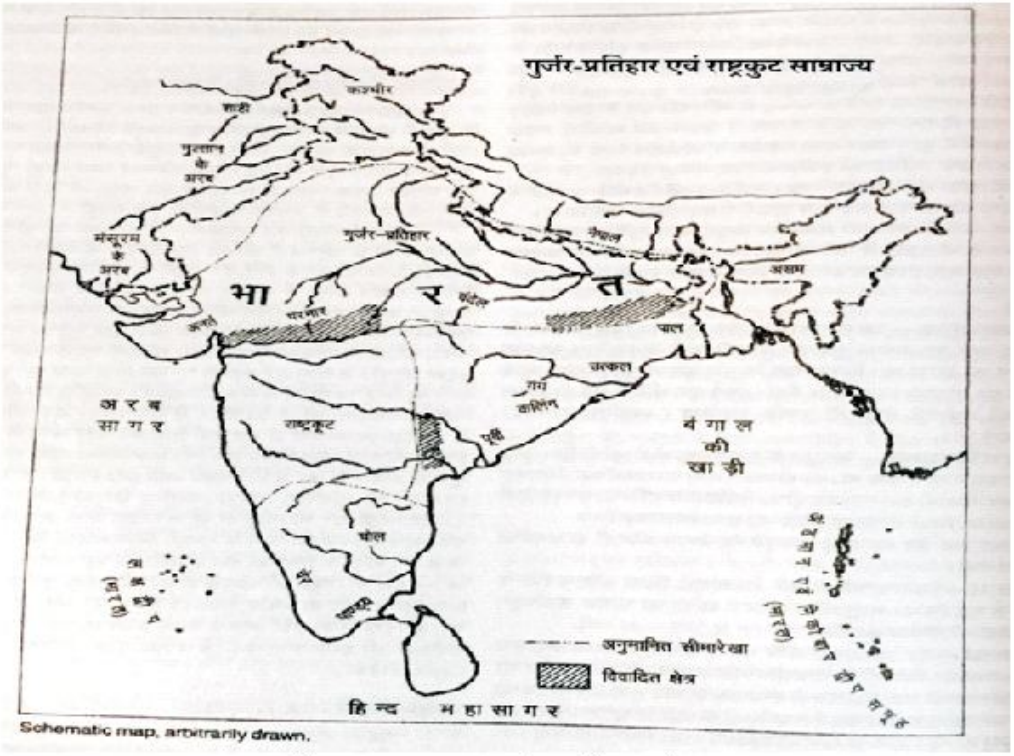

मानचित्र 1.13 राष्ट्रकूट, गुर्जर–प्रतिहार, चोल साम्राज्य

चित्र 1.14 चोल कालीन मन्दिर

चित्र 1.15 नटराज (शिव) की प्रतिमा

प्राप्त थी, लेकिन राजा को नियंत्रित करने के लिए कोई केन्द्रीय विधानसभा नहीं थी। भूमि की उपज का लगभग छठा भाग सरकार को लगान के रूप में मिलता था। लगान अनाज में या स्वर्ण मुद्राओं में दिया जा सकता था। चोल राज्य में प्रचलित सोने का सिक्का 'कासु' कहलाता था, जो 16 औंस का होता था। चोल राजाओं के पास विशाल स्थल सेना के साथ–साथ मजबूत जहाजी बेड़ा भी था। चोल राजाओं ने सिंचाई की बड़ी–बड़ी योजनाएँ पूरी की।

चोल कला – चोलों ने पल्लवों की स्थापत्य कला को आगे बढ़ाया। चोलों की द्रविड़ मंदिर शैली की कुछ विशेषताएँ हैं– वर्गाकार विमान, मण्डप, गोपुरम्, कलापूर्ण स्तम्भों से युक्त वृहद्सदन, सजावट के लिए पारम्परिक सिंह (चालि), ब्रैकेट तथा संयुक्त स्तम्भों आदि का होना। राजराज प्रथम का तंजौर का शिव मंदिर (राजराजेश्वर मंदिर) द्रविड़ शैली का एक शानदार नमूना है। दक्षिण भारत में नहरों की प्रणाली चोलों की देन है। चोल मंदिरों में चिदम्बरम् और तंजौर के मंदिर सर्वोत्कृष्ट हैं। चोल युग की नटराज शिव की कांसे की मूर्तियां भी सर्वोत्कृष्ट मानी जाती हैं। मंदिरों की गोपुरम् शैली का विकास इसी युग में हुआ।

समाज – चोल राजा शैव धर्मानुयायी थे। राजाधिराज के लेखों में अश्वमेघ यज्ञ का भी उल्लेख है। समाज में स्त्रियां सम्पत्ति की स्वामिनी होती थी। दास और देवदासी प्रथा भी प्रचलित थी।

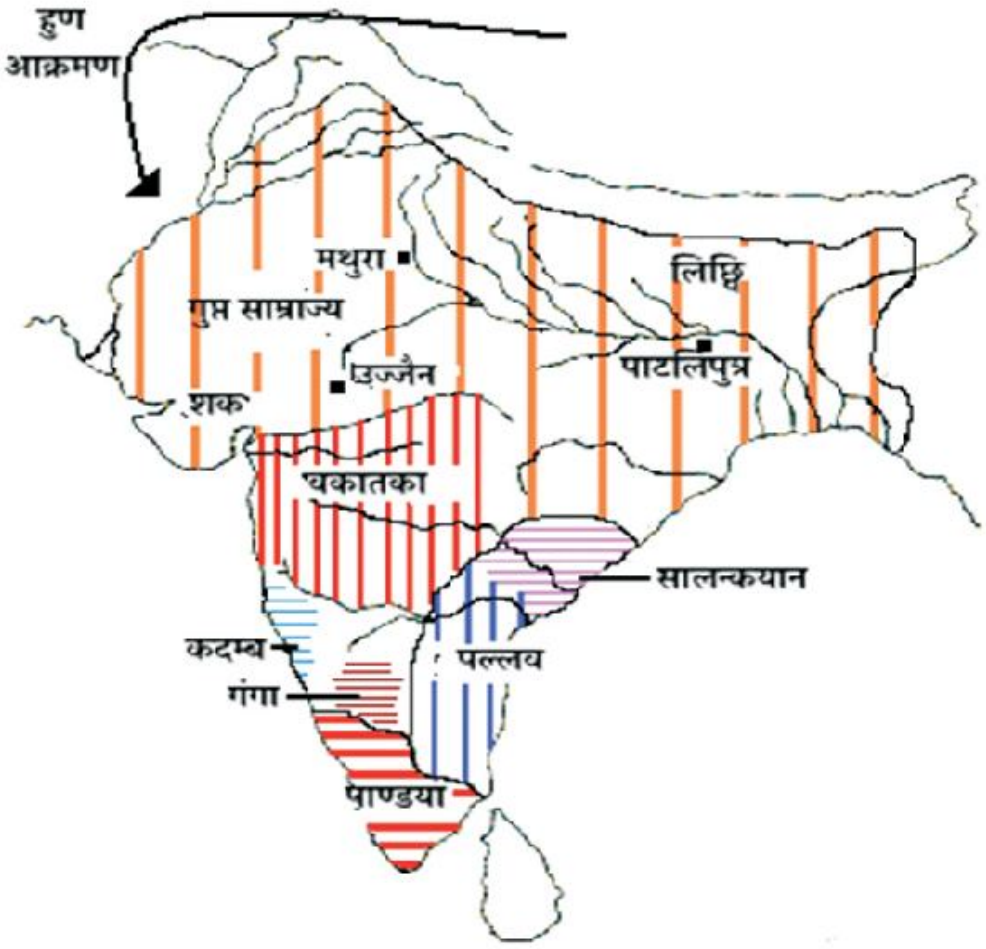

मानचित्र 1.16 पल्लव साम्राज्य

पल्लव वंश :

इस वंश के शासक अर्काट, मद्रास, त्रिचनापल्ली तथा तंजौर के आधुनिक जिलों पर राज्य करते थे। शिलालेखों में पहले पल्लव राजा का उल्लेख कांची के विष्णुगोप का मिलता है। पल्लवों में सिंहविष्णु छठी शताब्दी ई. के उत्तरार्द्ध में सिंहासन पर बैठा। उसके बाद लगभग दो शताब्दियों तक पल्लवों ने राज्य किया। प्रमुख पल्लव राजाओं के नाम महेन्द्रवर्मा प्रथम (लगभग 600–25 ई.), नरसिंहवर्मा प्रथम, महेन्द्रवर्मा द्वितीय, परमेश्वरवर्मा, नरसिंहवर्मा द्वितीय, परमेश्वरवर्मा द्वितीय, नन्दीवर्मा, नन्दीवर्मा द्वितीय तथा अपराजित।

महेन्द्रवर्मा महान् वास्तु–निर्माता था। उसने पत्थरों को तराशकर अनेक मंदिर बनवाये। महेन्द्रवर्मा प्रथम ने 'मत्त विलास प्रहसन' नामक नाटक भी लिखा। उसने 'महेन्द्र' तालाब भी खुदवाया। उसे लगभग 610 ई. में चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय ने पराजित कर दिया। महेन्द्र के पुत्र तथा उत्तराधिकारी नरसिंहवर्मा (महामल्ल) ने 642 ई. में पुलकेशिन द्वितीय को परास्त कर दिया और उसकी राजधानी वातापी पर अधिकार कर लिया, परंतु चालुक्यों ने 655 ई. में इस हार का बदला ले लिया। चालुक्य राजा विक्रमादित्य प्रथम ने पल्लव राजा परमेश्वरवर्मा को पराजित कर उसकी राजधानी कांची पर अधिकार कर लिया। प्रारम्भिक पल्लव राजाओं ने मामल्लपुरम् या महाबलीपुरम् नगर की स्थापना की और वहाँ पर पाँच रथ मंदिरों का निर्माण कराया। यहाँ चट्टानों को तराशकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। कांची में भी पल्लव राजाओं ने मंदिर बनवाये। पल्लव शासकों में कुछ विष्णु के उपासक थे और कुछ शिव के।

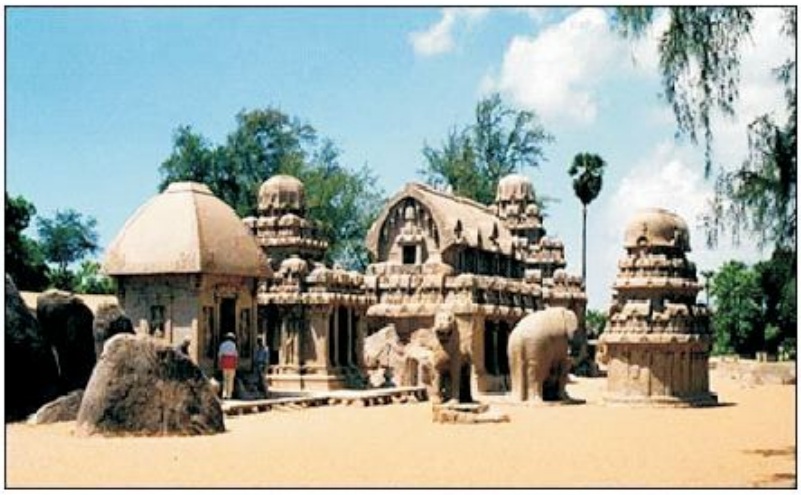

मानचित्र 1.18 पल्लवकालीन मंदिर

चालुक्य वंश :

चालुक्यवंशी पुलकेशिन प्रथम ने अश्वमेध यज्ञ किया था। वातापी के चालुक्यों का तेरह वर्षों के व्यवधान (642–655 ई.) को छोड़कर 550 ई. से लेकर 757 ई. तक शासन किया। चालुक्य नरेशों में चौथा पुलकेशिन द्वितीय सबसे अधिक प्रख्यात है। उसने 608 ई. में शासन ग्रहण किया। उसका राज्य–विस्तार उत्तर में नर्मदा से लेकर दक्षिण में कावेरी नदी तक था। 642 ई. में वह पल्लव नरेश नरसिंहवर्मा द्वारा पराजित हुआ। पुलकेशिन के पुत्र विक्रमादित्य प्रथम ने चालुक्य–शक्ति पुनः प्रतिष्ठित की। चालुक्य नरेश विक्रमादित्य द्वितीय ने 973 ई. में राष्ट्रकूट नरेश को परास्त कर दिया और कल्याणी को अपनी राजधानी बनाकर नये चालुक्य राज्य की स्थापना की। यह नया राज्य 973 ई. से 1200 ई. तक सत्तासीन रहा। कल्याणी के इस चालुक्य राज्य का एक लम्बे अर्से तक तंजौर के चोलवंशी शासकों से संघर्ष चला। सत्याश्रय नामक चालुक्य राजा को चोल नरेश राजराज ने परास्त किया। चालुक्य सोमेश्वर प्रथम ने इस अपमान का बदला न केवल चोल नरेश राजाधिराज को कोप्पम् के युद्ध में करारी हार देकर लिया, वरन् इस युद्ध में उसने राजाधिराज का वध भी कर दिया। सातवें नरेश विक्रमादित्य षष्ठ ने, जो विक्रमांक के नाम से भी विख्यात था, कांची पर अधिकार कर लिया और प्रसिद्ध कवि विल्हण को संरक्षण प्रदान किया। विल्हण ने विक्रमादित्य के जीवन पर आधारित 'विक्रमांकदेवचरितं' नामक ग्रंथ लिखा। वातापी और कल्याणी के चालुक्य नरेशों ने हिन्दू होने पर भी बौद्ध और जैन धर्म को प्रश्रय दिया। चालुक्य राजाओं ने अनेक मंदिरों का निर्माण कराया। याज्ञवल्क्य स्मृति की 'मिताक्षरा' व्याख्या के लेखक प्रसिद्ध विधिवेत्ता विज्ञानेश्वर चालुक्यों की राजधानी कल्याणी में ही रहते थे। 'मिताक्षरा' को हिन्दू कानून का एक अधिकारिक ग्रंथ माना जाता है।

(iii) बाह्य आक्रमण एवं आत्मसातीकरण – शक, हूण एवं कुषाण :

शकः– मध्य एशिया की लड़ाकू जनजाति थी, जिसने पश्चिमी अफगानिस्तान और बलूचिस्तान के सारे प्रदेश पर अधिकार कर लिया। यहाँ से शक बोलन दर्रे से होकर लगभग 71 ई.पू. में भारत आए। 'रामायण' एवं 'महाभारत' में शक बस्तियों को कम्बोजों और यवनों के साथ रखा गया है। कालकाचार्य कथानक में भारत पर शकों के आक्रमण का उल्लेख मिलता है, जिसमें उन्हें सगकुल (शक–कुल) कहा गया है। सिन्धु प्रदेश को जीतकर उन्होंने सौराष्ट्र में शक–शासन की स्थापना की। मुद्राओं और लेखों से स्पष्ट है कि इनकी एक शाखा ने उत्तरापथ और मथुरा में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और कालान्तर में वे अवन्ति, सौराष्ट्र और महाराष्ट्र में फैल गये।

तक्षशिला के शक शासकों में मावेज एवं एजेज के नाम आते हैं। तक्षशिला में शक शक्ति का विनाश, पल्लवों द्वारा हुआ। हमामश और हगान मथुरा के प्रारम्भिक शक क्षत्रप थे। मथुरा से प्राप्त सिंह–शीर्षक–लेख में बाद के शक शासक राजबुल को महाक्षत्रप कहा गया है। मथुरा के शकों ने पूर्वी पंजाब तक अपनी सीमा का विस्तार कर लिया था। मथुरा में शक शक्ति का विनाश कुषाणों द्वारा हुआ। पश्चिमी भारत में शकों के क्षहरात वंश के भूमक तथा नहपान दो शासक ज्ञात हैं। इन शक शासकों ने सातवाहनों से कुछ प्रदेश जीते और महाराष्ट्र काठियावाड़ और गुजरात पर शासन किया। नहपान के समय भारत तथा पश्चिमी देशों के बीच समृद्ध व्यापारिक सम्बन्ध कायम था।

जोगलथाम्बी नामक स्थान से मिले सिक्कों से यह प्रमाणित होता है कि नहपान गौतमीपुत्र शातकर्णि से पराजित हुआ था। नासिक लेख में गौतमीपुत्र शातकर्णि को क्षहरात वंश का उन्मूलक कहा गया है। उज्जयिनी तथा काठियावाड़ के शक शासकों में चस्टन का नाम आता है, जिसने उज्जयिनी में शक राजवंश की स्थापना की थी। इस वंश के शासकों ने अपने लेखों तथा मुद्राओं पर शक संवत् का उपयोग किया था। चस्टन का पौत्र रूद्रदामन महत्त्वपूर्ण शासक हुआ, जिसके बारे में जानकारी जूनागढ़ लेख से प्राप्त होती है। रूद्रदामन का साम्राज्य पूर्वी–पश्चिमी मालवा, द्वारका, जूनागढ़, साबरमती नदी मारवाड़, सिन्धु–घाटी, उत्तरी कोंकण एवं विन्ध्य पर्वत तक फैला हुआ था। मुद्राओं से प्रदर्शित होता है कि चस्टन का वंश 305 ई. में समाप्त हो गया।

हूण:

हूण मध्य एशिया की एक बर्बर जाति थी, जिसने शकों की भांति भारतवर्ष में उत्तर–पश्चिमी सीमा की ओर से प्रवेश किया। ये 'दैत्य' भी पुकारे जाते थे। सर्वप्रथम 458 ई. के लगभग स्कन्दगुप्त के समय इनका आक्रमण हुआ, जिसमें उनकी पराजय हुई। कालान्तर में तोरमाण नामक सरदार ने गुप्त साम्राज्य को नष्ट–भ्रष्ट करके पंजाब, राजपूताना, सिन्ध और मालवा पर अधिकार कर 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। तोरमाण का पुत्र महिरकुल था जिसका राज्य 510 ई. से आरम्भ हुआ। स्यालकोट इसकी राजधानी थी। बौद्ध भिक्षुओं से महिरकुल को घृणा थी। उसने अनेक मठों एवं स्तूपों को नष्ट किया। मालवा के शासक यशोधर्मा ने इसे पराजित किया। पराजित होने के बाद यह कश्मीर चला गया और कश्मीर में अपना राज्य कायम किया। हूणों के आक्रमण के कारण गुप्त साम्राज्य नष्ट हो गया और भारत की राजनीतिक एकता समाप्त हो गयी। देश पुनः छोटे–छोटे टुकड़ों में बँट गया।

कुषाण वंश :

कुषाणों को यूचि या तौचेरियन भी कहा जाता है। यूचि कबीला पांच भागों में बंट गया था। इन्हीं में से एक कबीले ने भारत के कुछ भागों पर शासन किया।

कुजुल कडफिसस प्रथम (15ई.–65 ई.) : यह अपनी जाति के गौरव का संस्थापक था। इसने दक्षिणी अफगानिस्तान, काबुल, कन्धार और पार्थिया के एक भाग को अपने राज्य में मिला लिया। इसने वैदिक धर्म को अंगीकार किया।

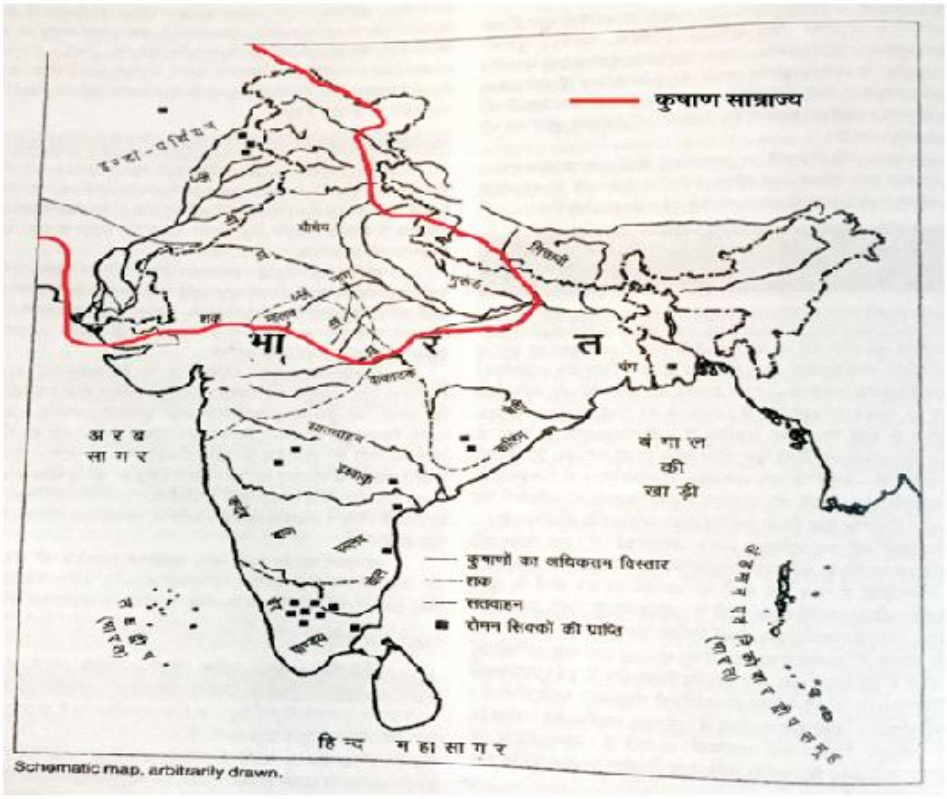

मानचित्र 1.19 कुषाण साम्राज्य

विम कडफिस द्वितीय (65–75 ई.) : भारत के एक विशाल क्षेत्र पर इसका राज्य था। यह शैव मत का अनुयायी था। इसकी कुछ मुद्राओं पर त्रिभुज, त्रिशूलधारी, व्याघ्रचर्माग्राही, नन्दी अभिमुख भगवान शिव की आकृति अंकित है। इसने भारत में पहली बार अपने नाम के सोने के सिक्के चलाए।

कनिष्क :

यह भारत के प्रमुख कुषाण राजाओं में माना जाता है। परम्परा के अनुसार इसके समय में कश्मीर के कुंडलवन में आचार्य पार्श्व की अध्यक्षता में चौथी बौद्ध संगीति सम्पन्न हुई थी। इसकी प्रथम राजधानी पेशावर (पुरुषपुर) एवं दूसरी राजधानी मथुरा थी। इसने 78 ई. में नया संवत् चलाया, जिसे शक संवत् के नाम से जाना जाता है। कनिष्क ने कश्मीर को जीतकर वहां 'कनिष्कपुर' नामक नगर बसाया। उसने काशगर, यारकन्द व खोतान पर भी विजय प्राप्ता की। महास्थान (बोगरा) में पायी गयी सोने की मुद्रा पर कनिष्क की एक खड़ी मूर्ति अंकित है। मथुरा जिले में कनिष्क की एक प्रतिमा मिली है। इस प्रतिमा में उसने घुटने तक चोगा और भारी बूट पहने हुए हैं। एक तांबे के सिक्के पर कनिष्क को वेदी पर बलि देते दिखाया गया है। कनिष्क के राजदरबार में पार्श्व, वसुमित्र, अश्वघोष जैसे बौद्ध विचारक, नागार्जुन, जैसे प्रख्यात गणितज्ञ और चरक जैसे चिकित्सक विद्यमान थे। बौद्ध धर्म की महायान शाखा का अभ्युदय और प्रचार कनिष्क के समय में ही हुआ।

चित्र 1.20 कनिष्क

उत्तर भारत में कुषाण शासकों की सत्ता लगभग 230 ई. तक बनी रही। इस समय रोम से भारत का व्यापार काफी लाभप्रद स्थिति में था, जिससे भारत में आर्थिक समृद्धि आई।

आत्मसातीकरण –

शक, हूण एवं कुषाण विदेशी जातियाँ थी। इन्होंने शासन तो किया, परन्तु धीरे–धीरे इनका भारतीय समाज एवं संस्कृति में आत्मसातीकरण भी हो गया। भारतीयों की उदार प्रवृत्ति के कारण ये बर्बर कबीलाई जातियाँ जो समाज का अंग बन गईं। कुषाण शासकों में तो वैदिक धर्म पालन एवं शैव मत की निष्ठा सर्वमान्य रही। कनिष्क द्वारा की गई बौद्ध धर्म की सेवा तो उसे भारत में महान् राजाओं में अधिष्ठित करती है।

चित्र 1.21 कुषाणकालीन सिक्के

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. महाभारत, बौद्ध साहित्य एवं चाणक्य के अर्थशास्त्र से महाजनपदों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

2. चन्द्रगुप्त मौर्य के विशाल साम्राज्य में काबुल, हेरात, कंधार, बलूचिस्तान, पंजाब, गंगा–यमुना का मैदान, बिहार, बंगाल, गुजरात, विन्ध्य तथा कश्मीर के भू–भाग सम्मिलित थे।

3. अशोक ने मनुष्य की नैतिक उन्नति हेतु जिन आदर्शों का प्रतिपादन किया उन्हें 'धम्म' कहा गया। उसके अनुसार पाप कर्म से निवृत्ति, विश्व–कल्याण, दया, दान, सत्य एवं कर्मशुद्धि ही धम्म है।

4. अशोक के अधिकांश अभिलेख ब्राह्मी लिपि में हैं, जबकि पश्चिमोत्तर भारत से प्राप्त उसके अभिलेख अरमाइक से निष्पन्न खरोष्ठी लिपि में है। अशोक के अभिलेखों को पढ़ने में पहली बार सफलता जेम्स प्रिंसेस को प्राप्त हुई।

5. कौटिल्य के अनुसार राज्य के सात अंग राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र हैं।

6. सातवाहन वंश के सभी शासक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने वैदिक यज्ञों और वर्णाश्रम व्यवस्था को प्रतिष्ठित किया तथा यवनों और शकों से संघर्ष किया।

7. इलाहाबाद प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त कभी युद्ध नहीं हारा था।

8. आर्यभट्ट, वराहमिहिर तथा ब्रह्मगुप्त ने गुप्तकाल में गणित तथा ज्योर्तिविज्ञान के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया।

9. गुर्जर–प्रतिहार वंश की स्थापना नागभट्ट नामक एक सामंत ने 725 ई. में की थी। उसके राज्य की स्थापना गुजरात में हुई, अत एवं उसके वंश का नाम गुर्जर–प्रतिहार पड़ा।

10. चोल शासक राजराज प्रथम ने अपनी राजधानी तंजोर में भगवान शिव का राजराजेश्वर (वृहदेश्वर) मंदिर बनवाया। चोल युग के कांसे की शिव मूर्तियाँ कला की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध हैं।

11. साहवाहन गौतमीपुत्र सातकर्णि को नासिक लेख में शकों को नष्ट करने के कारण 'क्षहरात वंश उन्मूलक' कहा गया है।

12. कनिष्क ने 78 ई. में नया संवत् चलाया, जिसे शक संवत् के नाम से जाना जाता है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :–

1. राजस्थान के प्रमुख महाजनपद कौन–कौन से हैं ?
2. बिन्दुसार के समय आए यूनानी राजदूत का क्या नाम था ?
3. पुराणों में अशोक का क्या नाम मिलता है ?
4. अंतिम मौर्य सम्राट कौन था ?
5. 'समाहर्त्ता' नामक अधिकारी का क्या कार्य था ?
6. कौटिल्य की पुस्तक का नाम बताइये ?
7. पतंजलि किस शासक के काल में हुए थे ?
8. सातवाहन वंश के सबसे प्रतापी राजा का नाम क्या था ?
9. 'इलाहाबाद प्रशस्ति' का लेखक कौन था? वह किस शासक का दरबारी कवि था?
10. स्कन्दगुप्त ने मौर्यों द्वारा निर्मित किस झील का जीर्णोद्धार करवाया?
11. हर्षवर्धन की साहित्यिक रचनाओं के नाम बताइये।
12. पालवंशी राजा किस धर्म के अनुयायी थे ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. महाजनपदों में उल्लिखित गणराज्यों के नाम बताइये।
2. अशोक के 'धम्म' का सार लिखिए।
3. समुद्रगुप्त के सांस्कृतिक योगदान को स्पष्ट कीजिये।
4. राष्ट्रकूट वंश का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. चोल प्रशासन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
6. पल्लव वंश के बारे में आप क्या जानते हैं ?
7. कनिष्क का योगदान बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न :–

1. महाजनपदों का उल्लेख करते हुए राजस्थान के प्रमुख जनपदों का परिचय दीजिए।
2. मौर्यकालीन प्रशासन एवं समाज का वर्णन कीजिए।
3. गुप्तवंश के प्रमुख शासकों का वर्णन करते हुए इस काल की सांस्कृतिक उपलब्धियों पर एक लेख लिखिए।
4. दक्षिण के चोल एवं चालुक्य राज्यों का सविस्तार वर्णन करें।

अध्याय 2

संघर्षकालीन भारत – 1206 ई. से 1757 ई. तक

भारत पर लगातार विदेशी आक्रान्ताओं ने आक्रमण किए। भारतीयों ने इन आक्रमणों का वीरतापूर्वक प्रतिरोध किया, संघर्ष किया। भारतीयों ने प्रारम्भिक अरबी एवं मुस्लिम आक्रान्ताओं को पराजित कर खदेड़ दिया। अमर खलीफा के समय 636 ई. में अरबों द्वारा पहला समुद्री आक्रमण ठाणे पर हुआ। किताब फुतुह–अल–बुल्दान में उल्लेख है कि अरबों का यह अभियान विफल रहा। इसके बाद बड़वास (भड़ौच) और सिन्ध के डेबाल बन्दरगाह पर अरबों का आक्रमण हुआ। ये आक्रमण भी असफल रहे। चचनामा में उल्लेख मिलता है कि डेबाल के संघर्ष में अरब सेना नायक मुधाइरा पराजित हुआ और मारा गया।

712 ई. में मुहम्मद बिन कासिम व सिन्ध के राजा दाहिर के मध्य भयानक संघर्ष हुआ। बाबा धुरी ने लिखा है कि "महाभंयकर संघर्ष हुआ ऐसा जैसा कभी नहीं सुना गया"। चचनामा में उल्लेख है कि– "काफिरों (गैर–मुस्लिम) ने अरबों को चारों ओर से जकड़ लिया और जिस बहादुरी और दृढ़ता से वे लड़े उसके कारण इस्लाम की पूरी फौज घबरा गई और तार–तार हो गई। इसी बीच संयोगवश एक तीर हाथी पर सवार राजा दाहिर के सीने पर लगा इस कारण राजा मृत्यु को प्राप्त हो गया। इसके बाद भी राजकुमार जैसिया व साम्राज्ञी रानी बाई किले की रक्षा के लिए डटे रहे।

महमूद गजनवी को कश्मीर के शाही शासक जयपाल और आनन्दपाल से कड़ा संघर्ष करना पड़ा। मोहम्मद गौरी को पृथ्वी राज चौहान के हाथों ही कई बार पराजित होना पड़ा। कुछ परिस्थितियाँ ऐसी बनी की 1206 ई. तक भारत में मुस्लिम राज्य की शुरुआत हो गई। इसके उपरान्त भी भारतीयों द्वारा लगातार विदेशी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष जारी रहा और यह संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन तक चलता रहा। भारतीयों ने प्रतिकार और संघर्ष को अनवरत रखा।

(i) दिल्ली सल्तनत (1206 से 1526 ई.) :

यामिनी, इल्बरी या गुलाम वंश : कुतुबुद्दीन ऐबक (1206 –1210 ई.) का राज्यारोहण 1206 ई. में हुआ। इसे 'लाखबख्श' भी कहा जाता है। इसकी राजधानी लाहौर थी। इसके दरबार में हसन निजामी को संरक्षण मिला था। कुतुबमीनार की पहली मंजिल ऐबक द्वारा बनवायी गई। कुतुबमीनार का शेष भाग इल्तुतमिश ने पूरा कराया। प्रसिद्ध सूफी संत ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की स्मृति में कुबुतमीनार का निर्माण करवाया गया था। समकालीन इस्लामिक साहित्य में ऐसा उल्लेख है। सन् 1210 ई. में चौगान (पोलो) खेलते हुए घोड़े से गिरकर ऐबक की मृत्यु हुई।

इल्तुतमिश (1210–1236 ई.) :

यह ऐबक का दामाद एवं उत्तराधिकारी था। इसे मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संगठनकर्ता माना जा सकता है। 1226 ई. में इल्तुतमिश ने रणथम्भौर जीता। 1223 ई. में सुल्तान ने मालवा पर आक्रमण कर भिल्ला के दुर्ग को जीता। ग्वालियर और जालौर पर भी इसका अधिकार हो गया था। ख्वारिज्म शाह के पुत्र मंगबरनी को सहायता नहीं देकर इल्तुतमिश ने मंगोल चंगेज खाँ से दुश्मनी मोल नहीं ली।

रजिया सुल्तान (1236–40 ई.) :

रुक्नुद्दीन फिरोजशाह की हत्या के बाद इल्तुतमिश की पुत्री रजिया सुल्तान बनी। इल्तुतमिश ने रजिया को उत्तराधिकारी चुना था। परम्परावादी व कट्टरपंथी तुर्की अमीरों ने रजिया का विरोध किया। रजिया ने पर्दा त्याग दिया था, और पुरुषों के समान 'कुबा' (कोट) व 'कुलाह' (टोपी) पहनने लगी। उसने मलिक जमालुद्दीन याकूत (अबीसीनिया निवासी) को अमीर अखूर (अश्वशाला का प्रधान) नियुक्त किया, जिससे तुर्क अमीर नाराज हो गये। सरहिन्द के शासक के विद्रोह को शांत करने के अभियान में याकूत की हत्या कर दी गई। बाद में रजिया ने अल्तूनिया से विवाह कर लिया, परन्तु 1240 ई. में उन दोनों को मार डाला गया। 1240 से 1242 ई. तक बहरामशाह, 1242 से 1246 ई. मसूदशाह एवं 1246 से 1265 ई. तक नासिरूद्दीन महमूद ने सत्ता संभाली। ये सभी अयोग्य शासक थे। नासिरूद्दीन महमूद के पीछे वास्तविक बल गयासुद्दीन बलबन का था।

बलबन (1265–1286 ई.) :

उलुग खाँ (बलबन) इल्तुतमिश के चहलगानी (चालीस) नामक तुर्की दासों के प्रसिद्ध दल से सम्बन्धित था। वह 1265 ई. में यह गद्दी पर बैठा। मंगोलों का सामना करने के लिये एक सैन्य विभाग 'दीवाने आरिज' को पुनर्गठित किया। उसने सिजदा और पाबोस (सम्राट के सम्मुख झुककर उसके पैरों को चूमना) की प्रथा को दरबार में शुरु किया। बलबन दिल्ली सल्तनत के प्रशासनिक ढाँचे के निर्माताओं में प्रमुख था। उसने शत्रुओं के प्रति लौह और रक्त की नीति अपनायी, जिसमें पुरुषों को मार दिया जाता था व बच्चों और स्त्रियों को गुलाम बनाया जाता था। 1286 ई. में बलबन की मृत्यु के बाद अमीरों के दलीय संघर्ष ने खूनी रूप ले लिया। क्यूमर्स का वध कर 1290 ई. में जलालुद्दीन खिलजी ने स्वयं को सुल्तान घोषित कर दिया। बलबन का राजत्व सिद्धान्त प्रसिद्ध रहा है। बलबन की मान्यता थी कि राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है। राजा साधारण जनता से अलग व्यक्तित्व है वह ईश्वर द्वारा प्रदत्त गुणों से युक्त है जो उसे शासन करने की शक्ति प्रदान करता है। बलवन तुर्क अमीरों के विद्रोह से परिचित था। इसी कारण उसने दरबार में कठोर अनुशासन बनाये रखा। कानून व्यवस्था की स्थिति को व्यवस्थित करना, चोरों, डाकुओं का दमन एवं राजपूत जमींदारों के शासन विरोधी विद्राहों को कुचलना उसके प्रमुख कार्य थे।

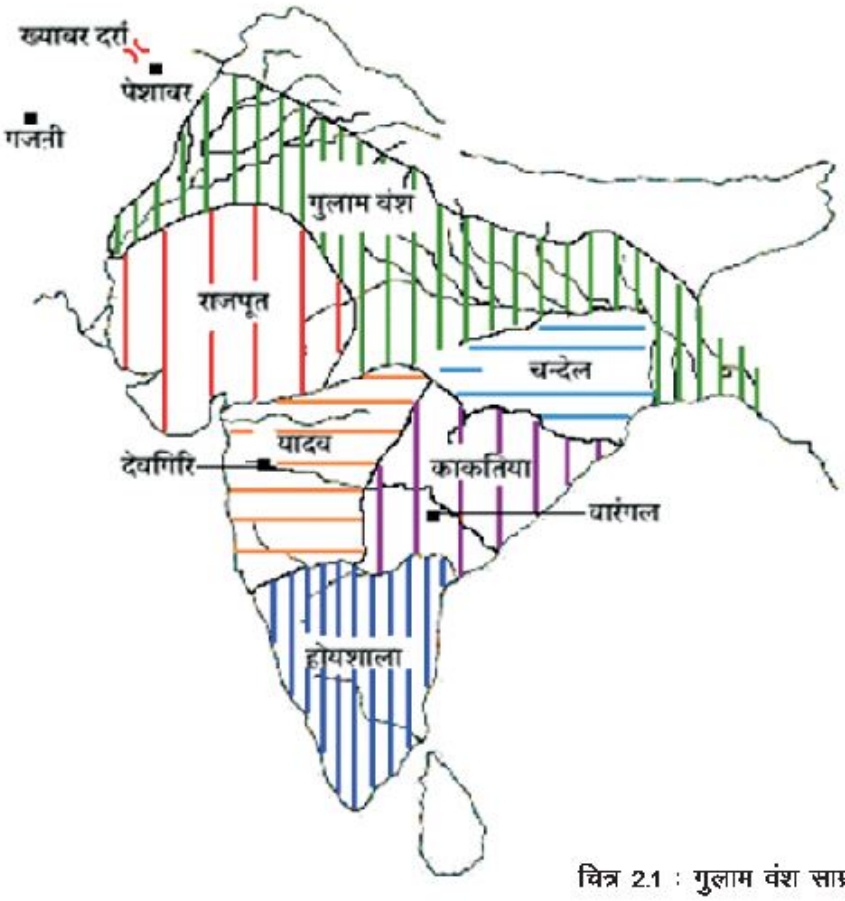

चित्र 2.1 : गुलाम वंश साम्राज्य

खिलजी वंश/साम्राज्य (1290–1320 ई.)– खिलजी वंश का प्रथम शासक जलालुद्दीन फिरोज खिलजी (1290 ई.–1296 ई.) था जो में 70 वर्ष का था। इसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन ने इलाहाबाद में उसका 1296 ई. में धोखे से हत्या करवा दी और स्वयं सुल्तान बन बैठा। अपने 20 वर्षों के शासन में कुछ अपने सुधारों को लेकर अलाउद्दीन की चर्चा होती है। उसने सिक्कों पर अपना उल्लेख 'द्वितीय सिकंदर' के रूप में करवाया। उसके शासन में कश्मीर व बंगाल शामिल नहीं थे। गुजरात के बघेला राजपूत राजा राय कर्णदेव के खिलाफ सैन्य अभियान किया। अलाउद्दीन ने 1301 ई. में रणथम्भौर और 1303 ई. में चित्तौड़ पर आक्रमण कर लूटा। गुजरात अभियान के दौरान उसे अपार धन सम्पदा प्राप्त हुई साथ ही एक हिन्दु से धर्मान्तरित मुस्लिम सेनानायक मलिक काफूर का साथ मिला। इस मलिक काफूर की सहायता से ही अलाउद्दीन खिलजी दक्षिण भारत में प्रवेश कर सका। मलिक काफूर ने देवगिरि, होयसल राज्य एवं पांड्य राज्य पर आक्रमण किये। अमीर खुसरों के अनुसार काफूर रामेश्वरम् तक पहुँचा। अलाउद्दीन के समय में राजस्व का ढांचा पुनः निर्मित किया गया। विद्रोहों पर नियंत्रण के लिये उसने चार आदेश जारी किए –अमीर वर्ग की सम्पत्ति जब्त करना एवं खालसा भूमि को कृषि योग्य बनाकर राजस्व में वृद्धि करना, दिल्ली में मद्य निषेध, गुप्तचर प्रणाली का गठन, अमीरों के परस्पर मेल–मिलाप रोक लगाना। उसने खलीफा की सत्ता को मान्यता देते हुए स्वयं ने 'यस्मिन–उल –खिलाफत–नासिरी–अमीर–उल–मुमिनिन' की उपाधि धारण की। 'खजाइनुल फुतूह' में अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन को 'विश्व का सुल्तान' और 'जनता का चरवाहा' जैसी पदवियों से विभूषित किया है। सुल्तान ने पुलिस, गुप्तचर, डाक पद्धति एवं प्रान्तीय प्रशासन में कई सुधार किये। सबसे महत्वपूर्ण सुधार बाजार नियंत्रण था। दीवान–ए–रियासत (व्यापार का नियंत्रक), शाहना या दण्डाधिकारी (बाजार का दरोगा), मुहतसिब (जनसाधारण का रक्षक एवं नाप–तौल का निरीक्षण कर्ता), बरीद–ए–मुमालिक (गुप्तचर अधिकारी) आदि नये पद सृजित कर प्रशासन को ठीक किया।

उसने अपनी एक विशाल सेना के रख–रखाव हेतु आर्थिक सुधार किए। मोलभाव सुनिश्चित करके सुल्तान ने कालाबाजारी और मुनाफाखोरी पर रोक लगा दी। सराए–ए–अदल स्थानीय एवं विदेशी वस्तुओं का बाजार था, अलाउद्दीन पहला शासक था जिसने सैनिकों को नकद वेतन दिया।

1303 ई. में अलाउद्दीन ने अलाई किला अथवा कोश ए सीरी (कुश्के सीरी) बनवाया, जिसमें सात द्वार थे। 1316 ई. में अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कुबुबुद्दीन मुबारक खिलजी शासक बना। उसने अपने पिता के सभी कठोर आदेशों को रद्द कर दिया और स्वयं को खलीफा घोषित कर 'उल–वासिक–बिल्लाह' की उपाधि धारण की। इसकी हत्या के बाद नासिरुद्दीन खुसरव शाह सुल्तान बना जो खिलजी वंश का अंतिम शासक था।

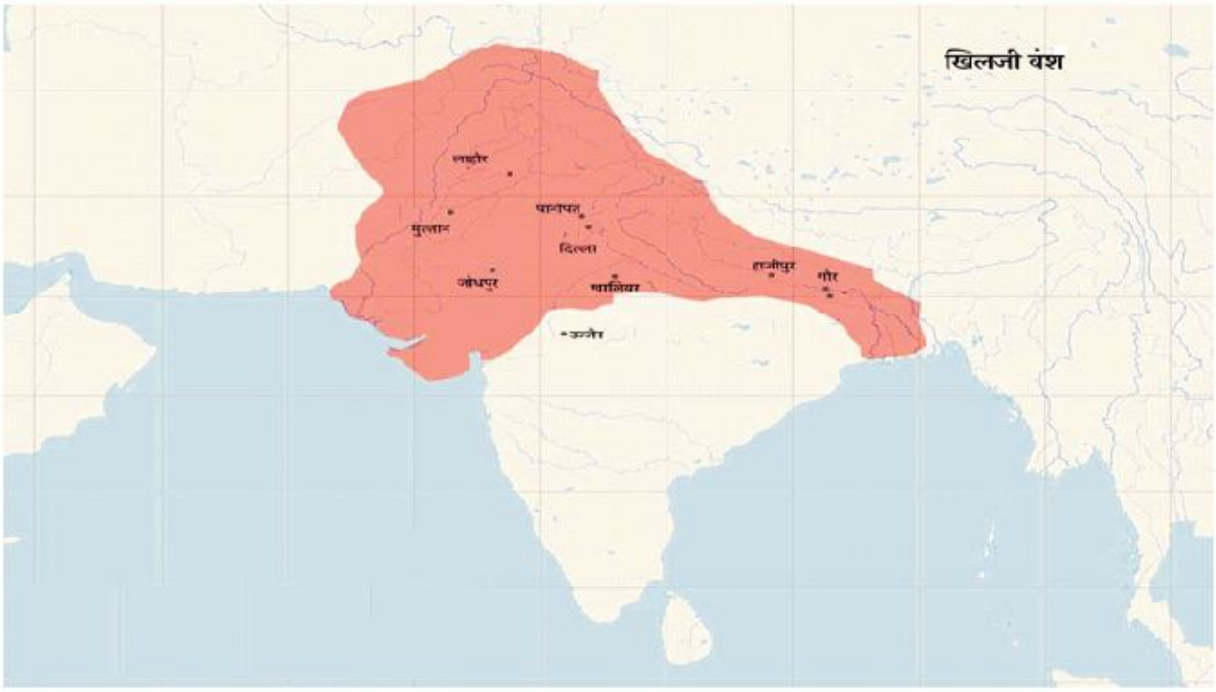

चित्र 2.2 : खिलजी साम्राज्य

तुगलक शासनकाल

तुगलक वंश : खुसरव शाह की हत्या करके गाजी मलिक अथवा तुगलक गाजी गयासुद्दीन तुगलक 1320 ई. में दिल्ली का सुल्तान बना। सुल्तान बनते ही उसे प्रान्तीय विद्रोहों का सामना करना पड़ा। तेलंगाना के राजा प्रताप रुद्रदेव के खिलाफ उसने अपने पुत्र जूना खां को वारंगल भेजा। जाजनगर (उड़ीसा) में सैन्य अभियान किया गया जिसमें उलूग खां (जूना खां) की विजय हुई। गयासुद्दीन का अंतिम सैनिक अभियान बंगाल के विद्रोह का दमन था। दिल्ली वापसी पर आयोजित स्वागत समारोह में एक लकड़ी के भवन से गिरने से 1325 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् इसका पुत्र जूना खां मुहम्मद तुगलक के नाम से सुल्तान बना। उसका नाम कई संज्ञाओं से जोड़ा गया – "अंतर्विरोधों का विस्मयकारी मिश्रण", रक्त का प्यासा आदि। मुहम्मद तुगलक के समय तुगलक साम्राज्य 23 मुक्तों (प्रान्तों) में बँटा हुआ था। बरनी सुल्तान की पाँच मुख्य योजनाओं का वर्णन करता है – दोआब में कर वृद्धि, देवगिरि को राजधानी बनाना, सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन, खुरासान पर आक्रमण, कराचिल की ओर अभियान।

सुल्तान ने 1327 से 1335 ई. तक देवगिरि को अपनी राजधानी बनाकर रखा और उसका नाम दौलताबाद रखा। 1330 ई. में तांबे एवं कांसे के मिश्रित सांकेतिक सिक्के चलाए। लोगों ने जाली सिक्के बनाना आरम्भ कर दिया। अतः सांकेतिक मुद्रा बंद करनी पड़ी। मोरक्को का यात्री इब्नबतूता लगभग 1333 ई. में भारत आया, सुल्तान ने उसे दिल्ली का काजी नियुक्त किया तथा 1342 ई. में राजदूत बनाकर चीन भेजा। 1351 ई. में मुहमद तुगलक की मृत्यु हो गई।

1351 ई. में फिरोजशाह तुगलक सुल्तान बना जो मुहम्मद तुगलक का चचेरा भाई था। बंगाल के हाजी इलियास के स्वतंत्र हो जाने से उसके विरूद्ध फिरोजशाह ने दो बार सैन्य अभियान किया परन्तु असफल रहा। फिरोजशाह ने सरकारी एवं सेना की नौकरी को वंशानुगत बना दिया एवं योग्यता की जाँच करने की प्रणाली का त्याग कर दिया। उसने अपने पुत्र फतह खां को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर सिक्कों पर अपने नाम के साथ उसका नाम भी अंकित करवाया। फिरोज ने भवन निर्माण कला को अत्यधिक महत्व दिया। हिसार फिरोजा, फिरोजाबाद एवं जौनपुर आदि नगर बसाए । टोपरा तथा मेरठ से अशोक स्तम्भ दिल्ली लाए गए परन्तु विद्वान इन्हें पढ़ ना सके। फिरोज की सबसे बड़ी उपलब्धि थी हाँसी तथा सिरसा के क्षेत्रों में पानी की कमी दूर करने के लिए नहरों की खुदाई। एक नहर सतलज नदी से दीपालपुर के तथा दूसरी यमुना नदी से सिरमूर के पास खुदवाई गयी। उपज वृद्धि करने तथा अकाल से निपटने हेतु ठोस नीति अनपाई गयी। फिरोज तुगलक भी कट्टरपंथी इस्लामिक अमीरों के हाथों में रहा। उसने न केवल ब्राह्मणों पर जजिया नामक कर लगाया बल्कि मुस्लिम विचारधारा शिया समर्थक व्यक्तियों को मृत्युदण्ड भी दिया। गैर इस्लामी सजाएँ समाप्त कर दी गयी। गैर शरीयत कर (24) हटा दिये गए, केवल चार मुख्य कर रखे खराज, जकात, खम्स तथा जजिया रखे गए। दासों की संख्या में असाधारण वृद्धि (1,80,000) हुई और दीवान–ए–बंदगान के नाम से दासों के नाम से नया विभाग भी खोला गया। फिरोज ने दिल्ली में खरबूजों तथा अंगूरों की खेती को प्रोत्साहित किया और अनेक बाग लगवाये। 1388 ई. में फिरोजशाह की मृत्यु हुई। तुगलक वंश का अंतिम शासक नासिरूद्दीन महमूद था। इसी समय 1398 ई. में तुर्क आक्रांता तैमूर लंग ने भारत पर आक्रमण कर लूटपाट की थी।

सैयद वंश :

तैमूर ने दिल्ली को जीतकर खिज्र खां को अपना

प्रतिनिधि नियुक्त किया। खिज्र खां ने ही सैयद वंश की स्थापना की। 1414 से 1421 ई. तक शासन करने के बाद भी खिज्र खां ने न तो कभी शाह की उपाधि धारण की और न ही अपने नाम के सिक्के चलाए। इसके बाद मुबारक शाह 1421 से 1434 ई. तक शासक रहा। इसने सर्व शाह की उपाधि धारण की।

लोदी वंश :

अन्तिम सैयद शासक आलमशाह ने स्वेच्छापूर्वक दिल्ली का शासन त्याग दिया और बहलोल लोदी ने 1451 ई. में दिल्ली पर अधिकार कर लिया। दिल्ली पर तुर्कों के बाद पहली बार अफगान साम्राज्य का शासन हुआ। उसने जौनपुर के महमूद शाह शर्की के दिल्ली पर अधिकार करने के प्रयास को असफल कर दिया। 38 वर्ष शासन करने के बाद 1489 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद इसका दूसरा पुत्र निजामशाह सिकन्दरशाह की उपाधि धारण कर सुल्तान बना। तिरहुत, बिहार एवं बंगाल तक उसने साम्राज्य विस्तार किया। इसका न्याय प्रबंध एवं राजस्व सुधार प्रसिद्ध है। भूमि की नाप और उसके आधार पर भूमिकर नियत करने का कार्य किया। एक गज चलाया जो प्रायः 30 इंच का होता था। यह गज लम्बे समय तक सिकन्दरीगज के नाम से चलता रहा। इटावा, बयाना, कोल, ग्वालियर एवं धौलपुर के शासकों को अधीन रखने के अभिप्राय से उसने 1508 ई. में आगरा नगर का निर्माण करवाया। उसका उपनाम 'गुलरु खाँ' था। इसी उपनाम से कविता भी लिखता था। नवबर 1517 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र इब्राहिम लोदी आगरा में गद्दी पर बैठा। 1517–1518 ई. में इब्राहिम लोदी व राणा सांगा के मध्य युद्ध हुआ, जिसमें लोदियों की हार हुई। 1526 ई. में पानीपत के मैदान में सिकन्दर बाबर से युद्ध में हार गया। इतिहास में यह युद्ध पानीपत के प्रथम युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। यह युद्ध युगान्तकारी सिद्ध हुआ और भारत में मुगल वंश की स्थापना हुई।

सल्तनत कालीन प्रशासन :

सुल्तान : सुल्तान की उपाधि तुर्की शासकों द्वारा प्रारंभ की गयी। महमूद गजनवी सुल्तान की उपाधि धारण करने वाला पहला शासक था। राज्य की सम्पूर्ण शक्ति सुल्तान के हाथ में थी। वह पूर्णतया प्रधान न्यायाधीश, राजनीति एवं मजहब दोनों क्षेत्रों का अधिपति होता था। सुल्तानों से अपेक्षा की जाती थी कि वे उलेमा वर्ग की राय माने।

अमीर : सुल्तान की शक्ति पर अमीर वर्ग का प्रभाव रहा। अमीरों के दो वर्ग तुर्क तथा गैर तुर्क थे। इल्तुतमिश के काल में चालीस अमीरों का समूह चहलगानी कहलाता था। शासन की योग्यता एवं अयोग्यता के अनुसार अमीरों का दरबार में प्रभाव कम–ज्यादा होता रहा।

केन्द्रीय शासन संस्था मजलिस–ए–खलवत मंत्री परिषद् की तरह होती थी। वजीर, आरिजे मुमालिक, दीवाने इंशा, दीवाने रिसालत इसके चार स्तंभ थे।

वजीर का कार्यालय दीवाने–ए–विजारत कहलाता था। इसे वित्त विभाग कहा जा सकता है। मुस्तौफी (महालेखा परीक्षक), खजीन (खजांची), मजमआदार (हिसाब संग्रहकर्ता) इस विभाग के

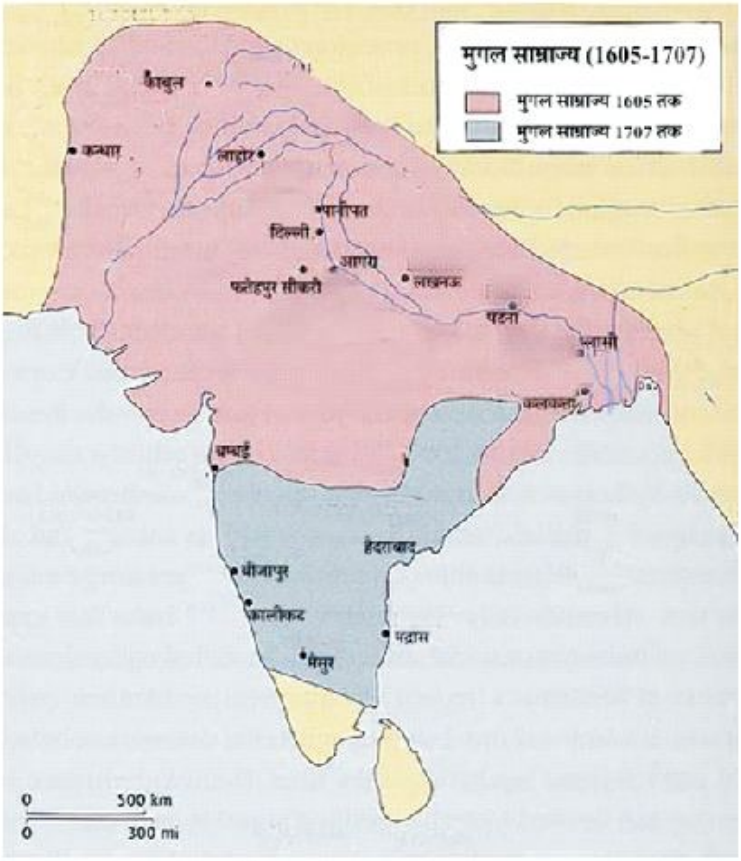

चित्र 2.3 : मुगल साम्राज्य

कर्मचारी होते थे।

जलालुद्दीन खिलजी ने दीवाने बकूफ एवं अलाउद्दीन ने दीवान–ए–मुस्तखराज विभाग की स्थापना की थी। ये वित्त विभाग के अंतर्गत ही आते थे। मुहम्मद तुगलक ने भूमि को कृषि योग्य बनाने हेतु दीवाने–अमीर–कोही की स्थापना की।

दीवाने इंशा पर शाही पत्र व्यवहार का दायित्व था। दीवाने–रियासत का कार्य विदेश मंत्री की तरह था। सद्र–उस सुदूर धर्म विभाग का प्रमुख होता था। इसका कोष अलग होता था। जिसमें जकात से प्राप्त धन एकत्रित होता था। काजी उल–कुजात (न्याय), बरीद–ए–मुमालिक (सूचना) के विभाग थे। दरबार एवं राजमहल के लिए छः कर्मचारी होते थे – वकील–ए–दर, बारबक, अमीर–ए–हाजिब, अमीर– ए–शिकार, अमीर मजलिस, सर–ए–जहाँदार। सल्तनत काल सैन्य धर्म सापेक्ष राजतंत्र कहा जा सकता है। युद्ध के समय लूट के सामान को 'खम्स' कहा जाता था। प्रान्तीय शासन केन्द्रीय शासन का प्रतिरूप था। प्रांतपतियों को वली या नाजिम कहा जाता था। प्रांतपति की नियुक्ति सुल्तान द्वारा होती थी। शिक जिले का राजस्व अधिकारी होता था।

अन्ततः 1206 से 1526 ई. तक दिल्ली की सल्तनतकाल में साम्राज्य सीमा तत्कालीन सुल्तान की सैनिक शक्ति के अनुसार घटती–बढ़ती रही।

(ii) मुगलकालीन भारत (1526 से 1858 ई. तक)

बाबर 1526 ई. में पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी को परास्त कर भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक बना। यह तुर्क मुसलमान था और तैमूर का वंशज था। चुगताई तुर्क वंश से सम्बन्धित होने के साथ–साथ मंगोल सेना नायक चंगेज खां के वंश से भी इसका ताल्लुक था। इसकी माँ चंगेज खां की वंशज थी। जहीरूद्दीन मोहम्मद बाबर प्रारंभ में पिता की मृत्यु के बाद फरगना की गद्दी पर 'बादशाह' की उपाधि के साथ बैठा। बादशाह की उपाधि धारण करने वाला यह पहला तैमूर वंशीय शासक था। आगरा से 40 कि.मी. दूर खानवा में बाबर एवं राणा सांगा का युद्ध मार्च 1527 ई. में हुआ। बाबर ने यह युद्ध 'तुलगुमा' पद्धति से लड़ा एवं जेहाद का नारा दिया। विजयी होने के बाद बाबर ने गाजी की उपाधि धारण की। 1528 ई. में बाबर ने चंदेरी के मेदिनीराय को परास्त किया। 1529 ई. में घाघरा के युद्ध में बाबर ने अफगानों को परास्त किया। बाबर की मृत्यु 26 दिसम्बर 1530 ई. को हुई। इसे यमुना के किनारे आगरा में रामबाग में दफनाया गया बाद में बाबर की इच्छा के अनुसार उसे काबुल में दफनाया गया। बाबर ने अपनी दिनचर्या की पुस्तक तुर्की भाषा में लिखी थी, जिसका नाम बाबरनामा या तुजूके बाबरी है। अब्दुर्रहीम खानखाना ने इसे बाद में फारसी में अनूदित किया।

हुमायूँ –

बाबर के बाद उसका पुत्र नासिरूद्दीन हुमायूँ शासक बना। हुमायूँ ने अपने भाई कामरान को काबुल और कंधार, असकरी को संभल, हिंदाल को अलवर व मेवात एवं अपने चचेरे भाई सुलेमान को बदख्शाँ प्रदेश दिया। हुमायूँ ने "दीन पनाह" नामक नये शहर की स्थापना की थी। उसने मालवा व गुजरात पर आक्रमण किया। हुमायूँ एवं अफगान शासक शेर खाँ के मध्य बक्सर के निकट चौसा नामक स्थान पर 1539 ई. में युद्ध हुआ, जिसमें मुगलों की पराजय हुई। चौसा की जीत के बाद शेर खाँ ने 'शेरशाह' की उपाधि धारण की, और अपने नाम के सिक्के चलाए। शेरशाह का वास्तविक नाम फरीद खाँ था। 1540 ई. में कन्नौज या बिलग्राम का युद्ध शेरशाह एवं हुमायूँ के मध्य हुआ। हुमायूँ हार कर भाग गया। दिल्ली की सल्तनत शेरशाह के अधिकार में चली गई। निर्वासित जीवन में ही उसने भटकल के पास शेख अली अख्तर की लड़की हमीदा से शादी की जो आगे चलकर अकबर की माँ बनी। धीरे–धीरे हुमायूँ ने कन्धार व काबुल को जीता। हिन्दुस्तान को पुनः जीतने के प्रयास में 1555 ई. में उसने लाहौर पर कब्जा कर लिया। उसने नसीब खाँ एवं तातार खाँ के नेतृत्व वाली अफगान सेना को मच्छीवारा के युद्ध में हराकर पंजाब पर अधिकार किया। जून 1555 ई. में सरहिन्द के निकट उसने अफगानों को फिर परास्त किया। अफगानों का नेतृत्व सिकन्दर सूर और मुगलों का नेतृत्व बैरम खां ने किया। इसके बाद 23 जुलाई 1555 ई. को हुमायूँ दूसरी बार दिल्ली की गद्दी पर बैठा, लेकिन कुछ समय बाद ही 24 जनवरी 1556 ई. वह को दीनपनाह में स्थित पुस्तकालय की सीढ़ियों से फिसल गया और गहरी चोट के कारण मर गया। हुमायूँ अफीम के नशे में चूर रहता था। वह ज्योतिष में आस्था रखता था, इसलिए उसने सप्ताह में सातों दिन सात रंग के कपड़े पहनने का नियम बनाया था।

सूर साम्राज्य :–

सूर साम्राज्य का संस्थापक फरीद (शेरा खाँ) हसन खाँ का पुत्र था जो जौनपुर राज्य के अन्तर्गत सासाराम (बिहार) का जमींदार था। दक्षिणी बिहार के तत्कालीन शासक बहार खाँ ने निहत्थे फरीद द्वारा शेर मार दिये जाने पर उसे शेर खाँ की उपाधि प्रदान की। उसका साम्राज्य पश्चिम कन्नौज से लेकर पूर्व में असम की पहाड़ियों तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में बंगाल की खाड़ी तक फैला हुआ था। मालवा भी शेरशाह ने जीत लिया था। 1544 ई. में मालदेव को हराकर शेरशाह ने अजमेर, जोधपुर एवं मेवाड़ पर अधिकार कर लिया था। शेरशाह ने मालदेव से युद्ध बड़ी मुश्किल से जीता था। जबकि जैता कूँपा ने वीरता पूर्वक संघर्ष किया तभी शेरशाह ने कहा था "मैं मुट्ठी भर बाजरे के लिए हिन्दुस्तान की सल्तनत खो देता।" मेवाड़ पर भी उसका सांकेतिक अधिकार ही हो पाया था। 1544 ई. में कालिंजर के युद्ध के दौरान बारूद में विस्फोट होने से को शेरशाह की मृत्यु हो गयी। शेरशाह के बाद इस्लामशाह ने 1553 ई. तक शासन किया लेकिन बाद में अयोग्य उत्तराधिकारियों के आपसी संघर्ष से सूर साम्राज्य का पतन हुआ। शेरशाह के सुधार एवं निर्माण प्रसिद्ध हैं। उसने भूमि माप एवं लगान को व्यवस्थित कर गल्लाबख्शी या बंटाई, नश्क, मुक्ताई या कनकूत और नकदी या जब्ती प्रणाली प्रचलित की। 4 बड़ी सड़कें एवं अनेक सरायों का निर्माण करवाया। उसकी सबसे लम्बी सड़क बंगाल के सोनार गांव से लेकर पेशावर तक थी, जिसका अस्तित्व आज भी है। यह सड़क ग्रांड ट्रंक रोड के नाम से विख्यात है। मुद्रा ढलाई में सुधार करते हुए उसने तांबे का 380 ग्रेन का दाम तथा चांदी का 178 ग्रेन दाम का रुपया जारी किया। सासाराम (बिहार) में एक झील के मध्य अपने मकबरे का निर्माण करवाया। यह मकबरा डमरु की आकृति वाला दिखाई पड़ता है, जिस पर हिन्दू मंदिरों का प्रभाव है।

चित्र 2.3 : शेरशाह सूरी कालीन सिक्के

अकबर (1556–1605 ई.):– अकबर का जन्म अमरकोट (पाकिस्तान) के किले में 1542 ई. में हुआ। 13 वर्ष की आयु में 14 फरवरी, 1556 ई. को 'कलानौर' में ईंटों का सिंहासन बनाकर बैरम खाँ ने उसका राज्याभिषेक किया। बैरम खाँ को उसका संरक्षक बनाया गया। अफगान सेनापति हेमू एवं मुगल प्रतिनिधि बैरम खाँ के मध्य पानीपत की दूसरी लड़ाई 5 नवम्बर 1556 ई. को हुई। गर्दन में तीर लग जाने से हेमू बेहोश हो गया और अफगानों की हार हुई। हेमू बिहार के अफगान मुहम्मद आदिलशाह का सुयोग्य हिन्दू सेनापति था। वह 22 युद्धों में विजय प्राप्त कर चुका था व उसने राजा विक्रमजीत की उपाधि धारण की थी।

अकबर ने 1516 ई. में संगीत प्रेमी बाज बहादुर से मालवा, चुनार का किला, गोड़वाना का किला जीता। उसने सुर्जन हाड़ा से रणथम्भौर का किला भी जीत लिया। राजा रामचन्द्र ने कालिंजर का किला अकबर को सौंप दिया। 1570 ई. में मारवाड़ एवं बीकानेर दोनों ने अपने किले अकबर को दे दिये तथा मुजफ्फरशाह से गुजरात एवं दाउद खाँ से बंगाल का क्षेत्र भी अकबर ने छीन लिया। महाराणा प्रताप (मेवाड़) का मानसिंह तथा आसफ खां के संयुक्त नेतृत्व में मुगल सेना के साथ हल्दीघाटी का विश्व प्रसिद्ध युद्ध 1576 ई. में हुआ, परन्तु मुगलों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। प्रताप ने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की। मुगल सेना के लौटते ही प्रताप ने अपने क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया व सामान्तों को अपनी जागीरें प्रदान की।

काबुल (मिर्जा हकीम), कश्मीर (युसुफ), सिंध (मिर्जा जानीबेग), उड़ीसा (निसार खां), कन्धार (हुसैन मिर्जा), खालेद (अली खां) पर अकबर की मुगल सेना ने निर्णायक जीत प्राप्त की। अकबर ने खानदेश का नाम 'धनदेश' रखा। मुगल सेना ने चाँद बीबी के प्रबल प्रतिरोध का सामना करते हुए 1600 ई. में अहमदनगर पर विजय प्राप्त की। 1601 ई. में असीरगढ़ पर भी मुगल अधिकार हो गया। यह अकबर की अन्तिम विजय थी। 1584 ई. में मालवा के गवर्नर अब्दुल्ला खाँ के नेतृत्व में उजबेगों के विद्रोह कर दिया। अकबर ने उजबेगों के दोनों विद्रोहों को कुचल दिया। 1584 ई. में गुजरात के विद्रोहों को कुचलने के कारण अब्दुर्रहीम को 'खानखाना' की उपाधि दी गयी। युसुफजाहियों के हमले के समय राजा बीरबल (एक नवरत्न) की मृत्यु हो गई थी। अकबर स्वयं 1605 ई. में एक लम्बी बीमारी के बाद चल बसा। उसे सिकन्दरा के मकबरे में दफनाया गया। उसने मकबरे पर बौद्ध निर्माण कला का प्रभाव है।

अकबर ने गोवा से पुर्तगाली मिशनरियों को बुलवाया। उसने धर्मशास्त्रीय चर्चा करने के लिए फतेहपुर सीकरी में 1575 ई. में इबादतखाना बनवाया। 1581 ई. में उसने दीन–ए–इलाही नामक धर्म का प्रवर्तन किया। इस धर्म में सम्मिलित होने वाला पहला हिन्दू राजा बीरबल था। शेख मुबारिक ने अकबर को 'इनाम आदिल' (मुजतहिंद) घोषित किया। सूफी मत के चिश्ती संप्रदाय को संरक्षण दिया, लाहौर एवं आगरा में ईसाइयों को गिरजाघर बनवाया। उसने जैन मुनि हरिविजय सूरि को जगदगुरु की उपाधि से संरक्षण प्रदान किया। दीन–ए–इलाही धर्म का प्रधान पुरोहित अबुल फजल था। 1583 ई. में अकबर ने इलाही संवत् के नाम से एक नया कैलेण्डर जारी किया था।

राजपूतों के प्रति अपनाई गई नीति में अकबर ने वैवाहिक सम्बन्ध बनाना एवं शक्ति प्रदर्शन की युक्ति से राजपूतों की शक्ति को अपने अधीन करने का कार्य किया। अकबर के साथ सन्धि करने वालो में पहला राजपूत राजा कछवाहा भारमल था। उसने भगवान दास एवं राजा मानसिंह को दरबार में उच्च पदों पर नियुक्त किया डूँगरपुर, बाँसवाड़ा एवं प्रतापगढ़ के राजवंशों ने मुगल अधीनता स्वीकार कर ली, परन्तु वे पृथक ही बने रहे। 1564 ई. में अकबर ने जजिया कर समाप्त कर दिया।

फतेहपुर सीकरी 1569 से लेकर 1584 ई. तक शाही राजधानी रही। वहाँ का बुलन्द दरवाजा, जो मस्जिद के दक्षिणी द्वार पर है, वह अकबर के गुजरात विजय के स्मारक स्वरूप बनाया गया।

जहाँगीर (1605–1627 ई.):

शेख सलीम चिश्ती के नाम पर इसका नाम 'सलीम' रखा गया था। सैन्य सेवाओं के कारण सलीम को 12 हजारी मनसब प्राप्त था। 1599 ई. में सलीम ने अकबर के विरूद्ध विद्रोह कर दिया था। अकबर द्वारा दमन के लिए भेजे गये अबुल फजल का 1602 ई. में उसने वध करवा दिया। 1605 ई. में आगरा के किले में सलीम ने नरूद्दीन मुहम्मद जहांगीर बादशाह की उपाधि धारण कर मुगल सत्ता संभाली।

उसने सिक्ख गुरु अर्जुनदेव को मृत्यु दण्ड दिया था। जहांगीर की कन्धार विजय सैनिक तथा व्यापारिक दृष्टि से

महत्वपूर्ण मानी जाती है। 1611 ई. में जहांगीर ने मेहरूनिस्सा नामक विधवा से विवाह करके उसे 'नूरमहल' नूरजहाँ की उपाधि दी। बाद में उसे बादशाह बेगम बनाया गया। ब्रिटिश दूत कैप्टन हॉकिन्स तथा सर टामस रो उसके दरबार में आए थे। 1627 ई. में जहांगीर की मृत्यु हुई।

शाहजहाँ (1627–1658 ई.) –

इसका बचपन का नाम खुर्रम था। 1612 ई. में इसका विवाह आसफ खां की पुत्री अरजुमन्द बानो बेगम (मुमताज महल) के साथ हुआ। फरवरी 1628 ई. में आगरा में इसका राज्यारोहण हुआ। इसके काल में खानजहाँ लोदी, जुझार सिंह (बुंदेलों) का विद्रोह हुआ। शाहजहाँ ने 1632 ई. में पुर्तगालियों को हुगली में पराजित किया। उसने अहमदनगर का विलय मुगल साम्राज्य में कराया। बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह को परास्त किया। 1652 ई. में शाहजहाँ ने अपने पुत्र औरंगजेब को दक्खन का वायसराय बनाया। 1657 ई. में औरंगजेब ने शाहजहाँ को आगरा के किले में कैद कर दिया। अपने भाइयों दारा, मुराद एवं शुजा को मारकर वह स्वयं गद्दी पर बैठ गया। 1666 ई. में शाहजहाँ की मृत्यु हुई। उत्तराधिकार हेतु धरमट का युद्ध दारा शिकोह एवं औरंगजेब के मध्य हुआ था। फ्रेंच यात्री बर्नियर टेवनियर एवं इटालियन यात्री मनूची ने शाहजहाँ के शासन काल का वर्णन किया है।

औरंगजेब (1658–1707 ई.) औरंगजेब ने शासक बनने के बाद असम, कूच बिहार, रंगपुर, कामरूप, मारवाड़ के राठौरों को पराजित किया। इसने राजा जयसिंह को दक्खन का गवर्नर नियुक्त किया। "पुरन्दर की सन्धि" जून 1665 ई. में शिवाजी एवं राजा जयसिंह के मध्य हुई। शिवाजी ने अपने 23 किले राजा जयसिंह को दिये। 1660 में शिवाजी राजा जयसिंह के प्रयासों से औरंगजेब के दरबार में पहुँचे मगर औरंगजेब द्वारा उनके साथ गरिमा युक्त व्यवहार नहीं किया गया अपितु षड़यन्त्र पूर्वक बंदी बना लिया गया। शिवाजी अपने सहयोगियों की चतुराई पूर्वक योजना से गुपत रूप से किले से निकल कर महाराष्ट्र चले गये। 1686 ई. में औरंगजेब ने स्वयं जाकर बीजापुर पर कब्जा किया एवं 1678 ई. में गोलकुण्डा पर भी अधिकार किया। उसके काल मे हिन्दू व्यापारियों पर 5 प्रतिशत कर बढ़ाया गया। 1669 ई. में मन्दिरों को ध्वस्त करने का आदेश औरंगजेब ने दिया। 1679 ई. में हिन्दुओं पर पुनः जजिया लगाया गया। औरंगजेब ने भी मजहब को एक औजार के रूप में प्रयोग किया। उसने अकबर के काल से चली आ रही प्रथा झरोखा दर्शन एवं संगीत पर रोक लगा दी। 1707 ई. में अहमदनगर में इसकी मृत्यु हो गयी। इसके शासनकाल में 1668 ई. में गोकुल के नेतृत्व में जाटों व 1672 ई. में सतनामियों ने विद्रोह

Silver coins of Akbar

चित्र 2.5 : अकबर कालीन सिक्के

चित्र 2.6 : फतेहपुर सीकरी

किया। सिक्खों के गुरु तेगबहादुर ने भी औरंगजेब के अत्याचारों के विरूद्ध आवाज़ उठायी। इस कारण उन्हें मार दिया गया।
औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल वंश को कमजोर एवं अयोग्य उत्तराधिकारी मिले जिससे मुगल साम्राज्य का क्रमशः पतन होना प्रारम्भ हो गया। सन् 1707 ई. में बहादुरशाह मुगल तख्त पर बैठा। सूरत की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी सन् 1711 में बहादुरशाह के दरबार में अपना शिष्ट मण्डल भेजा उस पर डोना जुलियाना डायस डा कोस्टा नामक एक ईसाई महिला का प्रभाव देखने को मिलता है; जिसे खातुम, बीबी, फिदवी दुआगो जुलियाना की उपाधियाँ मिली हुई थी। उसने पुर्तगालियों के हितों की बड़ी रक्षा की।
1712 ई. से लेकर 1757 ई. तक मुगल दरबार एवं तख्त षड़यंत्र एवं हत्या का केन्द्र बनकर रह गया। तत्कालीन राजनीतिक शक्ति के रूप में उसका स्थान गौण हो गया था।

मुगलकालीन प्रशासन :–

मुगल शासन प्रणाली भारतीय तथा विदेशी प्रणालियों का मिला–जुला रूप थी। बादशाह शासन का अधिपति, सर्वेसर्वा वकील–ए–मुतलक (वजीर) बादशाह के बाद सबसे बड़ा अधिकारी था। प्रधान सद्र मीरे समा नाम के दीवान वित्त विभाग का प्रमुख था।

प्रांतीय शासन सूबों में विभक्त था, जो अकबर के समय 15 थे और औरंगजेब के समय बढ़कर 21 हो गये थे। इनमें सूबेदार, दीवान, सदर काजी, प्रांतीय बख्शी, कोतवाल आदि अधिकारी होते थे। जिले का शासन फौजदार, अमलगुजार (मालगुजारी का अधिकारी), बितिकची (सहायक), शिकदार (परगना प्रमुख), आमिल (मुन्सिफ), फोतदार (खजांची) एवं कानूनगो (पटवारियों का अधिकारी) के हाथों में था।
बादशाह प्रधान सेनापति होता था। सेना मनसबदारी प्रथा पर आधारित थी। मनसबदारी जात और सवार में विभक्त थी।

(iii) सत्ता के साथ प्रतिरोध एवं सहयोग राजस्थान के संदर्भ में:– राव शेखा, हम्मीर चौहान, महाराणा प्रताप, चंद्रसेन, बीकानेर का रायसिंह, सवाई जयसिंह एवं अमरसिंह राठौड़।

चित्र 2.7 : राव शेखा

राव शेखा : महाराव शेखा का जन्म 24 सितम्बर 1433 ई. को हुआ था। इनके पिता मोकल एवं माता का नाम निर्वाण था। राव मोकल आमेर (जयपुर) राज्य के अन्तर्गत आने वाले नान के शासक थे। 1445 ई. में बारह वर्ष की उम्र में शेखा ने अपने पिता का उत्तरदायित्व संभाला। आमेर (जयपुर) के शासक उदयकरण ने शेखा को महाराव की उपाधि प्रदान की थी। 16 वर्ष की उम्र में मुल्तान, सेवार, नगरचल के सांखला राजपूत पर अचानक आक्रमण कर विजय प्राप्त करना शेखा का पहला सफल अभियान था। 1473 ई. से 1477 ई. में राव शेखा ने पन्नी पठानों की सहायता से नोपसिंह जादू से दादरी और अन्य जादू राजपूतों से भिवानी पर विजय प्राप्त की। उसने इस्तरखान से हांसी, हेदाखान कायमखानी से हिसार को जीतकर अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया। 1449 ई. में आमेरसर को अपने राज्य की राजधानी बनाया। आमेरसर में शेखा ने भगवान जगदीश का मन्दिर तथा 1477 ई. में शिकारगढ़ का किला बनवाया।

1488 ई. में रालावता नामक स्थान पर इनकी मृत्यु हुई जहाँ उसकी की छतरी बनी हुई है। महाराव शेखा ने अपने जीवनकाल में 52 युद्ध लड़े। उसे जयपुर के कछवाहा वंश के उपवर्ग 'शेखावत' का संस्थापक माना जाता है। उसकी पत्नी गंगा कुमारी ने आमेरसर किले के मुहानें पर कल्याणजी का मन्दिर बनवाया।

चित्र 2.8 : हम्मीर देव चौहान

हम्मीर देव चौहान (1282–1301 ई.)

बागभट्ट के बाद उसका पुत्र जैत्रसिंह (जयसिम्हा) रणथम्भौर का शासक बना। जैत्रसिंह ने अपने जीवन काल में ही अपने छोटे पुत्र हम्मीर देव को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर 1282 ई. में उसका राज्यारोहण किया।

हम्मीर देव के सिंहासन पर बैठते ही दिग्विजय की नीति अपनाते हुए उसने भीमरस के राजा अर्जुन को पराजित करके माण्डलगढ़ से कर वसूल किया। दक्षिण के परमार शासक भोज को पराजित करके उत्तर की ओर चित्तौड़, आबू, वर्धनपुर (काठियावाड़), पुष्कर, चंपा होता हुआ वापस रणथम्भौर पहुँचा। रणथम्भौर पहुँचकर विजय के उपलक्ष्य में उसने 'कोटियजन' यज्ञ

का आयोजन करवाया। हम्मीर ने 17 युद्ध लड़े जिनमें से 16 युद्धों में विजयी रहा।

दिल्ली के जलालुद्दीन खिलजी ने हम्मीर देव की बढ़ती हुई शक्ति को देखा तो रणथम्भौर की ओर रवाना हुआ।

जलालुद्दीन फिरोज खिलजी ने झाईन से रणथम्भौर की ओर बढ़कर दुर्ग की घेराबंदी कर दी। काफी दिनों के प्रयास के बाद सुल्तान को सफलता नहीं मिली तो घेरा उठाने का निर्णय लिया। जलालुद्दीन खिलजी हम्मीर देव की मजबूत मोर्चाबंदी को नष्ट करने में असफल रहा। अतः जून, 1291 ई. में सुल्तान रणथम्भौर दुर्ग का घेरा उठाकर दिल्ली की तरफ कूच कर गया।

1296 ई. में जलालुद्दीन का भतीजा व दामाद अलाउद्दीन खिलजी उसकी हत्या कर दिल्ली का सुल्तान बन गया। अलाउद्दीन खिलजी चौहानों की शक्ति को सहन नहीं कर सका और रणथम्भौर जीतने की योजना बनाने लगा। उसी समय उसे दुर्ग पर आक्रमण करने का बहाना भी मिल गया। हम्मीर महाकाव्य के अनुसार यह बहाना हम्मीर द्वारा अलाउद्दीन के बागी मंगोल मुहम्मद शाह को शरण देना था। मंगोल सेनापति मुहम्मद शाह व केहब्रू ने लूट का माल लेकर अलाउद्दीन की सेना से बगावत करके हम्मीर के पास शरण ली। हम्मीर ने अपनी शरण में आए हुए व्यक्तियों को देने से साफ इंकार कर दिया। अलाउद्दीन ने क्रोधित होकर रणथम्भौर पर आक्रमण करने के आदेश दे दिए।

अलाउद्दीन खिलजी ने 1299 ई. के अंत में उलूग खाँ और नुसरत खाँ के नेतृत्व में शाही सेना को रणथम्भौर दुर्ग पर आक्रमण करने के लिए भेजा। शाही सेना ने 'रणथम्भौर के मार्ग की कुँजी' कहलाने वाले झाईन पर आक्रमण किया। हम्मीर देव उस समय कोटियजन यज्ञ को समाप्त कर मौनव्रत धारण किये हुए था। हम्मीर ने अपने दो सैनिक अधिकारियों 'भीमसिंह और धर्मसिंह' को शत्रु का मुकाबला करने के लिए भेजा। दोनों ने अलाउद्दीन की सेना को बुरी तरह पराजित किया। भीमसिंह और धर्मसिंह लूट का माल लेकर वापस रणथम्भौर की ओर लौट पड़े। भीमसिंह और धर्मसिंह रणथम्भौर के दुर्ग के निकट पहुँचे तो उन्हें सूचना मिली की शत्रु की सेना पुनः आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ रही है। भीमसिंह ने धर्मसिंह को रणथम्भौर भेजकर स्वयं वापस शत्रुओं का मुकाबला करने के लिए रवाना हुआ। इस बार उलूग खाँ ने राजपूतों की सेना को परास्त किया। जिसमें भीमसिंह लड़ते हुए मारा गया। उलूग खाँ रणथम्भौर की ओर नहीं बढ़कर वापस दिल्ली लौट गया।

इसके बाद अलाउद्दीन खिलजी ने एक बड़ी सेना के साथ उलूग खाँ और नुसरत खाँ को पुनः रणथम्भौर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। सेना ने रणथम्भौर दुर्ग की घेराबंदी कर उसकी प्राचीरों को तोड़ना शुरू किया तभी दुर्ग में से आये हुए एक गोले से नुसरत खाँ की मृत्यु हो गई। इसका पता तुर्की सेना को चला तो तुर्की सेना वहाँ से भागने लगी। यह देखकर उलूग खाँ ने अपने भाई अलाउद्दीन खिलजी के पास नुसरत खाँ की मृत्यु तथा सेना की वापसी का समाचार भेजकर और अधिक सेना भिजवाने का अनुरोध किया। अलाउद्दीन स्थिति की गंभीरता को देखते हुए एक विशाल सेना के साथ दिल्ली से रणथम्भौर की और स्वयं ही रवाना हो गया। दुर्ग पर घेरा डाला गया। यह घेरा काफी दिनों तक चला। जब वर्षा ऋतु निकट आने लगी और दिल्ली एवं अवध में भयंकर विद्रोह उत्पन्न होने की सूचनाएं सुल्तान को मिलने लगी तो वह काफी चिंतित हो गया। उसने छल–कपट का सहारा लेकर रणथम्भौर दुर्ग को विजय करने का निश्चय किया। अलाउद्दीन ने हम्मीर को संदेश भिजवाया कि वह उससे संधि करना चाहता है। हम्मीर ने अपने दो सेनापति 'रणमल' और 'रतिपाल' को संधि करने के लिए शाही शिविर में भिजवाया। सुल्तान ने रणमल और रतिपाल को दुर्ग का लालच देते हुए अपनी ओर मिला लिया। इन दोनों सेना नायकों के विश्वासघात के कारण दुर्ग के गुप्तमार्ग का पता तुर्कों को चला। गुप्तमार्ग से तुर्की सेना दुर्ग में पहुँची।

इतिहासकारों के अनुसार मुसलमानों के द्वारा एक वर्ष लंबी घेराबंदी के कारण दुर्ग के भीतर खाद्य सामग्री का भयंकर अभाव हो गया था। ऐसी स्थिति में हम्मीर ने दुर्ग में बंद रहना उचित नहीं समझकर आक्रमण करने का निश्चय किया। आक्रमण करने से पूर्व राजपूत स्त्रियों ने हम्मीर की रानी रंगदेवी व उसकी पुत्री पदमला के नेतृत्व में जल जौहर किया। इसके बाद राजपूत सैनिकों ने केसरिया वस्त्र धारण कर दुर्ग के फाटक खोल दिये। दोनों पक्षों में जमकर युद्ध हुआ जिसमें हम्मीर वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया।

11 जुलाई 1301 ई. को रणथम्भौर पर अलाउद्दीन खिलजी का शासन स्थापित हो गया। हम्मीर के विश्वासघाती सेना नायकों रणमल और रतिपाल को अलाउद्दीन खिलजी ने यह कहते हुए कि जो अपने स्वधर्मी राजा के प्रति निष्ठावान नहीं रह सके, उनसे भविष्य में स्वामी भक्ति की आशा कैसे की जा सकती है दोनों को मरवा दिया।

रणथम्भौर के युद्ध में अलाउद्दीन खिलजी के साथ अमीर खुसरो नामक विद्वान भी था। हम्मीर हठ के लिए विश्व में प्रसिद्ध हुआ जिसने अपनी शरण में आये व्यक्तियों को नहीं लौटाया, चाहे उसके लिए उसे अपने पूरे परिवार की ही बलि क्यों न देनी पड़ी हो। हम्मीर के बारे में कहा गया है –

"सिंह सवन सत्पुरुश वचन, कदली फलत इक बार।
तिरिया–तेल, हम्मीर–हठ चढ़े न दूजी बार।।"

हम्मीर ने अपने पिता जयसिंह के 32 वर्षों के शासन की याद में रणथम्भौर दुर्ग में 32 खंभों की छतरी बनवाई जिसे 'न्याय की छतरी' भी कहते हैं। हम्मीर देव ने अपनी पुत्री पदमला के नाम पर 'पदमला तालाब' का निर्माण करवाया। हम्मीर के दरबार में 'बीजादित्य' नामक कवि रहता था।

हम्मीर की मृत्यु के साथ ही रणथम्भौर के चौहानों की शाखा समाप्त हो गई।

चित्र 2. : महाराणा प्रताप

महाराणा प्रताप (1572–1597 ई.) – महाराणा प्रताप का जन्म विक्रम संवत् 1597 ज्येष्ठ शुक्ल तृतीय, रविवार (9 मई, 1540 ई.) को कुंभलगढ़ दुर्ग के (कटारगढ़) 'बादल महल' में हुआ। प्रताप महाराणा उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था। उसकी माता का नाम जैवंता बाई (पाली नरेश अखैराज सोनगरा चौहान की पुत्री थी।) महाराणा प्रताप का बचपन कुंभलगढ़ दुर्ग में ही व्यतीत हुआ। महाराणा प्रताप का विवाह 1557 ई. में अजब दे पँवार के साथ हुआ जिनसे 16 मार्च, 1559 ई. में अमरसिंह का जन्म हुआ।

महाराणा प्रताप 32 वर्ष की उम्र के थे तब उनके पिता उदयसिंह की होली के दिन 28 फरवरी, 1572 ई. को गोगुंदा में मृत्यु हो गई। उदयसिंह का गोगुंदा में ही दाह संस्कार किया गया। यहां स्थित महादेव बावड़ी पर 28 फरवरी, 1572 ई. को मेवाड़ के सामन्तों एवं प्रजा ने प्रतापसिंह का महाराणा के रूप में राजतिलक किया। महाराणा उदयसिंह द्वारा नामित उत्तराधिकारी जगमाल को मेवाड़ के वरिष्ठ सामन्तों ने अपदस्थ कर दिया।

1570 ई. में अकबर का नागौर में दरबार लगा जिसमें मेवाड़ के अलावा अधिकतर राजपूतों ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। अकबर ने प्रताप को अधीनता स्वीकार करवाने के लिए चार दल भेजे जिनमें–

पहली बार – जलाल खाँ, जिसको नवंबर, 1572 ई. में प्रताप के पास भेजा गया।

दूसरी बार – जून, 1573 ई. में मानसिंह (आमेर का शासक) को प्रताप को समझाने भेजा गया।

तीसरी बार – अक्टूबर, 1573 ई. में आमेर के भगवानदास को भेजा गया।

चौथी बार – दिसंबर, 1573 ई. में टोडरमल को भेजा गया।

ये चारों शिष्टमंडल प्रताप को समझाने में असफल रहे तो अकबर ने प्रताप को युद्ध में बंदी बनाने की योजना बनाई। बंदी बनाने की योजना अजमेर में स्थित किले में बनाई गई जिसमें आज संग्रहालय स्थित है तथा अंग्रेजो के समय का शस्त्रागार होने के कारण इसे मैगजीन भी कहते है। अकबर ने मानसिंह को इस युद्ध का मुख्य सेनापति बनाया तथा मानसिंह का सहयोगी आसफखाँ को नियुक्त किया गया।

मानसिंह 3 अप्रैल, 1576 ई. को शाही सेना लेकर अजमेर से रवाना हुआ उसने पहला पड़ाव मांडलगढ़ में डाला, 2 माह तक वहीं पर रहा उसके बाद वह आगे नाथद्वारा से लगे हुए खमनौर के मोलेला नामक गाँव के पास अपना पड़ाव डाला। उधर इस शाही सेना के आगमन की सूचना महाराणा प्रताप को मिल गई थी।

महाराणा प्रताप ने गोगुंदा और खमनौर की पहाड़ियों के मध्य स्थित हल्दीघाटी नामक तंग घाटी में अपना पड़ाव डाला। इस घाटी में एक बार में एक आदमी ही प्रवेश कर सकता था। इसलिए सैनिकों की कमी होते हुए भी महाराणा प्रताप के लिए मोर्चाबंदी के लिए यह सर्वोत्तम स्थान था जहाँ प्रताप के पहाड़ों से परिचित सैनिक आसानी से छिपकर आक्रमण कर सकते थे। वहीं मुगल सैनिक भटक कर मेवाड़ के सैनिकों से टकराकर या भूखे प्यासे मरकर जीवन गँवा सकते थे। अंत में दोनों सेनाएँ 18 जून, 1576 ई. को प्रातःकाल युद्ध भेरी के साथ आमने–सामने हुई।

राजपूतों ने मुगलों पर पहला वार इतना आक्रामक किया कि मुगल सैनिक चारों ओर जान बचा कर भागे। इस प्रथम चरण के युद्ध में हकीम खाँ सूर का नेतृत्व सफल रहा। मुगल इतिहासकार बँदायूनी, जो कि मुगल सेना के साथ था, वह स्वयं भी उस युद्ध से भाग खड़ा हुआ। मुगलों की आरक्षित फौज के प्रभारी मिहत्तर खाँ ने यह झूठी अफवाह फेला दी की 'बादशाह अकबर स्वयं शाही सेना लेकर आ रहे हैं।' अकबर के सहयोग की बात सुनकर मुगल सेना की हिम्मत बँधी और वो पुनः युद्ध के लिए तत्पर होकर आगे बढ़ी। राजपूत भी पहले मोर्चे में सफल होने के बाद बनास नदी के किनारे वाले मैदान में जिसे 'रक्ततात' कहते हैं, में आ जमें। इस युद्ध में राणा की ओर से पूणा व रामप्रसाद हाथी और मुगलों की ओर से गजमुक्ता व गजराज के मध्य युद्ध हुआ। रामप्रसाद हाथी के महावत के मारे जाने के कारण रामप्रसाद हाथी मुगलों के हाथ लग गया। रामप्रसाद हाथी अकबर के लिये बड़े महत्व का था, जिसका नाम अकबर ने पीर प्रसाद कर दिया था।

महाराणा प्रताप की नज़र मुगल सेना के सेनापति मानसिंह पर पड़ी। स्वामीभक्त घोड़े चेतक ने स्वामी का संकेत समझकर अपने कदम उस ओर बढ़ाये, जिधर मुगल सेनापति मानसिंह 'मरदाना' नामक हाथी पर बैठा हुआ था। चेतक ने अपने पैर हाथी के सिर पर टिका दिए। महाराणा प्रताप ने अपने भाले का भरपूर प्रहार मानसिंह पर किया परंतु मानसिंह हौदे में छिप गया और उसके पीछे बैठा अंगरक्षक मारा गया व हौदे की छतरी का एक खंभा टूट गया। इसी समय हाथी की सूँड में बँधे हुए जहरीले खंजर से चेतक की टाँग कट गई।

उसी समय मुगलों की शाही सेना ने प्रताप को चारों ओर से घेर लिया। बड़ी सादड़ी का झाला मन्ना सेना को चीरते हुए राणा के पास पहुँचा और महाराणा से निवेदन किया कि "आप राजचिह्न उतार कर मुझे दे दीजिए और आप इस समय युद्ध के मैदान से चले

जाएँ इसी में मेवाड़ की भलाई है।" चेतक के घायल होने की स्थिति को देखकर राणा ने वैसा ही किया। राजचिह्न के बदलते ही सैंकड़ों तलवारें झाला मन्ना पर टूट पड़ी। झाला मन्ना इन प्रहारों का भरपूर सामना करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ।

महाराणा प्रताप का स्वामीभक्त घोड़ा चेतक बलीचा गाँव में स्थित एक छोटा नाला पार करते हुए परलोक सिधार गया। इसी जगह 'बलीचा गाँव' में चेतक की छतरी बनी हुई है। महाराणा प्रताप जो कभी भी किसी परिस्थिति में नहीं रोए परंतु चेतक की मृत्यु पर उनकी आँखों में आँसू निकल पड़े। उसी समय 'ओ नीला घोड़ा रा असवार' शब्द राणा ने सुने। प्रताप ने सिर उठाकर देखा तो सामने उसके भाई शक्तिसिंह को पाया। शक्तिसिंह ने अपनी करनी पर लज्जित होकर बड़े भाई के चरण पकड़ कर क्षमा याचना की, महाराणा प्रताप ने उन्हें गले लगाया और क्षमा कर दिया। इसकी जानकारी हमें 'अमर काव्य वंशावली ग्रंथ व राजप्रशस्ति' से मिलती है। जिसकी रचना संस्कृत भाषा में रणछोड़ भट्ट नामक विद्वान ने की।

कुछ इतिहासकारों ने इसे परिणामविहीन अथवा 'अनिर्णित युद्ध की संज्ञा' दी है। परिणाम की समीक्षा हेतु निम्नलिखित आधार विवेचनीय हैं :–

उद्देश्यगत – अकबर का उद्देश्य महाराणा प्रताप को जीवित पकड़कर मुगल दरबार में खड़ा करना अथवा मार देना था या फिर उसका सम्पूर्ण राज्य अपने साम्राज्य में मिला देना था। लेकिन अकबर इन उद्देश्यों में विफल रहा।

मुगल सेना की विजय प्रामाणित नहीं होती है क्योंकि अकबर की मानसिंह व आसफ खाँ के प्रति नाराजगी जिसमें उनकी ड्योढ़ी बंद कर दी गई, मुगल सेना का मेवाड़ में भयग्रस्त होकर समय निकालना एवं मेवाड़ की सेना का पीछा न करना ऐसे परिदृश्य हैं जो हल्दीघाटी युद्ध का परिणाम प्रताप के पक्ष में लाकर खड़ा कर देते हैं।

फरवरी 1577 ई. में स्वयं अकबर और अक्टूबर 1577 ई. से लेकर नवम्बर 1579 ई. तक शाहबाज खान का तीन बार लगातार मेवाड़ अभियान करना अकबर का अपना उद्देश्य पूरा करने के प्रयास थे, वे भी असफल रहे। महाराणा प्रताप कोल्यारी गाँव कमलनाथ पर्वत के निकट 'आवरगढ़' में अपनी अस्थायी राजधानी स्थापित करना एक विजेता का होना सिद्ध करना है।

1580 ई. में अकबर ने अब्दुल रहीम खानखाना को प्रताप के विरूद्ध युद्ध करने भेजा। अब्दुल रहीम खानखाना के साथ उसका परिवार भी आया जिसे उसने शेरपुर में छोड़ा। महाराणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने मौका पाकर शेरपुर पर आक्रमण कर अब्दुल रहीम खानखाना के परिवार को बंदी बना लिया। महाराणा प्रताप इससे नाराज़ हुए और उन्होंने अमरसिंह को अब्दुल रहीम खानेखाना के परिवार को सम्मानपूर्वक वापस छोड़कर आने को कहा। कुम्भलगढ़ से 50 किमी. दूर उत्तर पूर्व में मेवाड़–मेरवाड़ा का सीमावर्ती क्षेत्र था। यह मुगलों का मुख्य थाना था। प्रताप ने अमरसिंह के साथ इस पर धावा बोल दिया। दिवेर की सम्पूर्ण घाटी पर प्रताप का अधिकार हो गया।

मुगल सम्राट अकबर ने 5 दिसम्बर 1584 ई. को आमेर के भारमल के छोटे पुत्र जगन्नाथ कछवाहा को प्रताप के विरुद्ध भेजा। जगन्नाथ कछवाहा को भी सफलता नहीं मिली अपितु उसकी की मांडलगढ़ में मृत्यु हो गई। जहाँ पर महाराणा प्रताप ने बदला लेने के लिए आमेर के क्षेत्र पर आक्रमण कर मालपुरा को लूटा व झालरा तालाब के निकट शिव मंदिर 'नीलकण्ठ महादेव' का निर्माण करवाया।

इस विजय के पश्चात् महाराणा प्रताप ने 1585 ई. के लगभग मेवाड़ के पश्चिमी–दक्षिणी भाग जो कि छप्पन के नाम से प्रसिद्ध था, के लूणा चावण्डियों को पराजित कर चावंड को अपनी आपातकालीन राजधानी बनाया। चावंड 1585 ई. से अगले 28 वर्षों तक मेवाड़ की राजधानी रही। यहीं पर महाराणा प्रताप ने चामुंडा माता का मंदिर बनवाया।

1597 ई. में धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाते हुए महाराणा प्रताप के चोट लगी, जिसके कारण 19 जनवरी 1597 ई.को उसकी "चावंड" में मृत्यु हो गई। चावंड से 11 मील दूर बांडोली गाँव के निकट बहने वाले नाले के तट पर महाराणा का दाह संस्कार किया गया। खेजड़ बाँध के किनारे 8 खंभों की छतरी आज भी हमें उस महान योद्धा की

चित्र 2.10 : महाराणा प्रताप द्वारा मानसिंह पर हमला

चित्र 2.11 : महाराणा प्रताप की समाधि (बान्डोली, चावण्ड)

याद दिलाती है।

प्रताप की मृत्यु का समाचार अकबर के कानों तक पहुँचा तो उसे भी बड़ा दुख हुआ। इस स्थिति का वर्णन अकबर के दरबार में उपस्थित दुरसा आढा ने इस प्रकार किया, 'अस लेगो अणदाग पाग लेगो अणनामी गहलोत राण जीती गयो दसण मूँद रसणा उसी, नीसास मूक मरिया नयण तो मृत शाह प्रतापसी" आशय यह था कि राणा प्रताप तेरी मृत्यु पर बादशाह ने दाँत में जीभ दबाई और निःश्वास से आँसू टपकाए क्योंकि तूने अपने घोड़े को नहीं दगवाया और अपनी पगड़ी को किसी के सामने नहीं झुकाया वास्तव में तू सब तरह से जीत गया।

विदेशी इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड ने हल्दीघाटी को 'मेवाड़ की थर्मोपल्ली' और दिवेर को 'मेवाड़ का मैराथन' कहा है।

राव चंद्रसेन (1562–1581 ई.) :

राव चंद्रसेन का जन्म 16 जुलाई, 1541 ई. हुआ। यह मालदेव झाला रानी स्वरूप दे का पुत्र था। स्वरूप दे ने मालदेव से कहकर चंद्रसेन को मारवाड़ का युवराज बनवाया था। मालदेव की मृत्यु हुई तब 31 दिसंबर, 1562 ई. चंद्रसेन भाईयों में छोटा होते हुए भी मारवाड़ का शासक बना। इसी कारण राय चंद्रसेन के दोनों भाई उससे नाराज हो गए। बड़े भाई राम ने अकबर की शरण में जाकर शाही सहायता की प्रार्थना की, अकबर भी इस समय इसी फिराक में था। अकबर ने शीघ्र ही हुसैन कुली खाँ के नेतृत्व में अपनी सेना जोधपुर की ओर भेजी, जिसने मई, 1564 ई. में जोधपुर के किले पर अधिकार कर लिया। मारवाड़ के राजा चंद्रसेन ने जोधपुर से भागकर भाद्राजूण में जाकर शरण ली। 1570 ई. में अकबर द्वारा लगाये गये नागौर दरबार में चन्द्रसेन गया परन्तु वहाँ पर अकबर के व्यवहार एवं अपने प्रतिस्पर्धी उदयसिंह को देखकर नागौर दरबार छोड़कर वहाँ से वापस चला आया।

इसका पता अकबर को चला तो उसने बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर का अधिकारी नियुक्त कर दिया राव चंद्रसेन को दबाने के लिए अकबर ने अपनी सेना भाद्राजूण भेजी। भाद्राजूण से चंद्रसेन अपने मतीजे कल्ला (चंद्रसेन के भाई राम का पुत्र) के पास सोजत पहुँचा। यहाँ पर भी उसका पीछा करते हुए मुगल सेना आ गई। राव चंद्रसेन वहाँ से सिवाण (बाड़मेर) पहुँचा। सिवाण से चंद्रसेन सारण के पहाड़ों (पाली) में संचियाय नामक स्थान पर पहुँचा। जहाँ 11 जनवरी 1581 को उसका देहांत हो गया। वहीं पर चंद्रसेन की समाधि बनी हुई है। राव चंद्रसेन को विस्मृत नायक, भूला बिसरा राजा आदि नामों से भी जाना जाता है।

बीकानेर का रायसिंह (1574–1612 ई.) :

रायसिंह कल्याणमल राठौड़ का बड़ा पुत्र था। उसका जन्म 20 जुलाई 1541 ई. को हुआ। 1570 ई. में लगे नागौर दरबार में यह अकबर की शाही सेना में शामिल हो गया और शीघ्र ही अकबर का विश्वासपात्र बन गया।

अकबर ने रायसिंह को सर्वप्रथम 1572 ई. में जोधपुर का अधिकारी बनाया। रायसिंह के पिता कल्याणमल की 25 सितंबर 1574 ई. को मृत्यु होने के बाद रायसिंह बीकानेर का शासक बना। रायसिंह जब जोधपुर की व्यवस्था संभाल रहा था, तभी इब्राहीम मिर्जा ने नागौर में विद्रोह कर दिया। रायसिंह ने कठौली नाम गाँव में उसका दमन किया।

सिरोही के देवड़ा सुरताण व बीजा देवड़ा के मध्य अनबन हो गई, तब रायसिंह ने सिरोही पर आक्रमण करके बीजा को राज्य से बाहर निकाल दिया और आधा सिरोही मुगलों के अधीन कर मेवाड़ से नाराज होकर आए महाराणा प्रताप के सौतेले भाई जगमाल को दे दिया। सुरताण ने मुगलों पर आक्रमण कर दिया। दोनों सेनाओं के मध्य 1583 ई. को 'दत्ताणी नामक स्थान' पर युद्ध हुआ। दत्ताणी के युद्ध में जगमाल की मृत्यु हो गई और सुरताण ने सिरोही पर वापस अपना अधिकार कर लिया। अकबर ने रायसिंह से प्रसन्न होकर 1593 ई. में उसे जूनागढ़ प्रदेश दिया। उसने उसे 1604 ई. में शमशाबाद तथा नूरपुर की जागीर व 'राय' की उपाधि दी। रायसिंह ने 1589–94 ई. के मध्य अपने प्रधानमंत्री कर्मचंद की

देखरेख में जूनागढ़ (बीकानेर) का निर्माण करवाया तथा वहाँ एक प्रशस्ति लगवाई जिसे 'रायसिंह प्रशस्ति' के नाम से जाना जाता है। रायसिंह साहित्यकार भी था, उसने रायसिंह महोत्सव, वैद्यक वंशावली, ज्योतिश रत्नमाला, ज्योतिश ग्रंथों की भाषा पर बाल बोधिनी नामक टीका लिखी। 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यं' ग्रंथ में रायसिंह को "राजेंद्र" पुकारा गया है।

रायसिंह के शासन काल में बीकानेर में अकाल पड़ा। रायसिंह ने जगह–जगह 'सदाव्रत' खोले एवं पशुओं के लिए चारे–पानी की व्यवस्था की। बीकानेरी चित्रकला की शुरूआत रायसिंह के शासन काल में मानी जाती है। रायसिंह की मृत्यु दक्षिण भारत में एक स्थान पर बुरहानपुर में 21 जनवरी 1612 ई. को हुई। रायसिंह ने दक्षिण भारत में एक स्थान पर रेगिस्तान के फोग नामक झाड़ी को देखकर उससे वह लिपट गया तथा कहा कि–

"तूँ सैं देशी रूखड़ा, म्हैं परदेशी लोग।
म्हानें अकबर तेड़ियाँ, क्यों तूँ आयो फोग।।

अर्थात् तू देशी पौधा है, मैं परदेसी व्यक्ति हूँ। मुझे तो अकबर ने यहाँ जबरदस्ती भेजा है, पर हे! फोग तू यहाँ क्यों आया है?

चित्र 2.12 महाराज सवाई जयसिंह

सवाई जयसिंह/जयसिंह द्वितीय (1699–1743 ई.):– जयसिंह का जन्म 3 सितम्बर 1688 ई. को हुआ। जयसिंह द्वितीय के पिता का नाम बिशनसिंह था। शुरू में इनका नाम विजयसिंह व इनके छोटे भाई का नाम जयसिंह था। औरंगजेब ने इनकी योग्यता से प्रभावित होकर इनका नाम जयसिंह तथा इनके छोटे भाई का नाम विजयसिंह कर दिया। 1699 ई. में सवाई जयसिंह के पिता बिसनसिंह की मृत्यु हुई। सवाई जयसिंह 19 दिसंबर 1699 ई. को आमेर का शासक बना।

फरवरी 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु हो गई। औरंगजेब के पुत्रों में उत्तराधिकार युद्ध शुरू हो गया। औरंगजेब के चार पुत्र मुअज्जम, आजम, कामबख्श और अकबर थे। अकबर भारत छोड़कर पारस चला गया था। कामबख्श को राजा बनने की कोई इच्छा नहीं थी। अतः मुअज्जम व आजम दोनों के मध्य 1707 ई. में "जाजऊ के मैदान" (उत्तर प्रदेश) में युद्ध हुआ। सवाई जयसिंह ने इस युद्ध में भाग लेते हुए आजम का साथ दिया। मुअज्जम ने सवाई जयसिंह के भाई विजयसिंह को अपनी ओर मिला लिया। इस युद्ध में मुअज्जम की विजय हुई। जीतने के बाद मुअज्जम ने सर्वप्रथम अपना नाम बहादुरशाह प्रथम रखा। विजयसिंह को आमेर का शासक बनाया गया और आमेर का नाम 'इस्लामाबाद' और बाद में 'मोमिनाबाद' कर दिया गया। आमेर के शासक सवाई जयसिंह और मारवाड़ के शासक अजीतसिंह को बहादुरशाह ने सूबेदार नियुक्त किया। अमरसिंह द्वितीय ने शर्त रखी कि सवाई जयसिंह मेरी पुत्री चंद्रकुंवरी के साथ शादी करे और उसका पुत्र ही आमेर का आगामी राजा बने। जयसिंह ने यह शर्त मान ली। इसे 'देबारी समझौता' भी कहा जाता है।

अमरसिंह द्वितीय आमेर के सवाई जयसिंह व मारवाड़ के अजीतसिंह को सहायता देने को तैयार हो गया। इसका पता जब बहादुरशाह प्रथम को चला तो वह नाराज हुआ। कुछ समय बाद उसने दानों को माफ़ कर दिया।

भरतपुर रियासत में चूड़ामन ने विद्रोह कर दिया। रंगीला ने उसे दबाने के लिए 1722 ई. में जयसिंह को भेजा। जयसिंह ने चूड़ामन के भतीजे बदनसिंह को अपनी तरफ मिलाकर चूड़ामन को भरतपुर से खदेड़ दिया। जयसिंह ने बदनसिंह को 'ब्रजराज' की उपाधि व डीग की जागीर दी। जाटों के दमन से प्रसन्न होकर मुहम्मद शाह ने जयसिंह को 'राजराजेश्वर श्री राजाधिराज सवाई' की उपाधि से विभूषित किया।

सवाई जयसिंह ने 1725 ई. में नक्षत्रों की गति की गणना करने के लिए एक शुद्ध सारणी का निर्माण करवाया। जयसिंह ने ज्योतिश विद्या पर 'जयसिंह कारिका' नामक ग्रंथ लिखा। जयसिंह ने भारत में ज्योतिष के अध्ययन के लिए पाँच वैद्य शालाएँ बनवाईं ये जयपुर, दिल्ली, मथुरा, बनारस और उज्जैन में स्थित हुई। जयपुर का जंतर–मंतर पाँचों वैधशालाओं में सबसे बड़ी वैधशाला है, जुलाई 2010 ई. में इसे यूनेस्कों की विश्व धरोहर सूची में सम्मिलित कर लिया गया है। जयपुर का प्राचीन नाम जयनगर था। सवाई जयसिंह ने आमेर की जगह जयपुर को कछवाहा राजवंश की राजधानी बनाया। जयपुर की स्थापना से पूर्व इस स्थान पर एक शिकार होदी स्थित थी। इसी होदी को सवाई जयसिंह ने बादल महल का रूप दे दिया और जयपुर शहर के निर्माण की शुरुआत की।

सवाई जयसिंह अंतिम हिंदू शासक था, जिसने 1740 ई. में कई यज्ञ करवाये। यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों के रहने के लिए सवाई जयसिंह ने जलमहलों का निर्माण करवाया। 21 सितम्बर, 1743 ई. में रक्त विकार से जयसिंह की मृत्यु आमेर में हो गई।

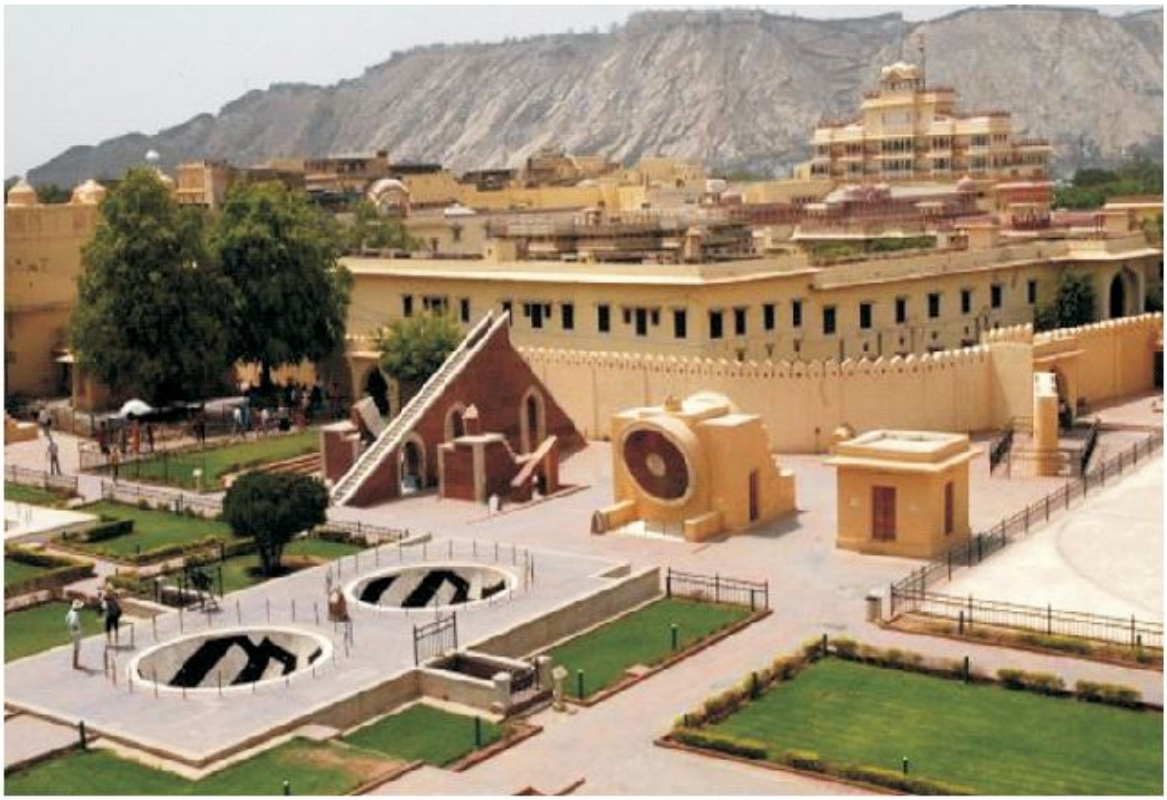

चित्र 2.13 : जंतर मंतर, जयपुर (सौर वेधशाला, सवाई जयसिंह द्वारा निर्मित)

चित्र 214 : अमरसिंह राठौड़ (जोधपुर)

अमरसिंह राठौड़ः–

जोधपुर के महाराजा गजसिंह के तीन पुत्र थे बड़ा अमरसिंह, दूसरा जसवंत सिंह व तीसरा अचल सिंह जो कि बचपन में ही मर गया था। अमरसिंह राठौड़ पराक्रमी व निडर था। उसके पास उसी के स्वभाव के कई राजपूत युवक जमा हो गए। गजसिंह ने अनारा नामक पासवान के बहकाये में आकर अमरसिंह को राज्याधिकार से वंचित कर देश से निकाल दिया। अमरसिंह राठौड़ मुगल बादशाह की सेवा में जा पहुँचा। जहाँ उसकी बहादुरी से प्रसन्न होकर शाहजहाँ ने उसे 'राव' की उपाधि दी।

एक बार अमरसिंह राठौड़ 15 दिनों तक मुगल दरबार से अनुपस्थित रहा। बादशाह शाहजहाँ ने उससे उसकी अनुपस्थिति का कारण पूछा तो अमर ने स्वाभिमान के साथ उत्तर दिया कि, "मैं केवल शिकार के लिए गया था अतः दरबार में नहीं आ सका। जहाँ तक जुर्माना अदा करने की बात है मेरी तलवार ही मेरी सम्पत्ति है।" जुर्माने को वसूल करने के लिए बख्शी सलावत खाँ को उसके पास भेजा। अमरसिंह ने जुर्माना देने से इंकार कर दिया। बादशाह ने अमरसिंह को तुरंत हाजिर होने का आदेश भिजवाया। अमरसिंह राठौड़ ने आदेश का पालन किया और दीवाने खास में पहुँचकर बादशाह का अभिवादन किया। वहाँ पहुँचते ही दरबार में उपस्थित सलावत खाँ ने उसको गंवार कहा। यह शब्द अमरसिंह सुन नहीं सका और सलावत खाँ पर आक्रमण कर उसके सीने में कटार उतार दी। इसके बाद अमरसिंह ने बादशाह शाहजहाँ पर आक्रमण कर दिया, किंतु शाहजहाँ बच गया। भयभीत बादशाह जनाना महलों में भाग गया। अमरसिंह के साले अर्जुन गौड़ ने इनाम के लालच में धोखे से अमरसिंह पर आक्रमण कर उसे मार दिया। यह सुनकर अमरसिंह के सरदारों और सैनिकों के खून में उबाल आ गया और उन्होंने उसी समय दिल्ली जाकर शाहजहाँ के निवास

स्थान लाल किले में बुखारा द्वार से प्रवेश किया। राठौड़ों की संख्या मुगलों की सेना के सामने नाममात्र की थी इसलिए सभी राठौड़ लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। लाल किले के बुखारा द्वार को उसी दिन ईंटों से बंद करा दिया गया और उसी दिन से यह द्वार 'अमरसिंह का फाटक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह फाटक अनेक वर्षों तक बंद रहा परंतु 1809 ई. में जॉर्ज स्टील नामक अंग्रेज अफ़सर के आदेश से उसे खोला गया।

(iv) मराठों का इतिहास —मराठा शक्ति का उत्कर्ष किसी एक व्यक्ति का कार्य न होकर, एक विशेष समय में उत्पन्न हुई, अस्थायी परिस्थितियों का ही परिणाम था। भारत के पश्चिम–दक्षिणी भाग में स्थित दक्कन के पठारों को सम्प्रति महाराष्ट्र के नाम से जाना जाता है। अधिकांश भाग पठारी होने के कारण वहाँ के निवासी परिश्रमी और साहसी रहे हैं। मराठा कहे जाने वाले महाराष्ट्रवासी छोटे कद और मजबूत शरीर वाले होते हैं। गुरिल्ला युद्ध में कुशल होते थे। वे खुले युद्ध से भरसक बचते थे और अपने दुश्मनों पर छिप कर वार करते थे। 15वीं और 16वीं शताब्दी के धर्म–सुधार और भक्ति आन्दोलन ने सामाजिक एकता को और अधिक सुदृढ़ किया। दक्षिण में जन–साधारण आधारित इस धार्मिक आन्दोलन का नेतृत्व तुकाराम, रामदास, एकनाथ, वामन पंडित इत्यादि संतों और दार्शनिकों ने किया था। यह आंदोलन ऊँच–नीच, जाति व्यवस्था और कर्मकांड के विरुद्ध था, जिसने सभी के लिए 'भक्ति' द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाया। मराठी भाषा बहुत सरल और व्यावहारिक थी।

चित्र 2.15 : छत्रपति शिवाजी महाराज

छत्रपति शिवाजी (1627–1680ई.):— 20 अप्रैल, 1627 ई. को शिवनेर के दुर्ग में शिवाजी का जन्म हुआ। वे शाहजी भोंसले की प्रथम पत्नी जीजाबाई के पुत्र थे। शाहजी बीजापुर के एक सामंत थे, जिन्होंने तुकाबाई मोहिते नामक एक अन्य स्त्री से विवाह कर लिया था। इसी कारण जीजाबाई उनसे अलग रहती थी। बालक शिवाजी का लालन–पालन उनके स्थानीय संरक्षक दादाजी कोणदेव तथा जीजाबाई के गुरू समर्थ स्वामी रामदास की देखरेख में हुआ। जिन्होंने उन्हें मातृभूमि की रक्षा के लिए प्रेरित किया। दादाजी कोंणदेव से उन्होंने सेना और शासन की शिक्षा पायी थी। 12 वर्ष की अल्पायु में शिवाजी ने अपने पिता से पूना की जागीर प्राप्त की। सर्वप्रथम 1646 ई. में 19 वर्ष की आयु में उन्होंने कुछ मावले युवको का एक दल बनाकर पूना के निकट स्थित तोरण दुर्ग पर अधिकार कर लिया। 1646 ई. में ही उन्होंने बीजापुर के सुल्तान से रायगढ़, चाकन तथा 1647 ई. में बारामती, इन्द्रपुर, सिंहगढ़ तथा पुरन्दर का दुर्ग भी छीन लिया। 1656 ई. में शिवाजी ने कोंकण में कल्याण और जावली का दुर्ग भी अधिकृत कर लिया। 1656 में ही उन्होंने अपनी राजधानी 'रायगढ़' में बनायी। शिवाजी के साम्राज्य विस्तार की नीति से रूष्ट होकर बीजापुर के सुल्तान ने 1659 ई. में अफ़जल खाँ नामक अपने सेनापति को उनका दमन करने के लिए भेजा। संधिवार्ता के दौरान अफ़जल खाँ द्वारा धोखा देने पर शिवाजी ने बघनखे से उसका पेट फाड़ डाला। 1663 ई. में दक्कन के मुगल वायसराय शायस्ता खाँ को शिवाजी के दमनार्थ औरंगजेब ने नियुक्त किया, जिसने शिवाजी के केन्द्र स्थल पूना पर अधिकार कर लिया। लेकिन शीघ्र ही शिवाजी ने शायस्ता खाँ के शिविर पर रात्रि में आक्रमण किया, जिसमें उसे अपना एक पुत्र और अपने हाथ की तीन उँगलियाँ गवांकर भागना पड़ा। 1664 ई. में शिवाजी ने मुगलों के अधीन सूरत को लूटा। इन सभी गतिविधियों से क्रूद्ध होकर औरंगजेब ने अपने मंत्री आमेर के राजा मिर्जा जयसिंह और दिलेर खान को भेजा। मुगल सेना ने उनके अनेक किले अधिकृत कर लिए। विवश होकर शिवाजी ने जयसिंह के साथ 1665 ई. में संधि कर ली जो पुरंदर की संधि के नाम से विदित है। इस संधि के निम्न प्रावधान थे–

1. शिवाजी ने अपने कुल 35 दुर्गों में से 23 मुगलों को सौंप दिये और मात्र 12 अपने पास रखे, और
2. शिवाजी के बड़े पुत्र शम्भाजी को मुगल दरबार में पाँच हजारी मनसबदार बनाया गया।

राजा जयसिंह द्वारा शिवाजी को आगरा स्थित मुगल दरबार में उपस्थित होने के लिए भी आश्वस्त किया गया। जयसिंह ने उनसे कहा कि उन्हें दक्षिण के मुगल सूबों का सूबेदार बना दिया जायेगा। मई, 1666 ई. में शिवाजी शाही दरबार में उपस्थित हुए, जहाँ उनके साथ तृतीय श्रेणी के मनसबदारों जैसा व्यवहार किया गया और उन्हें नजरबंद भी कर दिया गया। लेकिन नवम्बर, 1666 ई. में वे अपने पुत्र शम्भाजी के साथ गुप्त रूप से कैद से निकल भागे और सुरक्षित अपने घर पहुँच गये। अगले वर्ष ही औरंगजेब ने शिवाजी को राजा की उपाधि और बरार की जागीर प्रदान की। दो वर्ष तक शिवाजी ने शांति बनाये रखी। लेकिन 1670 ई. में उन्होंने विद्रोह कर मुगलों की अधीनता में चले जाने वाले अपने सभी किलों पर कब्जा कर लिया। खानदेश के कुछ भू–भागों में स्थानीय मुगल पदाधिकारियों को सुरक्षा का वचन देकर उनसे चौथ (आय का चौथाई भाग) वसूलने का लिखित समझौता भी उन्होंने किया। 1670 ई. में उन्होंने सूरत को दुबारा लूटा। 1674 ई. में 'रायगढ़' के दुर्ग में शिवाजी ने महाराष्ट्र के स्वतंत्र शासक के रूप में अपना राज्याभिषेक कराया, इस अवसर पर उन्होंने 'छत्रपति' की उपाधि भी धारण की। 1680 ई. में शिवाजी की मृत्यु हो गयी। इस समय उनका मराठा राज्य बेलगाँव से लेकर तुंगभद्रा नदी के तट तक समस्त पश्चिमी कर्नाटक में विस्तृत था। इस प्रकार मुगल शक्ति, बीजापुर के सुल्तान, गोवा के पुर्तगालियों और जंजीरा स्थित अबीसीनिया के समुद्री डाकुओं के प्रबल प्रतिरोध के बावजूद शिवाजी ने दक्षिण भारत में एक स्वतंत्र हिंदवी स्वराज्य की स्थापना की।

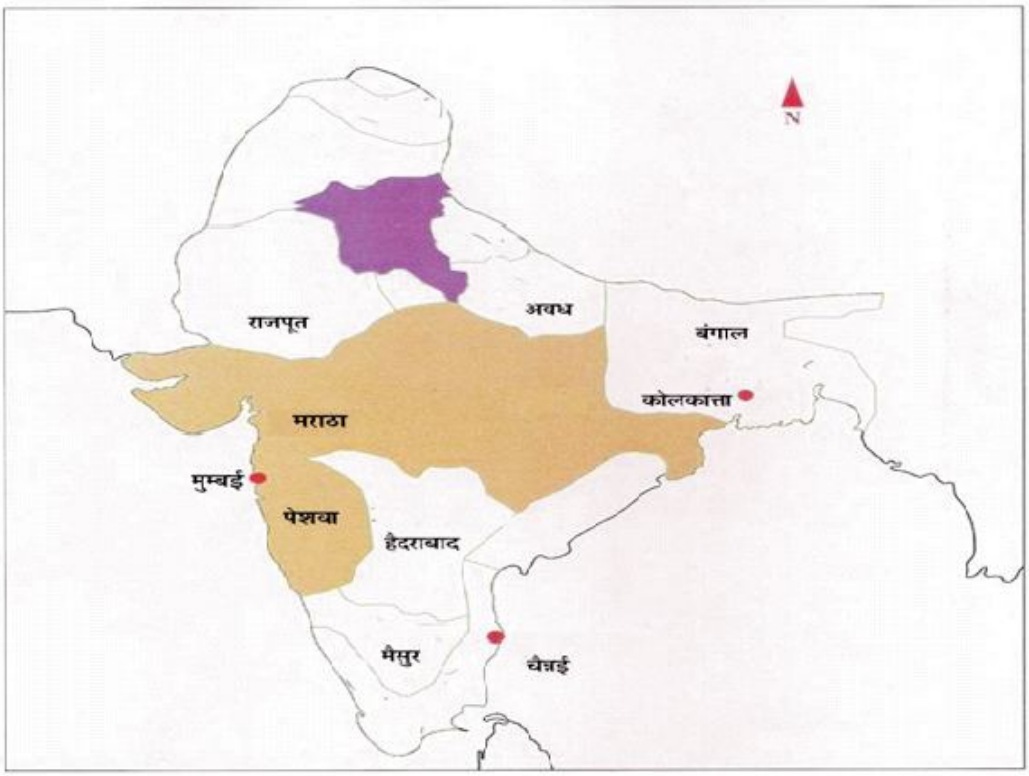

मानचित्र 2.16 : छत्रपति शिवाजी महाराज का साम्राज्य

चित्र 2.17 : अफजल खान का शिवाजी द्वारा वध

चित्र 2.18 : रायगढ़ का किला (महाराष्ट्र)

(v) विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य :

विजय नगर साम्राज्य – संगम के पांच पुत्रों ने जिसमें हरिहर तथा बुक्का सर्वाधिक प्रसिद्ध थे, तुंगभद्रा नदी के उत्तरी तट पर विजयनगर राज्य की नींव डाली। वे वारंगल के काकतियों के सामंत थे और बाद में आधुनिक कर्नाटक में काम्पिली राज्य के मंत्री बने थे। मुहम्मद तुगलक ने काम्पिली को रौंदे जाने पर इन दोनों भाइयों को बन्दी बना लिया गया व बाद में मुक्त कर दिया गया। उनके गुरू विद्यारण्य के प्रयत्न से इनकी शुद्धि हुई और उन्होंने विजयनगर में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया, जो शीघ्र ही दक्षिण भारत का शक्तिशाली राज्य बन गया। आज इसकी राजधानी विजयनगर की पहचान हम्पी नामक स्थल खंडहरों से की जाती है, जिसे विश्व विरासत संरक्षण के अन्तर्गत यूनेस्को द्वारा सम्मिलित कर लिया गया है।

हरिहर का राज्यारोहण 1336 ई. में हुआ। इसने होयसल के सारे प्रदेश को 1348 ई. में विजयनगर के अधिकार में ला दिया। बुक्का 1346 ई. में अपने भाई हरिहर का उत्तराधिकारी बना। उसने 1377 ई. तक राज्य किया। सारे दक्षिण भारत, रामेश्वरम्, तमिल व चेर प्रदेश तक बुक्का ने विजयनगर साम्राज्य को फैलाया। हरिहर द्वितीय (1377–1406 ई.) बुक्का का उत्तराधिकारी था। इस काल में

चित्र 2.19 : विजयनगर साम्राज्य वर्तमान में हम्पी खण्डहर के रूप में

उसका मुस्लिम शासको के साथ संघर्ष हुआ। यह शिव के 'विरूपाक्ष' रूप का उपासक था। इस काल में मैसूर, वनारा, त्रिचनापल्ली तथा कांजीवरम् सहित दक्षिण भारत तक विजयनगर साम्राज्य फैल गया। देवराय प्रथम (1406–1422 ई.) को हरिहर द्वितीय की तरह बहमनी सुल्तानों से पराजय मिली। 1422 ई. से 1426 ई. तक बुक्का के पुत्र देवराय द्वितीय ने शासन किया। इसे गजबेटकर (हाथियों का शिकारी) की उपाधि मिली। इसने बहमनी राज्य का मुकाबला करने हेतु पहली बार सेना में मुस्लिमों को भर्ती किया। इटली के यात्री निकालोकोन्टी एवं फारस के दूत अब्दुर्रज्जाक ने इसी काल में विजयनगर का भ्रमण किया। इस काल में विजयनगर साम्राज्य की सीमा सीलोन (श्रीलंका) के सामुद्रिक तटों तक पहुँच गयी थी। इस साम्राज्य के अन्तिम शासक क्रमशः मल्लिकार्जुन एवं विरूपाक्ष थे।

बहमनी साम्राज्य–

दक्षिण में बहमनी राज्य एवं राजवंश का आरम्भ मुहम्मद तुगलक के एक अधिकारी हसन (जफरशाह) ने 1347 ई. में किया। हसन ने दक्षिण के अमीरों की सहानुभूति प्राप्त करके, तुगलक के खिलाफ फैले विद्रोह का फायदा उठाकर अपना राज्य स्थापित किया। यह फारस के वीर योद्धा बहमन का वंशज था। इसने अल्लाउद्दीन बहमन शाह का खिताब धारण किया। कुलबर्ग में अपनी राजधानी बनाई। इसकी मृत्यु (1358 ई.) के समय बहमनी राज्य उत्तर में पेनगंगा से दक्षिण में कृष्णा नदी और पश्चिम में गोवा से पूर्व में भोंगिर तक फैल गया था।

विजयनगर की पश्चिमी सीमा बहमनी राज्य से टकराती थी। अतः दोनों साम्राज्यों में संघर्ष चलता रहा। मुकदल एवं रायचूर दो सीमान्त किलों पर अधिकार भी युद्ध का कारण रहा। बहमनी नवें सुल्तान अहमद ने कुलबर्ग से राजधानी हटाकर बीदर को बनाया। बहमनी राज्य में मुस्लिम अल्पसंख्यक थे अतः प्रोत्साहन वश कई विदेशी शिया मुस्लिम बहमनी जाकर बस गये। इस कारण दक्षिणी और अबीसीनियाई सुन्नी मुस्लिम नाराज हो गये। 13वें सुल्तान मुहम्मद तृतीय ने मुहम्मदगंवा जो राज्य का सेवक रहा था, को फांसी दे दी। गवां की मृत्यु के बाद बहमनी राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। आखिरी सुल्तान महमूद के राज्यकाल में बहमनी साम्राज्य के पांच स्वतंत्र राज्य बरार, बीदर, अहमदनगर, गोलकुण्डा और बीजापुर बन गये, जिनके सूबेदारों ने अपने को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। बहमनी राज्य में साधारण प्रजा की दशा दयनीय थी, जैसा कि रूसी व्यापारी एथानासियस निकितिन ने लिखा है, जिसने बहमनी राज्य का चार वर्षों(1470–74 ई.) तक भ्रमण किया।

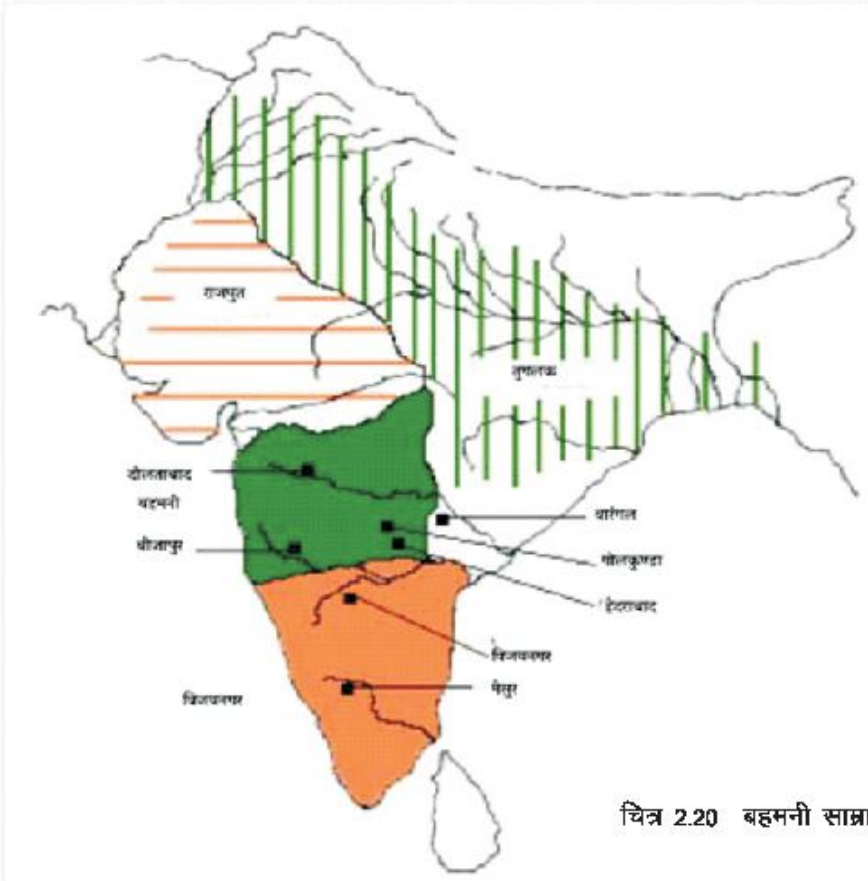

चित्र 2.20 बहमनी साम्राज्य

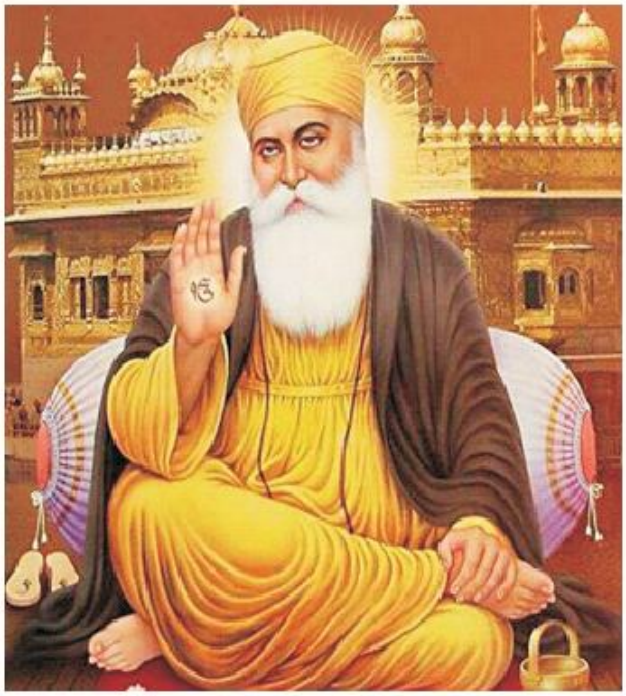

चित्र 2.21 : गुरू नानक देव

(vi) सिक्ख धर्म का प्रादुर्भाव एवं विकास –

(गोविन्द सिंह बन्दा बैरागी एवं रणजीत सिंह सहित)

तेहरहवीं सदी के प्रारम्भ से ही पंजाब में मुस्लिम राज्य की स्थापना हो गई। मुस्लिम शासकों ने मजहबी–राज्य की स्थापना के अन्तर्गत मुस्लिमों को उच्च स्थान एवं हिन्दूओं को दूसरे दर्जे का स्थान दिया। दिल्ली सल्तनत की मजहबी कट्टरता की नीति से संघर्ष प्रारंभ हुआ। देवालयों के स्थान पर मस्जिदों का निर्माण आम बात थी। असहिष्णुता एवं घृणा का वातावरण बनता जा रहा था। ऐसे वातावरण में 15 अप्रैल 1469 ई. को गुरू नानक देव का जन्म हुआ। इनका विवाह सुलखनी के साथ हुआ। नानक की अध्यात्म के प्रति रूचि थी। नानक ने "मानुष की जात सबै एक" इसी तत्त्व का प्रचार करते हुए भारत भ्रमण किया। इनकी इस तरह की यात्राओं को उदासियाँ कहा जाता है। गुरू नानक देव की शिक्षाएँ – एक ईश्वर में विश्वास, नाम की महानता और उपासना, गुरू की महानता इत्यादि थी। मानव को शुभ कर्म करने पर बल दिया एवं जाति–पाँति, ऊँच–नीच का विरोध कर समाज सुधार का कार्य किया। उनका कहना था – "करमा दे होगणे नवेड़े, जाति किसे पूछणी नहीं।" जपुजी, पट्टी, आरती, रहिराम एवं बारह माह इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। सिक्ख धर्म का प्रवर्तन कर नानक ने विश्व के धर्म सुधारकों एवं समाज सुधारकों में अपना स्थान बना लिया। नानक देव की शिक्षाओं को स्पष्ट करने का कार्य गुरु अंगद ने किया जो नानक के शिष्य थे। उन्होंने इस हेतु गुरूमुखी लिपि का विकास किया, नानक देव की वाणी को गुरू–वाणी के रूप में लिपिबद्ध कराया, लंगर प्रथा का प्रचलन सत्संग के केन्द्र 'मन्झियां' की स्थापना, गुरू ग्रन्थ साहब संकलित करवाना आदि महत्त्वपूर्ण कार्य किये। 1552 ई. में गुरू अंगद की मृत्यु व्यास नदी के किनारे हुई। शिष्य अमरदास को नया गुरू बनाया गया। उन्होंने लंगर प्रथा, मंझी प्रथा को कठोरता से लागू किया, वैसाखी को त्योंहार बनाया एवं सती प्रथा का विरोध किया। बादशाह अकबर भी उनके दर्शन करने गोईंदवाल स्थान पर आया था। गोईंदवाल स्थान गुरू अमरदास के कारण तीर्थ स्थान माना जाता है।

गुरु रामदास (1574–81 ई.):– ने धार्मिक केन्द्रों की संख्या को बढ़ाया और 500 बीघा जमीन पर विशाल सरोवर बनाया जो 'अमृतसर' कहलाया। सिक्खों का विख्यात नगर अमृतसर इसी नाम से है। यहाँ के शक्तिशाली, समृद्ध किसान सिक्ख धर्म के अनुयायी बने। गुरू रामदास के कहने पर हरिद्वार यात्रा पर लगने वाला कर अकबर ने हटाया। अकबर से मित्रता रखकर रामदास ने सिक्खों की संख्या में वृद्धि की। गुरू रामदास ने गरीबों को दान देने की मसन्द प्रथा का प्रचलन किया। अब गुरू सतगुरू के साथ–साथ 'सच्चा पातशाह' भी कहलाने लगे।

गुरु अर्जुन देव (1581–1606 ई.)– सिक्खों के पांचवे गुरु थे। ये सिक्ख धर्म के सच्चे संगठनकर्त्ता सिद्ध हुए। धार्मिक अधिकारों के साथ राजनीतिक अधिकार से भी गुरू को सम्पन्न किया। जहांगीर के विद्रोही खुसरो को आशीर्वाद देने से जहांगीर ने इन्हें प्राणदण्ड दिया। आदिग्रन्थ का संकलन, मसन्द प्रथा को सुनिश्चित स्वरूप प्रदान करना, धन संग्रह हेतु विदेशों में अनुयायी भेजना ऐसे कार्य थे जिनसे सिक्ख धर्म आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हुआ। अर्जुनदेव का प्राण बलिदान सिक्खों में सैन्य शक्ति के रूप में शक्तिशाली बनने का बदलाव ले आया। अर्जुनदेव का शहीद हो जाना सिक्ख धर्म के इतिहास की एक युगान्तकारी महान् घटना थी, जिससे शांतिप्रिय सिक्ख संघर्ष प्रेमी हो गये। सिक्ख अब एक सैनिक संघ बन गया। गुरू अर्जुन देव का पुत्र गुरू **हरगोविन्द सिंह (1606–1645 ई.)** सिक्ख गुरू बने। इन्होंने 'सैली' (ऊन की माला) की जगह दो तलवार धारण की। एक तलवार 'पीरी' धार्मिक गद्दी एवं दूसरी 'मीरी' राजनीतिक पदवी की प्रतीक थी। भेंट में धन के स्थान पर अस्त्र–शस्त्र लेना प्रारंभ किया। हर मन्दिर के पास एक भवन बनवाया जिसमें एक ऊँचा तख्त बनाया गया। इसका निर्माण 1699 ई. में हुआ। इसे 'अकाल तख्त' कहा गया। यह सिक्खों की राजनीतिक प्रभुता का प्रतीक बन कर उभरा। जहांगीर ने गुरू अर्जुनदेव का आर्थिक जुर्माना पुत्र गुरू हरगोविन्द से वसूल करना चाहा। इंकार करने पर गुरू हरगोविन्द को जेल में बन्दी बनाकर ग्वालियर के किले में रखा।

हालांकि हरगोविन्द ने सिक्ख पंथ को सैनिक रूप देने का कार्य आरम्भ कर दिया था परन्तु बाद के सिक्ख गुरू हरिराय (1645–1661 ई.) हरिकृष्ण 1661–1664 ई.), तेग बहादुर (1664–1675 ई.) सिक्ख पंथ का प्रचार करने का ही कार्य किया। तेगबहादुर द्वारा मजहब स्वीकार न करने पर औरंगजेब ने उनका सिर कटवा दिया। उनके लिए लिखा गया है कि– "सिर दिया पर सार (सिरड़) नहीं दिया"। दिल्ली में उनका स्मारक चाँदनी चौक में 'सीसगंज गुरूद्वारा' नाम से प्रसिद्ध है।

चित्र 2.22 : स्वर्ण मंदिर, अमृतसर

चित्र 2.23 : गुरू गोविन्द सिंह

गुरू गोविन्द सिंह (1675–1708ई.):–

ये गुरू तेगबहादुर के पुत्र थे। ये सिक्खों के दसवें और अन्तिम गुरू हुए। पंजाब पर औरंगजेब के अत्याचारों का विरोध करने हेतु उन्होंने शस्त्र एवं शास्त्र शिक्षा हेतु शिक्षण केन्द्रों का विकास किया। इससे सिक्ख संप्रदाय सक्षम बना। लाहौर के सूबेदार को 'नदौण के युद्ध' में पराजित किया। सिक्खों को सुसंगठित करने, उनकी कुरीतियाँ हटाने एवं नवचेतना जागृत करने के उद्देश्य से खालसा पंथ की स्थापना 1699 ई. में की। बलिदानी पांच भक्तों द्वारा पंज प्यारों, पाहुल (चरणामृत) एवं अमृत छकाणा (पताशे घुला पानी) की नई प्रथा प्रारंभ की। खालसा पंथ के सिक्खों को पांच 'ककार' अर्थात् कड़ा, केश, कच्छ, कृपाण और कंघा रखना आवश्यक था। औरंगजेब से युद्ध की आशंका के कारण उन्होंने 1699 ई. में ही आनन्दपुर साहिब में एक सैनिक केन्द्र खोल दिया। गुरू गोविन्द सिंह धार्मिक स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीय उन्नति का ऊँचा आदर्श रखते हुए सिक्खों के उत्कर्ष में लगे रहे। 1705 ई. में मुगलों के आक्रमण के कारण उन्हें आनन्दपुर छोड़ना पड़ा। आनन्दपुर में छूटे दोनों पुत्रों जोरावर सिंह व फतहसिंह को कैद कर सरहिन्द के किले में दीवार में जिन्दा चुनवा दिया गया, परन्तु उन्होंने धर्म परिवर्तन नहीं किया। चमकोर के युद्ध में अपने अन्य दो पुत्रों अजीत सिंह व जुंझार सिंह शहीद हुए। खुदराना के संघर्ष में चालीस सिक्खों ने वीरगति प्राप्त की, उन्हें 'मुक्ता' एवं स्थान को मुक्तसर कहा गया। गुरू गोविन्दसिंह आनन्दपुर से अन्ततः तलवंडी पहुँचे जहाँ एक वर्ष तक उन्होंने साहित्यिक लेखन का कार्य किया। औरंगजेब के निमंत्रण पर वे मिलने जा रहे तभी उन्हें औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला। 1 अक्टूबर 1708 ई. को गुरू गोविन्द सिंह भी परलोक सिधार गये।

चित्र 2.24 : बन्दा बैरागी

चित्र 2.25 : महाराजा रणजीत सिंह

बन्दा बैरागी (1708–1716 ई.):–

बन्दा बैरागी (बहादुर) का मूल नाम माधोदास था। इनका 1670 ई. में राजपूत परिवार में जन्म हुआ था और गोदावरी के तट पर आश्रम में निवास करते थे। गुरूगोविन्द सिंह के दक्षिण प्रवास के समय इन्होंने स्वयं को गुरू का 'बन्दा' कहा अतः बन्दा वैरागी के नाम से पहचाने गये। गुरू की आज्ञा से वे गुरू का शेष कार्य पूरा करने पंजाब में पहुँचे। इस समय सूबेदार वजीर खाँ के जुल्मों से पंजाब के लोग परेशान थे। ये सभी बन्दा के नेतृत्व में संगठित हो गये। बन्दा ने सर्वप्रथम 'सरहिन्द' पर धावा बोला। वजीर खाँ ने जिहाद का नारा देकर पंजाब के समस्त मुस्लिमों से बंदा का मुकाबला करने का आह्वान किया। माझा के मुझायल जाटों के सहयोग से छप्पर चिड़ी नामक स्थान पर वजीर खाँ के टुकड़े–टुकड़े कर दिये। 36 लाख वार्षिक राजस्व वाले प्रदेश पर बन्दा शासन करने लगा। किसानों को राहत देने के लिये बंदा ने जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी। सरहिन्द की विजय से उत्साहित सिक्खों ने अमृतसर, बटाला, कलानौर और पठानकोट पर अधिकार कर लिया। पंजाब में मुगल प्रशासन समाप्त हो गया। मुगल सम्राट बहादुरशाह को पंजाब में सेना भेजनी पड़ी। बन्दा लोहगढ़ के पहाड़ी दुर्ग में चला गया। उसने मुगल सैनिकों पर छापामार नीति से आक्रमण प्रारंभ किये। बहादुरशाह की 28 फरवरी 1712 ई. को मृत्यु हो गई। नये मुगल बादशाह फर्रूखसियर ने सफदर खाँ के नेतृत्व में मुगल सेना बन्दा के खिलाफ भेजी। डेराबाबा में लम्बे समय तक घिरे रहने के बाद बन्दा ने आत्मसमर्पण किया। दिल्ली में वह अपने सैंकड़ों साथियों के साथ मौत के घाट उतार दिया गया।

बन्दा बैरागी महान् त्यागी, साहसी, शूरवीर और धर्म का रक्षक था। इन्होने मुगलों का निर्भयता से मुकाबला करके सिक्खों में नवचेतना का संचार किया था।

रणजीत सिंह :–

रणजीत सिंह का जन्म 13 नवम्बर, 1780 ई. में गुजरांवाला में हुआ। इनके दादा चाकिया मिसल के वीर नेता थे। उन्होंने अहमदशाह अब्दाली के विरूद्ध कई युद्ध किए। इनके पिता महासिंह थे, जिनकी मृत्यु 1792 ई. में हुई। 1792 से 1797 ई. तक शासन परिषद्, जिसमें इनकी माता, इनकी सास तथा दीवान लखपत राय थे, ने प्रशासन कार्य चलाया। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में सिक्ख मिसलें विघटित अवस्था में थीं। रणजीत सिंह ने इस स्थिति का लाभ उठाया व शीघ्र ही शक्ति के बल पर मध्य पंजाब में एक राज्य स्थापित कर लिया। रणजीत सिंह ने 1799 ई. में लाहौर पर तथा 1805 में अमृतसर की भंगी मिसल पर अधिकार कर लिया। 1803 में अकालगढ़ पर कब्जा कर लिया। 1804 ई. गुजरात के साहिब सिंह पर हमला कर पराजित किया। 1808 ई. में रणजीत सिंह ने सतलज नदी पार करके फरीदकोट, मलेरकोटला तथा अम्बाला को जीत लिया, परन्तु 1809 ई. में अमृतसर की संधि के बाद सतलज नदी के पार के प्रदेशों पर अंग्रेजों का अधिकार स्वीकार कर लिया गया। 1818 ई. में मुल्तान 1834 ई. में पेशावर पर कब्जा किया गया। 1839 ई. में रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. बलबन का राजत्व सिद्धान्त प्रसिद्ध रहा है। बलबन की मान्यता थी कि राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है।
2. बाबर ने अपनी की पुस्तक तुर्की भाषा में लिखी थी, जिसका नाम बाबरनामा या तुजूके बाबरी है। अब्दुर्रहीम खानखाना ने बाद में इसका फारसी में अनुवाद किया।
3. शेरशाह के सुधार एवं निर्माण प्रसिद्ध हैं। शेरशाह प्रशासन में अकबर का अग्रगामी एवं पथ प्रदर्शक माना जाता है। भूमि माप एवं लगान को व्यवस्थित कर गल्लाबख्शी या बंटाई, नश्क, मुक्ताई या कनकूत और नकदी या जब्ती प्रणाली प्रचलित की। उसने 4 बड़ी सड़कें एवं अनेक सरायों का निर्माण करवाया। उसकी सबसे

लम्बी सड़क बंगाल के सोनार गांव से लेकर पेशावर (वर्तमान पाकिस्तान) तक थी, जिसका अस्तित्व आज भी है। यह सड़क ग्रैंड ट्रंक रोड के नाम से विख्यात है।

4. अकबर ने दार्शनिक एवं धर्मशास्त्रीय वाद–विवाद करने के लिए फतेहपुर सीकरी में 1575 ई. में इबादतखाना बनवाया। 1581 ई. में सभी धर्मों का सार संग्रह कर 'दीन–ए–इलाही' नामक धर्म का प्रवर्तन किया।

5. मुगल शासन प्रणाली भारतीय तथा विदेशी प्रणालियों का मिला–जुला रूप थी। यह भारतीय वातावरण में अरबी–फारसी प्रणाली थी।

6. 15वीं और 16वीं शताब्दी के धर्म–सुधार और भक्ति आन्दोलन ने इस सामाजिक एकता को और अधिक सुदृढ़ किया। दक्षिण में जन–साधारण आधारित इस धार्मिक आन्दोलन का नेतृत्व तुकाराम, रामदास, एकनाथ, वामन पंडित इत्यादि संतों और दार्शनिकों ने किया था। यह आंदोलन ऊँच–नीच, जाति व्यवस्था और कर्मकांड के विरुद्ध था, जिसने सभी के लिए 'भक्ति' द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाया।

7. 1674 ई. में 'रायगढ़' के दुर्ग में शिवाजी ने स्वतंत्र शासक के रूप में अपना राज्याभिषेक कराया, इस अवसर पर उन्होंने 'छत्रपति' की उपाधि भी धारण की।

8. नानक ने "मानुष की जात सबै एक " तत्त्व का प्रचार करते हुए भारत भ्रमण किया। इनकी इस तरह की यात्राओं को उदासियाँ कहा जाता है। गुरू नानक देव की शिक्षाएँ – एक ईश्वर में विश्वास, नाम की महानता और उपासना, गुरू की महानता इत्यादि थी। उनकी शिक्षाओं में मानव को शुभ कर्म करने पर बल दिया गया।

9. तेगबहादुर द्वारा मुस्लिम धर्म स्वीकार न करने पर औरंगजेब ने उनका सिर कटवा दिया। उनके लिखा था कि "सिर दिया पर सार (सिरड़) नहीं दिया"। दिल्ली में उनका स्मारक चाँदनी चौक में 'सीसगंज गुरूद्वारा' नाम से प्रसिद्ध है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :–

1. गुलाम वंश का अन्य नाम क्या है ?
2. रजिया सुल्तान ने याकूत को किस पद पर नियुक्त किया था ?
3. 'लोह एवं रक्त' की नीति को लागू करने वाला शासक कौन था ?
4. बाबरनामा का फारसी में अनुवाद किसने किया था ?
5. 'ग्रैंड ट्रंक रोड' किस शासक ने बनवाई थी ?
6. पानीपत की दूसरी लड़ाई कब हुई थी ?
7. हेमू ने कौनसी उपाधि धारण की थी ?
8. विश्व प्रसिद्ध हल्दीघाटी युद्ध कब हुआ था ?
9. अकबर ने कौनसे धर्म का प्रवर्तन किया था ?
10. बहमनी साम्राज्य का संस्थापक कौन था ?
11. 'अकालतख्त' का निर्माण सिक्खों के कौनसे गुरू ने करवाया था ?
12. शिवाजी का राज्याभिषेक कहाँ हुआ था ?
13. हम्मीर चौहान कहाँ का शासक था ?
14. 'अमर सिंह का फाटक' कहाँ पर है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. मुहम्मद तुगलक की पाँच योजनाओं के नाम लिखिए।
2. 'सिकन्दरी गज' के बारे में बताइये।
3. फरीद को शेर खाँ की उपाधि किसने एवं क्यों दी ?
4. विजय नगर साम्राज्य का परिचय दीजिए।
5. राव शेखा के बार में आप क्या जानते हैं ?
6. बन्दा बैरागी कौन था ?

निबंधात्मक प्रश्न –

1. दिल्ली सल्तनत के प्रशासन के बारे में बताइये।
2. सवाई जयसिंह क्षेत्र के योगदान को स्पष्ट करें।
3. 'हल्दीघाटी युद्ध' पर निबंध लिखिए।
4. मराठों के उदय में शिवाजी का योगदान बताइये।
5. गुरू नानक देव का परिचय देते हुए सिक्ख धर्म की प्रमुख शिक्षाओं का वर्णन कीजिए।

अध्याय 3

अंग्रेजी साम्राज्य का प्रतिकार एवं संघर्ष

पश्चिमी देशों ने अपने आर्थिक उद्देश्यों को पूरा करने की दृष्टि से अलग–अलग देशों में अपने उपनिवेश बनाये और बाद में अपना साम्राज्य स्थापित किया। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की शुरुआत छल कपट अत्याचार व शोषण से हुई। भारत प्राचीन काल से ही एक समृद्धशाली देश रहा है। अतः विश्व के अन्य देशों के साथ ही अंग्रेजों की भारत पर सदैव निगाहें रही हैं। शीघ्र ही वे व्यापारी से शासक बन गए। अंग्रेजों के कारण भारत की सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को आधारभूत क्षति पहुँची।

1757 ई. से 1857 ई तक स्वतंत्रता की चेतना

23 सितम्बर 1600 ई. को ब्रिटेन के प्रमुख व्यापारियों ने एक संयुक्त पूंजी उद्यम के रूप में "दी गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑफ मर्चेन्टस ऑफ लन्दन ट्रेडिंग इन टू दी ईस्ट इण्डीज" के नाम से ब्रिटिश इस्ट इण्डिया कम्पनी शुरू की। 31 दिसम्बर 1600 ई. को एलिजाबेथ प्रथम ने इस कम्पनी को पूर्व के साथ व्यापार करने का अधिकार पत्र दिया। 1612 ई. में सूरत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने स्थायी व्यापारिक कोठी स्थापित की। 1604 ई. में मद्रास (चेन्नई) में फोर्ट सेन्ट जार्ज किले का निर्माण किया। 1717 ई. में मुगल बादशाह फर्रूखशियर से एक फरमान प्राप्त कर कम्पनी ने 38 गांवों की जमींदारी प्राप्त कर ली। तीन हजार रूपये नजराने के बदले में कम्पनी के माल को सीमा शुल्क से मुक्त कर दिया और चुंगी शुल्क मुक्ति के लिए अंग्रजों को 'दस्तक' (विशेष अनुमति पत्र) जारी करने का अधिकार दे दिया। कम्पनी ने अपना ध्यान बंगाल पर अधिक केन्द्रित किया।

चित्र 3.1 : प्लासी का युद्ध

1757 ई. से पूर्व अंग्रेजों ने अन्य यूरोपीय कम्पनियों को पराजित कर अपनी सर्वोच्चता स्थापित कर ली। मुगलों से फरमान प्राप्त करने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी का बंगाल में हस्तक्षेप बढ़ गया। 10 अप्रैल 1756 ई. को बंगाल के नवाब अली वर्दी खां की मृत्यु हो गई। उसका उत्तराधिकारी छोटी पुत्री का पुत्र सिराजुद्दौला नवाब बना। जबकि पूर्णिया का गर्वनर शौकत जंग भी नवाब बनना चाहता था। अंग्रेजों ने अवसर का लाभ उठाकर नवाब के विरोधियों को संरक्षण देना प्रारम्भ कर दिया। आर्थिक मामलों को लेकर नवाब और अंग्रेजों के मध्य काफी मतभेद हो गये। जिसके परिणामस्वरूप 23 जून 1757 ई को प्लासी का युद्ध हुआ जिसमें अंग्रेजो की विजय हुई और नवाब मारा गया। अंग्रेजों ने बंगाल का नवाब "मीर जाफर" को बना दिया, जिससे बंगाल में अंग्रेजों की सर्वोच्चता स्थापित हो गई।

1760 ई. में जब मीर जाफर अंग्रेजों की धनापूर्ति नहीं कर सका तो अंग्रजों ने मीर कासिम को बंगाल का नवाब बना दिया। नवाब बनने के बाद मीर कासिम ने बंगाल में प्रशासनिक पुनर्ग्रहण का प्रयास किया लेकिन भ्रष्टाचार व ब्रिटिश हस्तक्षेप के कारण उसे सफलता नहीं मिली। आर्थिक मामलों एवं विभिन्न सुविधाओं को लेकर मीर कासिम व अंग्रेजों के मध्य मतभेद बढ़ते गये। जिसके परिणामस्वरूप 22 अक्टूबर 1764 को बक्सर का युद्ध हुआ, जिसमें नवाब की पराजय हुई और अंग्रेजों की विजय हुई। यह युद्ध भारतीयों के लिए अधिक घातक सिद्ध हुआ। इस युद्ध के बाद अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी अधिकार अंग्रेजों को प्राप्त हो गये। इससे भारत के उद्योगों और व्यापार को भी हानि पहुँची।

अंग्रेजों का मराठा व मैसूर से संघर्ष–

18 वीं शताब्दी में भारत में मराठा शक्ति एक प्रमुख शक्ति के रूप में स्थापित हो चुकी थी लेकिन 14 जनवरी 1761 के पानीपत के युद्ध में बाद मराठों की शक्ति कमजोर हो गई। अंग्रेजों को भारत पर अधिकार करने से रोकने वाली चुनौती मराठा ही थे। अब अंग्रेज मराठों को अपने अधीन करने का अवसर तलाश रहे थे। 1772 ई. पेशवा माधवराव की मृत्यु के बाद उसका भाई नारायण पेशवा बना लेकिन पूर्व पेशवा का चाचा रघुनाथ राव पेशवा बनना

चित्र 3.2

चाहता था। अंग्रेजों को अब मराठा राज्य में फूट डालने का अवसर मिल गया। अंग्रेजों और रघुनाथ राव के मध्य 6 मार्च, 1775 ई. को सूरत की संन्धि हुई, जिसमें अंग्रेज, रघुनाथ राव को पेशवा बनने में मदद करेंगें और पेशवा अंग्रेजों को बेसिन, सालसेट व सूरत की लगान का आधा भाग देगा। इस प्रकार रघुनाथ राव की महत्वाकांक्षा तथा बम्बई सरकार द्वारा उसके साथ की गई सन्धि ने मराठों और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष को अनिवार्य बना दिया।

प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध :–

1775 ई. से 1782 ई. के मध्य अंग्रेजों और मराठों के मध्य संघर्ष चला। इस संघर्ष में ब्रिटिश सेना, संगठित मराठा सेना से परास्त हुई और 29 जनवरी 1789 ई "बडगॉव" की अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी, जिसमें अंग्रेजों द्वारा विजित प्रदेश मराठों को वापस लौटाने तथा रघुनाथ राव को पूना दरबार के हवाले करने तथा अंग्रेजों द्वारा 41000 रू युद्ध हर्जाने के रूप में देना तय हुआ।

द्वितीय अंग्रेज मराठा संघर्ष :–

यह संघर्ष 1802 से 1805 तक चला, इस संघर्ष का कारण लार्ड वेलेजली की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा तथा मराठा सरदारों का आपसी द्वेष रहा। इस संघर्ष में मराठा सरदारों ने अलग–अलग अंग्रेजों से युद्ध किया और पराजित हुए। दक्षिण भारत में भौंसले ने संघर्ष किया और 1803 ई. में अमर गॉव के युद्ध में पराजित होने पर 17 दिसम्बर 1803 ई. को अंग्रेजों से देवगॉव की सन्धि कर ली। लालवाडी के युद्ध में सिन्धिया पराजित हुआ और 30 दिसम्बर 1803 ई. में 'सुर्जी अर्जुन गॉव' की सन्धि हुई। होल्कर और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष अनिर्णित रहा लेकिन दोनों पक्षों के मध्य जनवरी 1806 ई. को 'राजघाट' की सन्धि हुई जिसके अनुसार होल्कर ने चम्बल नदी के उत्तरी क्षेत्र पर अपना अधिकार छोड दिया तथा राजपूताने में आन्तरिक हस्तक्षेप नहीं करने का वचन दिया।

तृतीय अंग्रेज मराठा संघर्ष :–

भारत में अंग्रेजों की सर्वश्रेष्ठता बनाये रखने के लिए 13 जून 1817 को पेशवा के साथ तथा 5 नवम्बर 1817 ई. को सिंधिया को अंग्रेजों के साथ अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। इन अपमानजनक बन्धनों को तोड़ने के लिए मराठों ने संघर्ष आरम्भ कर दिया, लेकिन पेशवा की किर्की भोंसले की सीतवर्डी तथा होल्कर की महींदपुर स्थान पर पराजय हुई। 18 जून 1818 को मेल्काम ने पेशवा के साथ सन्धि की। जिसके अनुसार पेशवा पद समाप्त कर दिया तथा 8 लाख की पेंशन देकर बिठूर भेज दिया, जहॉ पर 1852 ई में मृत्यु हो गई। इस प्रकार अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति, 'फूट डालो राज करो' की नीति से मराठों को संघर्ष में पराजित कर दिया।

आंग्ल–मैसूर संघर्ष :–

1761 ई. में हैदर अली ने मैसूर के राजा नंदराज से सत्ता छीन ली और सर्वेसर्वा बन गया। 1776 ई. को मैसूर के राजा की मृत्यु के बाद अपने को शासक घोषित कर दिया। अंग्रेजों की साम्राज्यादी महत्वाकांक्षा में हैदर अली खटकने लगा। अतः अंग्रेजों ने मराठों और निजाम के साथ मिल कर हैदर अली के विरूद्ध संगठन बनाया लेकिन हैदर अली ने कूटनीति से मराठों को युद्ध में तटस्थ कर दिया और निजाम को प्रादेशिक लोभ देकर अपनी ओर मिला लिया। 1767 में हैदर अली ने ब्रिटिश प्रभाव वाले क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया। अन्त में अंग्रेज पराजित हुए, लाचार अंग्रेजों को हैदर अली के साथ 4 अप्रैल 1769 ई. को "मद्रास की सन्धि" करनी पड़ी। इस संधि के अनुसार एक दूसरे के जीते हुए प्रदेश वापस लौटा दिये।

द्वितीय आंग्ल–मैसूर संघर्ष :–

अंग्रेज प्रथम संघर्ष की हार का बदला लेना चाहते थे, हैदर अली अंग्रेजों के गुंदूर पर अधिकार से नाराज था। अतः हैदर अली ने निजाम व मराठो के साथ मिलकर अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध किया। जुलाई 1780 में युद्ध प्रारम्भ हो गया। हैदर अली को सफलता मिल रही थी, लेकिन 7 दिसम्बर 1782 को हैदर की मृत्यु हो गई तथा कार्यभार उसके पुत्र टीपू सुल्तान पर आ गया। टीपू ने एक वर्ष तक युद्ध जारी रखा, लेकिन दोनों पक्षों ने युद्ध से परेशान होकर 11 मार्च 1784 ई. को मंगलौर की सन्धि कर ली और एक दूसरे के विजित प्रदेश वापस कर दिये। अंग्रेजों ने मैसूर के मामले में दखल नहीं देने का वचन दिया।

तृतीय अंग्रेज–मैसूर संघर्ष :–

तृतीय आंग्ल–मैसूर संघर्ष का कारण, अंग्रेज मैसूर का प्रभाव समाप्त करना चाहते थे दूसरी ओर टीपू मालाबार की सुरक्षा

हेतु कोचीन में स्थित डच दुर्ग कागनूर व आइकोट को खरीदना चाहता था। लेकिन अंग्रेज समर्पित, ट्रावनकोर के राजा ने इन्हें खरीद कर टीपू को नाराज कर दिया। अप्रैल 1790 ई. में टीपू ने ट्रावनकोर पर आक्रमण कर दिया। कार्नवालिस ने विशाल सेना के साथ मैसूर पर आक्रमण कर दिया। टीपू ने वीरतापूर्वक मुकाबला किया लेकिन अन्त में 23 फरवरी 1792 ई. को श्रीरंगपट्टनम की संधि करनी पड़ी। इस संधि से मैसूर का आधा भाग चला गया और युद्ध क्षति के रूप में तीन करोड़ की राशि अंग्रेजों को देनी पड़ी तथा अपने दो पुत्रों को बंधक के रूप में अंग्रेजों के पास रखना स्वीकार करना पड़ा।

चतुर्थ आंग्ल–मैसूर युद्ध :–

1798 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का गवर्नर बन लार्ड वेलेजली भारत आया। वेलेजली एक साम्राज्यवादी गर्वनर जनरल था। उसने निश्चय किया कि टीपू को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये अथवा उसे पूर्णतया अपने अधीन कर लिया जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये वेलेजली ने सहायक संधि करने का सहारा लिया। टीपू सुल्तान ने सहायक संधि को अस्वीकार कर दिया। अप्रैल 1799 ई. में टीपू के विरूद्ध अभियान प्रारम्भ कर दिया। 4 मई, 1799 को श्रीरंगपट्टनम का दुर्ग जीत लिया तथा मैसूर की स्वतन्त्रता समाप्त हो गई। टीपू संघर्ष करता हुआ मारा गया।

अंग्रेजों का पंजाब के साथ संघर्ष :–

अफगानिस्तान के शासक ने रणजीत सिंह को पंजाब का गर्वनर बनाया। रणजीत सिंह सतलज नदी के पूर्व में स्थित प्रान्तों पर अधिकार करना चाहता था, जबकि इस क्षेत्र पर अंग्रेज अपना आधिपत्य चाहते थे। फरवरी 1809 ई. में अक्टर लोनी ने सतलज के पूर्वी प्रदेशों पर अंग्रेजी नियन्त्रण की घोषणा कर दी और कहा कि लाहौर की ओर से कोई आक्रमण हुआ तो उसे सैनिक बल से रोका जायेगा। महाराजा ने मात खाई और 25 अप्रैल 1809 ई. को रणजीत सिंह व अंग्रेजों के मध्य अमृतसर की सन्धि हुई। जिसमें सतलज नदी के पूर्वी तट के राज्यों पर अंग्रेजी नियन्त्रण स्वीकार कर लिया।

रणजीत सिंह के समय तक अंग्रेजों के साथ संबंध शान्तिपूर्ण बने रहे। 27 जून 1839 ई. को रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई तो सरदारों की महत्वंकाक्षायें व स्वार्थ के कारण दरबार में दलबन्दी प्रारम्भ हो गई। खड़क सिंह राजा बना, लेकिन वह कुशल प्रशासक नहीं था, जिससे दरबार में डोगरा बन्धुओं का हस्तक्षेप बढ़ गया। अंग्रेजों ने इस अराजकता का लाभ उठाया और ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी की दोनों के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया।

प्रथम अंग्रेज सिक्ख संघर्ष :–

अंग्रेजों की साम्राज्यवादी महत्वकांक्षा तथा अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति प्रथम अंग्रेज सिक्ख संघर्ष का कारण रही। प्रथम मुठभेड़ के बाद 13 दिसम्बर 1845 में लार्ड हार्डिंग ने सिक्खों के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 10 फरवरी 1846 के सबराओं के युद्ध में सिक्खों की निर्णायक हार हुई। 13 फरवरी 1846 को अंग्रेजों ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। 1 मार्च 1846 को लाहौर की सन्धि हुई जिसमें जालन्धर दोआब अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया तथा एक करोड़ पचास लाख की राशि युद्ध क्षति के रूप में सिक्खों को अंग्रेजों को देनी थी। सिक्ख सेना की संख्या सीमित कर दी गई। हार्डिंग पंजाब प्रशासन पर दलीप सिंह के वयस्क होने तक अधिकार रखना चाहता था अतः 26 दिसम्बर 1846 ई. को भैरोंवाल की एक पूरक सन्धि की जिसमें अंग्रेज पंजाब के एक भाग के स्वामी बन गये।

द्वितीय आंग्ल–सिक्ख संघर्ष व पंजाब का अंग्रेजी राज्य में विलय :–

द्वितीय आंग्ल सिक्ख संघर्ष का कारण 1847–48 में अंग्रेजों द्वारा पंजाब में सारे ऐसे सुधार करना जो सिक्ख विरोधी थे, फौज से मुक्त किये गये सैनिकों का असन्तोष तथा रानी जिन्दा के अधिकारों का छिन जाना व उसकी बदला लेने की चाहत थी। रेजीडेन्ट का अत्यधिक आन्तरिक हस्तक्षेप व डलहौजी की पंजाब को अंग्रेजी शासन की चाहत ने द्वितीय आंग्ल–सिक्ख संघर्ष अनिवार्य कर दिया।

10 अक्टूबर 1848 ई. को गवर्नर जनरल डलहौजी ने सिक्खों के साथ अन्तिम युद्ध करने की घोषणा के साथ ही युद्ध प्रारम्भ हो गया और 13 मार्च 1849 को शेर सिंह, छतर सिंह, मूलराज आदि सिक्खों के समर्पण के साथ ही युद्ध समाप्त हो गया। डलहौजी ने 29 मार्च 1849 ई. को एक घोषणा द्वारा पंजाब को ब्रिटिश भारत में विलय कर लिया। इसी घोषणा से पंजाब के स्वतन्त्र राज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया।

1857 का स्वतन्त्रता संघर्ष:–

1857 ई. से पूर्व लगातार 100 वर्षों तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत के प्रान्तीय राज्यों, देशी रियासतों, किसानो, जनजातियों आदि का प्रतिरोध सहन करना पड़ा। लेकिन 1857 ई. में अंग्रेजों को पहली बार भारतीयों के संगठित विरोध का सामना करना पडा। लेकिन अंग्रेजों ने कूटनीति एवं आपसी फूट का लाभ उठाकर इस प्रतिरोध को विफल कर दिया, परन्तु उनको अपनी नीति में परिवर्तन के लिए मजबूर होना पड़ा।

स्वतंत्रता संघर्ष का स्वरूप :–

इस प्रथम स्वाधीनता संघर्ष के स्वरूप के बारे में विद्वानों में मतभेद हैं, जहाँ अंग्रेजी और यूरोपीय इतिहासकार इसे 'सिपाही विद्रोह' व सामन्ती प्रतिक्रिया अथवा मुस्लिम षडयंत्र का परिणाम बताते हैं, वहीं भारतीय इतिहासकार व विद्वानों का मानना है कि यह सैनिक असन्तोष से प्रारम्भ होकर, शीघ्र ही इस संघर्ष ने पहले जन विद्रोह के रूप में व्यापकता प्राप्त की। बाद में इस संघर्ष ने राष्ट्रीय विद्रोह व स्वतन्त्रता संग्राम का रूप ले लिया। सुरेन्द्र नाथ सेन ने लिखा है कि "यह युद्ध धर्म के नाम पर प्रारम्भ हुआ था और स्वतन्त्रता संग्राम में जाकर समाप्त हुआ। डॉ. विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी पुस्तक (भारत का स्वातंत्र्य समर) वार ऑफ इण्डियन इण्डिपेन्डेस" में इस युद्ध को भारत का स्वतन्त्रता संग्राम

बताया।

स्वतन्त्रता संघर्ष के कारण :–

01. अंग्रेजों की आर्थिक नीति,

02. लार्ड डलहौजी का हड़प सिद्धान्त

03. अंग्रेजों की साम्राज्य विस्तार की नीति

04. सामाजिक, धार्मिक, सैनिक कारण।

स्वतन्त्रता संघर्ष का प्रारम्भ एवं प्रसार :– सैनिकों के चर्बी वाले कारतूसों के प्रयोग से मना करने पर अनुशासनहीनता का अपराध लगा कर उनको दण्ड दिया गया। 29 मार्च, 1857 को बैरकपुर की छावनी में सैनिक मंगल पाण्डे ने विद्रोह कर एक अधिकारी की हत्या करा दी। ब्रिटिश अधिकारियों ने 34 वीं एन. आई. रजिमेन्ट को तोड़ दिया और भारतीय सैनिकों को दण्ड़ दिया गया। मई 1857 ई. में छावनी में 85 सैनिकों ने चर्बी युक्त कारतूसों को प्रयोग करने से मना करने पर सैनिक न्यायालय ने दीर्घकालीन कारावास का दण्ड दिया। 10 मई को सैनिकों ने खुला विद्रोह कर दिया और अपने अधिकारियों की गोली मार कर हत्या कर दी। अपने सैनिक साथियों को मुक्त करवाकर ये लोग दिल्ली की ओर चल पड़े। सैनिकों ने 12 मई को दिल्ली पर अधिकार कर लिया। बहादुरशाह द्वितीय को भारत का सम्राट घोषित कर दिया। दिल्ली हाथ से निकल जाना अंग्रेजों के लिए एक भारी क्षति थी। क्रान्ति शीघ्र ही लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, बरेली, बनारस, बिहार के कुछ भाग, झांसी और अन्य क्षेत्रों में भी फैल गई।

अंग्रेजों ने दिल्ली पर पुनः अधिकार करने के लिए पंजाब से सेनाएँ बुलाई। भारतीय सैनिकों ने घोर युद्ध किया लेकिन अन्त में सितम्बर 1857 ई. में अंग्रेजों ने दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया। इस युद्ध में अंग्रेज अधिकारी जॉन निकलसन' मारा गया। सम्राट को बन्दी बना लिया गया। दिल्ली के निवासियों से प्रतिशोध लिया गया। लेफ्टिनेन्ट हडसन ने सम्राट के दो पुत्रों व एक पोते की गोली मार कर हत्या कर दी।

4 जून 1857 ई. को लखनऊ में क्रान्ति हो गई, भारतीय सैनिकों ने रेजीडेन्सी को घेर लिया जिसमें ब्रिटिश रेजिडेन्ट हेनरी लारेन्स की मृत्यु हो गई। हेवलॉक और आउटड्रम ने लखनऊ को पुनः जीतने का प्रयास किया लेकिन असफल रहे। नवम्बर 1857 ई. में मुख्य सेनापति सर कॉलिन कैम्पबेल ने गोरखा रेजीमेन्ट की सहायता से नगर में प्रवेश किया। मार्च 1858 ई. को नगर पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार हो गया।

5 जून 1857 ई. को क्रन्तिकारियों ने कानपुर पर अधिकार कर नाना साहिब को पेशवा घोषित कर दिया। जनरल सर ह्यू व्हीलर जो छावनी कमाण्डर थे, उन्होनें 27 जून को आत्म–समर्पण कर दिया। पेशवा नाना साहिब का साथ तात्या टोपे ने दिया। 6 दिसम्बर 1857 को सर कैम्पबेल ने कानपुर पर पुनः अधिकार कर लिया। तात्या टोपे भाग निकले और झांसी चले गये।

जून 1857 में झांसी में क्रान्ति हो गई। रानी लक्ष्मी बाई को रियासत का शासक घोषित कर दिया। सर ह्यूरोज ने झांसी पर आक्रमण करके अप्रैल 1858 को पुनः उस पर अधिकार कर लिया। झांसी पर अधिकार हो जाने पर रानी तथा तात्यां टोपे ने ग्वालियर की ओर अभियान किया, जहाँ भारतीय सैनिकों ने उनका स्वागत किया। परन्तु सिन्धिया ने राजभक्त रहने का निश्चय किया और आगरा में शरण ली। ग्वालियर पर जून 1858 ई में अंग्रेजों ने पुनः अधिकार कर लिया। 17 जून 1858 को रानी लक्ष्मी बाई ब्रिटिश सेना से संघर्ष करती हुई वीरगति को प्राप्त हो गई। तात्यां टोपे फिर बच निकले परन्तु अप्रैल 1859 ई. में उन्हें सिन्धिया के एक सामन्त ने पकड़ लिया और अंग्रेजों के सुपूर्द कर दिया और अंग्रेजों ने उसे फाँसी दे दी।

बिहार में इस क्रान्ति का नेतृत्व जगदीशपुर के जमीदार 80 वर्षीय कुँवर सिंह ने किया। कुँवर सिंह ने अंग्रेज सेनापति मिलमेल, कर्नल डेक्स, मार्क और मेजर डालस को धूल चटाई। अप्रैल 1858 में पुनः अपनी रियासत पर अधिकार कर लिया। 26 अप्रैल 1858 ई. को कुँवर सिंह ने अंग्रेजों से युद्ध किया लेकिन सफलता नहीं मिली। बरेली में बहादुर खान ने क्रान्ति में भाग लिया। बनारस में भी क्रान्ति हुई लेकिन कर्नल नील ने उसे दबा दिया।

उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में सैनिक क्रान्तिकारियों की संख्या कम थी, फिर भी इस महान संघर्ष में दक्षिण भारत के भी अनेक क्रान्तिकारी शहीद हुए, सजाएँ भुगतीं एवं बन्दी बनाये गये। 1857 ई. के स्वतन्त्रता संग्राम के दक्षिणी भारत के प्रमुख नेतृत्व करने वालों में रंग बापू जी गुप्ते (सतारा), सोना जी पण्डित, रंगाराव पांगें व मौलवी सैयद अलाउद्दीन (हैदराबाद) भीमराव व मुंडर्गी छोटा सिंह (कर्नाटक), अण्णाजी फड़नवीस (कोल्हापुर), गुलामगौस व सुल्तान बख्श (मद्रास), अरणागिरी व कृष्णा (चिंगलफुट), मुलगाबल स्वामी (कोयम्बटूर), मुल्ला सनी, विजय कुदारत (केरल), आदि विशेष उल्लेखनीय है।

इस प्रकार 1857 का स्वतन्त्रता संघर्ष सम्पूर्ण राष्ट्र में व्याप्त रहा था तथा इस संघर्ष में सैनिकों के साथ सभी क्षेत्र, भाषा, धर्म, एवं जाति के लोगों तथा कृषकों व जमींदारों ने भाग लिया।

जनजातीय आन्दोलन

23 जून 1757 ई. को प्लासी के युद्ध के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। 1764 ई. के बक्सर युद्ध के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भारत को अंग्रेजी उपनिवेश में बदलने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। इस उपनिवेशिकरण की प्रकिया ने ही जनविद्रोहों को जन्म दिया, जिनमें जनजातीय आन्दोलन भी हैं। जनजातीय आन्दोलनों का कारण जनजातीय लोगों द्वारा अपनी स्वतन्त्रता के खो जाने, स्वशासन में विदेशी हस्तक्षेप, प्रशासनिक परिवर्तनों का होना, अत्यधिक करों की माँग, अर्थव्यवस्था का भंग होना आदि माना जाता है।

बंगाल तथा पूर्वी भारत में जनजातीय विद्रोह :–

1. सन्यासी विद्रोह :– बंगाल पर अंग्रेजी राज्य स्थापित होने के बाद जब 1769–70 ई. में भीषण अकाल पडा, उधर कम्पनी के पदाधिकारियों ने कर भी कठोरता के साथ वसूले। सन्यासी कृषि करने के साथ–साथ धार्मिक यात्राएँ भी नियमित करते थे। तीर्थ स्थानों पर आने जाने पर प्रतिबन्ध लगाने से सन्यासी लोग नाराज हो गये। इन सन्यासियों की अन्याय के विरूद्ध लडने की परम्परा भी रही थी और उन्होंने जनता के साथ मिलकर कम्पनी की कोठियों तथा कोषों पर आक्रमण कर लूट लिए। ये लोग कम्पनी के सैनिकों के विरूद्ध बहुत वीरता से लड़े, लेकिन वारेन हेस्टिंग ने एक लम्बे अभियान के बाद इस विद्रोह को दबा दिया, जिसका उल्लेख बंकिम चन्द्र चटर्जी के उपन्यास 'आनन्द मठ' में मिलता है।

2. कोल विद्रोह :– अंग्रेजी प्रशासनिक जटिलताओं, कठोर भूमिकर व्यवस्था तथा स्थानीय शासक वर्गों के उपेक्षापूर्ण व्यवहार ने जिस शोषण को जन्म दिया था, उसके खिलाफ कोल जनजाति ने विद्रोह किया। यह विद्रोह तब अधिक बढ गया, जब 1831 ई. में

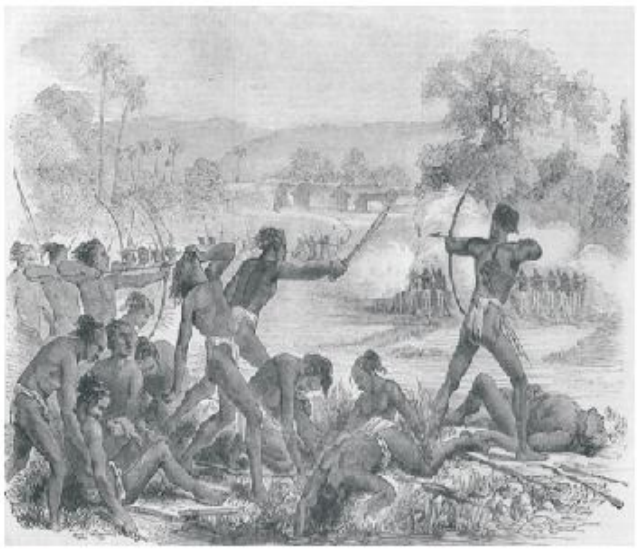

चित्र 3.4

उनकी भूमि उनके मुखिया मुण्डों से छीनकर बाहरी लोगों को दे दी गई । इस विद्रोह में हिंसा व्यापक स्तर पर हुई। यह विद्रोह रांची, सिंहभूम हजारीबाग, पलामाऊ तथा मानभूमि के पश्चिमी क्षेत्रों में फैल गया। एक दीर्घकालीन तथा विस्तृत सैन्य अभियान के पश्चात् ही यहां शान्ति स्थापित हो सकी। कलकत्ता स्थित कौंसिल के अध्यक्ष मेटकॉफ ने यह स्वीकार किया कि इस विद्रोह में अंग्रेज विरोधी भावना बहुत स्पष्ट थी।

3. संथाल विद्रोह :– 1855–56 ई. के बीच शुरू होने वाला संथाल विद्रोह अंग्रेजी शासन के खिलाफ महत्वपूर्ण जन विद्रोह था। इसमें नेतृत्व और संगठन को एक सुव्यवस्थित स्तर पर देखा जा सकता है। यह विद्रोह वीरभूमि, बाकुरा, सिंहभूमि, हजारी बाग, भागलपुर और मुंगेर के इलाकों में फैला हुआ था। इस विद्रोह का कारण संथाल लोगों पर भूमिकर अधिकारियों द्वारा दुर्व्यवहार किया जाना, पुलिस का दमन तथा जमीदारों तथा साहूकरों द्वारा जबरदस्ती वूसली किया जाना था। इस विद्रोह का नेतृत्व दो भाई सिंधु और कान्हू द्वारा किया गया और इन्होंने कम्पनी के शासन का अन्त करने की घोषणा कर अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। विस्तृत सैन्य कार्यवाही के पश्चात ही 1856 ई. में स्थिति नियन्त्रण में आई तथा सरकार को स्वतन्त्र पृथक संथाल परगना बनाना पड़ा।

4. भील विद्रोह :–

भील जनजाति पश्चिमी तट के खानदेश नामक इलाके में रहती थी। 1812–19 तक इन लोगों ने अपने नये स्वामी अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। कम्पनी अधिकारियों का मानना था कि इस विद्रोह को पेशवा बाजीराव द्वितीय तथा उसके प्रतिनिधि त्रिबकजी दांगलिया ने प्रोत्साहित किया था। वास्तविक कारण कृषि संबंधी कष्ट तथा नई सरकार से भय था। अंग्रेजी सेना की अनेक टुकड़ियाँ इसको दबाने में लगी थी। उन्होंने 1825 ई. में सेवरन के नेतृत्व में पुनः विद्रोह किया तथा 1831 ई. तथा 1846 ई. में पुनः विद्रोह किये गये।

5. रमोसी विद्रोह :–

पश्चिमी घाट में रहने वाली एक जनजाति रमोसी थी। वे अंग्रेजी प्रशासन पद्धति तथा अंग्रेजी प्रशासन से बहुत अप्रसन्न थे। 1822 ई. में उनके सरदार चित्तर सिंह ने विद्रोह कर दिया तथा सतारा के आसपास के प्रदेश लूट लिए। 1825–26 ई. में पुनः विद्रोह हुए। अधिक सैन्य बल से ही अंग्रेज इन विद्रोह को दबाने में सफल हुए।

क्रान्तिकारी संगठनों का स्वतन्त्रता संघर्ष में योगदान

भारत के लोगों ने कभी हृदय से अंग्रेजी दासता को स्वीकार नहीं किया। 1757 ई. से भारत के स्वतंत्र होने तक संघर्ष करते रहें। 1857 ई. में विशाल स्तर पर होने वाला धमाका अंग्रेजी सत्ता को हिलाने वाला सिद्ध हुआ। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से 20 वीं शताब्दी में स्वतन्त्रता प्राप्ति तक क्रान्तिकारी बलिदानों ने खून से आजादी का इतिहास लिखा।

क्रान्ति कारी आन्दोलन के उत्थान के मुख्यतः वही कारण थे जिनसे आन्दोलन में उग्रपंथ का उदय हुआ। 1857 ई. में कड़े संघर्ष के पश्चात् अंग्रेज सत्ता पुनः स्थापित कर पाये। लेकिन लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन करने के लिए भारतीयों को बाध्य किया। 1905 ई. के बंग–भंग की चोट से प्रत्येक स्वाभिमानी भारतीय भड़क उठा। सरकार का दमन और साथ में जनता को कुशल नेतृत्व देने में नेताओं की असफलता के कारण उपजी कुंठा ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को जन्म दिया।

क्रान्तिकारी यह विश्वास करते थे कि राष्ट्रीय जीवन में जो भी उपयुक्त तत्त्व हैं, जैसे कि धार्मिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रताएँ, नैतिक मूल्य तथा भारतीय संस्कृति, को विदेशी शासन समाप्त कर देगा। अतः सभी क्रान्तिकारियों का एक ही उद्देश्य था मातृभूमि को विदेशी शासन से मुक्त कराना।

महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी आन्दोलन :–

महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी गतिविधि का प्रारम्भ 1876 में वासुदेव बलवन्त फड़के नामक सरकारी कर्मचारी ने किया। उन्होंने सन 1876 ई. में महाराष्ट्र में पड़ने वाले भयंकर अकाल से उत्पन्न प्रजा के कष्टों को दूर करने के लिए अंग्रेजी सरकार की नौकरी छोड़ दी और स्थान–स्थान पर भाषण देकर अंग्रेज सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए महाराष्ट्र की जनता को प्रोत्साहित किया। फड़के के भाषणों से उत्तेजना फैलने लगी और 1879 ई. में फड़के को गिरफ्तार कर के अदन (अरब देश) की जेल में भेज दिया, जहां 1889 में स्वर्गवास हो गया।

चापेकर बन्धुओं द्वारा रैण्ड की हत्या :–

पुणे (महाराष्ट्र) के चापेकर बन्धुओं– दामोदर हरि चापेकर, बालकृष्ण हरि चापेकर तथा वासुदेव हरि चापेकर ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को दिशा दी। 1893 ई. में "हिन्दु धर्म संरक्षण सभा" बनाई। इसके अन्तर्गत शिवाजी उत्सव व गणेश उत्सव मनाने प्रारम्भ किये और लोगों के अन्दर देशभक्ति और उत्साह की भावना उत्पन्न की। 1897 में पुणे में प्लेग रोग महामारी के रूप में फैला, पूना के प्लेग कमिश्नर रैंड व लेटिसेन्ट एयर्स्ट प्लेग पीड़ितों की मदद की बजाय आतंक ज्यादा फैला रहे थे। ये दोनों अधिकारी बदनाम, कठोर व कुचक्र रचने वाले थे। सम्पूर्ण पूना नगर इनके अत्याचारों से त्रस्त था अतः चापेकर बन्धुओं ने दोनों की 22 जून 1897 को हत्या की थी। चापेकर बन्धुओं को गिरफ्तार कर लिया गया और फांसी की सजा दी गई।

श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा लन्दन में इण्डिया हाऊस की स्थापना :–

श्यामजी कृष्ण वर्मा पश्चिमी भारत के काठियावाड़ प्रदेश के रहने वाले थे। उन्होंने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की और बैरिस्टर बन गये। भारत लौटने पर अंग्रेज पोलिटिकल रेजिडेंटो के आचरण से दुःखी होकर भारत को स्वतन्त्र कराने का दृढ़ निश्चय किया और अपना कार्य क्षेत्र लन्दन नगर को बनाया। देश से बाहर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये क्रान्तिकारी संगठन स्थापित करने की पहल श्यामजी कृष्ण वर्मा ने ही की। 1905 ई में भारत स्वशासन समिति का गठन किया जिसे इण्डिया हाउस की संज्ञा दी जाती है। इन्होंने एक मासिक पत्रिका "इण्डिया सोशलिज्म" भी प्रारम्भ की। इन्होंने विदेश आने वाले भारतीयों के लिए एक–एक हजार की 6 फैलोशिप भी प्रारम्भ की। शीघ्र ही "इण्डिया हाउस" लन्दन में रहने वाले भारतीयों के लिए आन्दोलन करने का एक केन्द्र बन गया। वी०डी० सावरकर, लाला हरदयाल और मदन लाल धींगरा जैसे क्रान्तिकारी इसके सदस्य बन गये। श्यामजी वर्मा की गतिविधियों को देख कर अंग्रेज सरकार ने उनके विरूद्ध कार्यवाही शुरू कर दी। वे भारत छोड़ कर पेरिस चले गये और वहां से क्रान्तिकारी गतिविधियों को जारी रखा।

विनायक दामोदर सावरकर :–

वीर सावरकर महान क्रान्तिकारी, महान देश भक्त और महान संगठनवादी थे। उन्होंने आजीवन देश की स्वतन्त्रता के लिए जो तप और त्याग किया उसकी प्रशंसा शब्दों में नहीं की जा सकती है। सावरकर को जनता ने वीर की उपाधि से विभूषित किया अर्थात् वे वीर सावरकर कहे जाते थे। वीर सावरकर का जन्म 28 मई 1883 ई. को भागुर गॉव (महाराष्ट्र) में हुआ। 1901 में मैट्रिक पास कर

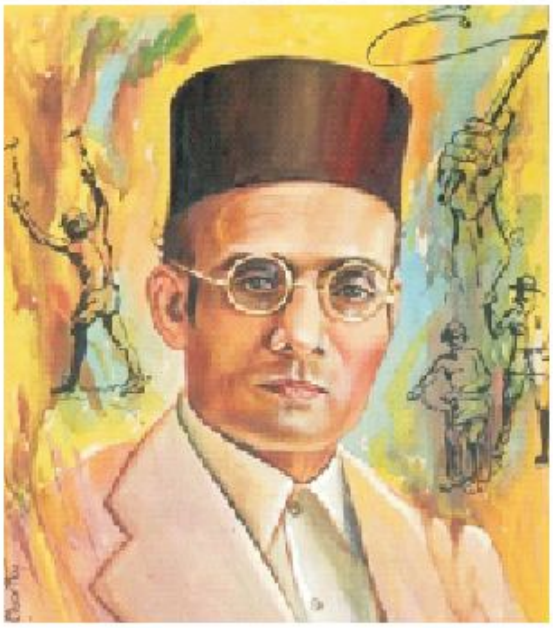

चित्र 3.6 : विनायक दामोदर सावरकर

फर्ग्यूसन कॉलेज में दाखिला लिया जहां वे लोकमान्य तिलक के सम्पर्क में आये। बंगाल विभाजन के समय उन्होंने अपने साथियों के साथ "मित्र मेला" नामक संगठन बनाकर विदेशी कपडों की होली जलाई। जिस कारण उन्हें कॉलेज से निष्कासित कर दिया। सावरकर एकमात्र ऐसे क्रान्तिकारी थे जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने एक जन्म की नहीं दो जन्मों की आजीवन कारावास की सजा दी थी। उनकी पुस्तक (द इण्डियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस) प्रकाशन से पूर्व ही ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर ली थी। यह पुस्तक गुप्त रूप से विभिन्न शीर्षकों के नाम से भारत पहुँची थी। उन्होंने 1906 ई. में "अभिनव भारत" की स्थापना की। सावरकर पहले व्यक्ति थे जिन्होंनें 1857 के संघर्ष को गदर न कहकर भारत का प्रथम स्वतन्त्रता का युद्ध बताया। सावरकर का लम्बा समय अण्डमान की सेलूलर जेल में बीता। 1924 ई. में स्वास्थ्य खराब होने के बाद रत्नागिरी में नजर बन्द रखा गया। 1937 में जेल से मुक्त

कर दिया गया। उन्होंने भारत के विभाजन को रोकने के भी अथक प्रयास किये।

बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन :–

बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात श्री पी0 मिश्रा ने एक क्रान्तिकारी संगठन "अनुशीलन समिति" का गठन कर किया। बंगाल में राजनैतिक जागृति बंगाल विभाजन के बाद आई। अब आन्दोलन का उद्देश्य विभाजन को रद्द करवाना ही नहीं अतिपु स्वराज्य की प्राप्ति बन गया। 1905 ई में यारिन्द्र कुमार घोष ने " भवानी मन्दिर' नामक पुस्तक लिखकर क्रांतिकारी कार्यों को संगठित करने की विस्तृत जानकारी दी थी। 'युगान्तर' और 'संध्या' नाम की पत्रिकाओं में भी अंग्रेज विरोधी विचार प्रकाशित किये जाने लगे। एक अन्य पुस्तक "मुक्ति कौन पाथे" (मुक्ति किस मार्ग से) में सैनिकों से भारतीय क्रान्तिकारियों को हथियार देने का आग्रह किया।

किसान आन्दोलन

प्राचीन कृषि व्यवस्था को अंग्रेजों द्वारा बनाई गई नवीन प्रशासनिक व्यवस्था व कृषि नीतियों द्वारा धीरे–धीरे तोड़ा जा रहा था। अंग्रेजों की इस नई व्यवस्था ने नये प्रकार के भूमिपति उत्पन्न कर दिये जिससे ग्रामीण भारत में एक नया समाज उभर कर आया। सरकारी कर अत्यधिकता तथा जमीदारों द्वारा कर का अत्यधिक भाग लेने के कारण किसान साहूकारों तथा व्यापारियों के चंगुल में फंसते चले गये। अंग्रेजों द्वारा बनाये गये इस नये भूमिपति वर्ग व परजीवी बिचौलिये, लोभी व भ्रष्ट साहूकारों ने मिलकर किसानों को अधिकाधिक गरीब बना दिया। 19 वीं शताब्दी तक किसान इस स्थिति में आ गये कि वह अंग्रेजी शासन, स्थानीय शोषणकारियों तथा पूँजीपतियों से निबट कर सामन्तशाही बन्धनों को तोड़ना अथवा ढीला करना चाहते थे।

किसान आन्दोलन के कारण:–

1. अंग्रेज सरकार की प्रशासनिक मू कर नीतियाँ।
2. बार–बार लम्बे काल तक अकाल पड़ना।
3. किसानों से जमीदारों, सामन्तों द्वारा अत्यधिक कर वसूलना।
4. व्यापारियों, साहूकारों द्वारा चंगुल में फंसाकर झूठे दस्तावेज तैयार करना।

प्रमुख किसान आन्दोलन :–

1. बंगाल में नील उगाने वालो किसानों का विद्रोह :–यह विद्रोह अंग्रेज भूपतियों के विरूद्ध किया गया था। इस विद्रोह में किसानों का साथ जमीदारों, साहूकारों, धनी किसानों व सभी ग्रामीण वर्ग ने दिया। 19 वी शताब्दी में कुछ कम्पनी के अवकाश प्राप्त यूरोपीय अधिकारियों ने बंगाल तथा बिहार के जमीदारों से भूमि प्राप्त कर नील की खेती करना आरम्भ कर दिया। इन्होंने किसानों से ऐसी शर्तों पर नील की खेती करने को बाध्य किया जो किसानों के लिए लाभकारी नहीं थी। अप्रैल 1860 ई. में बारासात उपविभाग तथा पावना और नादिया जिलों के समस्त किसानों ने हड़ताल कर दी और नील बोने से इनकार कर दिया। यह हड़ताल बंगाल के अनेक क्षेत्रों में फैल गई। सरकार को व्यापक असंतोष से बचने के लिए 1860 ई. में एक नील आयोग नियुक्त करना पडा।

2. 1875 ई. दक्षिण के विद्रोह :– दक्षिण के विद्रोह का कारण अत्यधिक भूमि कर, कपास के भाव कम हो जाना मराठा किसानों से अत्यधिक कर लिया जाना। मारवाड़ी और गुजराती साहूकारों द्वारा लालच के कारण लेखों में हेरा फेरी करने तथा अनपढ किसानों से बिना जानकारी के हस्ताक्षर करा लेते, जिससे दीवानी न्यायालयों में फैसले इन साहूकारो के पक्ष में जाने से किसान बेदखल हो जाते थे। 1875 ई. में किसानों ने पूना जिले के साहूकरों के मकानों तथा दुकानों पर आक्रमण कर दिये और जिन लेख पत्रों पर साहूकरों ने किसानों के हस्ताक्षर करा रखे थे उन्हें जला दिया गया। बाद में यह विद्रोह अहमदनगर तक फैल गया तथा पुलिस और सेना बुला कर ही यह विद्रोह दबाया जा सका। सरकार ने उपद्रवों के कारण जानने के लिए दक्कन उपद्रव आयोग नियुक्त किया तथा 1879 ई. में कृषक राहत अधिनियम पारित किया। जिसमें किसानों द्वारा ऋण न लौटाने पर गिरफ्तार अथवा जेल में बन्द नहीं किया जा सकता था।

3. पंजाब में किसान आन्दोलनः– पंजाब का आम किसान ऋणग्रस्त था और उसकी भूमि पर गैर किसान वर्ग का कब्जा हो गया था। इस भूमि हस्तान्तरण को रोकने के लिए सरकार पंजाब भूमि अन्याक्रमण अधिनियम (Panjab land Alienation Act 1900) लेकर आई।

4. चम्पारण किसान आन्दोलनः– उत्तर बिहार के चम्पारन जिले में यूरोपीयन नील के उत्पादक बिहारी किसानों पर अत्याचार करते थे। इसका विरोध करने के लिए गांधीजी ने बाबू राजेन्द्र प्रसाद की सहायता से किसानों की वास्तविक स्थिति की जॉच की। किसानों को अहिंसात्मक आन्दोलन करने के लिए कहा, लेकिन बाद में जून 1917 में एक जॉच समिति बनाई। जिसकी रिपोर्ट पर चम्पारन कृषि अधिनियम पारित किया गया, जिसके द्वारा नील किसानों से जबरदस्ती नील की खेती कराना बन्द कर दिया गया।

5. खेड़ा किसान आन्दोलनः– यह आन्दोलन बम्बई सरकार के विरूद्ध था। 1918 ई. की बसन्त ऋतु में फसलें नष्ट हो गईं लेकिन फिर भी बम्बई सरकार भूमि कर मांग रही थी, जबकि भूमि कर नियमों में यह स्पष्ट था कि फसल साधारण से 25 प्रतिशत से कम हो तो भूमिकर में पूर्णतया छूट मिलेगी, सरकार छूट देने को तैयार नहीं थी। गाँधीजी ने कृषकों को संगठित कर सत्याग्रह किया। अन्त में सरकार को गाँधीजी की बात स्वीकार करनी पड़ी।

6. अन्य संगठित प्रयासः– अखिल भारतीय स्तर पर किसान आन्दोलन चलाने के लिए 11 अप्रैल 1936 को लखनऊ में अखिल भारतीय किसान सभा का गठन किया। किसान सभा ने आन्ध्र प्रदेश में जमीदारों के खिलाफ भूमि व्यवस्था विरोधी आन्दोलन किया। तथा 1936 में बिहार में बकाश्त (स्वयंजोती) हुई भूमि के विरूद्ध आन्दोलन किया। 18 अक्टूबर 1937 को किसान सभाओं ने सत्याग्रहियों पर हुए अत्याचार के विरूद्ध कृषक दिवस मनाया।

राजनैतिक आन्दोलन 1857–1919

1857 के स्वतन्त्रता संघर्ष की असफलता के बाद स्वतन्त्रता संघर्ष का नेतृत्व भारत के सभी भागों में भारत के आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने वाले भूपतियों और सम्पन्न वर्ग के हाथों में आ गया था। ये वर्ग अपनी मांगों के लिए संसद को स्मरण पत्र, प्रार्थना पत्र देते थे, साथ ही देश के लिए पढे लिखे लोगों को संगठित करने, अंग्रेजों द्वारा वर्तमान काल में कर रहे शोषण की जानकारी देकर जागृत कर रहे थे। इस काल के प्रारम्भिक नेतृत्व करने वाले लोगों को इग्लैण्ड के उदारवादी लोगों पर विश्वास था। ये लोग इंग्लेण्ड के उदारवादियों को भारत की वस्तुस्थिति भारतीयों की आंकाक्षाओं तथा भारत में संवैधानिक और प्रशासनिक सुधारों के लिए तैयार करना चाहते थे, साथ ही अंग्रेजो द्वारा किये जाने वाले शोषण और अत्याचारों की जानकारी अधिकाधिक लोगों को देकर आन्दोलन का विस्तार करना तथा देश के सभी क्षेत्रों, वर्गों तथा धर्मों को मानने वाले लोगो को संगठित करना चाहते थे।

1858 ई. के बाद राजनैतिक चेतना का प्रचारः–

भारतीयों की धीरे–धीरे राजनैतिक आकांक्षाये बढने लगी। सिविल सर्विस में स्थान ही नहीं नियंत्रण करने की आकांक्षा की जाने लगी। अब भारत में जनता के द्वारा चुनी हुई और उसके प्रति उतरदायी सरकार की मांग की जाने लगी। 1868 में बंगाल के प्रमुख अखबार हिन्दू पेट्रियट के सम्पादक किस्टो दास पाल ने ऐसी मांग की। 1874 ई. में उन्होंने भारत के लिए स्वराज्य शीर्षक से लिखे लेख में भारतीयों द्वारा भारतीयों के लिए संवैधानिक सरकार के प्रारम्भ की बात की थी।

उस समय जो राजनैतिक संगठन भारत में थे वे इस प्रकार की प्रगतिशील माँग और उसके लिए संघर्ष करने के लिए तैयार नहीं थे। इसके लिए बंगाल के कुछ विद्वानों, चिन्तको ने 1875 में इण्डियन लीग की स्थापना की। इसका उद्देश्य भारतीयों में राष्ट्रवाद का भाव जागृत करने तथा राजनैतिक चेतना जागृत करना था। सार्वजनिक चेतना के द्वारा प्रारम्भ होने वाला यह पहला राजनैतिक संगठन था।

इण्डियन एसोसियेशनः–

इस संस्था की स्थापना के अगले वर्ष 1876 ई. में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के नेतृत्व में कलकत्ता के अल्बर्ट हाल में लगभग 900 प्रमुख लोगों ने भाग लिया, जिसमें यह तय हुआ कि संगठन समान राजनैतिक विचार रखने वाले लोगों को एक मंच पर लाएगा व सामान्य जनता को संगठित करेगा।

इण्डियन नेशनल कांग्रेसः–

1858 ई. के बाद भारत में चल रहे राजनैतिक विकास का ही परिणाम इण्डियन नेशनल कांग्रेस था, जिसकी स्थापना एक अंग्रेज भारतीय सिविल सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारी एलेन ओक्टेवियन ह्यूम (Allen Octavion Hume) ने की थी। इसकी स्थापना के पीछे ब्रिटिश सरकार की सोच थी कि एक ऐसा संगठन बनाया जाये जिससे भारतीयो के मन में क्या है इसकी जानकारी ब्रिटिश सरकार को मिलती रहे तथा इसके सम्मेलनों में राजनैतिक नेताओं के मन की भड़ास निकल जायेगी तथा उन्हें अंग्रेजी शासन को हटाने के सशक्त प्रयास करने से भी रोका जा सकेगा। 28 दिसम्बर 1885 ई. को व्योमेश चन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में बम्बई के गोकुल दास तेजपाल संस्कृत कालेज में प्रथम अधिवेशन प्रारम्भ हुआ जिसमें 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। अधिवेशन में कांग्रेस के चार उद्देश्य बताये गये–

1. राष्ट्र की उन्नति के लिए प्रयत्न में लगे लोगों को आपस में परिचित होने का अवसर देना।
2. आने वाले वर्षों के कार्यक्रम पर विचार करना।
3. ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति पूरी निष्ठा और भक्ति रखते हुए इंग्लैण्ड की संसद द्वारा तय किये गये सिद्धान्तों के विरूद्ध किये जाने वाले भारत सरकार के कार्यों का विरोध।
4. अप्रत्यक्ष रूप से यह संगठन भारतीय संसद का रूप ग्रहण करेगा तथा इस बात का उचित जवाब देगा कि अंग्रेजों की यह सोच कि भारत के चुने हुए प्रतिनिधि शासन व्यवस्था करने की योग्यता नहीं रखते हैं। कांग्रेस के काल को दो चरणों में बांटा जा सकता है। प्रथम चरण 1885–90 ई. तक जिसे उदारवादी राजनीति अथवा राजनीतिक भिक्षावृति का युग कहा गया है। दूसरा चरण 1905 से 1919 का काल जिसे अतिवादियों अथवा अतिवादी राजनीति का काल कहा गया है।

कांग्रेस के प्रथम चरण के उदारवादी नेता दादा भाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, दीनशा वाचा, व्योमेश और सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी कांग्रेस की राजनीति पर छाये हुए थे। ये लोग उदारवादी तथा परिमित राजनीति में विश्वास करते थे। ये लोग अपनी राजनीति की व्याख्या "उदारवाद और संयम" (Liberalism and moderation) के समन्वय से करते थे। ये लोग भारतीयों के लिए धर्म और जाति के पक्षपात का अभाव मानव में समानता, कानून के सामने बराबरी, नागरिक स्वतन्त्रताओं का प्रसार और प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास की इच्छा करते थे। इस काल में कांग्रेस पर समृद्धिशाली, मध्यवर्गीय, बुद्धिजीवियों का जिनमें वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, पत्रकार और सहित्यक व्यक्ति सम्मिलित थे, का अधिकार था। इस काल में कांग्रेस में आने वाले प्रतिनिधि बड़े–बड़े नगरों से आते थे और इनका जनसाधारण से कोई सम्पर्क नहीं था। उदारवादी अंग्रेजी साम्राज्य के बने रहने अपितु उसको सुदृढ करने के पक्ष में थे। उन्हें डर था कि अंग्रेजों के जाने पर अव्यवस्था फैल जायेगी। अंग्रेजी राज्य शान्ति और व्यवस्था का द्योतक था और भारत में बहुत लम्बे समय तक इसका बना रहना आवश्यक है। उदारवादियों का विश्वास था कि अंग्रेज न्यायिक लोग हैं, वे भारत के साथ न्याय ही करेंगे। भारतीयों की शिकायतें अंग्रेज नौकरशाही के कारण अथवा अंग्रेजों को हमारी शिकायतों की पूरी जानकारी न होने के कारण से है। यही कारण रहा कि इन लोगों ने इंग्लैड में प्रचार की ओर अधिक ध्यान दिया। इस काल में कांग्रेस ने देश की स्वन्त्रता की मांग नहीं की, केवल भारतीयों के लिए कुछ रियायातों की मांग की।

दूसरा चरण : गरम पंथी राष्ट्रवादी आन्दोलन का प्रारम्भ :– उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम बीसवीं शताब्दी के

प्रारम्भिक वर्षों में गरम पंथी राष्ट्रवादी विचार के लोगों का कांग्रेस में प्रभाव बढने लगा। कांग्रेस में फूट की प्रक्रिया उस समय आरम्भ हो गई जब लोकमान्य तिलक का समाज सुधार के प्रश्न पर गरम पंथी दल अथवा सुधारकों का झगड़ा हो गया। तिलक का कहना था कि स्वराज्य के बिना कोई सामाजिक सुधार नहीं हो सकते, न कोई प्रगति, न कोई उपयोगी शिक्षा, न ही राष्ट्रीय जीवन की परिपूर्णता। चार प्रमुख कांग्रेस नेता– लोकमान्य तिलक, विपिन चन्द्र पाल, अरविन्द घोष और लाला लाजपत राय ने इस आन्दोलन का मार्गदर्शन किया। इस गरमपंथी आन्दोलन के कार्यक्रमों में विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी माल को अंगीकार करने तथा राष्ट्रीय शिक्षा और सत्याग्रह पर बल दिया गया।

भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहन देना जिससे भारतीयों को कार्य तथा सेवा का अवसर मिल सके। सरकारी नियन्त्रित शिक्षा संस्थाओं के स्थान पर एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना बनाई जाये तथा विद्यार्थियों को देश सेवा में लगाया जाये।

स्वशासन आन्दोलन :–

1915 से श्रीमती एनीबेसेन्ट ने आइरिस होम रूल लीग के नमूने पर होम रूल लीग स्थापित करने की घोषणा की। 1916 में तिलक ने पूना में अपनी होम रूल लीग स्थापित की। दोनों संस्थायें तालमेल से कार्य कर रही थीं। इनका उद्देश्य अंग्रेजी साम्राज्य के भीतर स्वायत्तता की मांग को लोगों तक पहुँचाना था।

राजनैतिक आन्दोलन 1919 से 1947

रोलेट एक्ट :– प्रथम विश्व युद्ध समाप्ति के बाद ब्रिटिश सरकार ने यह आश्वासन दिया कि भारतीयों को अधिकाधिक सुविधायें दी जायेंगी। लेकिन युद्ध की समाप्ति के बाद किये गये सुधार सन्तोषप्रद नहीं थे बल्कि इसके विपरीत आर्थिक शोषण, प्रेस के कठोर नियम व अन्य दमनकारी गतिविधियां मिली। भारतीय जनता अंग्रेजों के विरोध में डटी हुई थी। सरकार को षडयंत्र का भय था अतः सरकार ने 1917 ई. में सिडनी रोलेट की अध्यक्षता में एक समिति गठित की, जिसके द्वारा बनाये गये बिल को विधानमण्डल ने 19 मार्च 1919 को पास कर दिया। इस एक्ट के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को संदेह के आधार पर गिरफ्तार किया जा सकता था। उसे न कोई अपील, न दलील और न कोई वकील का अधिकार था। इसे काला कानून कहा गया।

जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड :–

13 अप्रैल 1919 को रोलेट एक्ट के विरोध में अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक सभा आयोजित की गई जिसमें 20 हजार आदमी इकट्ठे हुए, जिनमें स्त्री, पुरुष व बच्चे भी थे। जनरल डायर ने उसमें प्रवेश किया और गोली चलाने का हुक्म दिया और गोलियां तब तक चलती रहीं जब तक कारतूस खत्म नहीं हो गयें। सरकार के अनुसार 379 व्यक्ति मारे गये, जबकि कांग्रेस समिति के अनुसार मरने वालों की संख्या 1000 के लगभग थी।

असहयोग एवं खिलाफत आन्दोलन :–

खिलाफत आन्दोलन भारतीय मुसलमानों द्वारा तुर्की के खलीफा के सम्मान में चलाया था। तुर्की का खलीफा मुस्लिम जगत का धार्मिक रूप से प्रमुख था। 19 अक्टूबर 1919 को पूरे देश में खिलाफत दिवस मनाया गया। गाँधीजी भी इस आन्दोलन में शामिल हुए और "केसर–ए–हिन्द" की उपाधि को लौटा दिया। इस आन्दोलन की समाप्ति 10 अगस्त 1920 को सेव्र की संधि से हुई जिसमें तुर्की का विभाजन कर उसे धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित कर खलीफा के पद को समाप्त कर दिया।

असहयोग आन्दोलन :–

रोलेक्ट एक्ट, जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड,हण्टर कमेटी की रिपोर्ट, तुर्की विभाजन, खलीफा का पद समाप्त करना आदि से गाँधी जी अत्यधिक पीड़ित हुए। 1920 में कांग्रेस ने अन्यायी सरकार से असहयोग करने का प्रस्ताव पारित किया। इसके अन्तर्गत सरकारी उपाधियों को छोड़ने, विधानसभाओं, न्यायालयों, सरकारी शैक्षणिक संस्थाओं, विदेशी माल इत्यादि का त्याग करना तथा कर न देना शामिल था। इसके विपरीत अपने आप को अनुशासन में रखना, राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करना, आपसी झगड़ें पंच निर्णय द्वारा तय करना, हाथ से कते और बुने कपड़ें का प्रयोग करना इत्यादि कार्य करने थे। 1921 ई. में इस आन्दोलन के अन्तर्गत लगभग 30000 व्यक्ति जेल गये। भारतीय इतिहास में यह पहला अवसर था जब स्वराज्य के लिए संघर्ष में इतनी अधिक जनता ने भाग लिया। परन्तु जब यह आन्दोलन शिखर पर था तभी 5 फरवरी 1922 ई. को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरी–चोरा नामक स्थान पर शान्तिपूर्ण जुलूस पर पुलिस द्वारा अत्याचार करने पर भीड़ ने पुलिस चौकी को आग लगा दी, जिसमें 21 सिपाही एक थानेदार की मौत हो गई। गाँधी जी ने आन्दोलन को हिंसात्मक होते देख 12 फरवरी 1922 को यह आन्दोलन वापस ले लिया। गाँधी जी की इस घोषणा से देश के बड़े नेता आश्चर्यचकित रह गये। सुभाष चन्द बोस ने इसे अत्यन्त कष्ट दायक कहा। मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास ने कांग्रेस के अन्तर्गत स्वराज पार्टी का गठन किया, जिसने विधान परिषदों में माग लेकर सरकार के कार्यों में रूकावट डालने का कार्य किया।

साइमन कमीशन :–

1919 के भारत सरकार अधिनियम के कार्यों की समीक्षा करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1927 ई में सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन बनाया। इसमें सात सदस्य थे लेकिन इसमें कोई भी भारतीय नहीं था। 3 फरवरी 1928 ई. जब यह कमीशन बम्बई पहुँचा, तो इस का जबरदस्त विरोध किया गया। लाहौर में इसका विरोध लाला लाजपतराय के नेतृत्व में किया गया। विरोध कर रहे लोगों पर पुलिस ने अन्धाधुन्ध लाठियों की वर्षा की जिसमें लाला लाजपत राय के सीने में चोटें आई और एक महीने बाद उनका देहान्त हो गया। 1930 को इस कमीशन की रिपोर्ट आई जिसमें कहीं भी औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना की बात नहीं कहीं गई।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन :–

30 दिसम्बर 1929 ई. के कांग्रेस अधिवेशन में पण्डित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास किया। पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए

गाँधी जी ने 78 सदस्यों के साथ साबरमती आश्रम से 200 किलोमीटर दूर गुजरात में समुद्र के तट पर स्थित डाण्डी गाँव के लिए पैदल चले। 6 अप्रैल 1930 ई. डाण्डी पहुँच कर नमक बना कर अंग्रेजी कानून को तोड़ा। इस आन्दोलन में गैर कानूनी नमक बनाने, महिलाओं द्वारा शराब की दुकानों, अफीम के ठेकों, विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना देना, विदेशी वस्त्रों को जलाना, चरखा कातना, छुआछूत से दूर रहना, विद्यार्थियों द्वारा सरकारी स्कूल, कॉलेज छोड़ना तथा सरकारी कर्मचारियों को नौकरियों से त्याग पत्र देने का आह्वान गाँधीजी ने किया। यह आन्दोलन तेजी से पूरे भारत में फैल गया। देश भर में जनता हड़तालों, प्रदर्शनों और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार में भाग लेने लगी। इस आन्दोलन की विशेषता यह थी कि इसमें महिलाओं ने भी भाग लिया। थोड़े समय में ही 60,000 लोग जेलों में डाल दिये गये।

5 मार्च 1931 को सरकार और कांग्रेस के मध्य गाँधी–इरविन समझौता हुआ। वायसराय ने इस बात की घोषणा की कि भारतीय संवैधानिक विकास का उद्देश्य भारत को डोमिनियन स्टेट्स देना है। गाँधी जी ने भारतीय संवैधानिक सुधारों के लिए, बुलाए गये दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया। वे वहाँ से निराश लौटे और पुनः 1932 ई. में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। 1933 में गाँधी जी ने अपने आन्दोलन की असफलता को स्वीकार कर लिया और कांग्रेस की सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह :–

द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया था। भारत को युद्ध में सम्मिलित करने के खिलाफ देश के विभिन्न भागों में हड़ताल व प्रदर्शन हो रहे थे। तभी गाँधी जी ने सत्याग्रह के बजाय व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रस्ताव रखा जिसे कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। 17 अक्टूबर 1940 ई. को कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया। गाँधी जी द्वारा चुने सत्याग्रही एक–एक करके सार्वजनिक स्थलों पर पहुँचेंगें, युद्ध के खिलाफ भाषण देगें और गिरफ्तारी देगें। विनोबा भावे पहले सत्याग्रही थे, जिन्हें तीन माह की सजा दी गई। जवाहर लाल नेहरू दूसरे, ब्रह्मदत्त तीसरे सत्याग्रही थे। इस व्यक्तिगत सत्याग्रह में 30000 लोग पकड़े गये।

भारत छोड़ो आन्दोलन :–

क्रिप्स मिशन की असफलता, जापान का भारत पर आक्रमण का भय, 14 जूलाई 1942 के वर्धा कांग्रेस बैठक में कांग्रेस कार्यकारिणी के निर्णय आदि के कारण 8 अगस्त 1942 ई को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में गाँधी जी के "भारत छोड़ो प्रस्ताव" को स्वीकार कर लिया। इस संदर्भ में उन्होंने कहा कि अब मैं आपको एक छोटा सा मंत्र दे रहा हूँ वह मंत्र है 'करो या मरो"। हम या तो भारत को स्वतन्त्र करायेगें या इस प्रयास में मारे जायेंगे, मगर हम अपनी पराधीनता को जारी रहते देखने के लिए जिन्दा नहीं रहेंगे। 9 अगस्त की भोर से पहले ही गाँधी जी सहित दूसरे कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये गये तथा कांग्रेस को गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया।

इस आन्दोलन की कोई निश्चत योजना नहीं बनाई गई थी। इस आन्दोलन में शान्तिपूर्ण हड़ताल करना, सार्वजनिक सभायें करना, लगान देने से मना करना तथा सरकार का असहयोग करने की बात कही गई। इस आन्दोलन को गाँधी जी ने अन्तिम संघर्ष बताया था। अतः जनता ने जिस ढ़ंग से ठीक समझा, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। पूरे देश में एक स्वतः स्फूर्त आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। कारखाने, स्कूलों और कॉलेजों में हड़तालें और कामबंदी हुई। पुलिस थानों डाकखानों, रेल्वे स्टेशनों पर हमले किये गये। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अधिकांश नेता गिरफ्तारी से बच गये थे। इसके नेताओं ने भूमिगत रह कर आन्दोलन चलाया, जिनमें जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, रामानन्द मिश्रा, एस.एम.जोशी प्रमुख थे। इस आन्दोलन में जयप्रकाश नारायण की महत्वपूर्ण भूमिका रही। अरूणा आसफ अली ने बम्बई में इस आन्दोलन का सफल नेतृत्व किया। इस आन्दोलन के दौरान अनेक शहरों, कस्बों और गाँवों में आन्दोलनकारियों ने समानान्तर सरकार भी बना ली थी। इस आन्दोलन का भी दमन कर दिया। इस आन्दोलन में गोलीबारी में 10000 से अधिक लोग मारे गये। विद्रोही गाँवों को जुर्माने के रूप में बहुत से रूपये देने पड़े। सरकार ने इस आन्दोलन की हिंसा का उत्तरदायित्व गाँधीजी पर थोप दिया।

इस आन्दोलन ने भारत की आजादी का मार्ग प्रशस्त कर दिया। भारतीयों में वीरता, उत्साह, शौर्य और देश के लिए सर्वस्व त्याग की भावना जागृत की। देश में नेतृत्व की एक नई पीढ़ी आगे आई, जिससे लोगों में संघर्ष करने की हिम्मत और शक्ति बढ़ गई। अब भारत सम्पूर्ण स्वतन्त्रता से कम कुछ नहीं चाहता था।

राजस्थान के जनजातीय, किसान एवं प्रजामण्डल आन्दोलन

राजस्थान में जनजातीय एवं किसान आन्दोलन :– राजस्थान में राजनीतिक चेतना का प्रारम्भ यहां के किसानों व जनजातीय समाज ने किया। जब यहाँ के किसानों पर अत्यधिक वित्तीय बोझ डाला गया तो यहां किसानों ने विरोध शुरू कर तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था को चुनौती दे डाली। राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में ये आन्दोलन स्वतः स्फूर्त थे, जो अन्याय व अनावश्यक उत्पीडन के विरूद्ध शुरू हुए एवं भावी राजनीतिक आन्दोलन के प्रेरणा के सूत्र बने। राजस्थान के दक्षिणी क्षेत्र मुख्यतः डूँगरपुर, मेवाड, प्रतापगढ, बांसवाडा व कुशलगढ़ क्षेत्र में भील निवास करते थे। भील अत्यन्त परम्परायादी आदिवासी जाति है जो अपने सामाजिक व आर्थिक स्तर को लेकर सजग रहती है। जब इनके परम्परागत अधिकारों का हनन होने लगा तो इन्होंने शासकों और अंग्रेजो के विरूद्ध विद्रोह कर दिया।

भगत आन्दोलन :–

भीलों को सामाजिक व नैतिक उत्थान के लिए गोविन्द गुरू ने सम्प सभा स्थापित की व उन्हें हिन्दू धर्म के दायरे में बनाये रखने के लिए भगत पंथ की स्थापना की। सम्प सभा द्वारा मेवाड़ डूंगरपुर, ईडर, गुजरात, विजयनगर और मालवा के भीलों में सामाजिक जागृति से शासन संशकित हो उठा, और भीलों को

भगत पंथ छोडने के लिए विवश किया जाने लगा। जब भीलों को बेगार कृषि कार्य के लिए बाध्य किया और जंगलों में उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित किया गया तो उन्होंने आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजो ने गोविन्द गुरू द्वारा चलाये जा रहे इस सामाजिक सुधार व संगठन के पीछे भील राज्य की स्थापना की संभावना व्यक्त की। गोविन्द गुरू को अप्रैल 1913 ई. को डूँगरपुर राज्य द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया, लेकिन बाद में छोड दिया गया। गोविन्द गुरू अपने साथियों के साथ मानगढ की पहाड़ियों पर चले गये। अक्टूबर 1913 ई. को अपने संदेश द्वारा भीलों को मानगढ की पहाड़ी पर एकत्रित होने को कहा। भील हथियारों सहित बडी संख्या में एकत्रित हुए। भीलों की एकता से भयभीत अंग्रेजों ने सेना भेजी, जिसने मानगढ की पहाड़ी पर पहुँच कर गोला बारी कर भीलों को तितर बितर कर दिया। सरकारी आकड़ों के अनुसार इस कार्यवाही में 1500 भील मारे गये। इस प्रकार भगत आन्दोलन को निर्ममता पूर्वक कुचल दिया गया तथा गोविन्द गुरू को 10 वर्ष के कारावास की सजा दी गई।

एकी आन्दोलनः–

भगत आन्दोलन को कुचलने के बाद भी भीलों के विरूद्ध सरकारी नीति जारी रही। 1917 ई. में भीलों व गरासियों ने मिलकर महाराणा को पत्र लिख कर दमनकारी नीति व बेगार के प्रति अपना विरोध जताया। लेकिन परिणाम नहीं निकला तो भीलों ने मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। यह आन्दोलन एकी आन्दोलन के नाम से विख्यात हुआ।

किसान आन्दोलन :–

राजस्थान की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक संरचना सामंती रही है। यह संरचना त्रिस्तरीय थी जिसमें क्रमशः शासक, जागीरदार व कृषक वर्ग सम्मिलित थे। इन सभी के पारस्परिक अंतर्सम्बन्धों पर यह व्यवस्था टिकी थी। 19 वीं शताब्दी के अंत तक ये संबंध सौहार्द्र पूर्ण बने रहे मगर इसके बाद राजस्थान का परिदृश्य बदलना आरम्भ हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि राजस्थान के विभिन्न भागों को अनेक किसान आन्दोलनों का सामना करना पड़ा। इन किसान आन्दोलनों के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे –

(1) अंग्रेजों के प्रभाव में आकर शासकों ने अपनी प्रजा की ओर पर्याप्त ध्यान देना छोड़ दिया। शासकों व जागीरदारों ने स्वयं का अस्तित्व ही ब्रिटिश सत्ता पर आधारित समझ लिया। इसलिए शासकों की निर्भरता जागीरदारों पर व जागीरदारों की निर्भरता कृषकों पर समाप्त होती चली गई।

(2) राजस्व अधिक वसूलने के साथ–साथ ही कृषकों से ली जाने वाली बेगारों व लागों में भी अप्रत्याशित वृद्धि देखी गई। कुछ राज्यों में तो इन लागों की संख्या 300 से अधिक थी।

(3) इस काल में अन्य व्यवसायों से विस्थापित लोगों के कृषि पर निर्भर हो जाने के कारण कृषक मजदूरों की संख्या में वृद्धि हुई। कृषक मजदूरों की संख्या में वृद्धि होने के कारण जागीरदारों के रूख में अधिक कठोरता आ गई।

(4) कृषि उत्पादित मूल्यों में गिरावट व इजाफा दोनों स्थितियां कृषकों के लिए लाभकारी नहीं थे। जहां एक ओर कीमत में गिरावट के कारण कृषकों की बचत का मूल्य कम हो जाता था, वहीं कीमतें बढ़ने के कारण भी उसे लाभ का भाग नहीं मिल पाता था क्योंकि जागीरदार लगान जिन्स के रूप में लेता था।

(5) अंग्रेजी प्रशासनिक व्यवस्थाओं को अपनाने के फलस्वरूप सामंतों का कृषकों के प्रति उदार व पैतृक नजरिया बदल गया।

बिजौलिया किसान आन्दोलन (भीलवाड़ा) –

बिजौलिया किसान आन्दोलन राजस्थान के अन्य किसान आन्दोलनों का अगुवा रहा। यहाँ के किसानों में अधिकांश धाकड़ जाति के थे। 1894 ई. में बिजौलिया के राव गोविन्ददास की मृत्यु तक किसानों को जागीरदार के खिलाफ कोई विशेष शिकायत नहीं थी। 1894 ई. में बने नये जागीरदार कृष्णसिंह (किशन सिंह) ने किसानों के प्रति ठिकाने की नीति व जागीर प्रबन्ध में परिवर्तन किए। इसके समय में लगभग 84 प्रकार की लाग–बागों के द्वारा किसानों से उनकी मेहनत की कमाई का लगभग 87 प्रतिशत भाग जागीरदार ले लिया करता था। इसके बाद भी उनसे बेगार अलग से करवाई जाती थी।

1897 ई. में गिरधरपुरा नामक गांव में गंगाराम धाकड़ के पिता के मृत्युभोज के अवसर पर हजारों किसानों ने अपने कष्टों की खुलकर चर्चा की और मेवाड़ महाराणा को उनसे अवगत करवाया। महाराणा ने सुनवाई के बाद किसानों की लागत और बेगार संबंधी शिकायतों की जाँच के लिए सहायक राजस्व अधिकारी हामिद हुसैन को नियुक्त किया। हामिद हुसैन ने ठिकाने के विरुद्ध महकमा खास में रिपोर्ट दी किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। राज्य की तरफ से ठिकाने को मात्र एक–दो लागतें कम करने को कहा गया। इससे राव कृष्णसिंह का हौंसला बढ़ गया।

विभिन्न प्रकार की लागों व 1899–1900 ई. के भयंकर दुर्भिक्ष (छप्पनिया अकाल) के कारण बिजौलिया के किसानों की स्थिति पहले से ही काफी दयनीय थी। इसके बावजूद 1903 ई. में राव कृष्णसिंह ने किसानों पर 'चँवरी कर' नामक एक नया कर और लगा दिया। इसमें हर व्यक्ति को अपनी लड़की के विवाह के अवसर पर पाँच रूपये ठिकाने के कोष में जमा करवाना पड़ता था। चँवरी कर बिजोलियावासियों के लिए आर्थिक रूप से तो भारस्वरूप था ही, साथ ही साथ सामाजिक रूप से घोर अपमानजनक भी था। किसानों ने इसका मौन विरोध किया और दो वर्ष तक अपनी कन्याओं का विवाह नहीं किया। किसानों के प्रतिरोध के आगे राव को चंवरी की लाग उठा देने, फसल में ठिकाने का हिस्सा 2/5 लेने, कूंता करने वाले अहलकारों के साथ बीसियों आदमियों को न बुलाने की घोषणा करनी पड़ी।

1906 ई. में बिजौलिया के नए स्वामी पृथ्वीसिंह ने न केवल पुरानी रियायतों को समाप्त कर दिया बल्कि प्रजा पर 'तलवार बँधाई' नामक नया कर लगा दिया। राव पृथ्वीसिंह के समय जब लूट और शोषण चरम सीमा को पार कर गया तो 1913 ई. में किसानों ने साधु सीतारामदास, फतहकरण चारण और ब्रह्मदेव के

नेतृत्व में जागीर क्षेत्र में हल चलाने से इंकार कर दिया। जागीर क्षेत्र की भूमि पड़त रहने के कारण ठिकाने को बड़ी हानि उठानी पड़ी। इसके बाद ठाकुर द्वारा की जाने वाली सख्ती व अत्याचारों में और वृद्धि हो गई। फतहकरण चारण व ब्रह्मदेव आतंकित होकर बिजौलिया छोड़कर चले गए तथा साधु सीतारामदास को पुस्तकालय की नौकरी से अलग कर दिया गया।

साधु सीतारामदास द्वारा आमंत्रित करने के बाद विजयसिंह पथिक ने आन्दोलन का नेतृत्व संभाला और 1917 ई. में हरियाली अमावस्या के दिन बैरीसाल गाँव में 'ऊपरमाल पंच बोर्ड' नामक एक संगठन स्थापित कर उसके तत्त्वावधान में आन्दोलन का श्रीगणेश किया गया। तिलक ने किसानों की वीरता और संगठन से प्रभावित होकर न केवल अपने अंग्रेजी पत्र 'मराठा' में बिजौलिया के बारे में एक सम्पादकीय लिखा अपितु मेवाड़ के महाराणा फतेहसिंह को भी पत्र लिखा कि 'मेवाड़ के राजवंश ने स्वतन्त्रता के लिए बहुत बलिदान किए है। आप स्वयं स्वतन्त्रता के पुजारी हैं, अतएव आपके राज्य में स्वतन्त्रता के उपासकों को जेल में डालना कलंक की बात है।' बिजौलिया के किसानों को जागृत करने के लिए एक ओर माणिक्यलाल वर्मा द्वारा रचित 'पंछिड़ा' गीत गाया जा रहा था, वहीं दूसरी ओर प्रज्ञाचक्षु भंवरलाल स्वर्णकार भी अपनी कविताओं के माध्यम से गांव-गांव में अलख जगा रहे थे। पथिक ने भी बिजौलिया के आस-पास के इलाके के युवकों में देशभक्ति की भावना भरने के उद्देश्य से इस समय 'ऊपरमाल सेवा समिति' नामक संगठन की स्थापना की तथा 'ऊपरमाल का डंका' नाम से पंचायत का एक पत्र भी निकलवाया। आन्दोलन को देशभर में चर्चित करने के लिए पथिक ने किसानों की तरफ से कानपुर से निकलने वाले समाचार-पत्र 'प्रताप' के सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी को चाँदी की राखी भेजी। गणेश शंकर विद्यार्थी ने राखी स्वीकार करते हुए आन्दोलन को समर्थन करने का आश्वासन दिया। 'प्रताप' समाचार-पत्र ने बिजौलिया किसान आन्दोलन को राष्ट्रीय पहचान दिलाई। प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि' में मेवाड़ के जन-आन्दोलन का जो चित्रण किया गया है, वह बिजौलिया किसान आन्दोलन का ही प्रतिबिम्ब है।

उदयपुर राज्य सरकार ने अप्रैल, 1919 ई. में बिजौलिया के किसानों की शिकायतों की सुनवाई करने के लिए मांडलगढ़ हाकिम बिन्दुलाल भट्टाचार्य की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया। आयोग ने किसानों के पक्ष में अनेक सिफारिशें की किन्तु मेवाड़ सरकार द्वारा इस तरफ कोई ध्यान नहीं दिए जाने के कारण आन्दोलन पूर्ववत् जारी रहा। भारत सरकार के विदेश विभाग के अधिकारियों का मत था कि बिजौलिया किसान पंचायत के साथ शीघ्र समझौता किया जाना आवश्यक है, अन्यथा सम्पूर्ण राजपूताने में किसान आन्दोलन उग्र हो सकता है। ऐसी स्थिति में बिजौलिया आन्दोलन को तुरन्त शांत करने के उद्देश्य से राजस्थान के ए. जी. जी. रॉबर्ट हॉलैंड की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया। फरवरी 1922 में रॉबर्ट हॉलैंड ने किसानों से वार्ता कर 35 लागतों को माफ कर दिया। दुर्भाग्य से ठिकाने की कुटिलता के कारण यह समझौता स्थायी नहीं हो सका।

1927 ई. के नए बन्दोबस्त के विरोध में किसानों ने ठिकाने पर दबाव बनाने के लिए विजयसिंह पथिक के परामर्श के बाद लगान की ऊँची दरों के विरोध में अपनी माल भूमि छोड़ दी। मगर किसानों की धारणा के विपरित ठिकाने द्वारा भूमि की नीलामी किये जाने पर भूमि को लेने वाले नये किसान मिल गये। किसानों द्वारा भूमि छोड़ने के फैसले के लिए पथिक को उत्तरादायी ठहराया गया, जिसके बाद उन्होंने अपने को इस आन्दोलन से अलग कर लिया। इसके बाद किसानों ने अपनी भूमि को वापिस प्राप्त करने के लिए आन्दोलन जारी रखा जो 1941 तक चलता रहा।

सीकर किसान आन्दोलन –

किसान आन्दोलन का प्रारम्भ सीकर ठिकाने के नए रावराजा कल्याणसिंह द्वारा 25 से 50 प्रतिशत तक भू-राजस्व वृद्धि करने से हुआ। 1922 ई. में उसने पूर्व रावराजा के दाह-संस्कार तथा स्वयं के गद्दीनशीनी समारोह पर अधिक खर्च का बहाना बनाकर इस वायदे पर लगान वृद्धि की कि अगले वर्ष लगान में रियायत दे दी जायेगी, किन्तु 1923 ई. में रावराजा रियायत देने सम्बन्धी अपने पुराने वायदे से मुकर गया। राजस्थान सेवा संघ के मंत्री रामनारायण चौधरी के नेतृत्व में किसानों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। लंदन से प्रकाशित होने वाले 'डेली हेराल्ड' नामक समाचार-पत्र में किसानों के समर्थन में लेख छपे और 1925 में ब्रिटिश संसद के निचले सदन 'हाऊस ऑफ कामंस' में लिचेस्टर (पश्चिम) से लेबर सदस्य सर पैथिक लारेंस ने किसानों के समर्थन में आवाज उठाई।

1931 ई. में 'राजस्थान जाट क्षेत्रीय सभा' की स्थापना के बाद किसान आन्दोलन को नई ऊर्जा मिली। किसानों को धार्मिक आधार पर संगठित करने के लिए ठाकुर देशराज ने पथैना में एक सभा कर "जाट प्रजापति महायज्ञ" करने का निश्चय किया। बसंत पंचमी 20 जनवरी 1934 को सीकर में यज्ञाचार्य पं. खेमराज शर्मा की देखरेख में यह यज्ञ आरम्भ हुआ। यज्ञ की समाप्ति के बाद किसान यज्ञपति कुं. हुक्मसिंह को हाथी पर बैठाकर जुलूस निकालना चाहते थे किन्तु रावराजा कल्याणसिंह और ठिकाने के जागीरदार इसके विरुद्ध थे। इसका कारण यह था कि ठिकाने का शासक और जागीरदार किसानों को सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से अपने से हीन मानते थे और हाथी पर सवार होकर निकाले जाने वाले जुलूस को अपना विशेषाधिकार मानते थे। इस कारण सीकर ठिकाने ने यज्ञ की पहली रात हाथी को चुरा लिया। हाथी चुराने की घटना ने वहाँ उपस्थित लोगों में रोष पैदा करने का कार्य किया और माहौल तनावपूर्ण हो गया। प्रसिद्ध किसान नेता छोटूराम ने जयपुर महाराजा को तार द्वारा सूचित किया कि एक भी किसान को कुछ हो गया तो अन्य स्थानों पर भारी नुकसान होगा और जयपुर राज्य को गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे। अंततः किसानों की जिद के आगे सीकर ठिकाने को झुकना पड़ा और स्वयं ठिकाने ने जुलूस के लिए सजा-सजाया हाथी प्रदान किया। सात दिन तक चलने वाले इस यज्ञ कार्यक्रम में स्थानीय लोगों सहित उत्तरप्रदेश, पंजाब, लुहारू, पटियाला और हिसार जैसे स्थानों से

लगभग तीन लाख लोग उपस्थित हुए। बीसवीं शताब्दी में राजपूताने में होने वाला यह सबसे बड़ा यज्ञ था।

सीकर किसान आन्दोलन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सिहोट के ठाकुर मानसिंह द्वारा सोतिया का बास नामक गाँव में किसान महिलाओं के साथ किए गये दुर्व्यवहार के विरोध में 25 अप्रेल, 1934 ई. को कटराथल नामक स्थान पर श्रीमती किशोरी देवी की अध्यक्षता में एक विशाल महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। सीकर ठिकाने ने उक्त सम्मेलन को रोकने के लिए धारा–144 लगा दी। इसके बावजूद कानून तोड़कर महिलाओं का यह सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में बड़ी सख्या में महिलाओं ने भाग लिया जिनमें श्रीमती दुर्गादेवी शर्मा, श्रीमती फूलांदेवी, श्रीमती रमादेवी जोशी, श्रीमती उत्तमादेवी आदि प्रमुख थी। 25 अप्रैल 1935 को जब राजस्व अधिकारियों का दल लगान वसूल करने के लिए कूदन गांव पहुँचा तो एक वृद्ध महिला धापी दादी द्वारा उत्साहित किए जाने पर किसानों ने संगठित होकर लगान देने से इंकार कर दिया। पुलिस द्वारा किसानों के विरोध का दमन करने के लिए गोलियाँ चलाई गई जिसमें चार किसान – चेतराम, टीकूराम, तुलछाराम तथा आशाराम शहीद हुए और 175 को गिरफ्तार किया गया। इस विभत्स हत्याकाण्ड के बाद सीकर किसान आन्दोलन की गूंज एक बार फिर ब्रिटिश संसद में सुनाई दी। 1935 ई. के अंत तक किसानों की अधिकांश मांगे स्वीकार कर ली गई। आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले प्रमुख नेताओं में सरदार हरलालसिंह, नेतरामसिंह गौरीर, पन्नेसिंह बाटड़ानाउ, हरूसिंह पलथाना, गोरूसिंह कटराथल, ईश्वरसिंह भैरूपुरा, लेखराम कसबाली आदि शामिल थे।

किसान आन्दोलन (चित्तौड़गढ़) बेगूं –

बिजौलिया किसान आन्दोलन से प्रेरित होकर बेगूं ठिकाने के कृषकों ने भी 1921 में आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि वहां के लोग भी लगान व लाग–बाग के अत्याचारों से पीड़ित थे। बेंगूं ठिकाने के किसान भी बिजोलिया की तरह ही अधिकांशतः धाकड़ जाति के थे। वे विभिन्न लागतों, बेगार, लगान की ऊँची दरों व ठिकाने के अत्याचारों की चक्की में पिस रहे थे। राजस्थान सेवा संघ के सदस्यों – विजयसिंह पथिक, रामनारायण चौधरी और माणिक्यलाल वर्मा के सतत् प्रयत्नों से बेंगूं के किसानों में जागृति का संचार हुआ।

1921 में मेनाल में भैंरोंकुंड पर एकत्र होकर बेगूं के पट्टे के किसानों की सभा हुई। बिजौलिया आन्दोलन की उग्रता से प्रभावित बेगूं के किसानों ने पथिक से मिलकर लागबाग, बेगार और ऊँचे लगान के विरूद्ध आन्दोलन का नेतृत्व करने की प्रार्थना की। पथिक ने इस आन्दोलन का भार राजस्थान सेवा संघ के मंत्री रामनारायण चौधरी पर डाल दिया।

दो वर्षों के संघर्ष के बाद बेगूं ठाकुर रावत अनूपसिंह को झुकना पड़ा। उसने किसानों की मांगों को स्वीकार करते हुए एक समझौता कर लिया। परन्तु मेवाड़ सरकार और रेजिडेन्ट को यह बात नहीं भायी। उन्होंने राजस्थान सेवा संघ और रावल अनूपसिंह के बीच हुए समझौते को 'बोल्शेविक' फैसले की संज्ञा दी और अनूपसिंह को उदयपुर में नजरबंद कर ठिकाने पर मुंसरमात बैठा दी।

ठिकाने ने किसानों की शिकायतों के समाधान के लिए मेवाड़ के बन्दोबस्त आयुक्त ट्रेंच के नेतृत्व में एक आयोग नियुक्त किया। बेगूं के किसान ट्रेंच के निर्णय पर विचार करने के लिए गोविन्दपुरा में एकत्र हुए। यहां पांच माह से लगभग 600 किसान पंच डटे हुए थे। ट्रेंच व लाला अमृतलाल ने गोविन्दपुरा पहुंच कर एकत्र किसानों को आयोग द्वारा दिए गए निर्णय को स्वीकार करने तथा तितर–बितर हो जाने का आदेश दिया, किन्तु किसान डटे रहे। 13 जुलाई, 1923 ई. को किसानों पर गोलियाँ चलाई गई जिसमें रूपाजी और कृपाजी धाकड़ नामक दो किसान शहीद हो गए। महिलाओं को अपमानित किया गया तथा पाँच सौ से ज्यादा किसानों को गिरफ्तार कर लिया गया। राज्य के अत्याचारों से किसानों का मनोबल गिरता देख पथिक ने गुप्त रूप से बेगूं पहुंचकर स्वयं किसान आन्दोलन का नेतृत्व संभाल लिया। मेवाड़ सरकार द्वारा इन्हें 10 सितम्बर, 1923 ई. को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया जिसके बाद आन्दोलन धीरे–धीरे समाप्त हो गया।

बरड़ किसान आन्दोलन (बूंदी) –

बिजौलिया और बेगूं के किसानों के समान बून्दी राज्य के किसानों को भी अनेक प्रकार की लागतें, बेगार और ऊँची दरों पर लगान की रकम देनी पड़ती थी। इससे त्रस्त बिजौलिया की सीमा से जुड़े बून्दी राज्य के बरड़ क्षेत्र के किसानों ने बून्दी प्रशासन के विरूद्ध अप्रैल, 1922 ई. में आन्दोलन का श्रीगणेश कर दिया। इस आन्दोलन का नेतृत्व 'राजस्थान सेवा संघ' के कर्मठ कार्यकर्ता नयनूराम शर्मा के हाथों में था। 2 अप्रैल, 1923 ई. को डाबी गाँव में नयनूराम शर्मा की अध्यक्षता में चल रही किसानों की सभा पर पुलिस अधीक्षक इकराम हुसैन के नेतृत्व में गोलियाँ चलाई गई जिसमें नानक भील और देवलाल गुर्जर शहीद हुए। 27 सितम्बर, 1925 ई. को राजस्थान सेवा संघ की हाड़ौती शाखा की एक सभा में शासन को किसानों की समस्याओं से परिचित करवाने के लिए पं. नयनूराम शर्मा को अधिकृत किया गया। 1927 ई. के बाद राजस्थान सेवा संघ अंतर्विरोधों के कारण बंद हो गया। अतः राजस्थान सेवा संघ के साथ ही बूँदी का बरड़ किसान आन्दोलन समाप्त हो गया।

नीमूचणा किसान आन्दोलन (अलवर) –

अलवर में सूअरों को मारने पर प्रतिबन्ध था और ये सूअर किसानों की फसल को बर्बाद कर देते थे। इन सूअरों के उत्पात से दुखी होकर 1921 ई. में अलवर के किसानों ने आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस आन्दोलन के दबाव में महाराजा को सूअरों को मारने की इजाजत देनी पड़ी। अलवर में 1922 ई. में तीसरा भूमि बन्दोबस्त होने के बाद 1923–24 ई. में भू–राजस्व की नई दरें लागू कर दी गई। इस नये बन्दोबस्त से पूर्व राजपूत एवं ब्राह्मणों से अन्य जातियों की तुलना में कम भू–राजस्व लिया जाता था। मगर नये बन्दोबस्त द्वारा इन जातियों के विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया, जिसके कारण इनमें असंतोष के स्वर उठना स्वाभाविक था। यद्यपि अन्य जातियों के किसान भी इस बन्दोबस्त से संतुष्ट

नहीं थे मगर इसके विरोध में नेतृत्वकारी भूमिका राजपूतों ने निभाई। अलवर के बानसूर और गाजी का थाना के राजपूतों ने भूमि बन्दोबस्त के नाम पर लगने वाले इन करों का विरोध किया और रेजीडेन्ट से शिकायत भी की। इस प्रकार की शिकायत करने से महाराजा जयदेवसिंह बहुत क्रोधित हुए।

14 मई, 1925 ई. को भू–राजस्व के नाम पर होने वाली इस लूट पर चर्चा करने के लिए किसान अलवर की बानसूर तहसील के नीमूचणा नामक गांव में एकत्रित हुए। एकाएक राज्य की सेना ने कमाण्डर छज्जूसिंह के नेतृत्व में इन किसानों को घेरकर गोलियों की बौछार कर दी तथा उनके घर जला दिए। इस घटना में 156 व्यक्ति मारे गए और लगभग 600 व्यक्ति घायल हुए। 'रियासत' नामक समाचार–पत्र ने इस हत्याकाण्ड की तुलना जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड से की, जबकि महात्मा गांधी ने 'यंग इण्डिया' में इस हत्याकाण्ड को 'दोहरी डायरशाही' की संज्ञा दी और इसे जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड से भी अधिक वीभत्स बताया।

राजस्थान में प्रजामण्डल आन्दोलन

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में राजस्थान के विभिन्न भागों में सामन्ती अत्याचारों एवं शोषण के विरुद्ध अनेक आन्दोलन शुरू हो गए थे किन्तु इन आन्दोलनों का उद्देश्य केवल भू–राजस्व में कमी एवं सामन्ती अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करना ही था। 1920 ई. में कांग्रेस द्वारा देशी रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का प्रस्ताव पारित होने से राजपूताना के राष्ट्रवादी लोगों को मायूस होना पड़ा। 1927 में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की स्थापना होने के बाद राजनीतिक कार्यकर्ताओं को एक ऐसा मंच मिल गया जहां वे अपनी बात कह सकते थे। इस संस्था की स्थापना व प्रथम अधिवेशन 16–18 दिसम्बर, 1927 ई. को बम्बई में दीवान बहादुर रामचन्द्रराव की अध्यक्षता में आयोजित हुआ। संस्था की कार्यकारिणी में राजस्थान के सात सदस्य – नयनूराम शर्मा (कोटा), शंकरलाल शर्मा (अजमेर), जयनारायण व्यास व कन्हैयालाल कलयंत्री (जोधपुर), रामदेव पोद्दार व बालकिशन पोद्दार (बीकानेर) तथा त्रिलोकचन्द माथुर (करौली) लिए गये। श्री विजयसिंह पथिक संस्था के उपाध्यक्ष तथा श्री रामनारायण चौधरी राजस्थान तथा मध्यभारत के लिए प्रान्तीय सचिव चुने गये। इस संस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य – भारत की देशी रियासतों में वैध और शांतिपूर्ण उपायों से वहां के राजाओं की छत्रछाया में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था।

1938 ई. में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में देशी राज्यों के आन्दोलन को समर्थन देने का प्रस्ताव पास होने के बाद विभिन्न देशी रियासतों में प्रजामण्डलों की व्यवस्थित स्थापना हुई। देशी रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना, सामन्ती अत्याचारों व शोषण का विरोध, देशी रियासतों में राजनैतिक जागृति पैदा करना और देश में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान करने के लिए जो राजनीतिक संगठन स्थापित हुए, उन्हें प्रजामण्डल कहा गया। राजस्थान की सभी रियासतों में अपने–अपने प्रजामण्डल कार्यरत रहे थे जिन्होंने आजादी तक उपरोक्त मुद्दों पर समय–समय पर अनेक आन्दोलनों का संचालन किया।

प्रमुख प्रजामण्डलों की स्थापना

प्रजामण्डल	वर्ष	संस्थापक
1. जयपुर प्रजामण्डल	1931	जमनालाल बजाज व कपूरचन्द पाटनी
2. बूंदी प्रजामण्डल	1931	कांतिलाल
3. हाड़ौती प्रजामण्डल	1934	पं. नयनूराम शर्मा
4. मारवाड़ प्रजामण्डल	1934	जयनारायण व्यास
5. सिरोही प्रजामण्डल	1934	वृद्धिशंकर त्रिवेदी
6. बीकानेर प्रजामण्डल	1936	मघाराम वैद्य
7. कोटा प्रजामण्डल	1939	पं. नयनूराम शर्मा
8. मेवाड़ प्रजामण्डल	1938	माणिक्यलाल वर्मा
9. अलवर प्रजामण्डल	1938	हरिनारायण शर्मा
10. भरतपुर प्रजामण्डल	1938	किशनलाल जोशी
11. शाहपुरा प्रजामण्डल	1938	रमेशचन्द्र ओझा
12. धौलपुर प्रजामण्डल	1938	ज्वालाप्रसाद जिज्ञासु
13. करौली प्रजामण्डल	1938	त्रिलोकचन्द माथुर
14. किशनगढ़ प्रजामण्डल	1939	कांतिलाल चौथानी
15. जैसलमेर प्रजामण्डल	1945	मीठालाल व्यास
16. कुशलगढ़ प्रजामण्डल	1942	भंवरलाल निगम
17. डूँगरपुर प्रजामण्डल	1944	भोगीलाल पाण्ड्या
18. बाँसवाड़ा प्रजामण्डल	1945	भूपेन्द्रनाथ त्रिवेदी
19. प्रतापगढ़ प्रजामण्डल	1945	अमृतलाल पायक
20. झालावाड़ प्रजामण्डल	1946	मांगीलाल भव्य

प्रजामण्डल आन्दोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि ये थी कि इसने महिलाओं को घर की चारदीवारी से बाहर निकालकर पुरुषों के बराबर खड़ा कर दिया। अनेक महिलाओं ने आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया और गिरफ्तारियाँ दी। जयपुर प्रजामण्डल के आन्दोलनों में अनेक महिलाओं ने भाग लिया जिनमें रमादेवी देशपाण्डे, सुशीला देवी, इंदिरा देवी, अंजना देवी चौधरी आदि प्रमुख थीं। भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान जोधपुर में गोरजा देवी, सावित्री देवी भाटी, सिरेकंवल व्यास, राजकौर व्यास आदि ने गिरफ्तारियाँ दी तो उदयपुर में माणिक्यलाल वर्मा की पत्नी नारायणदेवी अपने 6 माह के पुत्र को गोद में लिए जेल गई। प्रजामण्डलों के कार्यकर्ताओं ने सामाजिक सुधार, शिक्षा प्रसार, बेगार उन्मूलन तथा दलित–आदिवासियों के उत्थान पर भी ध्यान दिया। इन संगठनों ने उत्तरदायी संघर्ष के लिए आन्दोलन चलाए जिससे राजशाही और सामन्ती शोषण से दबी राजस्थान की जनता में राजनैतिक जनजागृति पैदा हुई। 1938 ई. से पहले देशी रियासतों की जनता का राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ प्रत्यक्ष सामंजस्य नहीं था किन्तु प्रजामण्डलों की स्थापना के बाद 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान यहाँ के स्थानीय आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन का हिस्सा बन गए। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बढ़ावा मिला।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्नः—

1. ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना कब हुई थी ?
2. सुर्जीगाँव की सन्धि कब और किस के मध्य हुई ?
3. टीपू सुल्तान कहाँ का शासक था ?
4. अमृतसर की सन्धि कब हुई ?
5. सन्यासी अंग्रेजों से क्यों नाराज थे ?
6. वासुदेव फड़के किस प्रान्त से थे ?
7. बिहार में 1857 ई. की क्रान्ति का नेतृत्व किसने किया ?
8. व्यक्तिगत सत्याग्रह के प्रथम सत्याग्रही कौन थे ?
9. बेगूं का किसान आन्दोलन कब प्रारम्भ हुआ ?

लघूत्तरात्मक प्रश्नः—

1. प्रथम अंग्रेज मराठा संघर्ष का उल्लेख कीजिये।
2. चतुर्थ आंग्ल–मैसूर युद्ध के क्या परिणाम निकले ?
3. विनायक दामोदर सावरकर का स्वतन्त्रता संघर्ष में क्या योगदान है ?
4. चम्पारण किसान आन्दोलन पर टिप्पणी लिखिये।
5. इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना कब और कैसे हुई ?
6. गोविन्द गुरु ने कौनसा आन्दोलन चलाया ?
7. बिजौलिया किसान आन्दोलन को समझाइए।
8. साइमन कमीशन का भारतीयों ने क्यों विरोध किया ?
9. प्रजामण्डलों की राजस्थान में स्थापना क्यों की गई ?

निबन्धात्मक प्रश्नः—

1. मराठों व मैसूर द्वारा अंग्रेजों से किये गये संघर्ष का वर्णन कीजिये।
2. 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संघर्ष का वर्णन कीजिये।
3. 1919 ई. से 1949 ई. तक चलाये गये जन आन्दोलनों का वर्णन कीजिये।
4. भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष में क्रान्तिकारियों का योगदान क्या रहा उल्लेख कीजिये ?
5. राजस्थान में किसान आन्दोलनों का वर्णन कीजिये।

अध्याय 4
विश्व का इतिहास

यूरोप में राष्ट्रवाद का उदय

राष्ट्रवाद एक ऐसी भावना है, जिसमें व्यक्ति की उच्चतम निष्ठा राष्ट्र के प्रति समर्पित होती है। स्वतन्त्रता की इच्छा और राष्ट्र बनने की सशक्त अभिव्यक्ति अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम में देखी जा सकती है। राज्य (नेशन स्टेट) की यूरोप में पहली स्पष्ट अभिव्यक्ति 1789 में फ्रांसीसी क्रांति के साथ हुई। इस क्रांति ने ही राष्ट्रवाद को यूरोप में प्रसारित करने में मुख्य भूमिका निभाई।

अट्ठारहवीं सदी के मध्य यूरोप के मानचित्र को देखते हैं तो उनसें "राष्ट्र–राज्य" नहीं मिलता है। यूरोप विभिन्न राजशाहियों, डचियों और कैंटनों (Cantons) तथा छोटी–छोटी राजनैतिक इकाइयों में विभक्त था जो मजहबी आधार लिए हुई थी तथा जिनके शासकों के स्वायत्त क्षेत्र थे। पूर्वी और मध्य यूरोप निरंकुश राजतंत्र के अधीन था और इन क्षेत्रों में तरह–तरह के लोग रहते थे। वे अपने आपको एक सामूहिक पहचान या किसी समान संस्कृति का भागीदार नहीं मानते थे। वे अलग–अलग भाषाएँ बोलते थे और विभिन्न नस्लीय समूह के सदस्य थे। जैसे– हैब्सवर्ग साम्राज्य में कुलीन वर्ग में जर्मन भाषा बोलने वाले ज्यादा थे तो लॉम्बार्डी और वेनेशिया में इतावली भाषा तथा हंगरी में आधे लोग मैग्यार भाषा बोलते थे जबकि बाकी लोग विभिन्न बोलियों का इस्तेमाल करते थे। गलीसिया में कुलीन वर्ग पोलिस भाषा बोलता था। ऐसा फर्क राजनीतिक एकता को आसानी से बढ़ावा देने वाला नहीं था। इन तरह–तरह के समूहों को आपस में बाँधने वाला तत्त्व, केवल सम्राट के प्रति सबकी निष्ठा थी।

यूरोप में राष्ट्रवाद के कारण :–

1. मध्यम वर्ग का उदय :–

यूरोप में सामाजिक और राजनीतिक रूप से जमीन का मालिक कुलीन वर्ग सबसे प्रभुत्वशाली वर्ग था। यह वर्ग जनसंख्या के लिहाज से एक छोटा समूह था, जबकि यूरोप की अधिकांश जनसंख्या कृषक थी। पश्चिम यूरोप में ज्यादातर जमीन पर किरायेदार और छोटे कास्तकार खेती करते थे जबकि पूर्व और मध्य यूरोप में भूमि विशाल जागीरों में बँटी थी जिस पर भू–दास खेती करते थे।

पश्चिम और मध्य यूरोप में औद्योगिक उत्पादन और व्यापार में वृद्धि से शहरों का विकास और वाणिज्यिक वर्गों के उदय से एक नया सामाजिक समूह अस्तित्व में आया। जिसमें श्रमिक वर्ग के लोग, मध्यम वर्ग जो उद्योगपतियों, व्यापारियों और सेवा क्षेत्र के लोगों से बना था। इन वर्गों में कुलीन विशेष अधिकारों की समाप्ति के बाद राष्ट्रीय एकता के विचार अधिक लोकप्रिय हुए।

2. उदारवादी राष्ट्रवाद :–

यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना का पोषण उदारवाद एवं प्रजातन्त्र ने किया। सामान्यतः उदारवाद का अर्थ मर्यादित स्वतन्त्रता और समानता से है। उदारवाद का लक्ष्य अधिकांश क्षेत्रों को नियंत्रण से मुक्त करना था। उदारवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताएँ, जैसे भाषण, लेखन, सभा–संगठन तथा निजी सम्पत्ति की सुरक्षा को सुनिश्चित करना चाहते थे। राजनीतिक रूप से उदारवाद एक ऐसी सरकार पर जोर देता था जो सहमति से बनी हो।

आर्थिक क्षेत्र में उदारवाद, बाजारों की मुक्ति और चीजों तथा पूँजी के आवागमन पर राज्य द्वारा लगाये गये नियंत्रणों को खत्म करने की मध्य वर्गों की जोरदार माँग से सम्बन्धित था। सदी के पहले भाग में जर्मन–भाषी इलाकों को नेपोलियन के प्रशासनिक कदमों से अनगिनत छोटे–छोटे प्रदेशों से 39 राज्यों का एक महासंघ बना। इसमें प्रत्येक राज्य की अपनी मुद्रा और नाप तोल प्रणाली थी। 1833 में हैम्बर्ग से न्यूरेम्बर्ग जाकर अपना माल बेचने वाले एक व्यापारी को ग्यारह सीमा शुल्कों से गुजरना पड़ता था। नया वाणिज्य वर्ग ऐसी परिस्थितियों को आर्थिक विनिमय और विकास में बाधक मानते हुए एक ऐसी एकीकृत आर्थिक क्षेत्र के निर्माण के पक्ष में तर्क दे रहा था जहाँ वस्तुओं, लोगों और पूँजी का आवागमन बाधा रहित हो। ऐसे आर्थिक क्षेत्र का निर्माण 1834 ई0

में प्रशा की पहल पर एक शुल्क संघ जॉलवेराइन के रूप में स्थापित किया गया जिसमें अधिकांश जर्मन राज्य सम्मिलित हो गये। इस संघ ने शुल्क अवरोध को समाप्त कर दिया और मुद्राओं की संख्या दो कर दी जो पहले तीस से ऊपर थी। इस संघ ने आर्थिक हितों को राष्ट्रीय एकीकरण का सहायक बनाया उस समय पनप रही व्यापक राष्ट्रवादी भावनाओं को आर्थिक राष्ट्रवाद की लहर ने मजबूत किया।

3. इंग्लैण्ड और फ्राँस की क्रांति :–

इंग्लैण्ड की शानदार गौरवपूर्ण क्रांति ने इस मान्यता को जन्म दिया कि किसी भी प्रकार के शासनतंत्र में दैवीय अधिकार का कोई औचित्य नहीं है। इसी क्रम में फ्राँस की क्रांति ने इस धारणा को जन्म दिया, कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता इतनी पावन है कि कोई भी सत्ता उसकी अवहेलना नहीं कर सकती। यह संकल्पना राष्ट्रीयता की जीत थी। राष्ट्रीयता उस राजतंत्रीय शक्ति के प्रत्युत्तर के रूप में जन्मी जिसका यह दावा था कि दैवीय अधिकारों के आधार पर राजा की शक्ति निरंकुश होती है।

4. 1815 ई. के बाद एक नया रूढ़िवाद :–

1815 ई. में ब्रिटेन, रूस, और आस्ट्रिया जैसी यूरोपीय शक्तियों, जिन्होंने मिलकर नेपोलियन को हराया था, इन देशों के प्रतिनिधि यूरोप के लिए एक समझौता तैयार करने के लिए वियना में मिले। वियना कांग्रेस में एकत्रित राजनीतिज्ञों ने अपनी समझ एवं अनुभव के आधार पर यूरोप का पुनर्निर्माण, पुरातन व्यवस्था को प्रतिष्ठित कर उन्नीसवीं शताब्दी के नये युग के लक्षण–राष्ट्रीयता, उदारवाद एवं लोकतन्त्रीय भावनाओं से यूरोप को दूर रखने की अपनी प्रतिज्ञा को दुहराया था, किन्तु उन्होंने अंकुरित बीजों को पहचाना नहीं था। यही कारण है कि जिन व्यवस्थाओं को स्थापित करने की कोशिश वियना कांग्रेस ने की थी अगले एक सौ वर्ष तक वे ध्वस्त होती रही।

5. क्रांतिकारी :–

1815 ई. के बाद के वर्षों में दमन और भय से अनेक उदारवादी–राष्ट्रवादी भूमिगत हो गये। बहुत सारे यूरोपीय राज्यों में क्रांतिकारियों को प्रशिक्षण देने और विचारों का प्रसार करने के लिए गुप्त संगठन बनाये गये। क्रांतिकारी होने का मतलब उन राजतंत्रीय व्यवस्थाओं का विरोध करने से था, जो वियना कांग्रेस के बाद स्थापित की गई थी साथ ही स्वतन्त्रता और मुक्ति के लिए प्रतिबद्ध होना और संघर्ष करना क्रांतिकारी होने के लिए जरूरी था। ज्यादातर क्रांतिकारी राष्ट्र–राज्यों की स्थापना को आजादी के इस संघर्ष का अनिवार्य हिस्सा मानते हैं।

6. भाषा और लोककथाओं का योगदान :–

राष्ट्रवाद का विकास केवल युद्धों और क्षेत्रीय विस्तार से नहीं हुआ। कला, काव्य, कहानियों–किस्सों और संगीत ने राष्ट्रवादी भावनाओं को गढने और व्यक्त करने में सहयोग दिया। स्थानीय बोलियों व स्थानीय लोक साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय संदेश को ज्यादा लोगों तक पहुँचाना तथा राष्ट्रीय भावना को जीवित रखा गया। भाषा ने भी राष्ट्रीय भावनाओं के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। रूसी कब्जे के बाद पोलिस भाषा को स्कूलों से बलपूर्वक हटा कर रूसी भाषा को हर जगह जबरन लादा गया। 1831 ई. के रूस के विरूद्ध एक सशस्त्र विद्रोह हुआ जिसे आखिरकार कुचल दिया गया। इसके अनेक सदस्यों ने विरोध के लिए भाषा को हथियार बनाया। चर्च के आयोजनों और सम्पूर्ण धार्मिक शिक्षा में पोलिस का इस्तेमाल हुआ। पोलिस भाषा रूसी प्रभुत्व के विरूद्ध संघर्ष के प्रतीक रूप में देखी जाने लगी।

औद्योगिक क्रान्ति :–

मानव सभ्यता के आरम्भ से उन्नसवीं सदी पूर्व तक दुनिया का सारा काम–काज सामान्यतया हस्त चलित औजारों के द्वारा ही किया जाता था। मानव ने ऊर्जा के कई नये स्रोतों की खोज की और इनके उपयोग से उसकी कार्य–शक्ति की कोई सीमा नहीं रही। वाष्प–शक्ति, विद्युत–ज्वलन, गैस आदि क्षेत्र में मानव के बढ़ते चरण थे, जिसकी परिणिति अणु ऊर्जा के अविष्कार में हुई।

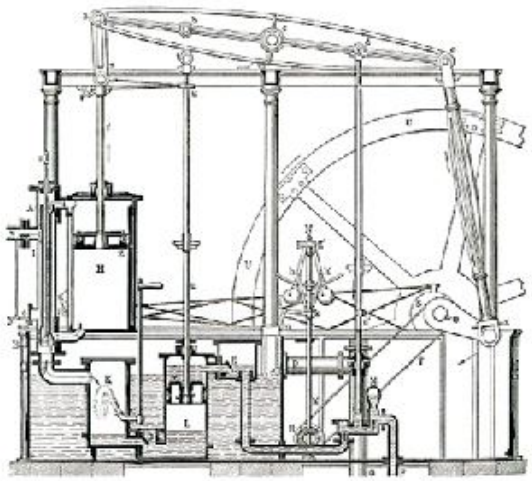

औद्योगिक मशीन

दुनिया में भारत कुटीर उद्योगों से सम्पन्न ऐसा देश है जहां अति प्राचीन काल में भी लोह भट्टियों से उच्च स्तर का इस्पात तैयार होता था। इसका ज्वलंत उदाहरण दिल्ली का 'लौह

स्तम्भ' बिना जंग लगे खड़ा है। कृषि की उन्नत किस्में एवं बदलकर तथा मिश्रित कृषि भारत की ही देन है। बांध एवं सेतु निर्माण भारत की दुनिया को दिशा देने वाली एवं उद्योगों को आधारभूत ढांचा उपलब्ध कराने में अग्रणी भूमिका है। हजारों वर्ष पूर्व श्रीलंका एवं भारत के बीच बनाया गया 'रामसेतु' उदाहरण है, जिसके निर्माण की विधि भी हमारे शास्त्रों में विद्यमान है। वर्तमान में 19वीं शताब्दी से पूर्व कृषि उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य की उत्तम व्यवस्था भारत में वर्षों पूर्व विद्यमान रही है, जबकि दुनिया में तथाकथित हजारों विकसित राष्ट्रों द्वारा 19 वीं सदी से नये प्रयोग प्रारम्भ किये हैं।

औद्योगिक क्रांति का अर्थ :–

औद्योगिक क्राति का तात्पर्य उत्पादन–प्रणाली में हुए उन आधारभूत परिवर्तनों से हैं, जिनके फलस्वरूप जन संसाधनों को अपने परम्परागत कृषि, व्यवसाय एवं घरेलू उद्योग–धंधों को छोड़कर नये प्रकार के वृहत् उद्योगों में काम करने तथा यातायात के नवीन साधनों के प्रयोग का अवसर मिला। औद्योगिक क्रांति शब्द का प्रयोग यूरोपीय विद्वानों में फ्रांस के जार्जिस मिशले और जर्मनी काईड्रिक एंजेम द्वारा किया गया। अर्नोल्ड टॉयनवी ने अपनी पुस्तक "लेक्चर्स ऑन इण्डस्ट्रियल रिवोल्यूशन" में यह स्पष्ट किया है कि औद्योगिक क्रान्ति कोई आकस्मिक घटना नहीं है, वरन् विकास की सतत प्रकिया है। इतिहासकार "जी.डब्लू साउथ गेट" के अनुसार औद्योगिक क्रान्ति, औद्योगिक प्रणाली में परिवर्तन था जिसमें हस्तशिल्प के स्थान पर शक्ति संचालित यंत्रों से काम लिया जाने लगा तथा औद्योगिक संगठन में परिवर्तन हुआ। घरों में उद्योग चलाने की अपेक्षा कारखानों में काम होने लगा। इतिहासकार सी. डी.हेजन का मत है कि कुटीर उद्योग का मशीनीकरण औद्योगिक क्रांति है। डेविज के अनुसार औद्योगिक क्रांति का तात्पर्य उन परिवर्तनों से है जिन्होंने यह संभव कर दिया था कि मनुष्य उत्पादन के प्राचीन उपायों को त्याग कर विस्तृत रूप से कारखानों में वस्तुओं का उत्पादन कर सकें। एन्साइक्लोपीडिया आफ साइसेंज खण्ड आठ के अनुसार आर्थिक और तकनीकी विकास जो अठारहवीं शताब्दी में अधिक सशक्त और तीव्र हो गया था, जिसके फलस्वरूप आधुनिक उद्योगवाद का जन्म हुआ, जिसे औद्योगिक क्रांति कहा जाता है।

हम यह कह सकते हैं कि औद्योगिक क्रांति का अर्थ उस आर्थिक व्यवस्था से है, जो परम्परागत कम उत्पादन और विकास की निम्न अवस्था से निकलकर आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र में प्रविष्ठ होती है जिससे अधिक उत्पादन, जीवन का रहन–सहन और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है और उत्पादन दर निरन्तर बढ़ती रहती है, जिसका मनुष्य, समाज और राज्य पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

औद्योगिक क्रांति से होने वाले परिवर्तन :–

1. उत्पादन के लिए जो कार्य पहले हाथ से किये जाते थे वे अब शक्ति चालित यंत्रों से किये जाने लगे।
2. इस्पात की बढती माँग की पूर्ति के लिए इस्पात बनाने के कारखाने खोले जाने लगे।
3. कृषि कार्यो में शक्ति चालित मशीनों का प्रयोग होने के कारण छोटे–छोटे खेतों के स्थान पर बड़े–बड़े फार्मों में खेती की जाने लगी।
4. पूंजी का उपयोग बढने के कारण बैंकिग पद्धति का विकास हुआ।
5. वाष्प चालित इंजन और यन्त्रचालित जहाजों के कारण यातायात में आमूल चूल परिवर्तन हो गया।
6. अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि हेतु संगठित व्यापार तंत्र विकसित किया गया।
7. कम मानव श्रम एवं अधिकतम उत्पादन के सिद्धान्त को अपनाया गया।

औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड से प्रारम्भ क्यों हुई ?

इंग्लैण्ड पहला देश था जहाँ सबसे पहले आधुनिक औद्योगिकीकरण का अनुभव किया गया। इंग्लैण्ड में यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा अनेक ऐसी परिस्थितियां थी, जिन्होंने औद्योगिक क्रांति को इंग्लैण्ड में सबसे पहले प्रारम्भ किया।

1. इंग्लैण्ड का विस्तृत औपनिवेशिक साम्राज्य:– इंग्लैण्ड में अट्ठारवीं सदी के औपनिवेशिक साम्राज्य से कच्चा माल व नवीन बाजार उपलब्ध हुए। जबकि यूरोप के अन्य देशों के पास उपनिवेश नहीं थे।

2. लोहे और कोयले की खानें पास–पास होना:– इंग्लैण्ड में लोहे और कोयले की खानें पास–पास होने के कारण पक्का लोहा निर्माण में अधिक सुविधा हुई। मशीनों के निर्माण के लिये पक्का लोहा आवश्यक था।

3. उपभोग के अनुरूप उत्पादन:– फ्रांस का निर्यात– व्यापार उच्च–कोटि की विलासी वस्तुओं का था। विलासी वस्तुओं का उपभोग हमेशा सीमित रहता है जबकि इंग्लैण्ड का निर्यात–व्यापार उन वस्तुओं का था जिनकी जरूरत बड़ी मात्रा में रहती थी। इंग्लैण्ड का विश्वास था कि यदि उन्हें और अधिक सस्ता बनाने के साधन खोजे जाये तो उनका बाजार और बढ़ सकता है। इसलिए इंग्लैण्ड उन तरीकों को अपनाने के लिए तैयार था, जिनसे वस्तुओं

का बडी मात्रा में उत्पादन संभव हो सके।

4. अर्द्धकुशल कारीगरों की उपलब्धता:– जब इंग्लैण्ड में सामन्ती व्यवस्था भंग हुई तो बड़ी संख्या में अर्द्ध–कुशल कारीगर शहरों में जा बसे। जैसे ही औद्योगिक क्रांति हुई, तब ये अर्द्ध–कुशल कारीगर नई मशीनों पर काम करने के लिए उपलब्ध हो गये।

5. फ्रांसीसी क्रांति एवं युद्ध:– फ्रांसीसी क्रांति एवं नेपोलियन के युद्धों ने इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति के विकास में महत्व पूर्ण योगदान दिया। युद्ध के दिनों में इंग्लैण्ड को अपने सैनिकों व अपने साथी देशों के सैनिकों को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन के तरीकों में सुधार करने की आवश्यकता पड़ी।

6. पूंजी की उपलब्धता:– यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा इंग्लैण्ड के पास बडे–बडे कारखाने लगाने के लिए पूंजी उपलब्ध थी। तात्कालिक परिस्थितियाँ पूंजी संग्रह तथा उसके उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिए अनुकूल थी। अट्ठारवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में उद्योगपतियों को ऋण प्राप्त करने तथा पूंजी जमा करने की सुविधा मिल गई।

7. इंग्लैण्ड की अनुकूल भौगोलिक स्थिति:– व्यापारिक दृष्टि से इंग्लैण्ड की भौगोलिक स्थिति अच्छी थी। इंग्लैण्ड के चारों ओर समुद्री सीमा होने से बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित होने के कारण वह युद्ध जनित हानियों से बचा रहा और अपना औद्योगिक विकास कर सका।

8. इंग्लैण्ड में हुई कृषि क्रांति ने भी औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित किया।

9. वैज्ञानिक आविष्कारों को प्रोत्साहन:– इंग्लैण्ड यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा वैज्ञानिकों को राजनीति एवं मजहबी हस्तक्षेप से अधिक मुक्त रखता था तथा वैज्ञानिक संस्थाओं को अधिक प्रोत्साहन देता था। जिससे इंग्लैण्ड में वैज्ञानिक आविष्कार अधिक हुए।

औद्योगिक क्रान्ति के समय विभिन्न क्षेत्रों में हुए आविष्कार एवं सुधार :–

कृषि क्षेत्र :– औद्योगिक क्रान्ति के समय सबसे पहले कृषि के क्षेत्र में सुधार हुए। यह माना जाता है कि कृषि के बिना औद्योगिक क्रांति सम्भव नहीं थी। सत्रहवीं शताब्दी तक कृषि क्षेत्र में सामान्यतः वही विधियाँ और उपकरण प्रयोग में लाये जाते थे, जो कई शताब्दियों से प्रयोग में लाये जा रहे थे। कृषि तकनीक में परिवर्तन नहीं होने के कारण कृषि जन्य वस्तुओं की माँग राज्य की खपत से अधिक नहीं थी। लेकिन जब कारखाना प्रणाली का विस्तार हुआ, शहरों की आबादी बढ़ी तो अधिक अन्न और कारखानों के लिए अधिक कपास की माँग बढी। अतः कृषि जन्य वस्तुओं की माँग की पूर्ति के लिए कृषि के क्षेत्र में वैज्ञानिक तरीकों से काम करने और कृषि उपयोगी मशीनों को बनाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

दूसरा कारण अब लोग मुनाफे के लिए खेती में पूँजी लगा रहे थे वास्तव में कृषि क्षेत्र में पूंजी के प्रयोग ने कृषि में क्रांति ला दी। सर्वप्रथम यार्कशायर के जमींदार "जेथ्रोटल" ने बीज बोने की मशीन सीड ड्रिल बनाई। जिससे बीज बोने का कार्य अधिक व्यवस्थित तथा सुचारू रूप से होने लगा। एक अंग्रेज जमींदार टाउनशैण्ड ने फसलचक्र का सिद्धान्त दिया, जिसमें फसलों को अदल–बदल कर बोने से भूमि की उर्वरा शक्ति बनाई रखी जा सकती थी। अब परती छोड़ने की आवश्यकता नहीं थी, तथा प्रति एकड फसल उत्पादन अधिक हो गया। 1770 ई. के आस पास राबर्ट बेक बैल ने कृषि के साथ–साथ पशुपालन को एक लाभदायक व्यवसाय बना दिया। उसने भेड़ों और गायों की नस्ल सुधारने के लिए प्रयोग प्रारम्भ किये। वैज्ञानिक प्रजनन पद्धति के नवीन प्रयोग से उसने पहले की अपेक्षा तिगुनी वजन की भेड़ें तैयार करने में सफलता प्राप्त की। 1793 ई. में अमेरिकी निवासी ह्विटन ने अनाज को भूसे से अलग करने की मशीन तथा 1834 में साइरस के एच. मैककोरमिक ने फसल काटने वाली मशीन का आविष्कार किया। कालान्तर में कृषि में यन्त्रीकरण बढता चला गया। शक्ति से चलने वाली मशीनों के आविष्कारों ने कृषि में क्रान्ति ला दी।

वस्त्र उद्योग में नये आविष्कार :–

औद्योगिक क्रांति की शुरुआत मुख्यतः वस्त्र उद्योग से हुई। 18 वीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप के उद्योग में वस्त्र बनाने की प्राचीन प्रणाली वस्त्रों की माँग को पूरा करने में असमर्थ थी। इंग्लैण्ड में पहले सूती वस्त्र भारत से आयात किये जाते थे लेकिन जब ईस्ट इंडिया कम्पनी का राजनीतिक नियत्रंण भारत पर हो गया तब इंग्लैण्ड ने कपड़े के साथ–साथ कपास का आयात करना भी प्रारम्भ कर दिया। यूरोप में बढ़ती कपड़ों की माँग को पूरा करने के लिए इस क्षेत्र में नये आविष्कार किये गये। 1733 ई. में "जॉन के" के द्वारा फ्लाईंग शटल लूम (Flying Shuttle Loom) की खोज की गई जिसकी सहायता से कम समय में अधिक चौड़ा कपड़ा बनाना संभव हो गया। जेम्स हरग्रीव्ज ने 1765 ई. में कताई की मशीन (Spinning Jenny) बनाई, जिससे एक व्यक्ति एक

साथ कई धागे कात सकता था। 1769 ई. में "रिचर्ड आर्कराइट" ने वाटर फ्रेम (Water Frame) का अविष्कार किया जिससे पहले की अपेक्षा मजबूत धागा बनाया जाने लगा। 1779 ई. में "सैम्यूअल क्राम्टन" द्वारा बनाई गई "म्यूल" द्वारा कता हुआ धागा बहुत मजबूत और बढिया होता था। 1787 ई. में एडमड कार्टराइट द्वारा पावरलूम यानी शक्ति चालित करघे का आविष्कार किया गया।

लौह उद्योग में नये तकनीकी परिवर्तन :–

इंग्लैण्ड में मशीनीकरण में काम आने वाली मुख्य सामग्री कोयला और लौह अयस्क, बहुतायत से उपलब्ध था। इसके अलावा, वहाँ उद्योग में काम आने वाले अन्य खनिज जैसे– सीसा, तौंबा और रांगा (टिन) भी खूब मिलते थे। लेकिन पुरानी पद्धति से लोहे की माँग की पूर्ति नहीं की जा सकती थी अतः लौह अयस्क को शुद्ध करने के लिए विभिन्न विधियों की खोज की जाने लगी। 1709 ई. में "अब्राहम डर्बी" द्वारा धमन भट्टी का आविष्कार किया गया जिसमें सर्वप्रथम कोक (पत्थर का कोयला) का प्रयोग किया जिससे लौह अयस्क को पिघलाने और साफ करने का कार्य सुगम हो गया। इस आविष्कार ने धातुकर्म उद्योग में क्रांति ला दी। द्वितीय डर्बी ने (1711–68 ई) ने ढलवा लोहे से पिटवाँ कर लोहे का विकास किया। हेनरी कोर्ट ने (1740–1823 ई.) ने आलोडन भट्टी (Puddling Furance) (जिससे पिघले लोहे में से अशुद्धि को दूर किया जा सकता था) और बेलन मिल (Rolling mil) का आविष्कार किया, जिससे शुद्ध और अच्छा लोहा बनना संभव हुआ। लोहे से बनी मशीन अधिक वजनदार होती थी और उनमें जंग भी लग जाती थी। इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए खोज हुई और इस्पात का अविष्कार हुआ। इस्पात बनाने में लोहे में कुछ मात्रा में कार्बन, मैंगनीज तथा अन्य पदार्थों का उपयोग किया गया। इस्पात लोहे की अपेक्षा हल्का, मजबूत जंगरोधी और लचकदार होता था। हेनरी बेसेमर ने एक नयी इस्पात बनाने की विधि खोजी जिसे बेसेमर प्रक्रिया के नाम से जाना जाता है। इस विधि से ढलवीं लोहे से सीधा इस्पात तैयार किया जाता था इससे लौह उद्योग में एक क्रांति आई।

परिवहन के क्षेत्र में नवीन आविष्कारः–

बढ़ते व्यापार एवं उद्योग के कारण परिवहन के साधनों में सुधार की आवश्यकता महसूस की गई। परिवहन को आसान और सस्ता बनाने के लिए स्कॉटलैण्डवासी मकाडम ने सड़क निर्माण का एक नया तरीका निकाला जिसमें सड़क के निचले भाग में भारी पत्थरों की परत उसके बाद छोटे–छोटे पत्थरों की परत और उसके बाद मिट्टी बिछायी जाती थी।

भारी सामान का परिवहन सड़क मार्ग से खर्चीला और असुविधा जनक होता था। अतः भारी सामान के परिवहन को सुगम व सस्ता करने के लिए नहरों का निर्माण कराया गया। इंग्लैण्ड में पहली नहर "वर्सली कैनाल" 1761 ई. "जैम्स ब्रिदली" द्वारा बनाई गई। इससे माल ढोने का खर्चा आधा रह गया। इंग्लैण्ड में 1788 ई. से 1796 ई. में अनेक नहरों का निर्माण कराया गया। जिसके कारण यह काल "नहरोन्माद" के नाम से पुकारा जाने लगा। 1869 ई. में फ्रांसिसी इंजिनियर फर्टिनोद द लैस्पैथ ने स्वेज नहर का निर्माण कराया, जो भूमध्य सागर और लाल सागर को मिलाती है, इससे यूरोप और भारत के मध्य की दूरी एक तिहाई कम हो गई। परिवहन को अधिक सस्ता और सुगम बनाने के लिए परिवहन साधनों में भाप की शक्ति का प्रयोग किया जाने लगा। अमेरिकी रोबर्ट फुल्टन ने 1807 ई. में प्रथम–वाष्प चलित नौका का आविष्कार किया। जो पहली बार हडसन नदी में चली। स्थल मार्ग पर लोहे की पटरियों पर चलने वाले रेल इंजन के अविष्कार ने यातायात के क्षेत्र में क्रांति ला दी। 1814 ई. में जार्ज स्टीफेन्स ने प्रसिद्ध भाप इंजन "रॉकेट" का आविष्कार किया, इसी के साथ रेलगाड़ियाँ परिवहन का एक ऐसा साधन बन गया, जो वर्ष भर उपलब्ध रहता था। 1830 ई. में प्रथम रेलगाड़ी मैन चेस्टर और लिवरपूल के बीच चली। रेल के आविष्कार ने कोयला, लोहा एवं अन्य औद्योगिक उत्पादों को कम समय और कम खर्च में लाना–ले जाना संभव बना दिया।

संचार के क्षेत्र में हुए नये प्रयोग :–

1844 ई. में सैम्युअल मौर्स ने एक व्यावहारिक तार यंत्र का आविष्कार किया। इस तार–यंत्र ने विश्व के महाद्वीपों को परस्पर जोड़ने का काम किया। 1876 ई. में ग्राहम बैल ने टेलीफोन का आविष्कार किया जिसने संचार की दुनिया में क्रांति ला दी।

औद्योगिक क्रांति के परिणाम :–

औद्योगिक क्रांति के परिणामों को चार भागों में अध्ययन की दृष्टि से बांट सकते है।

1. आर्थिक 2. राजनैतिक
3. सामाजिक 4. वैचारिक परिणाम

1. आर्थिक परिणामः– उत्पादन एवं वाणिज्य में असंतुलित वृद्धि हुई तथा आर्थिक संतुलन बिगड़ा। ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा नगरों का अधिक विकास हुआ। कुटीर उद्योगों का विनाश हुआ। राष्ट्रीय बाजारों को राज्य द्वारा संरक्षण मिला तथा औद्योगिक पूंजीवाद का विकास हुआ।

2. **राजनैतिक परिणाम :–** राजनीति में लोकतंत्र की माँग बढी तथा मध्यम वर्ग की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं का उदय हुआ। औद्योगिक क्रांति से औपनिवेशिक स्पर्धा की शुरुआत हो गई। श्रमिक संगठित हुए और अपनी माँगों को लेकर आन्दोलनों का उदय हुआ।

3. **सामाजिक परिणाम :–** नये सामाजिक वर्ग का उदय हुआ। नैतिक मूल्यों में गिरावट आई, संयुक्त परिवार प्रथा में बिखराव हुआ। नयी संस्कृति का जन्म हुआ तथा मानवीय संबंधों में गिरावट आई। शहरों में मजदूरों की संख्या बढने से गन्दी बस्तियों की समस्या बढी।

4. **वैचारिक परिणाम :–** आर्थिक उदारवाद का स्वागत किया गया। समाजवाद का उदय हुआ।

जर्मनी और इटली का एकीकरण

जर्मनी का एकीकरण :– जर्मनी 18वीं शताब्दी के अन्त में 300 से अधिक छोटी–बड़ी रियासतों में बँटा हुआ था। भौगोलिक दृष्टि से जर्मनी के राज्यों को मोटे तौर पर तीन भागों में बाँटा जा सकता है, यथा उत्तरी,मध्य तथा दक्षिणी। उत्तरी भाग में प्रशा, सैक्सनी, हनोवर, फ्रेंकफर्ट, आदि राज्य थे, जबकि मध्य भाग में राइनलैण्ड और दक्षिणी में बुर्टेम्बर्ग, बवेरिया, बादेन, पैलेटिनेट, हेस–डर्मेस्टाट आदि। आकार और सैनिक शक्ति की दृष्टि से 'प्रशा' सबसे शक्तिशाली था लेकिन राजनैतिक दृष्टि से विखंडित होते हुए भी दो बातें जर्मनी के राज्यों को आपस में जोड़े हुई थी। पहली राज्यों में रोमन सम्राट के प्रति सैद्धान्तिक रूप से आदर की भावना रखना तथा दूसरी "डाइट" का अस्तित्व जहाँ राज्यों के प्रतिनिधि एक मंच पर उपस्थित होते थे।

जर्मनी में राष्ट्रीयता के निर्माण का कारण 19 वी. शताब्दी में हुई फ्रांसीसी लिपान के अनुसार– "यह इतिहास के मजाकों में से एक है कि आधुनिक जर्मनी का जन्मदाता नेपोलियन था"।

जर्मनी के एकीकरण में प्रमुख बाधाएँ:–

1. जर्मनी की समस्याओं में आस्ट्रिया का हस्तक्षेप।
2. जर्मन राज्यों में आर्थिक, पांथिक, सामाजिक तथा राजनैतिक असमानताऐं।
3. इंग्लैण्ड भी फ्रांस की भाँति जर्मन राज्यों में रुचि बनाए हुए था। उसने हनोवर प्रान्त के बहाने उत्तरी राज्यों में हस्तक्षेप कर रखा था।
4. अधिकांश राज्यों की शिथिल सैनिक शक्ति।
5. जन सामान्य में जागृति का अभाव।

जर्मन के दक्षिणी राज्यों में पोप का प्रभाव जो जर्मन एकीकरण में बाधक था।

जर्मन एकीकरण में सहायक तत्त्व :–

1. जॉलवरीन :– जर्मनी के राजनैतिक एकीकरण की शुरुआत से पूर्व उसके आर्थिक एकीकरण की शुरुआत हो चुकी थी। जो प्रशा द्वारा 1818 ई. में भवार्ज बर्ग–सॉदर शोसन नामक छोटे राज्यों से सीमा शुल्क संधि जॉलवरीन की गई। दोनों राज्यों के मध्य चुंगी समाप्त कर दी गई तथा व्यापार निर्बाध रूप से होने लगा। इस आर्थिक संधि ने प्रादेशिक व क्षेत्रीय प्रभाव को कम कर दिया जो जर्मनी के एकीकरण में बाधक थी। कैटलबी के अनुसार "जॉलवरीन के निर्माण ने भविष्य में प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के राजनीतिक एकीकरण का मार्ग तैयार कर दिया। राबर्ट इरगेग ने लिखा कि "जॉलवरीन ने क्षेत्रीय भावनाओं को दबाया तथा मजबूत जर्मन राष्ट्रवादी तत्त्वों को प्राथमिकता दी।" 1834 ई. तक जर्मन के सभी प्रमुख राज्य इसके सदस्य बन गये। प्रारम्भ में जॉवलरीन के पीछे प्रशा का कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं रहा परन्तु धीरे–धीरे प्रशा जालवरीन के नेतृत्व के माध्यम से जर्मन एकीकरण के राजनीतिक नेतृत्व में उत्तरदायित्व लेने के लिए अज्ञात रूप से प्रस्तुत हो रहा था।

2 .बौद्धिक आन्दोलन :–

जर्मनी के एकीकरण में जर्मन के दार्शनिक, इतिहासकार, साहित्यकार व कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। लिफ्टे, ईगल, डालमेल हार्डेनबर्ग, हेटिंग हाइन प्रमुख दार्शनिकों की भूमिका रही, जिन्होंने जर्मन लोगों में "जर्मन जाति सर्वश्रेष्ठ मनुष्य" होने की भावना भर दी। फिक्टे ने जर्मनी में फ्रांस विरोधी विचारों को उचित दिशा देते हुए उसमें राष्ट्रीयता की भावना भर दी। जर्मनी के जेना विश्वविद्यालय में 1815 ई. में बर्शेनशैफ्ट नामक देशभक्त संगठन का निर्माण किया गया। इस संगठन ने जर्मन देशवासियों के नैतिक उत्थान पर जोर दिया। इस संस्था ने देशवासियों में न्याय, स्वतंत्रता एवं एकता की भावना भर दी।

3. औद्योगिक विकास :–

जॉलवरीन की स्थापना और विस्तार के साथ जर्मनी में व्यापार और उद्योगों के विकास का मार्ग मिला। इस समय प्रशा और रूस दोनों प्रत्येक उद्योग की आधारशिला माने जाते थे। इन संसाधनों से प्रशा में औद्योगिकीकरण तीव्र गति से हुआ। कई स्थानों पर सूती मिलों की स्थापना की गई और रेल निर्माण का विस्तार हुआ तथा जर्मनी के अनेक नगरों को रेलमार्ग से जोड़ा गया। 1860 ई. तक जर्मनी की गणना यूरोप के औद्योगिक राज्यों में की जाने लगी थी। जबकि आस्ट्रिया को अपनी रूढ़िवादी नीति तथा आस्ट्रिया–प्रशा युद्ध के कारण तीव्र आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ रहा था। जबकि प्रशा अपने बढ़ते हुए व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के कारण उन्नति कर रहा था।

3. बिस्मार्क का योगदान :–

1861 ई. में प्रशा शासक फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की मृत्यु हो जाने पर 64 वर्षीय विलियम प्रथम शासक बना। विलियम प्रथम का मस्तिष्क उतना विचारवान व तीक्ष्ण नहीं था, लेकिन उसमें योग्य व्यक्तियों को परखने की एक अनोखी प्रतिभा थी। वह उदारवादी विचारों में विश्वास करता था। लेकिन उसका मानना था कि जर्मनी का एकीकरण राजतंत्र एवं सुदृढ़ सेना के माध्यम से प्रशा ही कर सकता है। प्रशा की सेना को सुदृढ़ करने के लिए बानरून को युद्ध मैत्री और वानमोल्टेक को प्रमुख सेनापति बनाया। जब सैनिक सुधारों को लेकर संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न हो गया तब इस गतिरोध को दूर करने के लिए विलियम प्रथम ने बिस्मार्क को अपना चांसलर नियुक्त किया। बिस्मार्क एक चतुर राजनीतिज्ञ, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों का जानकार तथा कूटनीतिक कुशलता से परिपूर्ण व्यक्तित्व का धनी व्यक्ति था। बिस्मार्क का मानना था कि 1848 से 1849 ई. तक का जो समय राष्ट्रवादियों ने वाद विवाद में समाप्त कर दिया वह उनकी भूल थी। उसका मानना था कि उस काल की बडी समस्यायें भाषण और बहुमत के प्रस्ताव द्वारा नहीं बल्कि रक्त और लौह की नीति से सुलझ सकती थी। बिस्मार्क ने इस कारण प्रशा को शक्तिशाली राज्य बनाने के लिए संसद के निचले सदन द्वारा सैन्य बजट अस्वीकार करने पर उच्च सदन से ही पारित करवा अपनी दृढता का परिचय दिया। जर्मनी के एकीकरण का कार्य तीन चरणों में हुआ–

1. डेनमार्क से युद्ध एवं गेस्टाइन सन्धि :– श्लेसविग तथा हॉल्सटाइन दो डचियों पर डेनमार्क का अधिकार था लेकिन ये डेनमार्क का अविभाज्य अंग नहीं थी। हॉल्सटाइन की अधिकांश जनसंख्या जर्मन थी, साथ ही हॉल्सटाइन जर्मन संघ का सदस्य भी था। दूसरी श्लेसविंग में जर्मन लोग बहुमत में तो थे लेकिन वहाँ डेन लोग भी रहते थे। डेन लोग जर्मनी के एकीकरण के विरोधी थे। 1852 ई. में लंदन में हुए सम्मेलन में यूरोप के शासकों ने डेनमार्क का अधिकार इन डचियों पर इस शर्त पर माना कि भविष्य में डेनमार्क इन को अपने में विलय नहीं करेगा। लेकिन 10 वर्ष बाद ही 1863 ई. में डेनमार्क के शासक फ्रेडरिक ने इन दोनों रियासतों पर अधिकार कर लिया।

इस प्रश्न पर बिस्मार्क को राजनीतिक योग्यता और कूटनीतिक कुशलता दिखाने का अवसर मिल गया। बिस्मार्क इस अवसर का लाभ उठाकर आस्ट्रिया को जर्मनी से बाहर करके जर्मन संघ को समाप्त करना चाहता था। बिस्मार्क को अपने प्रयासों में

चित्र 4.1 बिस्मार्क

सफलता मिली और जनवरी 1864 ई. में दोनों डचियों को लेकर प्रशा और आस्ट्रिया के मध्य समझौता हुआ, जिसमें दोनों रियासतों पर डेनमार्क के अधिकार अस्वीकार कर अंतिम चेतावनी देने का निश्चय किया। यह समझौता बिस्मार्क की विजय थी। फरवरी 1864 ई. में आस्ट्रिया और प्रशा की संयुक्त सेना ने डेनमार्क को हरा दिया। दोनों डचियों के अधिकार को लेकर 14 अगस्त 1865 ई. को गेस्टाइन नामक स्थान पर विलियम और फ्रांसिस जोसफ दोनों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। इस समझौते के अनुसार हॉल्सटाइन आस्ट्रिया को और श्लेसविंग प्रशा को दिया गया तथा लावेन बुर्ग की डची प्रशा को बेच दी गई। कील नामक बन्दरगाह पर प्रशा को किलेबन्दी करने का अधिकार मिल गया।

गेस्टाइन समझौता आस्ट्रिया की राजनीतिक भूल और बिस्मार्क की बड़ी कूटनीतिक विजय थी। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के साथ हॉल्सटाइन के आगामी प्रश्न पर युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

2. आस्ट्रिया–प्रशा एवं प्राग की संधि :–

बिस्मार्क का दूसरा कदम गेस्टाइन समझौते के बाद आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करना था । बिस्मार्क ने एक ओर तो युद्ध की तैयारी शुरू कर दी तथा दूसरी और कूटनीति के माध्यम से आस्ट्रिया को यूरोपियन राष्ट्रों से सहायता न मिले

इसके प्रयास भी शुरू कर दिये। इन कार्यों के लिए अभी उसे अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण भी उसके अनूकूल था। इंग्लैण्ड यूरोपीय राज्यों में हस्तक्षेप न करने की नीति पर चल रहा था। रूस की सहानभूति, पौलेण्ड में चल रहे विद्रोह में सहायता कर प्राप्त कर ली। फ्रांस को राइन के प्रदेश का कुछ भाग देने का वादा कर तटस्थ रहने के लिए तैयार कर लिया। इटली के एकीकरण में आस्ट्रिया बाधक था। 1866 ई. में प्रशा और सार्डीनिया में समझौता हुआ जिसके अनुसार सार्डीनिया आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ता है तो वेनेशिया उसे दिलवा दिया जायेगा।

जब हॉल्सटाइन में जर्मन लोग आस्ट्रिया के विरुद्धआन्दोलन कर रहे थे तो बिस्मार्क गुप्त रूप से उन्हें समर्थन दे रहा था। दूसरी और आस्ट्रिया हॉल्सटाइन में ड्यूक ऑफ आगस्टस वर्ग के पक्ष में चल रहे आन्दोलन को प्रोत्साहित कर रहा था। इस मुद्दे पर आस्ट्रिया व प्रशा में युद्ध प्रारम्भ हो गया। लेकिन 3 जुलाई 1866 ई. को सेडोवा कोनिग्राज का निर्णायक युद्ध हुआ, जिसमें आस्ट्रिया पूर्ण रूप से पराजित हुआ और आस्ट्रिया व प्रशा के मध्य 23 अगस्त 1866 ई. को प्राग की सन्धि हुई। हॉल्सटाइन डची प्रशा में शामिल हो गई तथा प्रशा के नेतृत्व में उत्तरी जर्मन परिसंघ बनाया गया जिसमें आस्ट्रिया को शामिल नहीं किया।

3. फ्रेंको–प्रशियन युद्ध एवं फ्रेंकफर्ट संधि :–

फ्रांस को यह आशा थी कि प्रशा–आस्ट्रिया के तटस्थ रहने पर उसे राइन का कुछ प्रदेश मिल जायेगा, जिससे उसकी सीमा राइन नदी तक हो जायेगी। लेकिन बिस्मार्क ने इस की उपेक्षा की। प्रशा की विजय उत्तरी जर्मन परिसंघ बनने से फ्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को आघात पहुँचा। उधर फ्रांस के राजनीतिज्ञ सेडोवा का प्रतिशोध लेने की माँग कर रहे थे। नेपोलियन तृतीय अपनी गिरती हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करना चाहता था, और कालान्तर में "युद्ध" दोनों राष्ट्रों को अपनी–अपनी समस्या का समाधान नजर आ रहा था।

नेपोलियन तृतीय ने लग्जम्बर्ग खरीदने का प्रस्ताव रखा था। जर्मनी के राष्ट्रवादियों, समाचार पक्षों एवं राजनीतिज्ञों ने लग्जम्बर्ग फ्रांस को देने से मना कर दिया। दूसरा तनाव पूर्ण प्रश्न स्पेन की राजगद्दी को लेकर हुआ, जिससे दोनों देशों के संबंध बिगड़ गये और अन्त में युद्ध के नगाड़े बज गये।

15 जुलाई 1870 ई. को फ्रांस व प्रशा के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया। जर्मनी सेनाओं ने फ्रांस पर तीनों ओर से आक्रमण किया। बीसेनबर्ग, ग्रवलाट के युद्धों में फ्रांस की पराजय हुई। सबसे महत्वपूर्ण युद्ध 2 सितम्बर 1870 ई. को हुआ, जिसमें प्रशा के सेनापति बॉनमोल्टेक ने फ्रांसीसी सेना को पूर्ण रूप से परास्त कर दिया। नेपोलियन तृतीय ने आत्मसमर्पण कर दिया। 18 जनवरी 1871 ई को वर्साय के विख्यात महल में बिस्मार्क ने जर्मनी के सम्राट विलियम प्रथम का राज्याभिषेक किया। 28 फरवरी, 1871 को प्रशा–फ्रांस युद्ध समाप्त हो गया। 21 फरवरी, 1871 ई. को फ्रेंकफर्ट की संधि पर दोनों देशों के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हुए। इस संधि में फ्रांस को मेज व स्ट्रामवर्ग सहित अल्सास व लोरेन के प्रदेश जर्मनी को देने पडे। फ्रांस को युद्ध हर्जाने के रूप में 20 करोड पॉण्ड की रकम क्षतिपूर्ति के रूप में देने के लिए बाध्य किया, जो तीन वर्ष में चुकाने थे।

कहा जा सकता है कि जर्मनी का एकीकरण "रक्त और लोहे" की नीति, बिस्मार्क के दृढ़ निश्चय, अदम्य साहस तथा कूटनीतिक कुशलता के कारण ही हो सका।

इटली का एकीकरण :– इटली के एकीकरण पर नेपोलियन की विजयों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडा। नेपोलियन ने इटली की विजय के पश्चात् इटली में गणतन्त्र की स्थापना की और सम्राट बनने के बाद अनेक छोटे–बड़े राज्यों को समाप्त कर केवल तीन भागों में समाहित कर दिया था। सामन्तवादी व्यवस्था समाप्त कर दी और आन्तरिक व्यापार पर प्रतिबंधों का अन्त कर दिया। इटली में एक समान कानून लागू किये गये। जब नेपोलियन ने इटली का उपनिवेश के रूप में प्रयोग किया, तो इटलीवासियों की राष्ट्रीय भावनाएँ भड़क उठी। इन्हीं कारणों से नेपोलियन को इटली में राष्ट्रवाद का जन्मदाता कहा जाता है।

मेरियट के अनुसार "नेपोलियन ही वह पहला व्यक्ति था, जिसने सर्वप्रथम इटली को एकता प्रदान की"।

इटली के एकीकरण में प्रमुख बाधाएँ :–

1. इटली में प्रतिक्रियावादी विदेशी प्रभुत्व का होना एक प्रमुख बाधा थी। लोम्बार्डी व वेनेशिया सीधे नियत्रंण में थे और मेडेना व टस्कनी पर आस्ट्रिया से संबंधित राजकुमारों का अधिकार था।
2. पोप अपने राज्य रोम पर अपनी सत्ता बनाये रखना चाहता था।
3. इटली मोटे तौर पर तीन राजनीतिक इकाइयों में विभक्त था जो एकीकरण में प्रमुख बाधा थी।
4. इटली का सामन्तवादी एवं कुलीन वर्ग नेपोलियन के पतन के पश्चात् पुनः सामन्तवादी तथा जागीरदारी प्रथा स्थापित करना चाहता था क्योंकि कुलीन वर्ग को डर था कि एकीकरण होने के पश्चात् उनका प्रभाव समाप्त हो जायेगा।
5. इटली में अभी तक राष्ट्रीय चेतना जागृत नहीं हुई थी। सभी

राज्यों की अपनी अलग–अलग परम्पराएँ एवं रीति रिवाज थे। एक राज्य दूसरे राज्य से मिलकर नहीं रहना चाहता था।

6. इटली के एकीकरण में एक यह भी बाधा थी कि एकीकरण किस विचारधारा के अन्तर्गत किया जाये ?इस बारे में राजनीतिज्ञ एकमत नहीं थे। मैजिनी और गैरीबाल्डी इटली का एकीकरण गणराज्य के रूप में चाहते थे, जबकि जियोबर्टी, पोप के अधीन राज्यों के संघ का समर्थक था।

इटली के एकीकरण में सहायक प्रमुख संगठन एवं व्यक्ति :–

1. कार्बोनरी :– इस गुप्त संस्था की स्थापना 1810 ई. में नेपल्स में हुई थी। इस संस्था में सभी वर्गों के लोग सम्मिलित थे। इस संस्था के दो प्रमुख उद्देश्य थे– विदेशियों को इटली से बाहर निकालना और वैधानिक स्वतन्त्रता की स्थापना करना। प्रभावशाली नेतृत्व और निश्चित उद्देश्यों के अभाव में यह संस्था विफल हो गई।

2. यंग इटली :– यंग इटली की स्थापना मैजिनी ने 1831 ई. में की, जिसने इटली के राष्ट्रीय आन्दोलन में शीघ्र कार्बोनरी का स्थान ले लिया। मैजिनी इटली के युवकों पर विश्वास करता था। उसका कहना था कि यदि समाज में क्रांति लानी है तो नेतृत्व नवयुवकों के हाथों में दे दो उनके हृदय में असीम शक्ति छिपी होती है। इस संस्था के तीन नारे थे परमात्मा पर विश्वास रखो, सब भाईयों को एक साथ मिलाओ और इटली को मुक्त करो। इस संस्था के उद्देश्य स्पष्ट थे कि इटली की एकता और स्वतन्त्रता की प्राप्ति तथा स्वतंन्त्रता, समानता और जनकल्याण पर आधारित राज्य की स्थापना हो। इस संस्था ने इटलीवासियों में देशभक्ति, संघर्ष, त्याग, बलिदान और स्वतन्त्रता की भावना भर दी।

मैजिनी ने इटली की जनता से आह्वान किया और कहा कि "संयुक्त इटली के आदर्श को छोड़कर अन्य किसी चीज के पीछे मत दौड़ो। इटली एक राष्ट्र बन कर रहेगा। मैजिनी देश भक्तों की दृष्टि में देवदूत था जो इटली के भविष्य को निर्मित करने आया था। वास्तव में मैजिनी ने इटली के एकीकरण की आधारशिला रखी थी। सालथगेट लिखते है कि "यह मैजिनी ही था, जिसने अपने देशवासियों में स्वतन्त्रता की भावना उत्पन्न की। यद्यपि वह काबूर की भाँति सेना नायक नहीं था परन्तु वह एक कवि, आदर्शवादी विचारक और क्रांति का अग्रदूत था।"

काउन्ट कैमिलो– डी काबूर का जन्म 1810 ई. में ट्यूरिन के एक कुलीन परिवार में हुआ था। सैनिक शिक्षा प्राप्त कर उसने सेना में इंजीनियर की नौकरी कर ली। वह उदारवादी विचारकों का समर्थक था साथ ही इंग्लैण्ड यात्रा के दौरान संसदीय प्रणाली का अध्ययन भी किया था। वह इटली में इसी प्रकार की प्रणाली स्थापित करना चाहता था। काबूर का मानना था कि इटली का एकीकरण पीडमाण्ट के नेतृत्व में ही पूर्ण हो सकता है। इसी दिशा में अपने विचारों के प्रचार–प्रसार के लिए 1847 ई. में वह वित्त एवं उद्योग मंत्री बना और 1852 ई. में विक्टर इमेनुअल ने उसे प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया। काबूर एक व्यावहारिक, कूटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ एवं राजतन्त्र का समर्थक व्यक्ति था। वह इटली की शक्ति एवं सामर्थ्य से भली–भाँति परिचित था। इसीलिए उसकी सोच थी कि जब तक विदेशी सहायता प्राप्त नहीं होगी तब तक इटली का एकीकरण नहीं हो सकता। इसी कारण वह इटली के एकीकरण के प्रश्न का अन्तरराष्ट्रीयकरण करना चाहता था। काबूर की आन्तरिक नीति, सुधारों और विदेश नीति ने इटली का एकीकरण पूर्ण किया।

काबूर का एकीकरण में योगदान :–

काबूर वह व्यक्ति था जिसके बिना मैजिनी का आदर्शवाद और गैरीबाल्डी की वीरता निरर्थक होती। काबूर का मानना था कि 1. पीडमांट सार्डीनिया ही इटली का एकीकरण करने में समर्थ है। 2. आस्ट्रिया एकीकरण में सबसे अधिक बाधक हैं 3. आस्ट्रिया को बिना विदेशी सहायता के बाहर नहीं किया जा सकता है।

काबूर यथार्थवादी व्यावहारिक राजनीति में विश्वास करता था। वह इटली के प्रश्न का अन्तरराष्ट्रीय –करण करना चाहता था ताकि विदेशी शक्तियों की सक्रिय मदद एवं सहानुभूति हासिल की जा सके। इस समय यूरोप में दो ही शक्तिशाली देश थे फ्रांस और इंग्लैण्ड। इंग्लैण्ड ने यूरोपीय देशों में हस्तक्षेप नहीं करने की नीति बनाने से, उससे मदद मिलने की आशा नहीं थी। फ्रांस का शासक इटली के एकीकरण के प्रश्न पर इटली से सहानुभूति रखता था। अतः काबूर इसी दिशा में आगे बढ़ना चाहता था। काबूर ने क्रिमिया की मदद के लिए सेना भेजकर सहानुभूति और मित्रता प्राप्त कर ली। काबूर को इस मित्रता का लाभ पेरिस सम्मेलन (1856 ई.) में मिला। आस्ट्रिया के विरोध के बाद भी सार्डिनिया राज्य को पेरिस सम्मेलन में आमंत्रित किया गया। काबूर ने इस सम्मेलन में इटली की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के लिए आस्ट्रिया को जिम्मेदार ठहराया। पेरिस सम्मेलन में काबूर ने इटली के प्रश्न पर नैतिक विजय प्राप्त कर ली।

नेपोलियन का सहयोग एवं लोम्बार्डी की प्राप्ति :–

सम्राट नेपोलियन तृतीय लगभग एक माह की छुट्टी

मनाने सार्डीनिया की सीमा के पास ठहरा हुआ था। काबूर बिना किसी औपचारिक नियंत्रण के प्लोम्बियर्स जा पहुँचा। काबूर और नेपोलियन की भेंट के फलस्वरूप एक समझौता हुआ। जिसमें निम्नलिखित निर्णय हुए :–

1. आस्ट्रिया और सार्डीनिया के मध्य युद्ध होने पर 2 लाख सैनिक सहायता फ्रांस देगा।
2. नेपल्स, सिसली और पोप के राज्य बने रहेंगे।
3. लोम्बार्डी और वेनेशिया सार्डिनिया को प्राप्त होंगे।
4. फ्रांस की सहायता के बदले नीस व सेवाय के प्रदेश फ्रांस को मिलेंगे।
5. विक्टर इमेन्युअल अपनी पुत्री का विवाह प्रिंस जेरोम बोनापार्ट के साथ कर देगा।

इस समझौते में यह तय किया गया कि आस्ट्रिया को भड़का कर यथाशीघ्र युद्ध आरम्भ किया जाये, ताकि आस्ट्रिया आक्रामक लगे तथा सार्डीनिया आत्मरक्षार्थ लड़ने वाला प्रतीत हो। काबूर ने आस्ट्रिया को भड़काने के लिए मस्स व कर्राटा प्रान्तों में विद्रोह करवा दिया। आस्ट्रिया ने वैसी ही प्रतिक्रिया दी जैसी काबूर चाहता था। आस्ट्रिया ने 23 अप्रैल 1859 ई. को तीन दिन का अल्टीमेटम दे दिया। 29 अप्रैल, 1859 ई. को फ्रांस ने इटली के पक्ष में युद्ध की घोषणा कर दी। आस्ट्रिया की लगातार पराजय हो रही थी, लेकिन फ्रांस सार्डीनिया के बिना पूछे युद्ध से अलग हो गया और नेपोलियन तृतीय ने 11 जुलाई, 1859 ई. को विलाफ्रेंका नामक स्थान पर आस्ट्रिया के सम्राट जोसेफ से भेंट कर युद्ध विराम का समझौता कर लिया जिसकी निम्न शर्तें तय की गई :–

1. लोम्बार्डी सार्डिनिया को दिया गया।
2. वेनेशिया आस्ट्रिया को दिया गया।
3. परमा, मेडोना और अस्कनी को पुनः स्वतंत्र राज्य बना दिया गया। पोप के अधीन इटली राज्यों का संघ बनाया गया।

इस संधि से इटली के लोगों व काबूर को निराशा हाथ लगी। इस संधि से काबूर भी अप्रसन्न था, उसने त्याग पत्र दे दिया। विक्टर इमेन्युअल ने आस्ट्रिया और फ्रांस के साथ मिलकर 10 नवम्बर 1859 को ज्यूरिख की संधि पर हस्ताक्षर किये। ज्यूरिख की संधि द्वारा विलाफ्रेंका की विराम संधि की पुष्टि हो गई। इसी के साथ इटली का प्रथम चरण पूर्ण हो गया।

मध्य इटली का विलय :–

युद्ध समाप्ति के पश्चात् मध्य इटली के राज्यों ने परमा, मेडिना, टस्कनी, बोलोग्ना और रोमाग्ना में जनता ने विद्रोह कर दिये था। वे इटली में समाहित होने को उत्सुक थे। इंग्लैण्ड की अहस्तक्षेप की नीति और इटली के प्रति सहानुभूति इन राज्यों को इटली में एकीकृत होने को प्रोत्साहित कर रही थी। आस्ट्रिया चाहता था कि ज्यूरिख संधि के तहत इन राज्यों में पुराने शासक पुनः स्थापित कर दिये जाए। काबूर ने मौके का फायदा उठाकर फ्रांस को नीस और सेवायें के प्रदेश देने का वायदा करते हुए उसे अपनी ओर मिला लिया। मार्च 1860 ई. में मध्य इटली राज्यों में जनमत संग्रह कराया गया। इसमें परमा, मेडोना, टस्कनी, बोलोग्ना और वियोकेन्जा ने सार्डिनिया में और नीस व सेवायें ने फ्रांस के साथ मिलने का मत दिया। इंग्लैण्ड की सहानुभूति इटली के साथ थी, अतः मध्य इटली के राज्यों में जनमत संग्रह के प्रश्न पर इंग्लैण्ड नें फ्रांस के साथ इटली का पक्ष लिया। इसी के साथ इटली का दूसरा चरण पूरा हुआ।

गैरीबाल्डी और नेपल्स और सिसली का विलय :– ज्यूपस गैरीबाल्डी का जन्म 1807 ई. में नीस नामक नगर में हुआ था। उसके पिता उसको उच्च शिक्षा दिलाना चाहते थे, लेकिन गैरीबाल्डी का मन पढने में नहीं लगा। वह केवल इतना पढ़ सका कि पुस्तकें पढ़ सके और अपनी स्वतन्त्र तथा साहसिक प्रवृति को संतुष्ट कर सके।

ज्यूपस गैरीबाल्डी

गैरीबाल्डी भूमध्य सागर की यात्राओं के समय इटली के राष्ट्रभक्तों के सम्पर्क में आया था। वह मैजनी की युवा इटली का सदस्य भी बन गया था। उसने 1833 ई. में नौसैनिक षड़यंत्र में भाग लिया। वह पकड़ा गया और उसे मृत्यु दण्ड की सजा दी गई थी, लेकिन वह दक्षिणी अमेरिका चला गया। वहाँ उसने छापामार युद्ध का प्रशिक्षण लिया। 1854 ई. में वह वापस आया। उसने "लालकुर्ती"

नामक एक देशभक्तों का संगठन बनाया एवं इसी के दम पर वह सिसली में प्रवेश कर पाया।

नेपेल्स और सिसली में शासक विदेशी थे, साथ ही वह शासन करने योग्य भी नहीं थे। मैजिनी, फ्रांसिल क्रिस्पी और गैरीबाल्डी ने वहाँ विद्रोह की योजना बनाई। गैरीबाल्डी ने लगभग 1000 लाल कुर्ती वाले स्वयंसेवकों का दल बना 5 मई, 1860 ई. को सिसली पर आक्रमण कर दिया। गैरीबाल्डी ने विजय प्राप्त कर स्वंय को अधिनायक घोषित कर दिया। विक्टर इमेन्युअल स्वंय सेना लेकर नेपल्स की ओर बढ़ा। टिआनो नामक स्थान पर गैरीबाल्डी और विक्टर इमेन्युअल की भेंट हुई। गैरीबाल्डी ने विक्टर इमेन्युअल को इटली के शासक के रूप में स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् गैरीबाल्डी ने अपनी सेना और समस्त अधिकार विक्टर इमेन्युअल को समर्पित कर दिये। दक्षिण के राज्यों के इटली में विलय के साथ ही इटली का एकीकरण का तृतीय चरण पूर्ण हुआ।

इटली के एकीकरण का अन्तिम चरण वेनेशिया का विलय :–

1866 ई. में प्रशा और आस्ट्रिया के मध्य हुए युद्ध में इटली ने आस्ट्रिया के विरुद्ध प्रशा को सैनिक सहायता दी। 3 जुलाई 1866 ई. को प्रशा ने आस्ट्रिया को पराजित कर दिया। प्रशा और आस्ट्रिया के मध्य प्राग की सन्धि हुई जिसमें इटली को वेनेशिया दिया गया।

रोम का विलय :–

रोम के बिना इटली की स्थिति उसी प्रकार थी, जैसे हृदय के बिना शरीर। रोम पोप के अधीन था और फ्रांस की सेनाएँ पोप की सुरक्षा के लिए मौजूद थी। इटली का रोम पर अधिकार का सपना तब पूर्ण हुआ जब अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ फ्रांस के विपरीत साबित हुई। 1870 ई. में प्रशा और फ्रांस के मध्य युद्ध हुआ। इसमें फ्रांस को प्रशा के विरुद्ध सारी ताकत झोंकनी पड़ी, रोम से उसने सेना बुला ली। इसके बावजूद भी उसकी हार हुई। इस मौके का फायदा इटली ने उठाया और रोम पर अधिकार कर लिया। रोम में जनमत संग्रह कराया गया, जिसमें जनमत इटली के पक्ष में गया। रोम को संयुक्त इटली की राजधानी बनाया गया। 12 जून 1871 ई. को विक्टर इमेन्युअल ने संयुक्त इटली की संसद का उद्घाटन करते हुए ने कहा –"जिस कार्य के लिए हमने अपना जीवन भेंट चढाया था, वह आज पूरा हो गया है। हमारी राष्ट्रीय एकता स्थापित हो गई है। अब हमें अपने देश को सुखी एवं सम्पन्न बनाया है, हम रोम में हैं और रोम में ही रहेंगे।" रोम की प्राप्ति के साथ ही इटली एक भौगोलिक अभिव्यक्ति नहीं रहा अपितु एक स्वतंत्र सम्प्रभु राष्ट्र बन गया।

वास्तव में इटली का एकीकरण असंख्य देशभक्तों के बलिदान, मैजिनी के नैतिक बल, गैरीबाल्डी की तलवार, काबूर की कूटनीति एवं विक्टर इमेन्युअल की समझदारी से हुआ।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्नः–

1. शुल्क संघ जॉलवेराइन कब स्थापित हुआ ?
1. सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति किस क्षेत्र में हुई ?
2. आलोडन भट्टी की खोज किसने की थी ?
3. बिलियम प्रथम ने युद्ध मंत्री किसे बनाया था ?
4. गेस्टाइन समझौता किन देशों के मध्य हुआ ?
5. कार्बोनरी की स्थापना कब और कहाँ हुई ?

लघूत्तरात्मक प्रश्नः–

1. युवा इटली का निर्माण कब और किसने किया ?
2. जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क का योगदान लिखिए।
3. पाम की संधि पर टिप्पणी लिखिए।
4. इटली के एकीकरण के विभिन्न चरणों को लिखिए।
5. वस्त्र उद्योग में औद्योगिक क्रान्ति के समय हुए परिवर्तनों को लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्नः–

1. यूरोप में राष्ट्रवाद उदय के कारण बताइए।
2. औद्योगिक के क्रान्ति के विभिन्न क्षेत्रों में हुए आविष्कारों का वर्णन कीजिए।
3. जर्मनी के एकीकरण में प्रमुख बाधाएँ व सहायक तत्त्वों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. इटली के एकीकरण को विस्तार से समझाइए।

अध्याय 5

लोकतन्त्र

1. लोकतन्त्र–अर्थ एवं विभिन्न प्रकार (Meaning and Various Forms of Democracy)

(A) लोकतन्त्र का अर्थ (Meaning of Democracy)

अंग्रेजी शब्द 'Democracy' का हिन्दी अनुवाद है– 'लोकतन्त्र', 'जनतन्त्र' अथवा 'प्रजातन्त्र'। अंग्रेजी शब्द 'Democracy' ग्रीक भाषा के दो शब्दों 'डेमोस' (Demos) तथा 'क्रेटिया' (Kratia) के संयोग से बना है। यद्यपि 'डेमोस' का मूल अर्थ है 'भीड़', किन्तु आधुनिक काल में इसका अर्थ 'जनता' से लिया जाने लगा है, और 'क्रेटिया' का अर्थ है 'शक्ति'। इस प्रकार शब्दार्थ की दृष्टि से 'डेमोक्रेसी' का अर्थ है 'जनता की शक्ति'। अतः 'डेमोक्रेसी' का अर्थ है जनता की शक्ति पर आधारित शासनतन्त्र। इसमें तीन अन्तः संबंधित अर्थ निहित हैं–

(1) यह निर्णय लेने की एक विधि है

(2) यह निर्णय लेने के सिद्धान्तों का एक समूह है तथा

(3) यह आदर्शात्मक मूल्यों से संबंधित अवधारणा है।

आधुनिक काल में लोकतन्त्र को केवल शासन का एक रूप ही माना जाता है। बर्न्स के अनुसार, "लोकतन्त्र एक ऐसा शब्द है जिसके अनेक अर्थ है और इसके साथ भावनात्मक अर्थ भी जुड़ा है।" लोकतन्त्र के वास्तविक अर्थ को समझने के लिए जरूरी है कि हम उसके विभिन्न रूपों से जुड़ी अवधारणाओं से परिचित हों।

(B) लोकतन्त्र के विभिन्न रूप (Various forms of Democracy)

आधुनिक काल में लोकतन्त्र के प्रमुख रूपों एवं उनसे संबंधित अवधारणाओं को निम्नलिखित रूप में स्वीकार किया जाता है–

(1) राजनीतिक लोकतन्त्र,

(2) सामाजिक लोकतन्त्र,

(3) आर्थिक लोकतन्त्र,

(4) नैतिक लोकतन्त्र।

(1) राजनीतिक लोकतन्त्र – राजनीतिक लोकतन्त्र को अतीत में व्यक्तिवादी लोकतन्त्र कहा जाता था, किन्तु आधुनिक युग में इसे उदारवादी लोकतन्त्र कहा जाता है। आधुनिक युग में राजनीतिक लोकतन्त्र की उत्पत्ति पश्चिमी देशों में हुई है, अतः इसे कभी –कभी पश्चिमी लोकतन्त्र भी कहा जाता है। मार्क्सवादियों ने इसे पूंजीवादी लोकतन्त्र कहना पसन्द किया है।

उदारवादी विचारकों ने समस्त राजनीतिक लोकतन्त्र के दो रूपों का उल्लेख किया है–

(I) राज्य के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र, तथा

(ii) शासन के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र।

राज्य के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र का अर्थ लोकतान्त्रिक राज्य (Democratic State) से है। लोकतान्त्रिक राज्य की अवधारणा के अनुसार प्रभुसत्ता का निवास जनता में होता है और इसलिए जनता को सरकार के निर्माण, उसके नियंत्रण तथा उसको पदच्युत करने की पूर्ण व अन्तिम शक्ति भी प्राप्त होती है।

शासन के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र का अर्थ लोकतान्त्रिक शासन से है। वास्तव में लोकतान्त्रिक शासन की अवधारणा लोकतान्त्रिक राज्य की अवधारणा के सैद्धान्तिक पक्ष का ही विकसित एवं व्यावहारिक रूप है। यह उल्लेखनीय है कि राजनीतिक लोकतन्त्र से संबंधित ये दोनों अवधारणाएं कानूनी प्रभुसत्ता पर राजनीतिक प्रभुसत्ता की श्रेष्ठता को स्वीकार करती हैं। संक्षेप में, ये दोनों मानती हैं कि राजनीतिक प्रभुसत्ता द्वारा कानूनी प्रभुसत्ता पर नियंत्रण किया जाना चाहिए।

राजनीतिक लोकतन्त्र के एक अंग के रूप में लोकतान्त्रिक शासन के दो उपभेद हैं–

(1) प्रत्यक्ष अथवा शुद्ध लोकतन्त्र

(2) अप्रत्यक्ष अथवा प्रतिनिधि लोकतन्त्र

यह उल्लेखनीय है कि आधुनिक युग में प्रतिनिधि लोकतन्त्र के भी मुख्यतः दो रूप प्रचलित हैं –

(1) संसदीय लोकतन्त्र

(2) अध्यक्षात्मक लोकतन्त्र।

लोकतान्त्रिक राज्य एवं लोकतान्त्रिक शासन अर्थात् सम्पूर्ण राजनीतिक लोकतन्त्र की कुछ आधारभूत मान्यताएं है,

जैसे–

(1) राजनीतिक लोकतन्त्र उदारवादी संविधानवाद में विश्वास करता है।

(2) यह प्रभुसत्ता का निवास जनता में मानता है।

(3) राजनीतिक लोकतन्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष लोकतान्त्रिक राज्य है और इसका व्यावहारिक पक्ष लोकतान्त्रिक शासन है।

(4) जनता शासन (सरकार) को नियुक्त करती है, उस पर नियंत्रण करती है तथा उसे हटा भी सकती है।

(5) राजनीतिक लोकतन्त्र स्वयं में साध्य नहीं होता है, अपितु लोकतान्त्रिक साध्यों एवं मूल्यों की प्राप्ति का साधन होता है।

(2) सामाजिक लोकतन्त्र –

समाज के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र को 'सामाजिक लोकतन्त्र' कहा जाता है। सामाजिक लोकतन्त्र का एक प्रमुख लक्ष्य है– सामाजिक समता की भावना। संक्षेप में, सामाजिक लोकतन्त्र का अर्थ है कि समाज में नस्ल, रंग (वर्ण), जाति, धर्म, भाषा, लिंग, धन, जन्म आदि के आधार पर व्यक्तियों के बीच विभेद नहीं किया जाना चाहिए और सभी व्यक्तियों को, व्यक्ति के रूप में, समान समझा जाना चाहिए। हर्नशा के अनुसार, "लोकतान्त्रिक समाज वह है, जिसमें समानता के विचार की प्रबलता हो तथा जिसमें समानता का सिद्धान्त प्रचलित हो।"[1] सामाजिक लोकतन्त्र की अवधारणा मुख्यतः सामाजिक समानता के अधिकार पर जोर देती है। इसका सामान्य अर्थ यही है कि सभी व्यक्तियों को समाज में समान महत्व प्राप्त होना चाहिए और किसी भी व्यक्ति को अन्य किसी भी व्यक्ति के सुख का साधन मात्र नहीं समझा जाना चाहिए। व्यवहार में सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना के लिए दो बातें आवश्यक हैं–

(1) धर्म, जाति, नस्ल, भाषा, लिंग, धन आदि के आधार पर समाज में मौजूद विशेषाधिकारों की व्यवस्था का अन्त किया जाये।

(2) सभी व्यक्तियों को सामाजिक प्रगति के समान अवसर प्रदान किये जायें।

(3) आर्थिक लोकतन्त्र –

अर्थव्यवस्था के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र को 'आर्थिक लोकतन्त्र' कहा जाता है। वर्तमान सदी में आर्थिक लोकतन्त्र का विचार मार्क्सवादियों एवं समाजवादियों ने प्रस्तुत किया है। 18वीं व 19वीं सदी में व्यक्तिवादियों ने भी आर्थिक क्षेत्र में लोकतन्त्र की चर्चा की थी, जो मार्क्सवादियों व समाजवादियों के आर्थिक लोकतन्त्र से सर्वथा भिन्न एवं विपरीत है।

(4) नैतिक लोकतन्त्र –

कुछ विद्वानों ने लोकतन्त्र को एक नैतिक व आध्यात्मिक जीवन–दर्शन के रूप में स्वीकार किया है। लोकतन्त्र के प्रति इस नैतिक दृष्टिकोण को ही नैतिक लोकतन्त्र कहा जाता है। नैतिक लोकतन्त्र समस्त लोकतान्त्रिक दर्शन का व्यावहारिक रूप है, जिसमें मानव–मूल्यों को ही समाज व शासन का मूल आधार माना जाता है। इस रूप में नैतिक लोकतन्त्र की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति सन् 1789 की फ्रांस की उदार लोकतन्त्रवादी क्रांति 'स्वतन्त्रता, समानता व भाई–चारे' के नारे के रूप में हुयी थी। इन तीनों में 'भाई–चारे' (बन्धुत्व) का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसके बगैर व्यक्तियों में समानता नहीं हो सकती है और समानता नहीं होगी, तो स्वतन्त्रता भी नहीं पायी जा सकती है।

2. लोकतन्त्र सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण (Various Theories and Concepts of Democracy)

लोकतन्त्र स्वयं में एक विस्तृत विचारधारा है और विद्वानों में इस तथ्य पर मतभेद है कि लोकतन्त्र में सत्ता का वास्तविक उपभोग कौन करता है, अथवा सत्ता का वास्तविक उपभोग किस वर्ग के द्वारा किया जाना चाहिए, शासक व शासित वर्ग में किस प्रकार के सम्बन्ध होते हैं और लोकतन्त्र की मूल्य–व्यवस्था क्या होनी चाहिए? इस प्रकार के चिंतन के परिणामस्वरूप लोकतन्त्र के विभिन्न सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गए हैं, जैसे–

(i) लोकतन्त्र का परम्परागत उदारवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण

(ii) लोकतन्त्र का बहुलवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण

(iii) लोकतन्त्र का विशिष्ट वर्गीय (अभिजन वर्गीय) सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण

(iv) लोकतन्त्र का मार्क्सवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण

(v) लोकतन्त्र का समाजवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण

(i) लोकतन्त्र का परम्परागत उदारवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण (The Traditional Liberal Theory and Concept of Demoracy) –

लोकतन्त्र के इस सिद्धान्त का विकास पश्चिमी जगत में पिछली तीन शताब्दियों के उदारवादी राजनीतिक चिंतन द्वारा किया गया है। इसे अक्सर लोकतन्त्र का पश्चिमी सिद्धान्त अथवा लोकतन्त्र का लोकप्रिय सिद्धान्त भी कह दिया जाता है। हॉब्स, लॉक, रूसो, बैन्थम, जे.एस. मिल., टी.एच.ग्रीन, मांण्टेस्क्यू, अब्राहम लिंकन, जैफरसन, हरबर्ट स्पैंसर आदि लोकतंत्र के परम्परागत

उदारवादी सिद्धान्त के प्रमुख विचारक माने जाते है। इन सभी विद्वानों ने व्यक्ति के सुख, स्वतंत्रता एवं अधिकार आदि के संदर्भ में अपने लोकतंत्र संबंधी विचार प्रस्तुत किये हैं।

लोकतंत्र के परम्परागत उदारवादी सिद्धान्त की आधारभूत मान्यतायें एवं लक्षण निम्नलिखित हैं–

(1) व्यक्ति बुद्धिमान प्राणी है, अतः अपना हित–अहित समझने की क्षमता रखता है।

(2) सभी व्यक्ति मूलतः समान हैं।

(3) शासन का गठन उदारवादी एवं लोकतान्त्रिक संविधानवाद के अनुसार होना चाहिए अर्थात् सीमित शासन के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए।

(4) शासन (सरकार) की शक्ति का आधार 'जनता की इच्छा' होती है, अतः सरकार राजनीतिक सत्ता की मात्र न्यासी (ट्रस्टी) होती है।

(5) शासन के संचालन के निश्चित एवं आधारभूत नियम हैं, जैसे–(अ) शासन का संचालन जनता द्वारा (जनता के प्रतिनिधियों द्वारा) किया जाना चाहिए, (ब) शासन के गठन एवं संचालन में बहुमत के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए, (स) शासन को जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए, तथा (द) शासन का उद्देश्य व्यक्ति का हित होना चाहिए।

(6) व्यक्ति को नागरिक स्वतन्त्रताएं व अधिकार प्राप्त होने चाहिए तथा इनकी रक्षा के लिए स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की स्थापना की जानी चाहिए।

(7) निश्चित अवधि के बाद स्वतन्त्र व निष्पक्ष चुनाव होने चाहिए और एक से अधिक राजनीतिक दल होने चाहिए।

(8) सरकार को जनमत का आदर करना चाहिए।

(ii) लोकतन्त्र का बहुलवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण (The Pluralist Theory and Concept of Democracy) –

लोकतन्त्र के बहुलवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण का मूल आधार बहुलवादी विचारधारा है, जो समाज के संघात्मक स्वरूप में विश्वास करती है। लोकतन्त्र के इस सिद्धान्त का विकास एच.जे. लास्की, अर्नेस्ट बार्कर, मिस फॉलेट, जी.डी.एच.कोल, डिग्वी आदि ने किया है। द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद राबर्ट डहल ने भी इसके विकास में योगदान दिया। उसने बहुलवादी लोकतन्त्र को 'बहुलतन्त्रवाद' कहना पसन्द किया है। राबर्ट प्रिस्थस के अनुसार "लोकतन्त्र का बहुलवादी सिद्धान्त एक ऐसी सामाजिक–राजनीतिक प्रणाली है, जिसमें राज्य की शक्ति में अनेक निजी समूह तथा हित समूह अपनी भागीदारी निभाते हैं।"

(iii) लोकतन्त्र का विशिष्ट वर्गीय (अभिजन वर्गीय) सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण (The Elitist Theory and Concept of Democracy)–

लोकतन्त्र के इस सिद्धान्त की सम्पूर्ण विचारधारा का केन्द्र अभिजन वर्ग है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले प्रमुख विचारक हैं– राबर्ट मिचेल्स, मोस्का, पैरेटो, बर्नहम, सी.राइट मिल्स आदि। राबर्ट मिचेल्स एक जर्मन विचारक हैं और उसने अपने विचार 'दी पॉलिटिकल पार्टीज' (The Political Parties) नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत किये हैं। मोस्का इतालवी विद्वान् है, जिसने अपने विचार 'दी रूलिंग क्लास' (The Ruling Class) नामक कृति में प्रस्तुत किये है।

(iv) लोकतन्त्र का मार्क्सवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण (The Marxist Theory and Concept of Democracy)–

लोकतन्त्र का मार्क्सवादी सिद्धान्त लोकतन्त्र के एक विशिष्ट रूप को प्रस्तुत करता है, जो अपनी प्रकृति से एक प्रकार का आर्थिक लोकतन्त्र है किन्तु मार्क्सवादियों ने इसे 'जनवादी लोकतन्त्र (People's Democracy) कहना पसन्द किया है। मार्क्सवादी लोकतन्त्र का मूल विचार कार्लमार्क्स तथा फ्रेडरिक एंजल्स की विचारधारा में दिखायी पड़ता है और इसे व्यावहारिक रूप लेनिन, स्टालिन, माओ त्से तुंग आदि ने दिया है।

(v) लोकतन्त्र का समाजवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण (The Socialist Theory and Concept of Democracy)–

लोकतन्त्र का समाजवादी सिद्धान्त लोकतन्त्र के उदारवादी सिद्धान्त तथा मार्क्सवादी सिद्धान्त के समन्वय से बना सिद्धान्त है। यह उदारवादी लोकतन्त्र में निहित व्यक्ति की राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा मार्क्सवादी लोकतन्त्र में निहित आर्थिक समानता के आदर्शों को एक साथ ही प्राप्त करना चाहता है। लोकतन्त्र का समाजवादी सिद्धान्त लोकतन्त्र के जिस स्वरूप पर बल देता है, उसे प्रायः लोकतान्त्रिक समाजवाद भी कहा जाता है। यह सिद्धान्त क्रान्ति एवं हिंसा के साधनों के स्थान पर विकासवादी एवं संवैधानिक साधनों में विश्वास करता है। इसके अनुसार संसदीय व्यवस्था वाले उदारवादी लोकतन्त्र के माध्यम से व्यक्ति की राजनीतिक स्वतन्त्रता की रक्षा भी संभव है और इसके द्वारा आर्थिक समानता के आदर्श को भी प्राप्त किया जा सकता है।

3. लोकतान्त्रिक शासन के प्रकार (Kinds of Democratic Government)

सम्पूर्ण उदारवादी लोकतन्त्र तथा इससे संबंधित

लोकतान्त्रिक शासन प्रणालियों के दो प्रमुख प्रकार स्वीकार किये जाते हैं– (A) प्रत्यक्ष या शुद्ध लोकतन्त्र (Direct or Pure Democracy); तथा (B) अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि लोकतन्त्र (Indirect or Representative Democracy)।

(A) प्रत्यक्ष लोकतन्त्र (Direct Democracy)

प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के अन्तर्गत जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से राज्य की प्रभुत्व शक्ति का पूर्ण प्रयोग करती है। वह नीति संबंधी फैसले लेती है, कानून बनाती है तथा प्रशासनिक अधिकारियों को नियुक्त करती है। हर्नशा का कथन है, "वास्तविक अर्थ में लोकतान्त्रिक शासन एक ऐसा शासन है जिसमें सम्पूर्ण जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से, बिना कार्यवाहकों या प्रतिनिधियों के, प्रभुसत्ता का प्रयोग करती है। हर्नशा का यह मत प्रत्यक्ष लोकतन्त्र पर पूरी तरह से लागू होता है। यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की प्रत्यक्ष लोकतान्त्रिक शासन–व्यवस्था प्राचीन यूनान के नगर–राज्यों में पायी जाती थी और वर्तमान में पूरी दुनिया में केवल स्विट्जरलैण्ड के पाँच कैण्टनों (प्रान्तों) में पायी जाती है। वस्तुतः प्रत्यक्ष लोकतान्त्रिक शासन की व्यवस्था केवल छोटे तथा कम जनसंख्या वाले राज्यों में ही संभव है, किन्तु वर्तमान काल में अधिकांश राज्य आकार एवं जनसंख्या की दृष्टि से बड़े राज्य हैं और इसलिए उनमें इस प्रणाली को लागू करना सम्भव नहीं है।

(B) अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि लोकतन्त्र (Indirect or Representative Democracy)–

आधुनिक काल में प्रायः सभी लोकतान्त्रिक राज्यों में अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि लोकतन्त्र ही पाया जाता है। इसके अन्तर्गत जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से शासन की शक्ति का प्रयोग नहीं करती है, अपितु अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से प्रभुत्व शक्ति का प्रयोग करती है। जे.एस.मिल के अनुसार, "अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि लोकतन्त्र एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें सम्पूर्ण जनता या जनता की बहुसंख्या शासन की शक्ति या प्रयोग अपने उन प्रतिनिधियों के माध्यम से करती है, जिन्हें वह समय–समय पर चुनती है।' अन्य विद्वानों ने भी मिल की परिभाषा से मिलती–जुलती परिभाषाएं दी है। इस संबंध में कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

(अ) "लोकतन्त्र शासन का वह रूप है, जिसमें राज्य की शासन–शक्ति, कानूनी तौर पर, किसी विशेष वर्ग या वर्गो में नहीं, अपितु सम्पूर्ण समाज के सदस्यों में निहित होती है।'

–लार्ड ब्राइस

(ब) "लोकतन्त्र वह शासन व्यवस्था है, जिसमें राष्ट्र का अधिकांश भाग शासक होता है।'

–डायसी

(स) "लोकतन्त्र वह शासन है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का (शासन कार्य में) भाग हो।'

–सीले

(द) "लोकतन्त्र जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा शासन है।' –अब्राहम लिंकन

विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई अनेक परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रजातान्त्रिक शासन–प्रणाली कुछ विशिष्ट लक्षणों से युक्त है।

लोकतंत्र की प्रमुख विशेषताऐं :–

(1) जनता का शासन– शासन की एक प्रणाली के रूप में लोकतन्त्र सम्पूर्ण जनता का शासन होता है। 'जनता' का अर्थ सम्पूर्ण "जन–समूह एवं प्रत्येक व्यक्ति" से है। इस प्रकार यह किसी विशेष नस्ल भाषा, संस्कृति आदि से संबंधित वर्ग का शासन नहीं है।

(2) जनता द्वारा निर्मित शासन – लोकतन्त्र में सरकार का निर्माण जनता द्वारा किया जाता है। इसमें जनता अपने प्रतिनिधि चुनती है और वे प्रतिनिधि सरकार का निर्माण करते है।

(3) लोकतन्त्र शासन एक साधन है, साध्य नहीं – लोकतन्त्र में शासन को कभी भी साध्य नहीं माना जाता है, अपितु शासन को एक साधन माना जाता है। वास्तव में लोकतन्त्र में शासन निम्नलिखित साध्यों (लोकतान्त्रिक साध्यों) की प्राप्ति का साधन माना जाता है–(i) व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं गौरव की रक्षा, तथा (ii) सार्वजनिक हित की वृद्धि।

(4) जनता के प्रति उत्तरदायी शासन– लोकतन्त्र में शासन–प्रणाली 'लोक–प्रभुत्व' के सिद्धान्त को स्वीकारती है। अतः लोकतन्त्र में शासन अपने कार्यो के लिए जनता के प्रति उत्तदायी होता है। इसका अर्थ है कि यदि सरकार व्यक्ति की स्वतन्त्रता को छीनती है, जनमत का सम्मान नहीं करती अथवा सार्वजनिक हित में कार्य नहीं करती, तो जनता उसे बदल सकती है।

(5) लोकतन्त्र विकासशील शासन है– आधुनिक काल तक लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली विकास की कई अवस्थाओं से गुजरी है। प्रारम्भ में यह व्यक्तिवादी लोकतन्त्र था, जो बाद में उदारवादी लोकतन्त्र में बदल गया और वर्तमान में यह लोक कल्याणकारी राज्य की धारणा से सम्बन्धित हो गया है। इस विकास का परिणाम यह हुआ है कि जहाँ प्रारम्भ में लोकतन्त्र ने व्यक्ति की राजनीतिक स्वतन्त्रता व समानता तथा संवैधानिक शासन (विधि के शासन) पर ही बल दिया था, वहाँ अब यह सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में समानता व न्याय के सिद्धान्त को भी स्वीकार करने लगा है। इस प्रकार लोकतन्त्र के विकास ने उसके मूल्यात्मक स्तर में वृद्धि की है।

आधुनिक विश्व में प्रतिनिधि प्रजातन्त्र के दो प्रमुख रूप हैं– संसदात्मक शासन तथा अध्यक्षात्मक शासन। प्रथम का आदर्श उदाहरण ब्रिटेन की शासन–प्रणाली और द्वितीय का आदर्श उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन–प्रणाली है। स्विट्जरलैण्ड एक ऐसा देश है जिसमें संघीय स्तर पर संसदात्मक व अध्यक्षात्मक शासन–प्रणालियों के मिश्रित रूप को अपनाया गया है।

4. लोकतन्त्र का आलोचनात्मक परीक्षण (Critical Examination of Democracy)

एक ओर बर्क जैसे विद्वानों ने पूर्ण लोकतन्त्र को 'लज्जाहीन' धारणा माना है, तो दूसरी ओर लॉवेल जैसे विद्वानों ने इसे सर्वश्रेष्ठ शासन माना है। अतः निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए जरूरी है कि हम इसके गुण व दोषों का अध्ययन करें।

लोकतन्त्र के गुण (Merits of democracy)-

लोकतन्त्र के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

(1) सार्वजनिक हित में वृद्धि –

प्रजातान्त्रिक शासन का संचालन जनता के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। वे सार्वजनिक हित में वृद्धि करने के वायदे के आधार पर चुनाव जीतते हैं और उन्हें भविष्य में पुनः चुनाव लड़ना होता है। अतः ये जन–प्रतिनिधि सार्वजनिक हित में शासन करते हैं। लोकतन्त्र में शासन जनता के प्रति उत्तरदायी होता है।

(2) कार्य–कुशल शासन –

लोकतन्त्र को सबसे अधिक कार्यकुशल शासन–प्रणाली माना जाता है। लोकतन्त्र की कार्य–कुशलता के अनेक कारण हैं, जैसे–इस शासन में नीतियाँ जनमत के अनुसार बनायी जाती हैं। अतः इनको लागू करने में जन–सहयोग मिलता है। लोकतन्त्र शासन जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। अतः यह शासन की कार्य–कुशलता को बनाये रखने की कोशिश करता है।

(3) सार्वजनिक शिक्षा का साधन–

लोकतान्त्रिक शासन में जनता सार्वजनिक समस्याओं पर अपनी राय प्रकट करती है। सामान्य जनता जनमत निर्माण के साधनों तथा आम–चुनावों के माध्यम से विभिन्न समस्याओं पर अपना मत प्रकट करती है। सामान्य नागरिक अपने अधिकारों व कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रहता है और बड़े हितों के लिए छोटे हितों का त्याग करना सीख जाता है। इस गुण के कारण ही गैटेल ने लोकतन्त्र को नागरिकता की शिक्षा प्रदान करने वाला स्कूल कहा है।

(4) नैतिक शिक्षा का साधन –

लोकतन्त्र शासन व्यक्ति को नैतिक शिक्षा भी प्रदान करता है। लॉवेल के अनुसार लोकतन्त्र व्यक्ति की नैतिकता व पवित्रता की भावना को मजबूत करता है। ब्राइस के अनुसार जब लोकतन्त्र में व्यक्ति को राजनीतिक अधिकार मिलते हैं, तो उसके व्यक्तित्व का विकास होता है और वह कर्त्तव्य–प्रिय हो जाता है। व्यवहार में हम देखते है कि लोकतन्त्र में व्यक्ति परिवार की संकीर्ण सीमाओं से निकलकर सार्वजनिक हित तक विस्तृत हो जाता है और वह साथी नागरिकों के साथ सहयोग, सहिष्णुता, उदारता व सहानुभूति का व्यवहार करने लगता है।

(5) देश–भक्ति की शिक्षा–

लोकतन्त्र राष्ट्र–प्रेम की भावना का भी विकास करता है। लोकतन्त्र में राज्य को किसी शासक वर्ग की सम्पत्ति नहीं माना जाता, अपितु इसे जनता की सम्पत्ति माना जाता है। इससे जनता में राष्ट्र के प्रति प्रेम व अपनत्व की भावना का विकास होता है। मिल के शब्दों में, "लोकतन्त्र देशभक्ति की भावना को बढ़ाता है।"

(6) क्रान्ति से सुरक्षा –

क्रान्ति की आशंका ऐसे राज्यों में होती है जहाँ शासन की शक्ति किसी एक वर्ग के हाथों में होती है। लोकतन्त्र में स्थिति इससे एकदम विपरीत होती है। इसमें क्रान्ति की आवश्यकता नहीं होती है। लोकतन्त्र में शासन जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। लोकतन्त्र में सभी पक्षों को अपनी बात कहने तथा चुनाव लड़ने का हक होता है। साथ ही किसी विषय पर सरकार से असहमति होने पर अगले चुनाव में उसके विरूद्ध मत देने की स्वतंत्रता भी क्रान्ति की संभावना कम करती है।

(7) समानता और स्वतन्त्रता पर आधारित शासन–

लोकतन्त्र व्यक्ति की समता व स्वतन्त्रता की धारणा को स्वीकार करता है। यह व्यक्तियों में जाति, धर्म, भाषा, लिंग, आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करता है, अपितु सभी व्यक्तियों के लिए विधि की समानता तथा विधि के समान संरक्षण में विश्वास करता है।

(8) स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की स्थापना–

लोकतन्त्र में स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की स्थापना की जाती है, जो व्यक्ति को कार्यपालिका व व्यवस्थापिका के अत्याचार से बचाती है और व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा करती है। ऐसी न्यायपालिका व्यक्ति को शासन की अनुचित नीतियों का विरोध करने का साहस देती है और शासन से उसकी संवैधानिक मर्यादाओं का पालन कराती है।

(9) कला, साहित्य, संस्कृति व विज्ञान की प्रगति में सहायक–

लोकतन्त्र कला, साहित्य, संस्कृति व विज्ञान पर किसी प्रकार का अनुचित नियंत्रण नहीं करता है, अपितु इनका विकास

चाहता है। लोकतन्त्र की तुलना में अधिनायकवाद में इन सभी क्षेत्रों पर नियंत्रण होता है, क्योंकि वहाँ विचार एवं कर्म की स्वतन्त्रता नहीं होती है। अतः अधिनायकतन्त्रों में कला, साहित्य व संस्कृति के क्षेत्र में पर्याप्त विकास नहीं होता है और विज्ञान के विकास में भी बाधा आती है।

(10) संविधानवाद में आस्था–

लोकतन्त्र संविधानवाद में आस्था रखता है। इसका अर्थ है कि लोकतन्त्र व्यक्ति के स्वेच्छाचारी शासन के स्थान पर विधि के शासन में विश्वास करता है और वह ऐसी विधि को स्वीकार करता है जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता को स्वीकारता हो। इसका सरल अर्थ है कि लोकतन्त्र निरंकुश शासन की जगह 'सीमित शासन' में विश्वास रखता है और शक्ति के विकेन्द्रीकरण को स्वीकार करता है।

(11) शक्तिशाली शासन व्यवस्था–

लोकतन्त्र व्यक्ति में राष्ट्र–प्रेम पैदा करता है और यह जन–सहमति पर आधारित शासन है, अतः जब भी राष्ट्र पर संकट आता है तो सम्पूर्ण जनता एक व्यक्ति के रूप में संकट के विरुद्ध खड़ी हो जाती है।

(12) विश्व–शान्ति का समर्थक–

राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र तथा अधिनायकतन्त्र का इतिहास बताता है कि इन शासन–प्रणालियों ने समय–समय पर विश्व की शान्ति को खतरा उत्पन्न किया है। इसका कारण यह है कि ये शासन प्रणालियाँ सैनिकवाद, कठोर विदेश नीति तथा विस्तारवाद में विश्वास रखती हैं। किन्तु लोकतन्त्र विश्व–शान्ति व सहयोग में आस्था रखता है। इसका कारण यह है कि लोकतन्त्र सैनिकवाद की जगह शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व में विश्वास रखता है और राष्ट्रों के बीच विवादों को पारस्परिक वार्ता एवं समझौतों द्वारा तथा अन्तरराष्ट्रीय कानून द्वारा सुलझाना चाहता है।

लोकतन्त्र के दोष (Demerits of democracy)–

लोकतन्त्र में निम्नलिखित दोष हैं, जिन्हें हम उसके विपक्ष में तर्क भी कह सकते हैं–

(1) लोकतन्त्र की व्यक्ति सम्बन्धी धारणा भ्रमपूर्ण –

लोकतन्त्र व्यक्ति को बुद्धि व विवेक सम्पन्न मानता है। अतः उसे मताधिकार देता है और मानता है कि वह राजनीतिक मामलों में परिपक्व निर्णय देने में समर्थ होगा, किन्तु आलोचकों का मत है कि व्यक्ति मूलतः ऐसा अबौद्धिक प्राणी है, जो अपने मूल संवेगों व आवेगों से चालित होता है और इसलिए व्यक्तियों को जब मताधिकार दे दिया जाता है तो हमें व्यवहार में लोकतन्त्र की जगह भीड़तन्त्र मिलता है।

(2) बुद्धिजीवी वर्ग की उदासीनता –

लोकतन्त्र में बुद्धिजीवी वर्ग की उदासीनता होती है। इस व्यवस्था में यह माना जाता है कि गुणों की अपेक्षा संख्या को अधिक महत्व दिया जाता है। इस कारण से समाज में बुद्धिजीवी वर्ग इस व्यवस्था में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेते है।

(3) शैक्षणिक महत्त्व का दावा भ्रमपूर्ण –

लोकतन्त्र के बारे में यह दावा पूरी तरह से भ्रमपूर्ण है कि यह व्यक्ति को नागरिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा तथा राष्ट्र–प्रेम की शिक्षा देता है। वास्तविक स्थिति इससे कदम भिन्न है। लोकतन्त्र में राजनीतिक दल प्रत्येक राष्ट्रीय समस्या पर अपने स्वार्थ की दृष्टि से विचार करते हैं और उसे ही राष्ट्रीय हित बताकर प्रचार करते हैं। वे एक–दूसरे पर आरोप–प्रत्यारोप लगाते हैं और जनता के विभिन्न वर्गो को अपने प्रभाव में लाने के लिए उसकी भावना को भड़काते रहते है।

(4) लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता व समानता भ्रमपूर्ण है–

लोकतन्त्र व्यक्तियों को राजनीतिक स्वतन्त्रता व समानता प्रदान करता है, किन्तु यह व्यक्तियों को आर्थिक स्वतन्त्रता व समानता प्रदान नहीं करता है। आर्थिक स्वतन्त्रता व समानता के अभाव में व्यक्ति की राजनीतिक स्वतन्त्रता व समानता भी अर्थहीन हो जाती है। लोकतन्त्र में चुनावों में धनिक खड़े होते हैं और वे अपने धन की शक्ति व प्रभाव के द्वारा चुने जाते हैं। जब व्यवस्थापिका के अधिकांश व्यक्ति धनवान होते हैं तो वे कानून भी ऐसे ही बनाते हैं जो धनिक वर्ग के हित में होते है। इस प्रकार आर्थिक असमानता के कारण लोकतन्त्र में गरीब वर्ग की राजनीतिक स्वतन्त्रता व समानता भी लगभग अर्थहीन हो जाती है।

(5) राजनीतिक दलों का दुष्प्रभाव –

लोकतन्त्र के संचालन के लिए राजनीतिक दल परम आवश्यक माने जाते हैं, किन्तु राजनीतिक दल–प्रणाली में अनेक दोष भी होते हैं और इनके कारण लोकतन्त्र में विकार आता है। सिद्धान्त रूप में सभी राजनीतिक दलों का निर्माण राष्ट्रीय हित में होता है और वे जनता के उत्थान के लिए विभिन्न सामाजिक व आर्थिक नीतियों व कार्यक्रमों का प्रचार करते हैं, किन्तु व्यवहार में सभी राजनीतिक दल राष्ट्र–भक्ति की जगह दल–भक्ति को महत्त्व देते हैं।

(6) अनुत्तरदायी शासन–प्रणाली –

सिद्धान्त रूप में लोकतन्त्र को जनता के प्रति उत्तरदायी शासन बताया जाता है, किन्तु व्यवहार रूप में लोकतन्त्र अनुत्तरदायी दिखायी पड़ता है। लोकतन्त्र शासन में असफलताओं की जिम्मेदारी कोई भी पक्ष अपने ऊपर नहीं लेता है। जब भी कोई बड़ी असफलता मिलती है तो सरकार विरोधी दल के आन्दोलनों एवं अड़ँगा डालने की नीति को असफलता के लिए उत्तरदायी

बताती है, किन्तु विरोधी दल असफलताओं के लिए स्वयं सरकार की नीतियों को दोषी बताते हैं।

(7) सार्वजनिक धन व समय का अपव्यय –

लोकतन्त्र में नीतियों के निर्धारण में तथा कानून के निर्माण में अत्यधिक धन व्यय होता है और समय की भी बर्बादी होती है। सभी कार्य विभिन्न समितियों के द्वारा तथा व्यवस्थापिका की लम्बी–चौड़ी बहस द्वारा किये जाते हैं। लोकतन्त्र की यह प्रक्रिया समय व धन की दृष्टि से अत्यधिक खर्चीली होती है। इसी प्रकार आम चुनावों में भी राष्ट्रीय धन व समय की बहुत हानि होती है। गरीब देशों के लिए लोकतन्त्र एक ओर तो धन की दृष्टि से बहुत खर्चीली प्रणाली है और दूसरी ओर इसमें विकास की गति भी बहुत धीमी है।

(8) उदासीन मतदाता –

लोकतन्त्र जनता का शासन कहलाता है, किन्तु लोकतन्त्र में होने वाले चुनावों में मतदाता पर्याप्त रुचि नहीं रखते हैं। राजनीतिक दलों तथा उनके उम्मीदवारों के अत्यधिक प्रयत्नों के बावजूद मतदान में 50 से 80 प्रतिशत के बीच में मतदाता भाग लेते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि लोकतन्त्र के दोषों के कारण स्वयं जनता इस शासन–प्रणाली को अपना नहीं मानती है। इसके अलावा जब सभी मतदाता मतदान नहीं करते हैं, तो प्रायः कम योग्य तथा अवसरवादी प्रकृति के प्रतिनिधि भी चुन लिए जाते हैं।

(9) संकटकाल की दृष्टि से कमजोर शासन –

युद्ध अथवा अन्य प्रकार के संकटों की स्थिति में लोकतन्त्र शासन कमजोर सिद्ध होता है, क्योंकि इसमें सत्ता विकेन्द्रित होती है। इस प्रणाली में शीघ्र व गुप्त निर्णय संभव नहीं होते हैं। द्वितीय विश्व–युद्ध में ब्रिटेन के अलावा सभी यूरोपीय लोकतान्त्रिक देश नाजी जर्मनी के सामने और द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप के लोकतान्त्रिक राज्य साम्यवादी सोवियत संघ के सामने कमजोर सिद्ध हुए।

(10) लोकतन्त्र विश्व–शान्ति का समर्थक नहीं –

साम्यवादी आलोचकों का मत है कि लोकतान्त्रिक राज्य पूँजीवादी राज्य होते हैं। पूँजीवाद युद्ध एवं साम्राज्यवाद को जन्म देता है, अतः लोकतान्त्रिक राज्यों को विश्व–शान्ति का समर्थक नहीं माना जा सकता है। ब्रिटेन, फ्रांस आदि यूरोप के लोकतान्त्रिक राज्यों ने युद्ध एवं साम्राज्यवाद की नीति को अपनाया था। यद्यपि वर्तमान में यूरोप के समृद्ध लोकतान्त्रिक राज्य युद्ध एवं राजनीतिक साम्राज्यवाद के विरोधी दीख पड़ रहे हैं, किन्तु उनकी नीतियाँ एक नये प्रकार के आर्थिक साम्राज्यवाद को जन्म दे रही हैं, जिसे हम नव–उपनिवेशवाद कहते हैं। वे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं की मदद से अफ्रीका व एशिया की अर्थव्यवस्था को अपने हित में प्रभावित कर रहे है। साम्यवादी विचारकों का मत है कि आधुनिक काल में भी लोकतन्त्र और पूँजीवाद की साँठ–गाँठ है और यह विश्व–शान्ति के लिए खतरा है।

5. लोकतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ (Essential Conditions for the Success of Democracy)

कोई भी शासन–प्रणाली विशिष्ट परिस्थितियों में ही सफलापूर्वक कार्य कर सकती है और प्रतिकूल परिस्थितियाँ होने पर उसका पतन हो जाता है। यह बात लोकतान्त्रिक शासन–प्रणाली के बारे में भी सत्य है। प्रथम विश्व–युद्ध के बाद यूरोप के अनेक राज्यों में लोकतन्त्र की स्थापना की गयी, किन्तु अनुकूल परिस्थितियों के अभाव में लोकतान्त्रिक शासन–प्रणाली असफल हो गयी और इसका स्थान अधिनायकवाद ने ले लिया। वर्तमान एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमरीका महाद्वीपों में भी अनेक देशों में लोकतन्त्र–शासन का पतन हुआ है, क्योंकि इन देशों में लोकतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक शर्तों या परिस्थितियों का अभाव रहा है।

विद्वानों का मत है कि निम्नलिखित परिस्थितियाँ लोकतन्त्र के सफल संचालन में सहायक हो सकती हैं–

(1) शान्ति तथा व्यवस्था –

लोकतन्त्र की सफलता के लिए जरूरी है कि देश में आन्तरिक व्यवस्था सामान्य हो और युद्ध या बाहरी आक्रमण का भय नहीं हो। ऐसी स्थिति में सत्ता का विकेन्द्रीकरण बना रहता है और व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता का उपभोग करते हैं। किन्तु जब देश में राजनीतिक स्थिरता व व्यवस्था को चुनौती देने वाले आन्दोलन चलते हैं अथवा बाहरी आक्रमण होता है, तो सरकार राष्ट्र की अखण्डता तथा सुरक्षा के लिए सत्ता का केन्द्रीयकरण करती है और व्यक्ति की स्वतन्त्रता तक पर पाबन्दियाँ लगाती है। इस स्थिति में लोकतन्त्र दम तोड़ने लगता है और अधिनायकतन्त्र की स्थापना का मार्ग खुल जाता है। अतः लोकतन्त्र में शांति व्यवस्था आवश्यक है।

(2) सुदृढ़ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था –

लोकतन्त्र की सफलता के लिए यह जरूरी है कि राष्ट्र की अर्थ–व्यवस्था पर्याप्त मजबूत हो। यदि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था औद्योगिक संकट से गुजर रही होती है, तो लोकतांत्रिक व्यवस्था लड़खड़ा जाती है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी व इटली में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लड़खड़ाने के बाद ही इन देशों में लोकतन्त्र का अन्त हुआ और तानाशाही की स्थापना हुयी। इसी

प्रकार द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप में आर्थिक अव्यवस्था के कारण वहाँ के देशों में लोकतन्त्र का अन्त हुआ और साम्यवादी शासन की स्थापना हुयी। आधुनिक काल में भी लैटिन अमरीका के राज्यों में लोकतन्त्र की असफलता का एक बड़ा कारण आर्थिक अव्यवस्था है। अनेक अफ्रो–एशियाई राज्य भी ऐसे ही संकट से गुजर रहे हैं।

(3) आर्थिक समानता की स्थापना –

लोकतन्त्र के सफल संचालन के लिए केवल इतना ही जरूरी नहीं है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था शक्तिशाली हो, अपितु यह भी जरूरी है कि राज्य में यथासंभव आर्थिक समानता हो अर्थात् गरीबी व अमीरी के बीच चौड़ी खाई न हो। यह तब ही सम्भव है जब देश में बड़ी मात्रा में मध्यवर्ग मौजूद हो। इस स्थिति में ही लोकतन्त्र को कमजोर करने वाले वर्गसंघर्ष से बचा जा सकता है।

(4) सामाजिक न्याय की स्थापना –

लोकतन्त्र की सफलता के लिए जरूरी है कि व्यक्तियों के बीच धर्म, जाति, भाषा, रंग, नस्ल, लिंग, जन्म आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाये। सभी व्यक्ति कानून के सामने समान माने जायें और उन्हें न्यायालय समान कानूनी संरक्षण दें। इस प्रकार जब समाज में सभी व्यक्तियों को समान स्थिति प्राप्त होती है, तो उनके बीच भावनात्मक एकता भी स्थापित होती है और सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना होती है।

(5) शिक्षित व जागरूक जनता –

लोकतन्त्र की सफलता के लिए जनता का शिक्षित एवं जागरूक होना आवश्यक है। शिक्षित जनता ही लोकतन्त्र की समस्याओं को तथा इसकी प्रक्रिया को समझने में समर्थ होती है और स्वस्थ जनमत का निर्माण कर सकती है। इसके अलावा जब जनता जागरूक होती है तो सरकार की लोकतन्त्रविरोधी नीतियों एवं कार्यों का विरोध करने में भी समर्थ होती है।

(6) जनमत का निर्माण –

लोकतन्त्र की सफलता के लिए जनमतनिर्माण के साधनों की स्वतन्त्रता भी आवश्यक है। इसका अर्थ है कि प्रेस, साहित्य, रेडियो, सिनेमा, दूरदर्शन आदि पर सरकारी नियन्त्रण नहीं होना चाहिए। जब जनमत निर्माण के साधन स्वतन्त्र होते हैं तब नागरिक संगठित रूप से और शान्तिपूर्ण ढंग से सरकार की लोकतन्त्र विरोधी नीतियों व कार्यों की आलोचना करने में सफल होते हैं, जिसमें लोकतांत्रिक मर्यादा बनी रहती है। इस स्थिति में लोकतन्त्र सफलतापूर्वक कार्य करता है।

(7) नागरिक, नैतिक व राष्ट्रीय चरित्र –

जब किसी समाज में नागरिक, नैतिक व राष्ट्रीय चरित्र श्रेष्ठ होता है, तो वहाँ लोकतन्त्र की सफलता की बहुत उम्मीद होती है। ऐसे समाज में व्यक्ति अपने अधिकारों व कर्त्तव्यों का उचित प्रयोग करते हैं। वे सार्वजनिक समस्याओं पर लोकहित की दृष्टि से विचार करते हैं और साथी नागरिकों के प्रति सहिष्णुता, उदारता, सहानुभूति, सेवा, प्रेम, आदि का व्यवहार करते हैं और अपने राष्ट्र से प्रेम करते हैं। वस्तुतः लोकतन्त्र अन्तिम दृष्टि से जनता की शक्ति पर निर्भर करता है और जब जनता का नागरिक, नैतिक व राष्ट्रीय चरित्र सुदृढ़ होता है तो लोकतन्त्र भी सफल होता है।

(8) सत्ता का विकेन्द्रीकरण तथा स्थानीय स्वशासन–

अधिनायकतन्त्र का आधार है सत्ता का केन्द्रीकरण और लोकतन्त्र का आधार है सत्ता का विकेन्द्रीकरण। सत्ता का विकेन्द्रीकरण होने पर ही जनता के विभिन्न वर्ग शासन के कार्यों में भाग लेते हैं और लोकतन्त्र को सफल बनाते हैं। लोकतन्त्र में विकेन्द्रीकरण का एक अच्छा रूप स्थानीय स्वशासन है। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से ही सामान्य व्यक्ति शासन–कार्यों में रुचिपूर्वक भाग लेता है और उसे सही मायने में नागरिकता की शिक्षा प्राप्त होती है।

(9) नागरिक स्वतन्त्रताएं–

लोकतन्त्र 'सीमित शासन' के सिद्धान्त को मानता है जिसका अर्थ है कि संविधान द्वारा नागरिकों को मौलिक स्वतन्त्रताएं प्रदान की जानी चाहिए और इन स्वतन्त्रताओं की रक्षा का प्रबन्ध भी किया जाना चाहिए। नागरिक स्वतन्त्रताओं का अर्थ है कि नागरिकों को विचार प्रकट करने की, संगठन बनाने की, सभा करने की तथा शान्तिपूर्ण आन्दोलन करने की स्वतन्त्रतायें प्राप्त होनी चाहिए। मौलिक स्वतन्त्रताओं का निष्कर्ष है कि नागरिकों को सरकार की उन सब नीतियों एवं कार्यों की शान्तिपूर्ण आलोचना करने का अधिकार होना चाहिए, जिन्हें वे लोकतन्त्र एवं सामान्य हित के विरुद्ध समझते हैं। यह स्पष्ट ही है कि नागरिक मौलिक स्वतन्त्रताओं के प्रयोग के लिए जनमत–निर्माण के साधनों का स्वतन्त्र होना भी जरूरी है।

(10) लिखित संविधान तथा लोकतान्त्रिक परम्पराएं–

लिखित संविधान का अर्थ है कि संविधान की भाषा बहुत स्पष्ट होनी चाहिए, ताकि उसकी व्याख्या को लेकर विवाद एवं भ्रम उत्पन्न नहीं हों। इसके अलावा संविधान में संशोधन की पद्धति कठोर होनी चाहिए ताकि कोई राजनीतिक दल अपने बहुमत का लाभ उठाकर लोकतन्त्र को अधिनायकतन्त्र में नहीं बदल ले, जैसा कि जर्मनी में हिटलर ने किया था। लोकतांत्रिक परम्पराओं से आशय आचरण के उन नियमों व व्यवस्थाओं से है, जिनका वर्णन संविधान या कहीं और भले ही लिखित रुप में नहीं होता, पर वह लोकतांत्रिक पद्धति व प्रक्रिया को आगे बढ़ाने वाली

होती है और जिन पर लगभग सर्वदलीय सहमति बन जाती है।

(11) स्वतन्त्र व शक्तिशाली न्यायपालिका –

लोकतन्त्र का आधार संविधानवाद है, जिसका अर्थ है कि लोकतन्त्र में सरकार को निरंकुश सत्ता प्राप्त नहीं होती है, अपितु उसे अनिवार्य रूप से संवैधानिक मर्यादाओं व सीमाओं को स्वीकारना होता है। लोकतन्त्र की सफलता के लिए एक शक्तिशाली व स्वतन्त्र न्यायपालिका की स्थापना जरूरी होती है, क्योंकि ऐसी न्यायपालिका ही कार्यपालिका को कानून का उल्लंघन करने व अत्याचारी बनने से रोकती है और व्यवस्थापिका द्वारा बनाये गये असंवैधानिक कानूनों को अवैध घोषित करती है। ऐसी न्यायपालिका नागरिकों की स्वतन्त्रता की भी रक्षा करती है।

(12) योग्य व निष्पक्ष कर्मचारी तन्त्र –

लोकतन्त्र में जन–प्रतिनिधियों द्वारा बनायी गयी नीतियों को कर्मचारी तन्त्र ही लागू करता है। लोकतन्त्र की सफलता के लिए यह जरूरी है कि कर्मचारी तन्त्र न केवल प्रशासनिक दृष्टि से अपने कार्य में कुशल होना चाहिए, अपितु उसे आम जनता के लिए सेवाभावी भी होना चाहिए। उसे सदैव दलगत राजनीति में तटस्थ एवं निष्पक्ष रहना चाहिए।

(13) स्वस्थ व सुसंठित दलीय व्यवस्था –

लोकतन्त्र व्यवहार में दलीय शासन–प्रणाली है, अतः लोकतन्त्र की सफलता राजनीतिक दलों की नीतियों, कार्यक्रमों एवं निष्ठा पर निर्भर करती है। लोकतन्त्र की सफलता के लिए जरूरी है कि राजनीतिक दलों का निर्माण स्वस्थ आधार पर हो। उनका संगठन क्षेत्रीय, भाषायी अथवा साम्प्रदायिक आधार पर नहीं होना चाहिए, अपितु राष्ट्रीय आधार पर होना चाहिए। इसका अर्थ है कि राजनीतिक दलों का निर्माण राष्ट्रीय स्तर की आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं को लेकर होना चाहिए। इसके अलावा राजनीतिक दलों के संचालन में आन्तरिक लोकतंत्र होना चाहिए। समय–समय पर दलों में आन्तरिक चुनाव होने चाहिए। उन्हें अनुशासनहीन व दल–बदलुओं को अपना सदस्य नहीं बनाना चाहिए।

(14) योग्य तथा निष्ठावान राजनेता– लोकतन्त्र की सफलता के लिए योग्य, बुद्धिमान तथा लोकतन्त्र में निष्ठा वाले राजनीतिज्ञों का होना बहुत जरूरी है। ऐसे राजनीतिज्ञ ही राष्ट्रीय समस्याओं का शान्तिपूर्ण एवं लोकतान्त्रिक हल ढूंढने में समर्थ होते हैं। यदि राजनीतिज्ञ भ्रष्ट, अवसरवादी, झूठे, सत्ता के लोभी, समर्थकों को अनुचित लाभ पहुँचाने वाले तथा कुत्सित भावनाओं को भड़काने वाले होते हैं तो वे लोकतन्त्र को भीड़तन्त्र में बदल देते हैं और देश के सामने नेतृत्व का संकट पैदा हो जाता है।

(15) सार्वजनिक हित की राष्ट्रीय योजनाएं–

विकासशील देशों में लोकतन्त्र की सफलता के लिए जरूरी है कि शासन द्वारा ऐसी राष्ट्रीय योजनायें बनायी जायें जो एक ओर कृषि व उद्योगों के सन्तुलित विकास में सहायक हों, राष्ट्रीय आय की वृद्धि करती हों तथा समाज के श्रमिक वर्ग व कमजोर वर्ग के जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक हों।

(16) आधारभूत मामलों में राष्ट्रीय सहमति–

लोकतन्त्र की सफलता के लिए यह अत्यन्त जरूरी है कि आधारभूत मामलों पर समाज के बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक वर्गों तथा राजनीतिक दलों में सहमति हो।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. लोकतन्त्र शब्द का अर्थ डेमोस+क्रेटिया (Demos + Kratia) = 'जनता की शक्ति' अर्थात् 'जनता का शासन'। आधुनिक युग में लोकतन्त्र उदारवादी बौद्धिक आन्दोलन की देन है। वर्तमान में उदारवादी लोकतन्त्र अत्यन्त लोकप्रिय है और इसके व्यापक अर्थ को निम्नलिखित रूप में प्रकट किया जा सकता है –
   (1) यह निर्णय लेने की एक विधि है,
   (2) यह निर्णय लेने के सिद्धान्तों का एक समूह है, तथा
   (3) यह आदर्शात्मक मूल्यों से सम्बन्धित अवधारणा है।
2. "लोकतन्त्र एक ऐसा शब्द है जिसके अनेक अर्थ हैं।" – बर्न्स।
3. लोकतन्त्र के चार प्रमुख रूप हैं–
   (अ) राजनीतिक लोकतन्त्र– राजनीतिक लोकतन्त्र के दो रूप हैं– (1) राज्य के रूप में लोकतन्त्र
   (2) शासन के रूप में लोकतन्त्र।
   लोकतान्त्रिक राज्य की अवधारणा प्रभुसत्ता का निवास जनता में मानती है।
4. लोकतान्त्रिक राज्य का व्यावहारिक रूप लोकतान्त्रिक शासन है। लोकतान्त्रिक शासन के दो प्रकार हैं–
   (1) प्रत्यक्ष लोकतन्त्र
   (2) अप्रत्यक्ष (प्रतिनिधि) लोकतन्त्र।
   अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र के दो रूप प्रचलित हैं :–
   (1) संसदीय लोकतन्त्र
   (2) अध्यक्षात्मक लोकतन्त्र।
5. राजनीतिक लोकतन्त्र की आधारभूत विशेषतायें हैं–
   (1) यह उदारवादी संविधान में विश्वास करता है,
   (2) यह लोक–प्रभुत्व में विश्वास करता है,
   (3) इसका सैद्धान्तिक पक्ष है लोकतान्त्रिक राज्य और व्यावहारिक पक्ष है लोकतान्त्रिक शासन,

(4) यह साधन है, साध्य नहीं।

(5) यह विकासशील अवधारणा है।

6. (ब) सामाजिक लोकतन्त्र की विशेषतायें है–

(1) सामाजिक समानता,

(2) सभी को सामाजिक प्रगति के समान अवसर।

(3) राजनीतिक लोकतन्त्र का अनुपूरक होना।

7. (स) आर्थिक लोकतन्त्र– इसके तीन उप–प्रकार एवं अर्थ हैं–

(1) व्यक्तिवादी आर्थिक लोकतन्त्र जो शुद्ध पूंजीवादी लोकतन्त्र होता है,

(2) मार्क्सवादी आर्थिक लोकतन्त्र, जो पूंजीवादी लोकतन्त्र से एकदम विपरीत आर्थिक समतावादी तन्त्र है।

(3) उदारवादी आर्थिक लोकतन्त्र, जो लोक कल्याणकारी राज्य की धारणा में विश्वास करता है।

8. (द) नैतिक लोकतन्त्र– इसके प्रमुख लक्षण एवं विशेषताएं हैं–

(1) नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों पर बल,

(2) व्यक्ति की गरिमा में विश्वास,

(3) स्वतन्त्रता, समानता एवं भाई–चारे की भावना पर बल,

(4) अपनी प्रकृति से अन्तर्राष्ट्रवादी विचारधारा में विश्वास।

अभ्यास प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. 'Democracy' शब्द ग्रीक भाषा के किन शब्दों के संयोग से बना है और उसका प्रचलित व स्वीकृत अर्थ क्या है?
2. लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के दो प्रमुख भेद कौन से हैं?
3. उदारवादी प्रतिनिधि (अप्रत्यक्ष) लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के दो प्रमुख प्रकार कौन से हैं?
4. लोकतन्त्र के एक रूप 'सामाजिक लोकतन्त्र' का क्या अर्थ है?
5. लोकतन्त्र के एक रूप 'नैतिक लोकतन्त्र' से आप क्या समझते हैं?
6. लोकतन्त्र के बहुलवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण की आलोचना के दो तर्क दीजिए।
7. लोकतन्त्र के विशिष्ट (अभिजन) वर्गीय सिद्धान्त के लोकतान्त्रिक होने के बारे में क्यों संदेह किया जाता है?
8. लोकतान्त्रिक शासन के किन्हीं तीन गुणों को इंगित कीजिए।
9. लोकतान्त्रिक शासन के किन्हीं तीन अवगुणों को इंगित कीजिए।
10. लोकतन्त्र के सफल संचालन के लिए आवश्यक तीन शर्तो (परिस्थितियों) का उल्लेख कीजिए।
11. भारत में लोकतन्त्र के संचालन के मार्ग की तीन प्रमुख बाधाओं को इंगित कीजिए।
12. ऐसे तीन तथ्यात्मक तर्क दीजिए जो भारत के लोकतन्त्र के उज्जवल भविष्य को प्रकट करते हों।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. लोकतन्त्र से आप क्या समझते हैं? इसके विभिन्न रूपों का वर्णन कीजिए।
2. 'लोकतन्त्र को शासन का एक रूप, सामाजिक संगठन का एक सिद्धान्त तथा जीवन की एक पद्धति माना जाता है।' क्यों?
3. लोकतान्त्रिक शासन से आप क्या समझते है? इसका आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र का अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र के गुण–दोषों की विवेचना कीजिए।
6. लोकतन्त्र के कुल कितने प्रमुख सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण हैं? इनमें से लोकतन्त्र के उदारवादी, मार्क्सवादी एवं समाजवादी सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
7. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिये–

(अ) उदारवादी प्रतिनिधि लोकतन्त्र के प्रमुख लक्षण।

(ब) लोकतन्त्र अयोग्यता का शासन है।

(स) लोकतन्त्र शासन का सबसे अच्छा रूप है, क्योंकि व्यक्ति को इससे श्रेष्ठ शासन का अभी भी ज्ञान नहीं है।

(द) लोकतन्त्र के दोषों के अन्त के लिए प्रमुख सुझाव दीजिए।

अध्याय 6

केन्द्र सरकार

सरकार का अर्थ एवं परिभाषा : (Meaning and Definition of Government)

राज्य एक भावात्मक अवधारणा है जो एक अमूर्त्त एवं अदृश्य संस्था होती है, इसे मूर्त्त रूप प्रदान करने वाली संस्था को ही सरकार कहा जाता है। सरकार द्वारा ही राज्य की सामूहिक इच्छा को निर्धारित, अभिव्यक्त एवं कार्यान्वित किया जाता है। हम कह सकते हैं कि सरकार ही राज्य रूपी भावात्मक अवधारणा की अभिव्यक्ति है। सरकार के अभाव में राज्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती जो राज्य के निश्चित भू–भाग (Territory) में बसने वाले लोगों की सेवा करने हेतु कानूनों का निर्माण करती है, उसका निष्पादन करती है तथा उनका उचित रूप से पालन न करने वालों को दण्डित कर उन्हें उचित रास्ते पर लाती है। गार्नर ने सरकार की परिभाषा करते हुए कहा है– "सरकार वह अभिकरण या मशीन है, जिसके द्वारा राज्य की नीतियाँ निर्धारित की जाती है, सामान्य मामलों को नियमित किया जाता है तथा सामान्य हितों को उन्नत किया जाता है।"

सरकार के प्रमुख तीन अंग निम्नानुसार हैं :– व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका।

व्यवस्थापिका :–

सरकार के तीन अंगों में व्यवस्थापिका प्रथम अंग है। भारतीय राज व्यवस्था में व्यवस्थापिका का गठन भी दो स्तर पर हुआ है : (1) संघीय व्यवस्थापिका और (2) राज्य व्यवस्थापिका। संविधान में संघीय व्यवस्थापिका को 'संसद' (Parliament) का नाम दिया गया है।

संविधान के अनुच्छेद 79 द्वारा व्यवस्था की गयी है कि भारतीय संघ की एक संसद होगी जिसका निर्माण राष्ट्रपति तथा दो सदनों से मिलकर होगा, जिनके नाम क्रमशः लोकसभा तथा राज्यसभा होंगे। इस प्रकार राष्ट्रपति, लोकसभा तथा राज्यसभा तीनों का संयुक्त नाम 'संसद' है।

लोकसभा की रचना या संगठन

लोकसभा संसद का प्रथम या निम्न सदन है। इसे लोकप्रिय सदन भी कहते हैं, क्योंकि इसके सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं।

1. सदस्य संख्या :

मूल संविधान में लोकसभा की सदस्य संख्या 500 निश्चित की गयी थी, लेकिन समय–समय पर इसमें वृद्धि की गयी। अब गोआ, दमन और दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987 द्वारा निश्चित किया गया है कि लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या 552 हो सकती है। इनमें से अधिकतम 530 सदस्य राज्यों के निर्वाचन क्षेत्रों से व अधिकतम 20 सदस्य संघीय क्षेत्रों से निर्वाचित किये जा सकेंगे एवं राष्ट्रपति आंग्ल–भारतीय वर्ग के 2 सदस्यों का मनोनयन कर सकेंगे।

2. निर्वाचन :

लोकसभा के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से और वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। भारत में अब 18 वर्ष की आयु प्राप्त व्यक्ति को वयस्क माना गया है। लोकसभा के सभी निर्वाचन क्षेत्र 'एकल–सदस्यीय' रखे गये हैं।

3. सदस्यों के लिए योग्यताएँ :

(i) वह व्यक्ति भारत का नागरिक हो।
(ii) उसकी आयु 25 वर्ष या इससे अधिक हो।
(iii) भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के अन्तर्गत वह कोई लाभ का पद धारण न किये हुये हो।
(iv) वह किसी न्यायालय द्वारा पागल न ठहराया गया हो तथा दिवालिया न हो।

4. कार्यकाल :

लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष है। प्रधानमंत्री के परामर्श के आधार पर राष्ट्रपति के द्वारा लोकसभा को समय से पूर्व भी भंग किया जा सकता है, ऐसा अब तक 9 बार किया गया है।

5. अधिवेशन :

लोकसभा और राज्यसभा के अधिवेशन राष्ट्रपति के द्वारा ही बुलाये और स्थगित किये जाते है और इस संबंध में नियम केवल यह है कि लोकसभा की दो बैठकों में 6 माह से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए।

6. लोकसभा के पदाधिकारी :

अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष : संविधान के अनुच्छेद 93 के अनुसार लोकसभा स्वयं ही अपने सदस्यों में से एक अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन करेगी। अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को उनके पद से हटाया भी जा सकता है यदि लोकसभा के तत्कालीन सदस्यों के बहुमत से इस आशय का प्रस्ताव पास हो जाये, परन्तु इस प्रकार का कोई प्रस्ताव लोकसभा में तभी पेश हो सकेगा जबकि

इस प्रकार के प्रस्ताव को पेश करने के लिए कम से कम 14 दिन की पूर्व सूचना दी गयी हो। संविधान के अनुसार अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को संसद द्वारा निर्धारित वेतन तथा भत्ते प्राप्त होंगे।

अध्यक्ष के कार्य और शक्तियाँ : भारतीय लोकसभा के अध्यक्ष को लगभग वे ही अधिकार प्राप्त हैं जो ब्रिटिश लोकसदन (House of Commons) के अध्यक्ष को हैं।

1. अध्यक्ष के द्वारा लोकसभा की सभी बैठकों की अध्यक्षता की जाती है और अध्यक्ष होने के नाते उसके द्वारा सदन में शान्ति–व्यवस्था और अनुशासन बनाये रखने का कार्य किया जाता है।

2. लोकसभा का समस्त कार्यक्रम और कार्यवाही अध्यक्ष के द्वारा ही निश्चित की जाती है। वह सदन के नेता के परामर्श से विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में वाद–विवाद का समय निश्चित करता है।

3. वह सदन की कुछ समितियों का पदेन सभापति होता है। प्रवर समितियों (Select Committees) के सभापतियों को वही नियुक्त करता है और इन समितियों के द्वारा उसके निर्देशन में ही कार्य किया जाता है।

4. अध्यक्ष ही यह निर्णय करता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है अथवा नहीं।

5. संसद और राष्ट्रपति के बीच सारा पत्र–व्यवहार उसके ही द्वारा होता है।

राज्यसभा की रचना या संगठन

राज्यसभा भारतीय संसद का द्वितीय या उच्च सदन है। इसे लोकसभा की तुलना में कम शक्तियाँ प्राप्त हैं, लेकिन फिर भी इसका अपना महत्त्व और उपयोगिता है :

1. सदस्य संख्या और निर्वाचन पद्धति :

संविधान के अनुसार राज्यसभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 250 हो सकती है, परन्तु वर्तमान समय में यह संख्या 245 ही है। इनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। ये ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें कला, साहित्य, विज्ञान, समाज–सेवा या खेल के क्षेत्र में विशेष ज्ञान या अनुभव प्राप्त हो। राज्य विधानमण्डलों द्वारा 233 सदस्य निर्वाचित होते हैं तथा इन सदस्यों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय पद्धति के अनुसार संघ के विभिन्न राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा किया जाता है।

2. सदस्यों की योग्यताएँ :

राज्यसभा के सदस्यों के लिए वे ही योग्यताएँ हैं जो लोकसभा के सदस्यों के लिए हैं। अन्तर केवल यह है कि लोकसभा की सदस्यता के लिए 25 वर्ष की आयु किन्तु राज्यसभा की सदस्यता के लिए 30 वर्ष या इससे अधिक की आयु होना आवश्यक है।

3. सदस्यों का कार्यकाल :

राज्यसभा एक स्थायी सदन है जो कभी भंग नहीं होता। इसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष है और राज्यसभा के एक–तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष बाद सेवानिवृत्त हो जाते हैं।

4. राज्यसभा के पदाधिकारी :

राज्यसभा के दो प्रमुख पदाधिकारी होते है– सभापति और उपसभापति। भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होता है, उसका कार्यकाल 5 वर्ष है। राज्यसभा अपने सदस्यों में से किसी एक को 6 वर्ष के लिए उपसभापति निर्वाचित करती है।

संसद के कार्य तथा शक्तियाँ
(Powers and Functions of the Parliament)

संविधान के द्वारा संसद को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। संसद की प्रमुख शक्तियों का उल्लेख अग्रलिखित रूपों में किया जा सकता है :

1. विधायी शक्तियाँ :

संसद का सबसे प्रमुख कार्य राष्ट्रीय हितों को दृष्टि में रखते हुए कानूनों का निर्माण करना है। संसद को संघीय सूची में और समवर्ती सूची में उल्लेखित विषयों पर कानून निर्माण का अधिकार प्राप्त है। यद्यपि समवर्ती सूची के विषयों पर संघीय संसद और राज्य विधानमण्डल दोनों के द्वारा ही कानूनों का निर्माण किया जा सकता है। किन्तु इन दोनों द्वारा निर्मित कानूनों में पारस्परिक विरोध होने की स्थिति में संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होंगे। संसद के द्वारा अवशिष्ट विषयों पर भी कानून का निर्माण किया जा सकता है।

2. संविधान में संशोधन की शक्ति :

संविधान में संशोधन के सम्बन्ध में संसद को महत्त्वपूर्ण शक्ति प्राप्त है। संविधान के अनुसार संविधान में संशोधन का प्रस्ताव संसद में ही प्रस्तावित किया जा सकता है, किसी राज्य के विधानमण्डल में नहीं। संसद के दोनों सदनों द्वारा संविधान के संशोधन का कार्य किया जाता है और संविधान के अधिकांश भाग में अकेली संसद के द्वारा ही या तो सामान्य बहुमत से या पृथक–पृथक दोनों सदनों के दो–तिहाई बहुमत से परिवर्तन किया जा सकता है। संविधान की केवल कुछ ही व्यवस्थाएँ ऐसी हैं जिनमें संशोधन के लिए भारतीय संघ के आधे राज्यों के विधानमण्डलों की स्वीकृति आवश्यक होती है।

3. वित्तीय शक्तियाँ :

जनता के प्रतिनिधि होने के नाते भारतीय संसद को राष्ट्रीय वित्त पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है और प्रतिवर्ष वित्तमन्त्री द्वारा प्रस्तावित बजट (राष्ट्रीय आय–व्यय का लेखा) जब तक संसद (लोकसभा) से स्वीकार न करा लिया जाये उस समय तक आय–व्यय से सम्बन्धित कोई कार्य नहीं किया जा सकेगा।

4. प्रशासनिक शक्तियाँ :

भारतीय संविधान के द्वारा संसदात्मक व्यवस्था की स्थापना की गयी है, अत: संविधान के अनुसार संघीय कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिमण्डल संसद (व्यवहार में लोकसभा) के प्रति उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल केवल उसी समय तक अपने पद पर रहता है, जब तक कि उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त हो। संसद अनेक प्रकार से कार्यपालिका पर नियंत्रण रख सकती है।

5. निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियाँ :

अनुच्छेद 54 के द्वारा संसद को कुछ निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए गठित निर्वाचक मण्डल के अंग हैं। अनुच्छेद 66 के अनुसार संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करते हैं।

6. विविध शक्तियाँ :

उपर्युक्त के अतिरिक्त संसद को कुछ अन्य शक्तियाँ भी प्राप्त है :

(क) संसद के दोनों सदन संविधान द्वारा निर्धारित विशेष प्रक्रिया के आधार पर राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग का प्रस्ताव पास कर उसे पदच्युत कर सकते हैं। इस प्रकार ये दोनों सदन सर्वोच्च या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को अक्षमता व दुराचरण के आधार पर पदच्युत करने का प्रस्ताव पास कर सकते हैं। इस प्रकार का प्रस्ताव प्रत्येक सदन में दो–तिहाई बहुमत द्वारा पारित होना चाहिए। उपराष्ट्रपति को हटाने के लिए राज्यसभा द्वारा पारित प्रस्ताव लोकसभा द्वारा अनुमोदित होना चाहिए।

(ख) राष्ट्रपति द्वारा घोषित संकटकालीन घोषणा की प्रभाविकता के लिए, घोषणा के एक महिने के अन्दर संसद के दोनों सदनों से अनुमोदन आवश्यक है। राष्ट्रपति शासन एक बार में छः माह के लिए लागू होता है तथा इसके बाद भी यदि इसे बढ़ाने की आवश्यकता हो तो यह 8 माह तक और बढ़ाया जा सकता है पर उसके लिए संसद के दोनों सदनों की स्वीकृति आवश्यक होगी।

लोकसभा की शक्तियाँ अथवा अधिकार और कार्य

1. विधायी शक्ति :

संविधान के अनुसार भारतीय संसद संघीय सूची, समवर्ती सूची, अवशिष्ट विषयों और कुछ परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून का निर्माण कर सकती है। संविधान के द्वारा साधारण अवित्तीय विधेयकों और संविधान संशोधन विधेयकों के सम्बन्ध में कहा गया है कि इस प्रकार के विधेयक लोकसभा या राज्यसभा दोनों में से किसी भी सदन में प्रस्तावित किये जा सकते है और दोनों सदनों से पारित होने पर ही राष्ट्रपति के पास हस्ताक्षर के लिए भेजे जायेंगे।

2. वित्तीय शक्ति :

भारतीय संविधान द्वारा वित्तीय क्षेत्र के सम्बन्ध में शक्ति लोकसभा को ही प्रदान की गयी है और इस सम्बन्ध में राज्यसभा की स्थिति बहुत गौण है। अनुच्छेद 109 के अनुसार धन विधेयक लोकसभा में ही प्रस्तावित किये जा सकते हैं, राज्यसभा में नहीं। लोकसभा से पारित होने के बाद धन विधेयक राज्यसभा में भेजा जाता है और राज्यसभा के लिए आवश्यक है कि उसे धन विधेयक की प्राप्ति की तिथि से 14 दिन के अन्दर–अन्दर विधेयक लोकसभा को लौटा देना होगा। राज्यसभा विधेयक में संशोधन के लिए सुझाव दे सकती है, लेकिन उन्हें स्वीकार करना या न करना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर करता है।

3. कार्यपालिका पर नियन्त्रण की शक्ति :

भारतीय संविधान के द्वारा संसदात्मक व्यवस्था की स्थापना की गयी है। अत: संविधान के अनुसार संघीय कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिमण्डल संसद (व्यवहार में लोकसभा) के प्रति उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल केवल उसी समय तक अपने पद पर रहता है जब तक कि उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त हो।

4. संविधान संशोधन सम्बन्धी शक्ति :

लोकसभा को राज्यसभा के साथ मिलकर संविधान में संशोधन–परिवर्तन का अधिकार भी प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद 368 के अनुसार संविधान के अधिकांश भाग में संशोधन का कार्य अकेली संसद के द्वारा ही किया जाता है।

5. निर्वाचक मण्डल के रूप में कार्य :

लोकसभा निर्वाचक मण्डल के रूप में भी कार्य करती है। अनुच्छेद 54 के अनुसार लोकसभा के निर्वाचित सदस्य राज्यसभा के निर्वाचित सदस्यों तथा राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों के साथ मिलकर राष्ट्रपति को निर्वाचित करते हैं।

राज्यसभा के कार्य और शक्तियाँ

शक्तियों का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है।

1. विधायी शक्तियाँ : लोकसभा के साथ–साथ राज्यसभा भी विधि निर्माण सम्बन्धी कार्य करती है। संविधान के द्वारा अवित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा दोनों को बराबर शक्तियाँ प्रदान की गई है।

2. संविधान संशोधन की शक्ति : संविधान संशोधन के सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा के समान ही शक्ति प्राप्त है। संशोधन प्रस्ताव पर संसद के दोनों सदनों में असहमति होने पर संविधान में संशोधन का प्रस्ताव गिर जायेगा।

3. वित्तीय शक्ति : राज्यसभा को कुछ वित्तीय शक्ति प्राप्त है यद्यपि इस सम्बन्ध में संविधान द्वारा राज्यसभा को लोकसभा की तुलना में निर्बल स्थिति प्रदान की गयी है। संविधान के अनुसार धन विधेयक पहले लोकसभा में ही प्रस्तावित किये जायेंगे। लोकसभा से स्वीकृत होने पर धन विधेयक राज्यसभा में भेजे जायेंगे, जिसके द्वारा अधिक से अधिक 14 दिन तक इस

विधेयक पर विचार किया जा सकेगा। राज्यसभा धन विधेयक के सम्बन्ध में अपने सुझाव लोकसभा को दे सकती है, लेकिन यह लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है कि उन प्रस्तावों को माने या न माने।

4. कार्यपालिका सम्बन्धी शक्ति : संसदात्मक शासन व्यवस्था में मन्त्रिपरिषद् संसद के लोकप्रिय सदन के प्रति ही उत्तरदायी होती है। अतः भारत में भी मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है, राज्यसभा के प्रति नहीं। राज्यसभा के सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं और उनकी आलोचना भी कर सकते हैं, परन्तु इन्हें अविश्वास प्रस्ताव द्वारा मन्त्रियों को हटाने का अधिकार नहीं है।

5. विविध शक्तियाँ :

उपर्युक्त के अतिरिक्त राज्यसभा को कुछ अन्य शक्तियाँ भी प्राप्त हैं, जिनका प्रयोग वह लोकसभा के साथ मिलकर करती है। ये शक्तियाँ और कार्य इस प्रकार हैं :

(i) राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं।

(ii) राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य लोकसभा के निर्वाचित सदस्यों के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का चुनाव करते हैं।

(iii) राज्यसभा लोकसभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तथा कुछ पदाधिकारियों पर महाभियोग लगा सकती है। महाभियोग का प्रस्ताव तभी पारित समझा जाता है, जब दोनों सदन इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार कर लें।

(iv) राज्यसभा लोकसभा के साथ मिलकर बहुमत से प्रस्ताव पास कर उपराष्ट्रपति को उसके पद से हटा सकती है। उपराष्ट्रपति को पद से हटाने का प्रस्ताव प्रथम बार राज्यसभा में ही पारित होकर लोकसभा के पास जाता है।

(v) एक माह से अधिक अवधि तक यदि आपातकाल लागू रखना हो तो इस प्रकार के प्रस्ताव का अनुमोदन लोकसभा और राज्यसभा दोनों के द्वारा पृथक–पृथक अपने विशेष बहुमत से किया जाना आवश्यक है।

6. विशेष अधिकार :

राज्यसभा को दो ऐसे अन्य अधिकार भी प्राप्त हैं जो लोकसभा को प्राप्त नहीं है और जिनका प्रयोग अकेले राज्यसभा ही करती है। इस प्रकार की शक्तियों का सम्बन्ध देश के संघीय ढाँचे से है और राज्यसभा को राज्यों का एकमात्र प्रतिनिधि होने के नाते अग्र प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हैं :

(i) अनुच्छेद 249 के अनुसार राज्यसभा उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत से राज्यसूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्त्व का विषय घोषित कर सकती है। इसके द्वारा उस राज्य सूची के विषय पर कानून बनाने का अधिकार संसद को मिल जाता है।

(ii) संविधान के अनुच्छेद 312 के अनुसार, राज्यसभा ही अपने दो–तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास कर नयी अखिल भारतीय सेवाएँ स्थापित करने का अधिकार केन्द्र सरकार को दे सकती है।

कार्यपालिका — सरकार का दूसरा अंग कार्यपालिका है।

राष्ट्रपति :

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 52 में यह उपबन्ध है कि भारत का एक राष्ट्रपति होगा। अनुच्छेद 53 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी तथा वह इसका प्रयोग संविधान के अनुसार स्वयं अथवा अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करेगा। इस प्रकार संघीय कार्यपालिका में राष्ट्रपति, उप–राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद् व भारत का महान्यायवादी होंगे। राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान होगा और प्रधानमंत्री सहित मंत्री परिषद् कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान। भारतीय संघ की कार्यपालिका के प्रधान को राष्ट्रपति कहा गया है। भारत में ब्रिटेन जैसी संसदात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है, जिसके अन्तर्गत कार्यपालिका का एक वैधानिक प्रधान होता है और दूसरा वास्तविक प्रधान। राष्ट्रपति भारतीय संघ की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान है और भारतीय संघ में उसकी स्थिति ब्रिटिश सम्राट जैसी होती है।

राष्ट्रपति पद की योग्यताएँ :

संविधान में राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित होने वाले व्यक्ति के लिए निम्नांकित योग्यताएँ निश्चित की गयी है :

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
3. वह लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो।

इसके अतिरिक्त ऐसा कोई भी व्यक्ति जो भारत सरकार, राज्य सरकार या किसी स्थानीय सरकार के अन्तर्गत पदाधिकारी हो, या लाभ का पद धारण किए हो राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार नहीं हो सकता।

राष्ट्रपति भारतीय संसद अथवा राज्यों के विधानमण्डल के किसी सदन का सदस्य नहीं होगा।

राष्ट्रपति का निर्वाचन (Election of the President)

राष्ट्रपति के चुनाव के लिए अप्रत्यक्ष निर्वाचन की पद्धति को अपनाया गया है और यह चुनाव एकल संक्रमणीय मत पद्धति के आधार पर होता है। यह पद्धति इस प्रकार है :

अप्रत्यक्ष निर्वाचन :

राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे निर्वाचक–मण्डल द्वारा किया जायेगा, जिसमें

(1) संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य और

(2) राज्य विधानसभाओं तथा 70वें संवैधानिक संशोधन (1992) के अनुसार संघीय क्षेत्रों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य

शामिल होंगे–

एकल संक्रमणीय मत पद्धति :

संसद तथा राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव एक विशेष मत पद्धति के अनुसार होगा, जिसे 'एकल संक्रमणीय मत पद्धति' (Single Transferable Vote System) कहा जाता है। इस चुनाव में मतदान गुप्त मतपत्र द्वारा होता है और चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए उम्मीदवार के लिए 'न्यूनतम कोटा' (Quota) प्राप्त करना आवश्यक होता है। 'न्यूनतम कोटा' निर्धारित करने के लिए निम्नांकित सूत्र अपनाया जाता है।

$$\text{न्यूनतम कोटा} = \frac{\text{दिये गये वैध मतों की संख्या}}{\text{निर्वाचित होने वाले प्रतिनिधियों की संख्या}} \div 1000$$

पदच्युति की पद्धति

महाभियोग (Impeachment) :

भारत के राष्ट्रपति का कार्यकाल 5 वर्ष है, किन्तु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 61 के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा संविधान का उल्लंघन किये जाने पर संविधान में दी गयी पद्धति के अनुसार उस पर महाभियोग लगाकर उसे पदच्युत किया जा सकता है। उस पर अभियोग लगाने का अधिकार भारतीय संसद के प्रत्येक सदन को प्राप्त है। अभियोग चलाने की अनुमति के लिए अभियोग चलाने वाले सदन की समस्त संख्या के 1/4 सदस्यों के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं। सदन में प्रस्ताव प्राप्त होने के 14 दिन बाद अभियोग लगाने वाले सदन में उस पर विचार किया जायेगा और यदि अभियोग का प्रस्ताव सदन की कुल संख्या के 2/3 सदस्यों द्वारा स्वीकृत हो जाये, तो उसके उपरान्त प्रस्ताव द्वितीय सदन को भेज दिया जाता है। दूसरा सदन इन अभियोगों की या तो स्वयं जांच करेगा या इस कार्य के लिए विशेष समिति नियुक्त करेगा। यदि इस सदन में राष्ट्रपति के विरुद्ध लगाये गये आरोप सिद्ध हो जाते हैं और दूसरा सदन भी अपने कुल सदस्यों के कम–से–कम दो–तिहाई बहुमत से महाभियोग के प्रस्ताव को स्वीकार कर ले, तो प्रस्ताव स्वीकृत होने की तिथि से राष्ट्रपति पदच्युत समझा जावेगा।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ और कार्य (Powers and Functions of the President)

अध्ययन की सुविधा के लिए राष्ट्रपति की समस्त शक्तियों को प्राथमिक रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है : (1) सामान्यकालीन शक्तियाँ, और (2) संकटकालीन शक्तियाँ।

सामान्यकालीन शक्तियाँ अथवा अधिकार

संविधान के द्वारा सामान्यकाल में राष्ट्रपति को जो शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं उनका अध्ययन निम्नलिखित पाँच शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

1. कार्यपालिका अथवा प्रशासनिक शक्तियाँ :

संविधान के अनुच्छेद 53 के अनुसार, "संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी तथा वह इसका प्रयोग संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करेगा।" इस प्रकार शासन का समस्त कार्य राष्ट्रपति के नाम से होगा और सरकार के समस्त निर्णय उसके ही माने जायेंगे।

(i) महत्त्वपूर्ण अधिकारियों की नियुक्ति व पदच्युति :

राष्ट्रपति भारत संघ के अनेक महत्त्वपूर्ण अधिकारियों की नियुक्ति करता है, जैसे प्रधानमंत्री की सलाह से अन्य मंत्री, राज्यों के राज्यपाल, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, महालेखा परीक्षक, संघीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य तथा विदेशों में राजदूत आदि।

(ii) शासन संचालन संबंधी शक्ति :

इस संबंध में उसके द्वारा विभिन्न प्रकार के नियम बनाये जा सकते हैं। वह संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक, सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति तथा नियंत्रक व महालेखा परीक्षक की शक्तियों से संबंधित नियमों का निर्माण करता है। मंत्रिपरिषद् के सदस्यों के बीच विभागों का वितरण भी उसी के द्वारा किया जाता है।

(iii) वैदेशिक क्षेत्र में शक्ति :

भारतीय संघ का वैधानिक प्रमुख होने के नाते राष्ट्रपति वैदेशिक क्षेत्र में भारत का प्रतिनिधित्व करता है। वह विदेशों में स्थित भारतीय दूतावासों के लिए राजदूतों व कूटनीतिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति करता है और विदेशों के राजदूत व राजनयिक प्रतिनिधियों के प्रमाण–पत्रों को स्वीकार करता है। विदेशों से सन्धियाँ और समझौते भी राष्ट्रपति के नाम से किये जाते हैं।

(iv) सैनिक क्षेत्र में शक्ति :

राष्ट्रपति भारत की समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति है, किन्तु इस अधिकार का प्रयोग वह कानून के अनुसार ही कर सकता है। प्रतिरक्षा सेवाओं, युद्ध और शान्ति आदि के विषय में कानून बनाने की शक्ति केवल संसद को प्राप्त है। अतः भारतीय राष्ट्रपति संसद की स्वीकृति के बिना न तो युद्ध की घोषणा कर सकता है और न ही सेनाओं का प्रयोग कर सकता है।

2. विधायी शक्तियाँ :

भारत का राष्ट्रपति भारतीय संघ की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान तो है ही, उसे भारतीय संसद का भी अभिन्न अंग माना गया है और इस रूप में राष्ट्रपति को विधायी क्षेत्र की विभिन्न शक्तियाँ प्राप्त हैं :

(i) विधायी क्षेत्र का प्रशासन :

राष्ट्रपति को विधायी क्षेत्र के प्रशासन से संबंधित अनेक शक्तियां प्राप्त हैं। वह संसद के अधिवेशन बुलाता है और अधिवेशन समाप्ति की घोषणा करता है। वह प्रधानमंत्री की सिफारिश पर लोकसभा को उसके निश्चित काल से पूर्व भी भंग कर सकता है। अब तक 9 बार लोकसभा को समय पूर्व भंग किया

जा चुका है। संसद के अधिवेशन के प्रारम्भ में राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में भाषण देता है। उसके द्वारा अन्य अवसरों पर भी संसद को संदेश या उनकी बैठकों में भाषण देने का कार्य किया जा सकता है। राष्ट्रपति के इन भाषणों में शासन की सामान्य नीति की घोषणा की जाती है।

(ii) सदस्यों को मनोनीत करने की शक्ति :

राष्ट्रपति को राज्य सभा में 12 सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार है जिनके द्वारा साहित्य, विज्ञान, कला या अन्य किसी क्षेत्र में विशेष सेवा की गयी हो। वह लोकसभा में 2 आंग्ल–भारतीय सदस्यों को मनोनीत कर सकता है।

(iii) विधेयक पर निषेधाधिकार का प्रयोग :

संसद द्वारा स्वीकृत प्रत्येक विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद ही कानून का रूप ग्रहण करता है। वह साधारण विधेयक को कुछ सुझावों के साथ संसद को पुनः विचार के लिए लौटा सकता है। लेकिन यदि वह विधेयक संसद द्वारा पुनः संशोधन के साथ या बिना संशोधन के पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति को दूसरी बार उसे स्वीकृति देनी होगी।

(iv) अध्यादेश जारी करने की शक्ति :

जिस समय संसद का अधिवेशन न हो रहा हो, उस समय राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने का अधिकार प्राप्त है। ये अध्यादेश संसद का अधिवेशन प्रारम्भ होने के 6 सप्ताह बाद तक लागू रहेंगे, लेकिन संसद चाहे तो उसके द्वारा इस अवधि से पूर्व भी इन अध्यादेशों को समाप्त किया जा सकता है।

3. वित्तीय शक्तियाँ :

राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ में संसद के दोनों सदनों के सम्मुख भारत सरकार की उस वर्ष के लिए आय और व्यय का विवरण रखवायेगा। उसकी आज्ञा के बिना धन विधेयक और अनुदान माँगें लोकसभा में प्रस्तावित नहीं की जा सकती।

4. न्यायिक शक्तियाँ :

संविधान में "न्यायपालिका की स्वतन्त्रता" के सिद्धान्त को अपनाया गया है। वह उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्मित न्यायालय की कार्य व्यवस्था से संबंधित नियमों के संबंध में राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है। राष्ट्रपति को एक अन्य महत्त्वपूर्ण शक्ति क्षमादान की प्राप्त है। राष्ट्रपति को न्यायिक शक्ति के अन्तर्गत दण्ड प्राप्त व्यक्तियों को क्षमा प्रदान करने या दण्ड को कुछ समय के लिए स्थगित करने का अधिकार भी प्राप्त है।

संकटकालीन अधिकार : उद्घोषणा, प्रभाव एवं व्यवहार में उपयोग

संकट की स्थिति का सामना करने के लिए संविधान द्वारा राष्ट्रपति को विशेष शक्तियाँ प्रदान की गयी है। वर्तमान समय में संविधान के संकटकालीन प्रावधानों की स्थिति निम्न प्रकार है :

1. युद्ध, बाहरी आक्रमण या आन्तरिक अशांति की स्थिति से संबंधित संकटकालीन व्यवस्था–

उद्घोषणा की विधि :

मूल संविधान के अनुच्छेद 352 में व्यवस्था थी कि यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाए कि युद्ध, बाहरी आक्रमण या आन्तरिक अशान्ति के कारण भारत या उसके किसी भाग की शान्ति या व्यवस्था नष्ट होने का भय है तो यथार्थ रूप से इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने पर या इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने की आशंका होने पर राष्ट्रपति संकटकालीन व्यवस्था की घोषणा कर सकता था। संसद की स्वीकृति के बिना भी यह घोषणा दो माह तक लागू रहती और संसद से स्वीकृति हो जाने पर शासन इसे जब तक लागू रखना चाहता, रख सकता था। 44वें संवैधानिक संशोधन के बाद वर्तमान समय में इस संबंध में व्यवस्था निम्न प्रकार है :

प्रथम, अब इस प्रकार का आपातकाल युद्ध, बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह अथवा इस प्रकार की आंशका होने पर ही घोषित किया जा सकेगा। केवल आन्तरिक अशान्ति के नाम पर आपातकाल घोषित नहीं किया जा सकता।

द्वितीय, राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत आपातकाल की घोषणा तभी की जा सकेगी, जबकि मंत्रिमंडल लिखित रूप में राष्ट्रपति को ऐसा परामर्श दे।

तृतीय, घोषणा के एक माह के अन्दर संसद के विशेष बहुमत (पृथक–पृथक संसद के दोनों सदनों के कुल बहुमत एवं उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत) से इसकी स्वीकृति आवश्यक होगी और इसे लागू रखने के लिए प्रति 6 माह बाद स्वीकृति आवश्यक होगी।

चतुर्थ, लोकसभा में उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के साधारण बहुमत से आपातकाल की घोषणा समाप्त की जा सकती है।

2. राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल होने से उत्पन्न संकटकालीन व्यवस्था–

उद्घोषणा की विधि:–

अनुच्छेद 356 के अनुसार राष्ट्रपति को राज्यपाल के प्रतिवेदन पर या अन्य किसी प्रकार से समाधान हो जाये कि ऐसी परिस्थिति पैदा हो गयी है कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है तो वह उस राज्य के लिए संकटकाल की घोषणा कर सकता है।

संसद की स्वीकृति के बिना यह घोषणा दो माह से अधिक की अवधि के लिए लागू नहीं रहेगी। संसद के द्वारा एक प्रस्ताव पास कर राज्य में 6 माह के लिए राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है। इस प्रकार प्रस्ताव संसद के दोनों सदनों द्वारा अलग–अलग अपने साधारण बहुमत से पास किया जाना आवश्यक है। किसी भी परिस्थिति में तीन वर्ष के बाद राष्ट्रपति शासन लागू

नहीं रखा जा सकेगा।

3. वित्तीय संकट–उद्घोषणा की विधि :

अनुच्छेद 360 के अनुसार जब राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाये कि ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गयी हैं जिनसे भारत के वित्तीय स्थायित्व या साख को खतरा है, तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है। ऐसी घोषणा के लिए भी वही अवधि निर्धारित है, जो प्रथम प्रकार के संकट की घोषणा के लिए है।

उपराष्ट्रपति (Vice-President)

निर्वाचन : भारतीय संविधान के 63वें अनुच्छेद में उपराष्ट्रपति के पद की व्यवस्था की गयी है। उपराष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में होता है और यह निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली की एकल संक्रमणीय मत पद्धति से तथा गुप्त मतदान द्वारा होता है। इस पद के उम्मीदवार में निम्नलिखित योग्यताएं होनी आवश्यक है : (1) वह भारत का नागरिक हो, (2) उसकी आयु कम से कम 35 वर्ष हो, (3) उसमें वे सब योग्यताएँ पायी जायें जो संविधान द्वारा राज्यसभा के सदस्यों के लिए निश्चित की गयी हों।

पदच्युति :

उपराष्ट्रपति का कार्यकाल 5 वर्ष होता है, किन्तु वह स्वेच्छा से त्यागपत्र द्वारा इस अवधि के पूर्व भी अपना पद छोड़ सकता है अथवा उसे राज्यसभा के कुल बहुमत द्वारा पास किये गये प्रस्ताव से जिसे लोकसभा भी स्वीकार कर ले, पदच्युत भी किया जा सकता है। ऐसे प्रस्ताव की सूचना 14 दिन पूर्व दी जानी आवश्यक है।

उपराष्ट्रपति की शक्तियाँ और कार्य : उपराष्ट्रपति की शक्तियाँ और कार्य इस प्रकार है

1. राज्यसभा का पदेन सभापति :

उपराष्ट्रपति, राज्यसभा का पदेन सभापति होता है। चूंकि वह राज्यसभा का सदस्य नहीं होता, इसलिए उसे मतदान का अधिकार नहीं है, परन्तु यदि विषय के पक्ष और विपक्ष में बराबर मत हों, तो उसे निर्णायक मत देने का अधिकार होता है। उपराष्ट्रपति का यह सबसे प्रमुख कार्य है।

2. राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में उसके पद का कार्यभार संभालना :

उपराष्ट्रपति निम्न चार स्थितियों में राष्ट्रपति पद का कार्यभार संभालता है :– (i) राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाने पर, (ii) राष्ट्रपति के त्यागपत्र दे देने पर, (iii) महाभियोग के कारण राष्ट्रपति की पदच्युति पर, (iv) अन्य किसी कारण से उत्पन्न राष्ट्रपति की असमर्थता की स्थिति में जैसे रोग या विदेश यात्रा।

प्रधानमंत्री (Prime Minister)

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 74 प्रधानमंत्री पद की व्यवस्था करता है।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति :

संविधान में उपबन्धित है कि प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। संसदात्मक प्रणाली के मूलभूत सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करने के लिए बाध्य है। फिर भी कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती है, जिनमें राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति के संबंध में विवेक का प्रयोग कर सके।

प्रधानमंत्री – कार्य, शक्तियाँ एवं अधिकार (Functions and Powers of the Prime Minister)

संसदात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत प्रधानमंत्री ही संविधान भवन रूपी वृत्तखण्ड की मुख्य शिला होता है।

1. मंत्रिपरिषद् का निर्माण :

अपना पद ग्रहण करने के बाद प्रधानमंत्री का सर्वप्रथम कार्य मन्त्रिपरिषद् का निर्माण करता होता है। प्रधानमंत्री ही निर्णय करता है कि वैधानिक सीमा के अन्तर्गत रहते हुए मंत्रिपरिषद् में कितने मन्त्री हों और कौन–कौन मन्त्री हों?

2. मन्त्रियों में विभागों का बँटवारा और परिवर्तन :

मन्त्रियों में विभागों का बँटवारा करते समय भी प्रधानमंत्री स्वविवेक के अनुसार ही कार्य करता है और प्रधानमंत्री द्वारा किये गये अन्तिम विभाग वितरण पर साधारणतया कोई आपत्ति नहीं की जाती है।

3. मन्त्रिपरिषद् का कार्य–संचालन :

प्रधानमंत्री मन्त्रिमण्डल की बैठकों का सभापतित्व और मन्त्रिमण्डल की समस्त कार्यवाही का संचालन करता है। मन्त्रिपरिषद् की बैठक में उन्हीं विषयों पर विचार किया जाता है जिन्हें प्रधानमंत्री कार्यसूची या 'एजेण्डा' में रखे।

4. शासन के विभिन्न विभागों में समन्वय :

प्रधानमंत्री शासन के समस्त विभागों में समन्वय स्थापित करता है जिससे कि समस्त शासन एक इकाई के रूप में कार्य कर सके।

5. लोकसभा का नेता :

प्रधानमंत्री संसद का मुख्यतया लोकसभा का, नेता होता है और कानून निर्माण के समस्त कार्य में प्रधानमंत्री ही नेतृत्व प्रदान करता है। वार्षिक बजट सहित सभी सरकारी विधेयक उसके निर्देशानुसार ही तैयार किये जाते हैं।

6. राष्ट्रपति तथा मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध स्थापितकर्ता :

सार्वजनिक महत्त्व के मामलों पर राष्ट्र के प्रधान से केवल प्रधानमंत्री के माध्यम से ही सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। वही राष्ट्रपति को मंत्रिमण्डल के निश्चयों से परिचित कराता है और वही राष्ट्रपति के परामर्श को मंत्रिमण्डल तक पहुंचाता है।

7. विभिन्न पद प्रदान करना :

संविधान द्वारा राष्ट्रपति को जिन उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति का अधिकार दिया गया है, व्यवहार में उनकी नियुक्ति

राष्ट्रपति स्वविवेक से नहीं वरन् प्रधानमंत्री के परामर्श से ही करता है।

मन्त्रिपरिषद् (Council of Ministers)

मूल संविधान के अनुच्छेद 74 में उपबन्धित है कि "राष्ट्रपति को उसके कार्यों के सम्पादन में सहायता एवं परामर्श देने के लिए मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा।" सैद्धान्तिक रूप से भारतीय संविधान द्वारा समस्त कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित मानी गयी है और राष्ट्रपति को सहायता तथा परामर्श देने के लिए प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिपरिषद् की व्यवस्था की गयी है, लेकिन संविधान द्वारा अपनायी गयी संसदात्मक शासन व्यवस्था में राष्ट्रपति एक संवैधानिक शासक–मात्र है और वास्तविक रूप से कार्यपालिका की समस्त सत्ता 'सहायता और परामर्श देने वाली समस्त शक्तियां मंत्रिमण्डल में निहित हैं।

मंत्रिपरिषद का गठन

1. प्रधानमंत्री की नियुक्ति :

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75 के अनुसार प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होगी तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति, राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री के परामर्श से की जायेगी। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है।

2. प्रधानमंत्री द्वारा मंत्रियों का चयन :

अन्य मंत्रियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में संवैधानिक स्थिति यह है कि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की राय से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करेगा, लेकिन व्यवहार में राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श को मानने के लिए बाध्य है।

3. मंत्रियों में कार्य–विभाजन :

मंत्रिपरिषद् के गठन के बाद प्रधानमंत्री के द्वारा इससे अधिक कठिन कार्य उनके बीच विभागों के विभाजन का किया जाता है। वैधानिक दृष्टि से इस सम्बन्ध में प्रधानमंत्री को पूर्ण शक्ति प्राप्त है, लेकिन व्यवहार में विभागों का वितरण करते हुए प्रधानमंत्री को कई बातों का ध्यान रखना होता है।

4. मंत्रियों के लिए आवश्यक योग्यताएँ :

मंत्रिपरिषद् का सदस्य बनने के लिए कानूनी दृष्टि से यह आवश्यक है कि व्यक्ति संसद के किसी सदन का सदस्य हो। यदि कोई व्यक्ति मंत्री बनते समय संसद सदस्य नहीं है तो उसे 6 महीने के अन्दर–अन्दर संसद सदस्य बनना अनिवार्य है। ऐसा न होने पर उसे अपना पद छोड़ना होगा।

5. मंत्रियों द्वारा शपथ ग्रहण :

पद ग्रहण करने से पूर्व प्रधानमंत्री सहित प्रत्येक मंत्री को राष्ट्रपति के सामने पद और गोपनीयता की दो शपथ लेनी होती है।

6. मंत्रिपरिषद् का कार्यकाल :

मंत्रिपरिषद् का कार्यकाल निश्चित नहीं होता। मंत्रिपरिषद् तभी तक अपने पद पर रहती है जब तक उसे संसद का विश्वास प्राप्त हो। मंत्रिपरिषद् अधिक से अधिक लोकसभा के कार्यकाल तक, जो कि सामान्यतया 5 वर्ष होता है, अपने पद पर बनी रहती है।

7. मंत्रियों के वेतन तथा भत्ते :

प्रधानमंत्री, केबीनेट के सदस्यों, राज्यमंत्रियों तथा उपमंत्रियों को मासिक वेतन तथा निर्धारित मासिक भत्ते दिये जाने का प्रावधान है, जिनका निर्धारण समय–समय पर संसद द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन सभी को निःशुल्क निवास स्थान, वाहन तथा अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती है।

8. मंत्रियों की श्रेणियाँ (मंत्रिपरिषद् तथा मंत्रिमण्डल या केबिनेट) :

मंत्रियों की तीन श्रेणियाँ होती है : मंत्रिमण्डल या केबिनेट के सदस्य, राज्यमंत्री तथा उपमंत्री। प्रथम श्रेणी के मंत्री केबिनेट सदस्य होते हैं जो कि भारत की संसदात्मक व्यवस्था में प्रशासन की सर्वोच्च इकाई है। केबिनेट के सदस्य एक या अधिक विभागों के प्रधान होते है। दूसरी श्रेणी में राज्यमंत्री आते हैं जिनकी स्थिति पूर्व मंत्री तथा उपमंत्री के बीच की होती है। ये विशेष विभागों से सम्बन्धित रहते हैं और कभी–कभी उनके द्वारा विभाग के स्वतंत्र प्रधान के रूप में भी कार्य किया जाता है। प्रधानमंत्री द्वारा इस श्रेणी के मंत्रियों को केबिनेट की उन बैठकों में आमन्त्रित किया जाता है, जिनमें उनके विभाग से सम्बन्धित प्रश्न विचाराधीन होते हैं।

राज्यमंत्री के बाद उपमंत्री की श्रेणी आती है जो किसी ज्येष्ठ मंत्री के अधीन रहते हुए उस मंत्री की सहायता करते हैं।

मंत्रिमण्डल की शक्तियाँ (Powers of the Cabinet)

संविधान के अनुच्छेद 74 में कहा गया है कि "मन्त्रिपरिषद् राष्ट्रपति को उसके कार्यो के सम्पादन में सहायता और परामर्श देगी।" किन्तु यह परम्परागत शब्दावली है और जहाँ तक व्यवहार का सम्बन्ध है, मन्त्रिमण्डल भारतीय शासन व्यवस्था की सर्वोच्च इकाई है और उसके द्वारा समस्त शासन व्यवस्था का संचालन किया जाता है। वास्तव में, राष्ट्रपति की समस्त शक्तियों का उपयोग, मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है और इसे 'भारतीय शासन व्यवस्था का हृदय' कहा जाता है।

1. राष्ट्रीय नीति निर्धारित करना :

मन्त्रिमण्डल का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीय नीति निर्धारित करना है। मन्त्रिमण्डल यह निश्चित करता है कि आन्तरिक क्षेत्र में प्रशासन के विभिन्न विभागों द्वारा और वैदेशिक क्षेत्र में दूसरे देशों के साथ सम्बन्ध के विषय में किस प्रकार की नीति अपनायी जायेगी।

2. कानून निर्माण पर नियन्त्रण :

संसदात्मक व्यवस्था होने के कारण मन्त्रिमण्डल का कार्यक्षेत्र नीति निर्धारण तक ही सीमित नहीं है वरन् इसके द्वारा कानून निर्माण के कार्य का भी नेतृत्व किया जाता है। मन्त्रिमण्डल

द्वारा नीति निर्धारित कर दिये जाने के बाद उसके द्वारा ही विधि निर्माण का कार्यक्रम निश्चित किया जाता है और मन्त्रिमण्डल के सदस्य ही महत्त्वपूर्ण विधेयक सदन में प्रस्तावित करते है।

3. राष्ट्रीय कार्यपालिका पर सर्वोच्च नियन्त्रण :

सैद्धान्तिक दृष्टि से संघ सरकार की समस्त कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति के हाथों में है लेकिन व्यवहार में इस प्रकार की समस्त कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग मन्त्रिमण्डल के द्वारा किया जाता है। मन्त्रिमण्डल में विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते है। वे अपने विभागों का संचालन करते हैं और उनके कार्यो की देखभाल करते हैं।

4. वित्तीय कार्य :

देश की आर्थिक नीति निर्धारित करने का उत्तरदायित्व भी मन्त्रिपरिषद् का होता है। इस हेतु उनके द्वारा प्रत्येक वर्ष संसद के सम्मुख देश के सम्भावित आय–व्यय का ब्यौरा (बजट) प्रस्तुत किया जाता है। बजट मन्त्रिमण्डल द्वारा निर्धारित नीति के आधार पर ही वित्तमंत्री तैयार करता है और वही उसे लोकसभा में प्रस्तुत करता है। अन्य समस्त धन विधेयकों को भी मन्त्रिमण्डल ही लोकसभा में प्रस्तुत करता है।

5. वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन :

भारत के वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन मन्त्रिमण्डल के द्वारा ही किया जाता है। इसके द्वारा युद्ध तथा शान्ति सम्बन्धी घोषणाएँ की जाती है और इस बात का निर्णय किया जाता है कि दूसरे देशों के साथ किस प्रकार के संबंध स्थापित किये जायें।

6. नियुक्ति सम्बन्धी कार्य :

संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को जिन पदाधिकारियों को नियुक्त करने की शक्ति प्रदान की गयी है, व्यवहार में इन पदाधिकारियों की नियुक्ति मन्त्रिमण्डल के द्वारा ही की जाती है।

भारत में कार्यपालिका की शक्तियों को नियंत्रित करने का कार्य विपक्ष के द्वारा किया जाता है। विपक्ष सत्ता पक्ष को नियंत्रित करने एवं शासन व्यवस्था को संविधान के अनुसार संचालित करने के लिए निम्नलिखित साधनों द्वारा सरकार को प्रभावित एवं नियंत्रित करता है।

न्यायपालिका

सरकार का तीसरा अंग न्यायपालिका है।

सर्वोच्च न्यायालय का गठन

1. न्यायाधीशों की संख्या :

मूल रूप में सर्वोच्च न्यायालय के लिए एक मुख्य न्यायाधीश तथा सात अन्य न्यायाधीशों की व्यवस्था की गयी थी और संविधान के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या, सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार, न्यायाधीशों के वेतन या सेवा शर्ते निश्चित करने का अधिकार संसद को दिया गया था। 2008 में मुख्य न्यायाधीश सहित न्यायाधीशों की संख्या 31 कर दी गई। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति करता है। भारत के प्रमुख न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के ऐसे अन्य न्यायाधीशों से परामर्श लेता है, जिनसे वह इस सम्बन्ध में परामर्श लेना आवश्यक समझता है। वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति कॉलेजियम व्यवस्था से की जाती है। जिसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश व चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों को एक समूह राष्ट्रपति को नाम प्रस्तावित करते है व राष्ट्रपति इन्हीं नामों में से न्यायाधीशों की नियुक्ति करते है।

3. न्यायाधीशों की योग्यताएँ :

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है :

(अ) वह भारत का नागरिक हो।

(ब) वह किसी उच्च न्यायालय अथवा दो या दो से अधिक न्यायालयों में लगातार कम–से–कम 5 वर्ष तक न्यायाधीश के रूप में कार्य कर चुका हो।

या

किसी उच्च न्यायालय या न्यायालयों में लगातार 10 वर्ष तक अधिवक्ता (Advocate) रह चुका हो।

या

राष्ट्रपति की दृष्टि में कानून का उच्च कोटि का ज्ञाता हो।

4. कार्यपालिका तथा महाभियोग :

साधारणतया सर्वोच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक अपने पद पर आसीन रह सकता है। इस अवस्था के पूर्व वह स्वयं त्यागपत्र दे सकता है। सिद्ध कदाचार अथवा असमर्थता के कारण संसद के द्वारा न्यायाधीश को उसके पद से हटाया जा सकता है। यदि संसद के दोनों सदन अलग–अलग अपने कुल सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत से इसको अयोग्य या आपत्तिजनक आचरण करने वाला प्रमाणित कर देते है तो भारत के राष्ट्रपति आदेश से उस न्यायाधीश को अपने पद से हटना होगा।

5. वेतन, भत्ते एवं अन्य सुविधायें :

मुख्य न्यायाधीश को एक लाख रूपये मासिक तथा अन्य न्यायाधीशों को 90,000 रूपये मासिक वेतन मिलता है। न्यायाधीशों के लिए पेंशन व सेवानिवृत्ति पेंशन (ग्रेच्युटी) की व्यवस्था भी है। वेतन एवं भत्ते समय–समय पर संशोधित होते हैं।

6. उन्मुक्तियां :

न्यायाधीशों को अपने सभी कार्यों व निर्णयों के लिए आलोचना से मुक्ति प्रदान की गई है।

7. न्यायालय का मुख्य स्थान :

अनुच्छेद 130 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय का प्रधान कार्यालय दिल्ली में है।

8. न्यायाधीशों पर प्रतिबन्ध :

संविधान में यह निश्चित किया गया है कि जो व्यक्ति

भारत के सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश रह चुके हैं, वे पद से निवृत्ति के बाद भारत में किसी न्यायालय या किसी भी अधिकारी से सामने वकालत नहीं कर सकते है।

सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार या शक्तियाँ तथा कार्य (Jurisdiction of Powers and Functions of The Supreme Court)

भारतीय संविधान के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को बहुत अधिक व्यापक क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है जिसका अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है :

1. प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार :

सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित दो वर्गो में रखा जा सकता है :

(क) प्रारम्भिक एकमेव क्षेत्राधिकार : प्रारम्भिक एकमेव क्षेत्राधिकार का आशय उन विवादों से है, जिनकी सुनवाई केवल भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ही की जा सकती है। सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक एकमेव क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत निम्न विषय आते हैं :

भारत सरकार तथा एक या एक से अधिक राज्यों के बीच विवाद,

भारत सरकार, संघ का कोई राज्य या राज्यों तथा एक या अधिक राज्यों के बीच विवाद,

दो या दो से अधिक राज्यों के बीच संवैधानिक विषयों के सम्बन्ध में उत्पन्न कोई विवाद।

(ख) प्रारम्भिक समवर्ती क्षेत्राधिकार : संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को लागू करने के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय के साथ–साथ उच्च न्यायालय को भी अधिकार प्रदान किया गया है। अतः मौलिक अधिकारों के उल्लंघन से सम्बन्धित जो विवाद हैं, वे चाहे तो पहले किसी राज्य के उच्च न्यायालय में और चाहे तो सीधे सर्वोच्च न्यायालय में उपस्थित किये जा सकते है।

2. अपीलीय क्षेत्राधिकार :

सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के साथ–साथ संविधान ने अपीलीय क्षेत्राधिकार भी प्रदान किया है और यह भारत का अन्तिम अपीलीय न्यायालय है। उसे समस्त राज्यों के उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार है। सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार को निम्न चार वर्गो में विभाजित किया जा सकता है : संवैधानिक, दीवानी, फौजदारी व विशिष्ट।

(क) संवैधानिक : संविधान के अनुच्छेद 132 के अनुसार यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि विवाद में संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित कानून का कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न निहित है, तो उच्च न्यायालय के निर्णय की अपील सर्वोच्च न्यायालय में भी की जा सकती है।

(ख) दीवानी : इस सम्बन्ध में मूल संविधान के अन्तर्गत यह व्यवस्था थी कि उच्च न्यायालय से सर्वोच्च न्यायालय में केवल ऐसे ही दीवानी विवादों की अपील की जा सकती थी जिसमें विवादग्रस्त राशि 20,000 रुपये से अधिक हो, किन्तु 1973 में हुए 30वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 133 को संशोधन कर उक्त धनराशि की सीमा (20,000) हटाते हुए अब यह निश्चित किया गया है कि सभी दीवानी विवादों की अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकेगी।

(ग) फौजदारी : फौजदारी के क्षेत्र में उन विवादों में उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है जिनमें (1) उच्च न्यायालय ने नीचे के न्यायालय के ऐसे किसी निर्णय को रद्द करके अभियुक्त को मृत्यु–दण्ड दे दिया हो, जिसमें नीचे के न्यायालय ने अभियुक्त को अपराध–मुक्त कर दिया था, या (2) उच्च न्यायालय ने नीचे के न्यायालय में चल रहे किसी विवाद को अपने यहाँ लेकर अभियुक्त को मृत्य–दण्ड दे दिया हो, या (3) उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि मामला सर्वोच्च न्यायालय में अपील के योग्य है।

(घ) विशिष्ट : कुछ ऐसे मामले हो सकते है जो उपर्युक्त श्रेणी में नहीं आते लेकिन जिनमें सर्वोच्च न्यायालय का हस्तक्षेप आवश्यक हो सकता है। अतः अनुच्छेद 135 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार दिया गया है कि सैनिक न्यायालय को छोड़कर वह भारत के अन्य किसी न्यायालय अथवा न्यायमण्डल (Tribunal) के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति प्रदान कर दे।

3. अपील के लिए विशेष आज्ञा देने का अधिकार :

संविधान के अनुच्छेद 136 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय को स्वयं भी यह अधिकार प्राप्त है कि वह सैनिक न्यायालय को छोड़कर भारत राज्य क्षेत्र के किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्णय के विरुद्ध अपने यहाँ अपील की अनुमति दे सकता है। उसकी इस शक्ति पर कोई संवैधानिक प्रतिबन्ध नहीं है।

4. परामर्श सम्बन्धी क्षेत्राधिकार :

संविधान ने सर्वोच्च न्यायालय को परामर्श सम्बन्धी क्षेत्राधिकार भी प्रदान किया है। अनुच्छेद 143 के अनुसार यदि किसी समय राष्ट्रपति को प्रतीत हो कि विधि या तथ्य का कोई ऐसा प्रश्न पैदा हुआ है, जो सार्वजनिक महत्त्व का है तो वह उस प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय का परामर्श माँग सकता है। न्यायालय के परामर्श को स्वीकार या अस्वीकार करना राष्ट्रपति के विवेक पर निर्भर होगा।

5. अभिलेख न्यायालय (Court of Record) :

अनुच्छेद 129 सर्वोच्च न्यायलय को अभिलेख न्यायालय का स्थान प्रदान करता है। अभिलेख न्यायालय के दो आशय हैं : प्रथम, इस न्यायालय के निर्णय सब जगह साक्ष्य के रूप में स्वीकार किये जायेंगे और इन्हें किसी भी न्यायालय में प्रस्तुत किये जाने पर उनकी प्रामाणिकता के विषय में प्रश्न नहीं उठाया जायेगा। द्वितीय, इस न्यायालय के द्वारा 'न्यायालय अवमानना' (Contempt of

Court) के लिए किसी भी प्रकार का दण्ड दिया जा सकता है।

6. मौलिक अधिकारों का रक्षक :

भारत का सर्वोच्च न्यायालय नागरिकों के मौलिक अधिकारों का रक्षक है। न्यायालय मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण के लेख जारी कर सकता है।

7. संविधान का संरक्षण–न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति (Guardian of the Constitution-Power of Judicial Review) :

संविधान के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को संविधान के संरक्षण का कार्य भी प्रदान किया गया है जिसका अर्थ यह है कि सर्वोच्च न्यायालय को कानूनों की वैधानिकता की जाँच करने की शक्ति प्राप्त है। अनुच्छेद 131 और अनुच्छेद 132 सर्वोच्च न्यायालय को संघीय तथा राज्य सरकारों द्वारा निर्मित विधियों के पुनर्विलोकन का अधिकार देता है। यदि संघीय संसद या राज्य विधानमण्डल संविधान का अतिक्रमण करते हैं या मौलिक अधिकारों के विरुद्ध विधि का निर्माण करते हैं तो संघीय संसद या राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित ऐसी विधि को सर्वोच्च न्यायालय अवैधानिक घोषित कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय की इस शक्ति को 'न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति' कहा जाता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- भारतीय संविधान में संघीय व्यवस्थापिका को 'संसद' का नाम दिया गया है। संसद के निम्न तीन अंग है :

(1) राष्ट्रपति, जो कार्यपालिका का प्रधान है, और इसकी कानून निर्माण के क्षेत्र में भी भूमिका है।

(2) लोकसभा– जो प्रथम या निम्न सदन या लोकप्रिय सदन है।

(3) राज्यसभा, जो द्वितीय अर्थात् उच्च सदन या वरिष्ठ सदन है।

- लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या 552 हो सकती है।
- संविधान लागू किये जाने के समय से ही अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए लोकसभा और विधानसभाओं में स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था चली आ रही है।
- लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष है। प्रधानमंत्री के परामर्श के आधार पर लोकसभा को समय से पूर्व भी भंग किया जा सकता है।
- लोकसभा के दो पदाधिकारी है : अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, जिनका चुनाव लोकसभा स्वयं ही करती है।
- राज्यसभा : राज्यसभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 250 हो सकती है, इनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाते हैं।
- कार्यकाल : – राज्यसभा एक स्थायी सदन है। जो कभी भंग नहीं होता है। इसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष है और राज्यसभा के एक तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष बाद सेवानिवृत हो जाते हैं।
- राज्यसभा के दो प्रमुख पदाधिकारी होते है : सभापति और उपसभापति। भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होता है।
- संसद के कार्य और शक्तियाँ : विधायी शक्ति, संविधान में संशोधन की शक्ति, वित्तीय शक्तियाँ, प्रशासनिक शक्तियां, निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियाँ और विविध शक्तियाँ।
- संघीय कार्यपालिका के अन्तर्गत राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् और भारत का महान्यायवादी आते है।
- राष्ट्रपति भारतीय संघ की कार्यपालिका का संवैधानिक प्रधान है।
- राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से और आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय मत पद्धति के आधार पर होता है।
- भारत के राष्ट्रपति का कार्यकाल 5 वर्ष है।
- राष्ट्रपति के अधिकार अथवा शक्तियाँ : 1. सामान्य कालीन शक्तियां, और 2. संकटकालीन शक्तियां।
- उप–राष्ट्रपति : उप–राष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत से तथा गुप्त मतदान द्वारा होता है। कार्यकाल 5 वर्ष।
- उप–राष्ट्रपति की शक्तियाँ और कार्य : राज्यसभा का पदेन सभापति, राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में उसके पद का कार्यभार संभालना।
- संघीय मंत्रिपरिषद् : संसदात्मक शासन व्यवस्था में वास्तविक रूप से कार्यपालिका की समस्त सत्ता मंत्रिपरिषद् में निहित होती है।
- मंत्रिपरिषद् की रचना या गठन : राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की नियुक्ति, प्रधानमंत्री द्वारा मंत्रियों का चयन, प्रधानमंत्री द्वारा मंत्रियों में कार्य विभाजन।
- मंत्रियों की श्रेणियाँ : तीन श्रेणियाँ : मंत्रिमण्डल या केबीनेट के सदस्य, राज्यमंत्री तथा उपमंत्री। केबीनेट (मंत्रिमण्डल) मंत्रिपरिषद् की आन्तरिक और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समिति है।
- मंत्रिमण्डल की शक्तियाँ और कार्य : सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर राष्ट्रीय नीति का निर्धारण समन्वयकारी कार्य, वित्तीय कार्य, वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन, नियुक्ति सम्बन्धी कार्य, अन्य कार्य।
- प्रधानमंत्री : प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा।
- सर्वोच्च न्यायालय की आवश्यकता और महत्त्व : संविधान का रक्षक, संघात्मक व्यवस्था का रक्षक, मौलिक अधिकारों का रक्षक।
- सर्वोच्च न्यायालय का गठन : वर्तमान में एक मुख्य न्यायाधीश और 30 अन्य न्यायाधीश। न्यायाधीशों की नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय के कॉलेजियम से प्राप्त परामर्श के आधार पर राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी। न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक अपने पद पर आसीन रह सकता है।

● सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार या शक्तियाँ तथा कार्य :

1. प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (क) प्रारम्भिक एकमेव क्षेत्राधिकार (ख) प्रारम्भिक समवर्ती क्षेत्राधिकार
2. अपीलीय क्षेत्राधिकार : संवैधानिक, दीवानी, फौजदारी और विशिष्ट
3. अपील के लिए विशेष आज्ञा देने का अधिकार,
4. अभिलेख न्यायालय,
5. मौलिक अधिकारों का रक्षक,
6. संविधान का संरक्षक, न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. प्रधानमंत्री को कौन नियुक्त करता है?
2. राष्ट्रपति का चुनाव किस पद्धति के आधार पर होता है?
3. राज्यसभा का पदेन सभापति कौन होता है?
4. केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की अध्यक्षता कौन करता है?
5. संसद के सत्रावसान में राष्ट्रपति विशेष परिस्थितियों में जो आदेश जारी करता है, उसे क्या कहते हैं?
6. किस बात के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है?
7. कम से कम कितने समय तक उच्चतम न्यायालय में वकालत कर चुके भारतीय नागरिक को उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है?
8. एक बार नियुक्त हो जाने पर उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश कितने वर्ष की आयु तक अपने पद पर रह सकता है?
9. 'अभिलेख न्यायालय' का आशय क्या है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. उप राष्ट्रपति के निर्वाचन की पद्धति समझाए।
2. राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार में कौन–सी योग्यताएँ आवश्यक है?
3. राष्ट्रपति को किस प्रक्रिया के आधार पर उसके पद से हटाया जा सकता है?
4. राष्ट्रपति संविधान के कौन–कौन से अनुच्छेदों के अन्तर्गत आपातकाल की घोषणा कर सकता है?
5. राष्ट्रपति के चुनाव में संसद के प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य और राज्य विधानसभा एवं संघीय क्षेत्र की विधानसभा के प्रत्येक सदस्य के मत का मूल्य किस आधार पर निर्धारित किया जाता है?
6. उच्चतम न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का वर्णन कीजिए।
7. दीवानी और फौजदारी मुकदमे किस स्थिति में अपील के रूप में उच्चतम न्यायालय में सुने जा सकते हैं?
8. उच्चतम न्यायालय को एक 'अभिलेख न्यायालय' (Court of Record) क्यों कहा जाता है?
9. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश किसके द्वारा और कैसे हटाये जा सकते है?
8. 'न्यायिक पुनर्विलोकन' का महत्त्व स्पष्ट कीजिये।

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. भारत के राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया को विस्तार से समझाइए।
2. राष्ट्रपति की सामान्य काल में शक्तियों तथा अधिकारों की विवेचना कीजिए।
3. राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों की विवेचना कीजिए।
4. मंत्रिमण्डल के गठन एवं उसकी शक्तियों की विवेचना कीजिए।
5. उच्चतम न्यायालय के संगठन, क्षेत्राधिकार और शक्तियों का वर्णन कीजिए।
6. उच्चतम न्यायालय के संगठन तथा क्षेत्राधिकार का वर्णन कीजिए।

अध्याय 7

राज्य सरकार

राज्य विधानमण्डल का गठन एवं कार्य

संविधान के द्वारा भारत के प्रत्येक राज्य में एक विधानमण्डल की व्यवस्था की गयी है। संविधान के अनुच्छेद 168 में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक विधानमण्डल होगा जो राज्यपाल तथा कुछ राज्यों में दो सदनों से तथा कुछ में एक सदन से मिलकर बनेगा। जिन राज्यों में दो सदन होंगे, उनके नाम क्रमशः विधानसभा और विधानपरिषद् होंगे। प्रत्येक राज्य में जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों का एक सदन होता है। विधानमण्डल के इस सदन को विधानसभा कहते हैं। जिन राज्यों में विधानमण्डल का दूसरा सदन है, उसे 'विधानपरिषद्' कहते हैं। राज्यों के विधानमण्डल एकसदनात्मक हो या द्विसदनात्मक, इस बात के निर्णय का अधिकार राज्य में निर्वाचित प्रतिनिधियों और भारतीय संसद को ही है। वर्तमान समय में भारतीय संघ के केवल 7 राज्यों– उत्तर–प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, महाराष्ट्र, कर्नाटक, बिहार, आन्ध्र प्रदेश और तेलंगांना–में द्विसदानात्मक व्यवस्थापिका व शेष राज्यों में एकसदनात्मक व्यवस्थापिका है।

द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका वाले इन सात राज्यों में राज्य विधानमण्डल के निम्नांकित तीन अंग है :

1. राज्यपाल
2. विधानसभा (Lagislative Assembly) जिसे प्रथम या निम्न सदन कहते है।
3. विधानपरिषद (Lagislative Council) जिसे द्वितीय या उच्च सदन कहते है।

विधानसभा का गठन

विधानसभा विधानमण्डल का प्रथम और लोकप्रिय सदन है।

1. सदस्य संख्या :

संविधान में राज्य की विधानसभा के सदस्यों की केवल न्यूनतम और अधिकतम संख्या निश्चित की गई है। संविधान के अनुच्छेद 170 के अनुसार राज्य की विधानसभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 500 और न्यूनतम संख्या 60 होगी। चुनाव के लिए प्रत्येक राज्य को भौगोलिक आधार पर अनेक निर्वाचन क्षेत्रों में इस प्रकार विभाजित किया जाता है कि विधानसभा का प्रत्येक सदस्य कम से कम 75 हजार जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करे।

2. स्थान आरक्षण (Reservations) :

राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था (95वें संवैधानिक संशोधन, 2009) के अनुसार जनवरी 2020 ई. तक के लिए है।

राज्य की विधानसभा के निर्वाचन के बाद यदि सम्बन्धित राज्य का राज्यपाल यह अनुभव करता है कि विधानसभा में आंग्ल–भारतीय समुदाय को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिला है, तो वह उस समुदाय के एक सदस्य को विधानसभा में मनोनीत कर सकता है।

3. निर्वाचन पद्धति :

आंग्ल–भारतीय समुदाय के नामजद सदस्य को छोड़कर विधानसभा के अन्य सभी सदस्यों का मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप में चुनाव होता है। चुनाव के लिए वयस्क मताधिकार और संयुक्त निर्वाचन प्रणाली तथा 'साधारण बहुमत की पद्धति' अपनायी गयी है। सभी निर्वाचन क्षेत्र एकल–सदस्यीय हैं।

4. सदस्यों की योग्यताएँ :

विधानसभा की सदस्यता के लिए व्यक्ति को निम्नलिखित योग्यताएं प्राप्त होनी चाहिए :

1. वह भारत का नागरिक हो,
2. उसकी आयु कम से कम 25 वर्ष हो,
3. वह भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन लाभ का पद धारण किये हुए न हो,
4. वह पागल या दिवालिया घोषित न किया जा चुका हो,
5. वह संसद या राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्धारित शर्तों की पूर्ति करता हो।

सदस्यों की सदस्यता का अंत : विधानमण्डल के दोनों सदनों की सदस्यता का अंत निम्न में से किसी भी परिस्थिति में हो जाता है:

1. कोई भी व्यक्ति यदि राज्य विधानमण्डलों के दोनों सदनों का सदस्य निर्वाचित हो जाता है, तो उसे एक सदन से

त्यागपत्र देना होगा। इसी प्रकार कोई भी व्यक्ति राज्य के विधानमण्डल और संसद, दोनों का एक साथ सदस्य नहीं रह सकता है।

2. कोई भी सदस्य यदि विधानमण्डल के संबंधित सदन की बैठक में सदन की आज्ञा के बिना लगातार 60 दिन तक अनुपस्थित रहता है।

3. यदि किसी सदन का सदस्य हो चुकने के बाद उसमें सदस्यता के लिए निर्धारित योग्यता नहीं रह जाती है या उसमें कोई निर्धारित अयोग्यता पैदा हो जाती है।

5. कार्यकाल :

राज्य विधानसभा का कार्यकाल 5 वर्ष है। राज्यपाल द्वारा इसे समय से पूर्व भी भंग किया जा सकता है। परन्तु यदि संकटकाल की घोषणा प्रवर्तन में हो तो संसद विधि द्वारा विधानसभा का कार्यकाल बढ़ा सकती है जो एक बार में एक वर्ष से अधिक नहीं होगा तथा किसी भी अवस्था में संकटकाल की घोषणा समाप्त हो जाने के बाद 6 माह की अवधि से अधिक नहीं होगा।

6. पदाधिकारी : प्रत्येक राज्य की विधानसभा के दो मुख्य पदाधिकारी होते है: (1) अध्यक्ष **(Speaker)** और, (2) उपाध्यक्ष **(Deputy Speaker)**। इन दोनों का चुनाव विधानसभा के सदस्य अपने सदस्यों में से ही करते हैं तथा इनका कार्यकाल विधानसभा के कार्यकाल तक होता है। इसके बीच अध्यक्ष अपना त्यागपत्र उपाध्यक्ष को तथा उपाध्यक्ष अपना त्यागपत्र अध्यक्ष को दे सकता है। इन दोनों को विधानसभा सदस्यों के बहुमत द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के आधार पर हटाया जा सकता है किन्तु इस प्रकार के प्रस्ताव की सूचना 14 दिन पूर्व अध्यक्ष या उपाध्यक्ष (जिसके विरुद्ध प्रस्ताव हो) को देना आवश्यक है।

अध्यक्ष के अधिकार तथा कार्य (Powers and Functions of the Speaker) :

विधानसभा के अध्यक्ष के अधिकार तथा कार्य निम्न हैं :

1. वह विधानसभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है और सदन की कार्यवाही का संचालन करता है।

2. सदन में शांति और व्यवस्था बनाये रखना उसका मुख्य उत्तरदायित्व है तथा इस हेतु उसे समस्त आवश्यक कार्यवाही करने का अधिकार है।

3. सदन का कोई सदस्य सदन में उसकी आज्ञा से ही भाषण दे सकता है।

4. वह सदन की कार्यवाही में ऐसे शब्दों को निकाले जाने का आदेश दे सकता है जो असंसदीय या अशिष्ट हैं।

5. सदन के नेता के परामर्श से वह सदन की कार्यवाही का क्रम निश्चित कर सकता है।

6. वह प्रश्नों को स्वीकार करता या नियम–विरुद्ध होने पर उन्हें अस्वीकार करता है।

7. वह मतदान पश्चात् परिणाम की घोषणा करता है।

8. सामान्य परिस्थिति में वह सदन में मतदान में भाग नहीं लेता लेकिन यदि किसी प्रश्न पर पक्ष और विपक्ष में बराबर मत आयें, तो वह 'निर्णायक मत' (Casting Vote) का प्रयोग करता है।

9. कोई विधेयक 'धन–विधेयक' (Money Bill) है अथवा नहीं, इसका निर्णय अध्यक्ष ही करता है।

10. दल–बदल सम्बन्धी याचिकाओं पर निर्णय देता है।

अध्यक्ष की अनुपस्थिति में इन सभी कार्यों का सम्पादन उपाध्यक्ष करता है।

विधानपरिषद् का गठन

विधानसभा को विधान परिषद् की उत्पत्ति (सृजन) तथा समाप्ति (उन्मूलन) के लिए संसद से सिफारिशें करने का अधिकार है। अनुच्छेद 169 के अनुसार यदि विधानसभा अपनी पूरी सदस्य संख्या के बहुमत से तथा उपस्थित व मतदान करने वाले सदस्यों की संख्या के दो–तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित कर देती है तो संसद उस राज्य के लिए विधान परिषद् का सृजन अथवा समाप्ति के लिए कानून बनायेगी।

1. सदस्य संख्या :

राज्य के विधानमण्डल का द्वितीय या उच्च सदन विधानपरिषद् होता है। संविधान में व्यवस्था की गयी है कि प्रत्येक राज्य की विधानपरिषद् के संदस्यों की संख्या उसकी विधानसभा के सदस्यों की संख्या के 1/3 से अधिक नहीं होगी, पर साथ ही यह भी कहा गया है कि किसी भी दशा में उसकी सदस्य संख्या 40 से कम नहीं होनी चाहिए। जम्मू–कश्मीर को इस सम्बन्ध में अवश्य ही अपवाद रखा गया है।

2. सदस्यों का निर्वाचन व मनोनयन :

विधान परिषद् के लगभग 5/6 सदस्यों को निर्वाचित किया जाता है तथा शेष लगभग 1/6 सदस्यों को मनोनीत किया जाता है। विधान परिषद् के ये सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं तथा ये चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा होंगे। निम्नलिखित निर्वाचक मण्डल विधानपरिषद् के सदस्यों का चुनाव करते हैं।

स्थानीय संस्थाओं का निर्वाचक मण्डल :

समस्त सदस्यों का यथाशक्य निकटतम एक–तिहाई उस राज्य की नगरपालिकाओं, जिला परिषदों और ऐसी अन्य स्थानीय संस्थाओं द्वारा चुना जाता है, जैसा कि संसद कानून द्वारा निर्धारित करे।

विधानसभा का निर्वाचक मण्डल : कुल संख्या के यथाशक्य निकटतम एक–तिहाई सदस्यों का निर्वाचन विधानसभा के सदस्य ऐसे व्यक्तियों में से करते है जो विधानसभा के सदस्य न हों।

स्नातकों (Graduates) का निर्वाचक मण्डल : यह ऐसे शिक्षित व्यक्तियों का निर्वाचक मण्डल होता है जो उस राज्य में रहते हो, जिन्होंने स्नातक स्तर की परीक्षा पास कर ली हो और जिन्हें यह परीक्षा पास किये तीन वर्ष से अधिक हो चुके हों, यह निर्वाचक मण्डल कुछ सदस्यों के यथाशक्य निकटतम 1/12 भाग को चुनता है।

अध्यापकों का निर्वाचक मण्डल : इसमें वे अध्यापक होते हैं, जो राज्य के अन्तर्गत किसी माध्यमिक विद्यालय या इससे उच्च शिक्षण संस्था में 3 वर्ष से पढ़ा रहे हों। यह निर्वाचक मण्डल कुल सदस्यों का यथाशक्य निकटतम 1/12 भाग को चुनता है।

(v) राज्यपाल द्वारा मनोनीत सदस्य : उपर्युक्त प्रकार के कुल सदस्य संख्या के लगभग 5/6 सदस्यों को तो निर्वाचित किया जाता है, शेष अर्थात् कुल संख्या के लगभग 1/6 सदस्य राज्यपाल द्वारा उन व्यक्तियों में से मनोनीत किये जाते हैं, जो साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारिता और समाज सेवा के क्षेत्रों में विशेष रुचि रखते हों।

3. सदस्यों की योग्यताएँ :

विधानपरिषद् की सदस्यता के लिए वे ही योग्यताएँ हैं जो विधानसभा की सदस्यता के लिए है, अन्तर केवल यह है कि विधानपरिषद् की सदस्यता के लिए आयु 30 वर्ष होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, निर्वाचित सदस्य को उस राज्य की विधानसभा के लिए निर्वाचन क्षेत्र का निर्वाचक होना चाहिए।

निर्वाचक मण्डलों द्वारा विधानपरिषदों के सदस्यों का यह निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल संक्रमणीय मत पद्धति के अनुसार होता है। विधानसभा के निर्वाचक मण्डल के अतिरिक्त अन्य तीनों निर्वाचक मण्डल संसद कानून द्वारा निश्चित करती है।

4. कार्यकाल :

विधानपरिषद् इस दृष्टि से स्थायी है कि पूरी विधानपरिषद् कभी भी भंग नहीं होती और उसे राज्यपाल द्वारा भी भंग नहीं किया जा सकता। विधानपरिषद् के सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष है। प्रति दो वर्ष के पश्चात् एक–तिहाई सदस्य अपना पद छोड़ देते हैं, और उनके स्थान के लिए नये निर्वाचन होते हैं।

5. पदाधिकारी :

विधानपरिषद् अपने सदस्यों में से एक सभापति और एक उपसभापति का चुनाव करती है। विधानपरिषद् को इन्हें पद से हटाने का भी अधिकार है।

विधानपरिषद् के अधिकार अथवा शक्तियाँ तथा कार्य

विधानपरिषद् के अधिकार तथा कार्यों का उल्लेख निम्न रूपों में किया जा सकता है।

1. कानून निर्माण सम्बन्धी कार्य :

धन विधेयक को छोड़कर अन्य विधेयक राज्य विधानमण्डल के किसी भी सदन में प्रस्तावित किये जा सकते हैं तथा ये विधेयक दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत होने चाहिए। लेकिन इसके साथ ही संविधान के अनुच्छेद 197 में कहा गया है कि यदि कोई विधेयक विधानसभा में पारित होने के पश्चात् विधानपरिषद् द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है या परिषद् विधेयक में ऐसे संशोधन करती है जो विधानसभा को स्वीकार्य नहीं होते या परिषद् के समक्ष विधेयक रखे जाने की तिथि से तीन माह तक विधेयक पारित नहीं किया जाता है, तो विधानसभा उस विधेयक को पुनः स्वीकृत करके विधानपरिषद् को भेजती है। यदि परिषद् विधेयक को पुनः अस्वीकृत कर देती है अथवा विधेयक रखे जाने की तिथि से एक माह बाद तक विधेयक पास नहीं करती या परिषद् विधेयक में पुनः ऐसे संशोधन करती है जो विधानसभा को स्वीकार नहीं होते तो विधेयक विधानपरिषद् द्वारा पारित किये जाने के बिना ही दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है। इस प्रकार विधानपरिषद् किसी साधारण विधेयक को केवल चार माह तक रोक सकती है। विधानपरिषद् किसी विधेयक को समाप्त नहीं कर सकती।

2. कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य :

विधानपरिषद् के सदस्य मंत्रिपरिषद् के सदस्य हो सकते हैं। विधानपरिषद् प्रश्नों, प्रस्तावों तथा वाद–विवाद के आधार पर मंत्रिपरिषद् को नियंत्रित कर सकती है, किन्तु उसे मंत्रिपरिषद् को पदच्युत करने का अधिकार नहीं है। यह कार्य केवल विधानसभा के ही द्वारा किया जा सकता है।

3. वित्त सम्बन्धी कार्य :

संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दिया गया है कि धन विधेयक केवल विधानसभा में ही प्रस्तावित किये जा सकते हैं, विधानपरिषद् में नहीं। विधानसभा जब किसी धन विधेयक को पारित कर सिफारिशों के लिए विधानपरिषद् के पास भेजती है तो विधानपरिषद् 14 दिन तक धन विधेयक को अपने पास रोक सकती है। यदि वह 14 दिन के भीतर अपनी सिफारिशों सहित विधेयक विधानसभा को नहीं लौटाती है, तो वह विधेयक उस रूप में दोनों सदनों से पारित समझा जाता है जिस रूप में उसे विधानसभा ने पारित किया था।

राज्य विधानमण्डल या राज्य विधानसभा की शक्तियाँ और कार्य

राज्य विधानमण्डल राज्य की व्यवस्थापिका है और संविधान के द्वारा राज्य विधानमण्डल को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी है। राज्य विधानमण्डल की शक्तियों का अध्ययन निम्न रूपों में किया जा सकता है :

1. विधायी शक्ति :

राज्य के विधानमण्डल को सामान्यतया उन सभी विषयों पर कानून निर्माण की शक्ति प्राप्त है जो राज्य सूची में और समवर्ती सूची में दिये गये हैं।

साधारण विधेयक राज्य विधानमण्डल के किसी भी सदन में प्रस्तावित किये जा सकते हैं किन्तु इसके सम्बन्ध में अन्तिम शक्ति विधानसभा को ही प्राप्त है।

2. वित्तीय शक्ति :

विधानमण्डल, मुख्यतया विधानसभा को, राज्य के धन पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त होता है। आय–व्यय का वार्षिक लेखा (बजट) विधानसभा से स्वीकृत होने पर ही शासन के द्वारा आय–व्यय से संबंधित कोई कार्य किया जा सकता है। विधानमण्डल से विनियोग विधेयक पास होने पर ही सरकार संचित निधि से व्यय हेतु धन निकाल सकती है।

3. प्रशासनिक शक्ति :

संविधान द्वारा राज्यों के क्षेत्र में भी संसदात्मक व्यवस्था स्थापित किये जाने के कारण राज्य मंत्रिमण्डल अपनी नीति और कार्यों के लिए विधानमण्डल, विशेषतया विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। विधानसभा या विधानपरिषद् के सदस्यों द्वारा मंत्रियों से उनके विभागों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे जा सकते है। मंत्रिमण्डल के विरुद्ध निन्दा या आलोचना का प्रस्ताव पास किया जा सकता है या काम रोको प्रस्ताव पास किया जा सकता है। इन सबके अतिरिक्त, विधानसभा के द्वारा अविश्वास प्रस्ताव पास किया जा सकता है, जिसके कारण मंत्रिमण्डल को पद त्याग करना होता है।

4. संविधान में संशोधन की शक्ति :

हमारे संविधान की कुछ धाराएँ ऐसी हैं जिनमें संशोधन के लिए जरूरी है कि संसद द्वारा विशेष बहुमत के आधार पर पारित प्रस्ताव को कम से कम आधे राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा स्वीकार किया जाये। राज्य विधानमण्डलों को संविधान संशोधन प्रस्तावित करने का अधिकार नहीं है। राज्य विधानमण्डल तो केवल अनुसमर्थन या अस्वीकृत कर सकते है।

5. निर्वाचन सम्बन्धी शक्ति :

राज्य की विधानसभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति तथा राज्यसभा के सदस्यों के निर्वाचन में भाग लेते हैं।

राजस्थान विधानपरिषद् के गठन की प्रक्रिया व वर्तमान स्थिति

राजस्थान में वर्तमान में राज्य विधानमण्डल का प्रथम सदन ही है, जिसे विधानसभा के नाम से जाना जाता है। विधानपरिषद् के गठन संबंधी प्रस्ताव विधानसभा ने पास कर केन्द्र सरकार की अनुमति एवं अनुमोदन हेतु भेजा है। वर्तमान में गठन संबंधी प्रस्ताय केन्द्र सरकार के पास है। अतः राजस्थान में विधान मण्डल का द्वितीय सदन नहीं है। केन्द्र सरकार के अनुमोदन के पश्चात् गठन की प्रक्रिया प्रारम्भ की जावेगी।

राज्य कार्यपालिका

राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्रिमण्डल – कार्य एवं शक्तियाँ

राज्य की कार्यपालिका में राज्यपाल और एक मंत्रिपरिषद् होती है। संविधान के द्वारा राज्यों में भी संसदात्मक व्यवस्था की स्थापना की गयी है और इस संसदात्मक व्यवस्था में राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान होता है, जबकि मुख्यमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद् राज्य की कार्यपालिका सत्ता की वास्तविक प्रधान होती है।

राज्य का वैधानिक प्रधान : राज्यपाल

राज्यपाल की नियुक्ति : राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के प्रसाद–पर्यंत अपना पद धारण किया जाता है। उसकी नियुक्ति 5 वर्ष की अवधि के लिए की जायेगी, लेकिन वह अपने उत्तराधिकारी के पद ग्रहण करने तक अपने पद पर बना रह सकता है। राज्यपाल को उसकी कार्य अवधि 5 वर्ष पूर्व भी राष्ट्रपति के द्वारा हटाया जा सकता है, एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानान्तरण किया जा सकता है। राज्यपाल यदि चाहे तो समय से पूर्व भी स्वयं अपना पद त्याग कर सकता है।

राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में स्वस्थ परम्पराएं :

राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में भारतीय संविधान लागू होने के बाद से अब तक कुछ स्वस्थ परम्पराएं विकसित हुई हैं : (i) राज्यपाल उस राज्य का निवासी नहीं होना चाहिए, जिस राज्य में उसे राज्यपाल बनाया जा रहा है। (ii) राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व केन्द्रीय सरकार सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श करे तथा उससे सहमति प्राप्त करे।

पद की योग्यताएँ व वेतन :

राज्यपाल के पद पर नियुक्ति के लिए दो योग्यताएं होनी आवश्यक है। प्रथम, वह भारत का नागरिक हो और द्वितीय, उसकी आयु 35 वर्ष से अधिक हो, राज्यपाल संसद अथवा राज्य के विधानमण्डल का सदस्य नहीं हो सकता है और यदि वह किसी सदन का सदस्य है तो राज्यपाल के पद पर नियुक्ति की तिथि से

उसे अपनी सदस्यता का त्याग करना होगा। राज्यपाल कोई लाभ का पद धारण नहीं कर सकता।

वेतन व भत्ते :

वर्तमान में राज्यपाल को 1 लाख 10 हजार रुपये मासिक वेतन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उसे निःशुल्क निवास स्थान, भत्ते एवं अन्य सब सुविधाएं प्राप्त होंगी जिन्हें संसद कानून के द्वारा निर्धारित करे।

राज्यपाल की शक्तियाँ और कार्य

संविधान के द्वारा राज्यपाल को पर्याप्त और व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी है। राज्य में राज्यपाल की वही स्थिति है जो केन्द्र में राष्ट्रपति की है। अतः दोनों की शक्तियों में कुछ क्षेत्रों को छोड़कर बहुत कुछ समानता है। दुर्गादास बसु के शब्दों में, "थोड़े में राज्यपाल की शक्तियाँ राष्ट्रपति के समान हैं, सिर्फ कूटनीतिक, सैनिक तथा संकटकालीन अधिकारों को छोड़कर।" राज्यपाल की शक्तियों का अध्ययन अग्रलिखित रूपों में किया जा सकता है :

1. कार्यपालिका शक्तियाँ :

राज्य की कार्यपालिका शक्तियाँ राज्यपाल में निहित है, जिनका प्रयोग वह स्वयं तथा अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करता है। वह मुख्यमंत्री की नियुक्ति करता है तथा उसके परामर्श पर अन्य मंत्रियों की। वह अधिवक्ता और राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति करता है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल से परामर्श लेता है। राज्यपाल की कार्यपालिका शक्तियाँ राज्य सूची में उल्लेखित विषयों तक विस्तृत है। समवर्ती सूची के विषयों पर राष्ट्रपति की स्वीकृति से वह अपने अधिकार का प्रयोग करता है। राज्य सरकार के कार्य के सम्बन्ध में वह नियमों का निर्माण करता है। वह मंत्रियों के बीच कार्यों का विभाजन करता है। उसे मुख्यमंत्री से शासन से सम्बन्धित सभी विषयों के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त करने का अधिकार है। वह मुख्यमंत्री को किसी मंत्री के व्यक्तिगत निर्णय को सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल के सम्मुख विचार के लिए रखने को कह सकता है।

राज्यपाल मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाता है। उनके त्याग–पत्र स्वीकार करता है एवं उन्हें मुख्यमंत्री सहित पद विमुक्त भी करता है।

2. विधायी शक्तियाँ :

राज्यपाल राज्य की व्यवस्थापिका का एक अविभाज्य अंग है और विधायी क्षेत्र में उसे महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं। वह व्यवस्थापिका का अधिवेशन बुलाता है, स्थगित करता है और व्यवस्थापिका के निम्न सदन विधानसभा को भंग कर सकता है। आम चुनाव के बाद वह विधानमण्डल की पहली बैठक को सम्बोधित करता है और उसके बाद भी वह विधानमण्डल को संदेश भेज सकता है।

राज्य विधानसभा द्वारा पारित विधेयक पर राज्यपाल की स्वीकृति आवश्यक है। वह विधेयक को अस्वीकृत कर सकता है या उसे पुनर्विचार के लिए विधानमण्डल को लौटा सकता है। यदि विधानमण्डल दूसरी बार विधेयक पारित कर देता है, तो राज्यपाल को स्वीकृति देनी ही होगी। कुछ विधेयकों को वह राष्ट्रपति के विचार के लिए रक्षित रख सकता है।

यदि राज्य के विधानमण्डल का अधिवेशन न हो रहा हो, तो राज्यपाल अध्यादेश जारी कर सकता है। अध्यादेश को राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित अधिनियमों के समान ही मान्यता प्राप्त होगी। यह अध्यादेश विधानमण्डल की बैठक आरम्भ होने के 6 सप्ताह के बाद तक लागू रहता है। यदि 6 सप्ताह पूर्व ही विधानमण्डल इस अध्यादेश को अस्वीकृत कर दे, तो उस अध्यादेश को उसी समय समाप्त समझा जायेगा। कुछ विषयों के सम्बन्ध में अध्यादेश जारी करने से पूर्व राज्यपाल को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त करनी होगी। राज्यपाल विधानपरिषद् के 1/6 सदस्यों को ऐसे लोगों में से नामजद करता है जिन्हें साहित्य, कला, विज्ञान, सहकारिता आन्दोलन तथा समाज सेवा के क्षेत्र में विशेष तथा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो। यदि वह ऐसा समझे कि विधानसभा में आंग्ल–भारतीय समुदाय को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ है तो वह इस वर्ग के एक सदस्य को मनोनीत कर सकता है।

3. वित्तीय शक्तियाँ :

राज्यपाल को कुछ वित्तीय शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। राज्य विधानसभा में राज्यपाल की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई भी धन विधेयक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। वह व्यवस्थापिका के समक्ष प्रति वर्ष बजट प्रस्तुत करवाता है और उसकी अनुमति के बिना किसी भी अनुदान की माँग नहीं की जा सकती है। राज्यपाल विधानमण्डल से पूरक, अतिरिक्त तथा अधिक अनुदानों की भी माँग कर सकता है। राज्य की संचित निधि राज्यपाल के ही अधिकार में रहती हैं।

4. न्यायिक शक्तियाँ :

संविधान के अनुच्छेद 161 के अनुसार जिन विषयों पर राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार होता है उन विषयों सम्बन्धी किसी विधि के विरुद्ध अपराध करने वाले व्यक्तियों के दण्ड को राज्यपाल कम कर सकता है, स्थगित कर सकता है, बदल सकता है या उन्हें क्षमा प्रदान कर सकता है।

वह राज्य लोक सेवा आयोग का वार्षिक प्रतिवेदन और

राज्य की आय–व्यय के सम्बन्ध में महालेखा परीक्षक का प्रतिवेदन प्राप्त करता है और उन्हें विधानमण्डल के समक्ष रखता है।

अगर वह देखता है कि राज्य का प्रशासन संविधान के अनुसार चलना संभव नहीं है तो वह राष्ट्रपति को राज्य में संवैधानिक तन्त्र की विफलता के सम्बन्ध में सूचना देता है और उसकी रिपोर्ट के आधार पर अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा की जा सकती है।

राज्यपाल राज्य में कुलाधिपति होने के नाते केन्द्रीय विश्वविद्यालयों को छोड़कर राज्य के विश्वविद्यालयों के कुलपतियों की नियुक्ति करता है तथा उन्हें हटा भी सकता है।

5. विविध शक्तियाँ :

उपर्युक्त के अतिरिक्त राज्यपाल को कुछ अन्य शक्तियाँ भी प्राप्त है :

राज्यपाल की स्थिति :

संविधान के अनुच्छेद 163 (1) के अनुसार, "जिन बातों के सम्बन्ध में संविधान द्वारा या संविधान के अधीन राज्यपाल से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कार्यों को स्वविवेक से करे, उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कार्यों का निर्वाह करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा।" वर्तमान समय में जम्मू–कश्मीर, नागालैण्ड, सिक्किम, और अरूणाचल प्रदेश के राज्यपाल को ही इस प्रकार की विवेकात्मक शक्तियाँ प्राप्त हैं।

यद्यपि संविधान के द्वारा राज्यपाल को स्वविवेकी शक्तियाँ प्रदान नहीं की गयी हैं और संसदात्मक शासन की परम्परा के अनुसार उससे यह आशा की जाती है कि वह संवैधानिक प्रधान के रूप में ही कार्य करेगा, फिर भी कुछ ऐसे अवसर आ सकते हैं जब वह अपने विवेक का प्रयोग कर सके। ऐसे अवसर निम्नलिखित हो सकते है : (1) विशेष परिस्थितियों में मुख्यमंत्री का चयन, (2) मंत्रिपरिषद् को अपदस्थ करना, (3) विधानसभा का अधिवेशन बुलाना या सत्रावसान करना, (4) विधानसभा का विघटन, (5) मुख्यमंत्री से सूचना प्राप्त करना, (6) राष्ट्रपति को राज्य की संवैधानिक स्थिति के सम्बन्ध में रिपोर्ट भेजना, (7) राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु भेजना, (8) विधानमण्डल द्वारा पारित किसी विधेयक को स्वीकृति न देकर उसे पुनर्विचार के लिए लौटा देना, (9) किसी अध्यादेश को प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति से अनुदेश की याचना करना।

इन सब बातों से यह नितान्त स्पष्ट है कि यद्यपि राज्यपाल को राज्य की कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान नहीं कहा जा सकता है, लेकिन इसके साथ ही "वह केवल नाममात्र का अध्यक्ष नहीं है, वह एक ऐसा अधिकारी है जो राज्य के शासन में महत्त्वपूर्ण रूप में भाग ले सकता है।"

वास्तविक कार्यपालिका : मंत्रिपरिषद्

संविधान द्वारा राज्यों में भी संसदात्मक शासन व्यवस्था स्थापित की गयी है और संसदात्मक शासन में राज्य की वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मंत्रिपरिषद् में निहित होती है, जो कि राज्य की विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

राज्य की मंत्रिपरिषद् का गठन

1. मुख्यमंत्री की नियुक्ति :

मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्य की मन्त्रिपरिषद् के गठन का प्रथम चरण है। अनुच्छेद 164 में कहा गया है कि राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति करेगा और फिर मुख्यमंत्री की सलाह से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करेगा। इस सम्बन्ध में निश्चित परम्परा यह है कि राज्य की विधानसभा में बहुमत दल के नेता को राज्यपाल मुख्यमंत्री पद पर नियुक्ति करता है।

2. मंत्रियों का चयन :

अन्य मंत्रियों का चयन मुख्यमंत्री ही करता है और वह मंत्रियों के नामों तथा उनके विभागों की सूची राज्यपाल को देता है। मंत्रिपरिषद् का गठन करना मुख्यमंत्री का विशेषाधिकार माना जाता है। मन्त्रिपरिषद् में कितने सदस्य हो इसका निर्णय भी मुख्यमंत्री करता है। 91यें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा मंत्रिपरिषद् के आकार को विधानसभा सदस्य संख्या का 15 प्रतिशत तक सीमित कर दिया गया है। मंत्रियों के चयन में मुख्यमंत्री व्यावहारिक दृष्टि से निम्न बातों को ध्यान में रखता है :

(i) राज्य के सभी क्षेत्रों, वर्गों को मंत्रिपरिषद् में न्यायसंगत ढंग से प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

(ii) सामान्यतया मुख्यमंत्री द्वारा अपने ही दल में से मंत्रिपरिषद् का निर्माण किया जाता है जिससे मंत्रिपरिषद् एक इकाई के रूप में कार्य कर सके।

3. मंत्रियों की योग्यताएँ :

मंत्रिपरिषद् के सभी सदस्यों के लिए आवश्यक है कि वे विधानमण्डल के किसी सदन के सदस्य हों। यदि कोई व्यक्ति मंत्री पद पर नियुक्ति के समय विधानमण्डल का सदस्य नहीं है तो उसके लिए 6 माह के भीतर विधानमण्डल की सदस्यता प्राप्त करना आवश्यक होता है। ऐसा करने में असफल रहने पर मंत्रिमण्डल छोड़ना होता है।

4. मंत्रियों का कार्य–विभाजन :

राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श के अनुसार मंत्रियों में कार्य–विभाजन करता है। मंत्री के अधिकार के अन्तर्गत प्रायः एक

ही प्रमुख विभाग होता है, किन्तु कभी–कभी एक से अधिक विभाग भी रहते हैं।

5. मंत्रियों द्वारा शपथ ग्रहण :

पद ग्रहण के पूर्व मंत्रियों को राज्यपाल के समक्ष दो शपथ लेनी होती है : पहली, पद के कर्त्तव्य–पालन की तथा दूसरी, गोपनीयता की।

6. मंत्रियों की श्रेणियाँ :

राज्यों की मंत्रिपरिषद् में भी मंत्रियों की तीन श्रेणियाँ होती है : (1) कैबीनेट मंत्री या मंत्रिमण्डल के सदस्य, (2) राज्यमंत्री और (3) उपमंत्री। कैबीनेट के सदस्य सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं और कैबीनेट के द्वारा ही सामूहिक रूप से शासन की नीति का निर्धारण किया जाता है। दूसरे स्तर पर राज्यमंत्री होते हैं। कुछ राज्यमंत्रियों को किसी विभाग का स्वतन्त्र प्रभार भी दिया जा सकता है और कुछ राज्यमंत्री कैबीनेट मंत्री के कार्य में हाथ बँटाते हैं। राज्यमंत्री के बाद उपमंत्री आते हैं जो कैबीनेट मंत्री के सहायक के रूप में कार्य करते हैं।

7. मंत्रिपरिषद् का कार्यकाल :

मंत्रिपरिषद् का कार्यकाल विधानसभा के विश्वास पर निर्भर करता है। सामान्य तौर पर मंत्रिपरिषद् का अधिकतम कार्यकाल 5 वर्ष ही हो सकता है क्योंकि विधानसभा का कार्यकाल भी 5 वर्ष ही है।

8. सामूहिक उत्तरदायित्व :

मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। यदि विधानसभा किसी मंत्री के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दे या किसी मंत्री द्वारा रखे गये विधेयक को अस्वीकार कर दे तो समस्त मंत्रिपरिषद् को त्याग–पत्र देना होता है।

9. वेतन व भत्ते :

संविधान के अनुच्छेद 164 (5) के अनुसार मंत्रियों के वेतन तथा भत्ते निश्चित करने का अधिकार राज्य विधानमण्डल को है।

मंत्रिपरिषद् की कार्य–प्रणाली :

मंत्रिपरिषद् की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण इकाई मंत्रिमण्डल है और मंत्रिमण्डल ही सभी महत्त्वपूर्ण मामलों में निर्णय लेता है। मंत्रिमण्डल की बैठकें प्रायः सप्ताह में एक बार होती हैं, वैसे मुख्यमंत्री जब चाहे तब इसकी बैठक बुला सकता है। इन बैठकों की अध्यक्षता मुख्यमंत्री और मुख्यमंत्री की अनुपस्थिति में वरिष्ठतम मंत्री करता है । बैठक का कोई 'कोरम' (गणपूर्ति) नहीं होता है।

मंत्रिमण्डल की कार्यवाही के दो प्रमुख नियम हैं : सामूहिक उत्तरदायित्व और गोपनीयता। मंत्रिमण्डल की बैठकों में सामान्यतया सभी निर्णय एकमत से लिये जाते हैं। मतभेद की स्थिति में पारस्परिक विचार–विमर्श के आधार पर निर्णय लिया जाता है और यह निर्णय सभी मंत्रियों का संयुक्त निर्णय माना जाता है।

मंत्रिपरिषद् के प्रत्येक सदस्य द्वारा गोपनीयता की शपथ ली जाती है और मंत्रिमण्डल की कार्यवाही तथा निर्णय गुप्त रखे जाते हैं।

मंत्रिपरिषद् की शक्तियाँ और कार्य

यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 163 में मंत्रिपरिषद् का कार्य राज्यपाल को 'सहायता और परामर्श देना' ही बतलाया गया है, किन्तु वास्तविक स्थिति नितान्त विपरीत ही है। संविधान के द्वारा राज्यपाल को राज्य शासन के सम्बन्ध में जो शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं, व्यवहार में उन सबका उपयोग मंत्रिपरिषद् के द्वारा ही किया जाता है। मंत्रिपरिषद् शासन सम्बन्धी सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय लेती है और मुख्यमंत्री इन निर्णयों से राज्यपाल को सूचित करता है।

1. शासन की नीति निर्धारित करना :

मंत्रिपरिषद् का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य शासन की नीति निर्धारित करना है। चाहे गृह विभाग हो या शिक्षा, स्वास्थ्य अथवा कृषि, शासन की नीति का निर्धारण मंत्रिपरिषद् के द्वारा ही किया जाता है। मंत्रिपरिषद् न केवल नीति निर्धारित करती है वरन् उसे कार्य रूप में परिणित करती है।

2. उच्च पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में राज्यपाल को परामर्श :

संविधान के अनुसार राज्यपाल महाधिवक्ता, राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों तथा अन्य उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करता है। व्यवहार के अन्तर्गत राज्यपाल के द्वारा ये सभी नियुक्तियाँ मंत्रिपरिषद् के परामर्श के आधार पर ही की जाती है।

3. विधानमण्डल में शासन का प्रतिनिधित्व :

मंत्रिगण विधानसभा और विधानपरिषद् में उपस्थित होकर सदस्यों के प्रश्नों तथा आलोचनाओं का उत्तर देते हैं और शासन की नीति का समर्थन करते हैं।

4. कानून निर्माण का कार्यक्रम निश्चित करना :

मंत्रिपरिषद् न केवल शासन वरन् कानून निर्माण के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। विधानमण्डल में कौन–कौन से विधेयक तथा किस क्रम में प्रस्तुत किये जायेंगे, इसका निर्णय मंत्रिपरिषद् को ही करना होता है।

5. बजट तैयार करवाना :

राज्य का वार्षिक बजट वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने से पूर्व वित्त मंत्री द्वारा विधानसभा में प्रस्तुत किया जाता है। यह बजट

मंत्रिपरिषद् द्वारा निश्चित की गयी नीति के आधार पर ही तैयार किया जाता है। बजट को पारित कराने का उत्तरदायित्व भी मंत्रिपरिषद् का ही होता है।

मुख्यमंत्री

राज्य की मंत्रिपरिषद् के प्रधान को मुख्यमंत्री कहा जाता है। मुख्यमंत्री राज्य की कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान है। अतः राज्य के प्रशासनिक ढाँचे में उसे लगभग वही स्थिति प्राप्त है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री की है।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति :

संविधान के अनुच्छेद 164 में केवल यह कहा गया है कि मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा। व्यवहार के अन्तर्गत राज्यपाल के द्वारा विधानसभा में बहुमत दल के नेता को ही मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त किया जाता है।

मुख्यमंत्री की शक्तियाँ और कार्य

मंत्रिपरिषद् राज्य प्रशासन की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण इकाई है और मुख्यमंत्री मंत्रिपरिषद् का प्रधान है। मुख्यमंत्री की शक्तियाँ तथा उसके कार्यों का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है :

1. मंत्रिपरिषद् का निर्माण :

मुख्यमंत्री का सर्वप्रथम कार्य अपनी मंत्रिपरिषद् का निर्माण करना होता है। मुख्यमंत्री मंत्रियों का चयन कर सूची राज्यपाल को देता है जिसे राज्यपाल स्वीकार कर लेता है। मंत्रियों के चयन में मुख्यमंत्री बहुत कुछ सीमा तक अपने विवेक के अनुसार कार्य कर सकता है।

2. मंत्रियों में कार्य का बँटवारा और परिवर्तन :

मुख्यमंत्री मंत्रिपरिषद् के अपने सहयोगियों के बीच विभागों का बँटवारा करता है। एक बार मंत्रिपरिषद् के निर्माण व उसके सदस्यों में विभागों का बँटवारा कर चुकने के बाद भी वह जब चाहे तब मंत्रियों के विभागों तथा उसकी स्थिति में परिवर्तन कर सकता है।

3. मंत्रिमण्डल का कार्य–संचालन :

मुख्यमंत्री ही मंत्रिमण्डल की बैठकें बुलाता है तथा उनकी अध्यक्षता करता है। बैठक के लिए 'एजेण्डा' या कार्यसूची मुख्यमंत्री के द्वारा ही तैयार की जाती है। मंत्रिमण्डल की समस्त कार्यवाही मुख्यमंत्री के निर्देशानुसार ही सम्पादित होती है।

4. शासन के विभिन्न विभागों में समन्वय :

मुख्यमंत्री इस बात का प्रयत्न करता है कि शासन के सभी विभाग, दूसरे शब्दों में मंत्रिपरिषद् एक इकाई के रूप में कार्य करे। यदि मंत्रिपरिषद् के दो या अधिक सदस्यों में किसी प्रकार के मतभेद उत्पन्न हो जायें, तो उनके द्वारा इन मतभेदों को दूर कर सामंजस्य स्थापित किया जाता है।

5. मंत्रिपरिषद् और राज्यपाल के बीच सम्बन्ध स्थापितकर्ता :

संविधान के अनुसार मुख्यमंत्री पर यह भार है कि मंत्रिपरिषद् और राज्यपाल के बीच सम्पर्क स्थापित करे। वह मंत्रिमण्डल के निर्णयों की सूचना राज्यपाल को देता है और राज्यपाल के विचार मंत्रिमण्डल तक पहुँचाता है।

6. विधानसभा का नेता :

एक ओर मुख्यमंत्री शासन का प्रधान है तो दूसरी ओर विधानसभा का नेता भी है। विधानसभा के नेता के रूप में उसे कानून निर्माण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त होती है और बहुत कुछ सीमा तक कानून निर्माण कार्य उसकी इच्छानुसार ही सम्पन्न होता है। विधानसभा के नेता के रूप में वह राज्यपाल को विधानसभा भंग करने का परामर्श भी दे सकता है।

उच्च न्यायालय –

उच्च न्यायालय, न्यायाधीशों की योग्यता, नियुक्तियाँ एवं शक्तियाँ :–

भारत में एकीकृत न्यायपालिका है, जिसके सर्वोच्च स्तर पर उच्चतम न्यायालय है। उच्चतम न्यायालय के पश्चात् न्यायपालिका में उच्च न्यायालय का स्थान आता है। राज्य स्तर पर सर्वोच्च न्यायिक संस्था उच्च न्यायालय है। अनुच्छेद–214 के अनुसार प्रत्येक राज्य का एक उच्च न्यायालय होगा। दो या अधिक राज्यों के लिए भी एक न्यायालय हो सकता है।

भारत में सर्वप्रथम उच्च न्यायालय 1862 में कलकत्ता, बॉम्बे एवं मद्रास में स्थापित किए गए। 1866 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की स्थापना की गई। वर्तमान में भारत में 24 उच्च न्यायालय हैं।

उच्च न्यायालय का गठन–

अनुच्छेद 216 के अनुसार प्रत्येक उच्च न्यायालय मुख्य न्यायमूर्ति और ऐसे अन्य न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा जिनको राष्ट्रपति समय–समय पर नियुक्त करना आवश्यक समझे। इस प्रकार उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या राष्ट्रपति निर्धारित करेगा।

न्यायाधीशों की नियुक्ति–

अनुच्छेद 217(1) के अन्तर्गत उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। राष्ट्रपति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, कॉलेजियम व राज्यपाल के परामर्श से करता है, जबकि अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति वह उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश

और राज्यपाल के परामर्श से करता है।

न्यायाधीश की योग्यताएँ –

अनुच्छेद 217 (2) के अनुसार न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिए–

1. भारत का नागरिक हो;
2. भारत के राज्यक्षेत्र में कम–से–कम 10 वर्ष न्यायिक पद धारण कर चुका हो;
3. उच्च न्यायालय का या ऐसे दो या अधिक न्यायालयों का लगातार कम–से–कम 10 वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो।

कार्यकाल – अनुच्छेद 217 (1) के अन्तर्गत न्यायाधीश के कार्यकाल संबंधी प्रावधान है–

1. वह 62 वर्ष की आयु तक पद धारण करेगा।
2. न्यायाधीश राष्ट्रपति को सम्बोधित करके अपना त्याग–पत्र दे सकता है।
3. न्यायाधीश को संसद के दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत से पारित प्रस्ताव के बाद राष्ट्रपति के आदेश द्वारा हटाया जा सकता है।

न्यायाधीश द्वारा शपथ– अनुच्छेद 219 के अनुसार उच्च न्यायालय का न्यायाधीश राज्य के राज्यपाल या उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति के समक्ष शपथ लेगा।,

न्यायाधीशों का स्थानान्तरण – उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का स्थानान्तरण राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के बाद करता है। (अनुच्छेद 222)

न्यायाधीशों के वेतन– अनुच्छेद 221 के अनुसार प्रत्येक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन संसद विधि द्वारा निश्चित करेगी। वर्तमान में मुख्य न्यायाधीश को 90,000 रूपये व अन्य न्यायाधीशों को 80,000 रूपये मासिक वेतन मिलता है।

उच्च न्यायालय की स्वतन्त्रता– उच्च न्यायालय की स्वतन्त्रता के लिए निम्न व्यवस्थाएँ की गई हैं–

1. नियुक्त के लिए विशेष प्रक्रिया,
2. निश्चित कार्यकाल,
3. संसद में न्यायाधीशों के आचरण पर महाभियोग के अतिरिक्त चर्चा नहीं,
4. उच्च न्यायालय का न्यायाधीश अवकाश ग्रहण करने के बाद उन न्यायालयों में निजी प्रैक्टिस नहीं करेगा, जहाँ वह स्थायी न्यायाधीश रह चुका है,
5. कार्यपालिका से पृथक्करण।

उच्च न्यायालय का कार्यक्षेत्र एवं शक्तियाँ – उच्च न्यायालय के कार्यक्षेत्र एवं शक्तियों का वर्णन इस प्रकार है–

1. मूल/प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार
2. रिट अधिकारिता
3. अपीलीय क्षेत्राधिकार
4. अभिलेख न्यायालय
5. प्रशासन सम्बन्धी शक्तियाँ
6. न्यायिक पुनरावलोकन।

1. मूल क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction) –

इसका तात्पर्य है प्रथमतः उच्च न्यायालय द्वारा वादों की सुनवाई करना। ये क्षेत्र हैं–

संसद एवं राज्य विधानमण्डल सदस्यों के निर्वाचन सम्बन्धी विवाद,

राजस्व एकत्रीकरण सम्बन्धी विवाद,

मौलिक अधिकार (Admiralty) व वसीयत (Probate), विवाह विधि, कम्पनी कानून तथा विवाह–विच्छेद आदि के मुकदमें।

2. याचिका (Writ) अधिकारिता –

अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण तथा अधिकार पृच्छा याचिका जारी कर सकता है। जहाँ सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद–32 के अन्तर्गत केवल मौलिक अधिकारों के लिए याचिका जारी कर सकता है, वहीं उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों के साथ–साथ अन्य मामलों (अधिकारों) के लिए याचिका जारी कर सकता है।

3. अपीलीय क्षेत्राधिकार –

उच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है–

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार – आयकर, पेटेण्ट, डिजाइन, उत्तराधिकार आदि मामलों में जिला न्यायालय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार – जब अपराधी को सैशन न्यायालय ने चार वर्ष के लिए कारावास दण्ड दिया है या मृत्युदण्ड दिया है तो उसके विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में हो सकती है।

संवैधानिक अपीलीय क्षेत्राधिकार – कोई भी ऐसा मुकदमा, जिसमें संविधान की व्याख्या का प्रश्न हो, तो उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

4. अभिलेख न्यायालय–

अनुच्छेद 215 के अन्तर्गत प्रत्येक उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय होगा और उसको अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति है।

उच्च न्यायालय के निर्णय रिकॉर्ड की तरह सुरक्षित रखे जायेंगे और वह अधीनस्थ न्यायालय के लिए कानून की तरह कार्य करेंगे।

5. प्रशासन सम्बन्धी अधिकार–

उच्च न्यायालय के प्रशासन सम्बन्धी अधिकार इस प्रकार है–

उच्च न्यायालय अपने अधीन किसी न्यायालय के पत्रों/निर्णय को मँगवा सकता है और उनकी जाँच–पड़ताल करवा सकता है।

उच्च न्यायालय का कर्त्तव्य है कि वह ध्यान रखे कि अधीनस्थ न्यायालय अपनी शक्ति सीमा का उल्लंघन तो नहीं कर रहा तथा अपने कर्त्तव्यों का निश्चित विधि के अनुसार ही पालन कर रहा है। वह किसी भी वाद को एक न्यायालय से हटाकर दूसरे न्यायालय में विचार तथा निर्णय के लिए भेज सकता है।

6. न्यायिक पुनरावलोकन –

उच्च न्यायालय केन्द्र व राज्य विधायिका व कार्यपालिका के कार्यों को वैध या अवैध घोषित कर सकता है।

राज्य में विधानमण्डल, कार्यपालिका व राज्य न्यायपालिका को राज्य सरकार के नाम से जाना जाता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- विधानसभा का गठन – (1) सदस्य संख्या, (2) स्थान आरक्षण, (3) निर्वाचन पद्धति (4) सदस्यों की योग्यताएं, (5) कार्यकाल, (6) पदाधिकारी–अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, (7) अध्यक्ष के अधिकार तथा कार्य।
- विधानपरिषद् का गठन :– (1) सदस्य संख्या, (2) सदस्यों का निर्वाचन व मनोनयन, (3) सदस्यों की योग्यताएं, (4) कार्यकाल– स्थायी सदन, (5) पदाधिकारी–सभापति तथा उपसभापति।
- विधानपरिषद् के अधिकार तथा कार्य : (1) कानून निर्माण सम्बन्धी, (2) कार्यपालिका सम्बन्धी, (3) धन सम्बन्धी।
- विधानमण्डल या विधानसभा की शक्तियां एवं कार्य : (1) विधायी कार्य, (2) वित्तीय शक्ति, (3) प्रशासनिक शक्ति, (4) संविधान के संशोधन की शक्ति, (5) निर्वाचन सम्बन्धी शक्ति।
- राज्य कार्यपालिका : राज्यपाल, मुख्यमंत्री एवं मंत्रिपरिषद्
- राज्यपाल : राज्य का वैधानिक प्रधान। नियुक्ति : राष्ट्रपति द्वारा। पद की योग्यताएं व वेतन।
- राज्यपाल की शक्तियाँ और कार्य : (1) कार्यपालिका शक्तियां, (2) विधायी शक्तियाँ, (3) विविध शक्तियाँ।
- मंत्रिपरिषद् का गठन : (1) मुख्यमंत्री की नियुक्ति, (2) मंत्रियों का चयन, (3) मंत्रियों की योग्यताएं (4) मंत्रियों का कार्य–विभाजन, (5) मंत्रियों द्वारा शपथ ग्रहण, (6) मंत्रियों की श्रेणियाँ, (7) मंत्रिपरिषद् का कार्यकाल, (8) सामूहिक उत्तरदायित्व, (9) वेतन, भत्ते।
- मंत्रिपरिषद् की शक्तियाँ और कार्य : (1) शासन की नीति निर्धारित करना, (2) उच्च पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में राज्यपाल को परामर्श, (3) विधानमण्डल में शासन का प्रतिनिधित्व, (4) कानून निर्माण का कार्यक्रम निश्चित करना। (5) बजट तैयार करवाना।
- मुख्यमंत्री की शक्तियां और कार्य : (1) मंत्रिपरिषद् का निर्माण, (2) मंत्रियों में कार्य का बंटवारा और परिवर्तन, (3) मंत्रिमण्डल का कार्य–संचालन, (4) शासन के विभिन्न विभागों में समन्वय, (5) मंत्रिपरिषद् और राज्यपाल के बीच सम्बन्ध स्थापितकर्ता।
- उच्च न्यायपालिका– न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा।
- न्यायाधीशों की योग्यताएं– भारत का नागरिक, 10 वर्ष तक न्यायिक पद धारण तथा कम से कम 10 वर्ष अधिवक्ता।
- कार्यकाल– 62 वर्ष की आयु
- शपथ– राज्यपाल द्वारा।
- उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता हेतु व्यवस्थाऐं।
- कार्य एवं शक्तियां– 1. मूल/प्रारंभिक क्षेत्राधिकार 2. याचिका अधिकारिता 3. अपीलीय क्षेत्राधिकार 4. अभिलेख न्यायालय 5. प्रशासन सम्बंधी 6. न्यायिक पुनरालोकन।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. जनसंख्या में वृद्धि के बावजूद राज्य विधानसभा की सदस्य संख्या कब तक स्थिर रहेगी?
2. भारतीय संघ के किन राज्यों में दो सदनों वाला विधानमण्डल है?
3. विधानपरिषद् के कितने सदस्यों को राज्यपाल मनोनीत करता है?
4. राज्य की विधानसभा तथा विधानपरिषद् के मुख्य पदाधिकारियों के पदनाम बतलाइए।
5. राज्य की मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित करने का अधिकार राज्य विधानमण्डल के किस सदन को नहीं है?
6. अध्यापकों का निर्वाचक मण्डल विधानपरिषद् में कितने सदस्यों का निर्वाचन करते हैं?
7. राज्यपाल किसकी इच्छापर्यन्त अपने पद पर बना रहता है?

8. संविधान के अनुसार राज्य की कार्यपालिका शक्ति किसमें निहित है?

9. राज्य के विधानमण्डल के सत्रावसान में राज्यपाल विशेष परिस्थितियों में जो आदेश जारी करता है, उसे क्या कहते हैं?

10. पद ग्रहण के पूर्व मुख्यमंत्री को राज्यपाल के समक्ष किस आशय की शपथ लेनी होती है?

11. उच्च न्यायालय के गठन का प्रावधान संविधान के किस अनुच्छेद के अन्तर्गत किया गया है?

12. उच्च न्यायालय का न्यायाधीश अपना त्यागपत्र किसे संबोधित कर देता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. किन्ही तीन ऐसी परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए जिससे किसी विधानसभा के सदस्य की सदस्यता का अन्त हो जाता है।

2. विधानसभा के अध्यक्ष के कार्यों को संक्षेप में समझाइए।

3. मान लीजिए आप विधानसभा के अध्यक्ष हैं और आपको सदन के सदस्यगण हटाना चाहते हैं। इसके लिए उन्हें जिस विधि का अनुसरण करना होगा, उसे संक्षेप में समझाइए।

4. यदि राजस्थान में विधानपरिषद् की स्थापना करनी हो, तो क्या विधि अपनानी होगी?

5. राज्यपाल पद के उम्मीदवार में कौन–सी योग्यताएं आवश्यक हैं?

6. राज्यपाल की स्व–विवेकीय शक्तियां बतलाइए।

7. राज्य मंत्रिपरिषद् का गठन किस प्रकार होता है?

8. राज्य मंत्रिपरिषद् की कार्यप्रणाली को संक्षेप में समझाइए।

9. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति हेतु कोई दो योग्यताएं बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. विधानसभा के गठन, अधिकारों तथा कार्यों की विवेचना कीजिए।

2. विधानपरिषद् के गठन, अधिकारों तथा कार्यों का उल्लेख कीजिए।

3. राज्य विधानमण्डल में साधारण विधेयक के पारित होने की प्रक्रिया बतलाइए।

4. राज्यपाल की नियुक्ति एवं शक्तियों की विवेचना कीजिए।

5. राज्य मंत्रिपरिषद् के गठन एवं शक्तियों का वर्णन कीजिए।

6. राज्य प्रशासन में मुख्यमंत्री की भूमिका की विवेचना कीजिए।

7. उच्च न्यायालय के संगठन एवं क्षेत्राधिकार को स्पष्ट कीजिए।

अध्याय 8

जल संसाधन

परिचय–

जल प्रकृति की अनुपम देन है जो कि पृथ्वी पर समस्त क्रियाओ को गति प्रदान करता है। पृथ्वी के धरातल पर 71 प्रतिशत जल तथा 29 प्रतिशत स्थल है। इस जल का 97 प्रतिशत भाग महासागरों में खारे पानी के रूप में तथा शेष 3 प्रतिशत जल उपयोग हेतु है। इस जल का भी 69 प्रतिशत हिम रूप में तथा 30 प्रतिशत भूमिगत रूप में रहता है। शेष 1 प्रतिशत जल का उपयोग मानव पेयजल, सिंचाई तथा आर्थिक क्रियाओं के लिए करता है। भारत में कुल उपयोग योग्य जल की उपलब्धता 1869 बिलियन क्यूबिक मीटर है इसमें से केवल 1123 बिलियन क्यूबिक मीटर जल ही उपयोग में लिया जाता है इस मानव उपयोगी जल में से 690 बिलियन क्यूबिक मीटर सतही जल तथा 433 बिलियन क्यूबिक मीटर भू–जल का भाग है सन् 2000 में भारत में जल की कुल आवश्यकता 634 बिलियन क्यूबिक मीटर तथा सन् 2025 में यह मांग बढ़कर 1023 बिलियन क्यूबिक मीटर हो जाएगी । तीव्र जनसंख्या वृद्धि तथा वैश्विक उष्णता से जल संसाधनों पर पड़ने वाले प्रभाव के कारण जल का समुचित प्रबंधन तथा संरक्षण आवश्यक हो गया है।

जल प्रबंधन –

वर्षा जल का अधिकांश भाग नदियों के माध्यम से समुद्रों में व्यर्थ में चला जाता है। इस व्यर्थ होने वाले जल का सदुपयोग बढ़ती जनसंख्या की मांग की पूर्ति हेतु एवं मानसून की अनियमितता व अनियमितता के कारण सूखे व अकाल से निपटने के लिए उचित प्रबंधन आवश्यक होता है। देश में आजादी के बाद विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से बहुउद्देशीय जल परियोजनाएं आरम्भ की गई, जिससे बाढ़ व सूखे की समस्या से बचाव होने लगा, वहीं बिजली, पेयजल आपूर्ति, सिंचाई, मछली पालन और पर्यावरण के संरक्षण में सहयोग मिला। इन बहुउद्देशीय जल परियोजनाओं को देश के प्रथम प्रधानमंत्री नेहरू जी ने "आधुनिक भारत का मन्दिर" कहा था ।

भारत में इन परियोजनाओं का संचालन राज्यों तथा केन्द्र सरकार के माध्यम से किया जाता है

1. केन्द्र सरकार के द्वारा महत्त्वपूर्ण योजनाओं जैसे भाखड़ा नाँगल, रिहन्द, दामोदर, हीराकुण्ड, कोसी, टिहरी, परियोजना आदि का क्रियान्वयन किया जा रहा है।

2. राज्य सरकारों के माध्यम से चम्बल परियोजना (मध्य प्रदेश व राजस्थान), नागार्जुन सागर परियोजना, (आन्ध्र प्रदेश), तुंगभद्रा परियोजना (आन्ध्र प्रदेश व कर्नाटक), सरदार सरोवर परियोजना (गुजरात, मध्य प्रदेश व राजस्थान), मयूराक्षी तथा फरक्का परियोजना (प.बंगाल), माही परियोजना (गुजरात तथा राजस्थान), गण्डक परियोजना (बिहार तथा उत्तरप्रदेश), मच्छकुण्ड परियोजना (आन्ध्र प्रदेश व उड़ीसा) जैसी विभिन्न

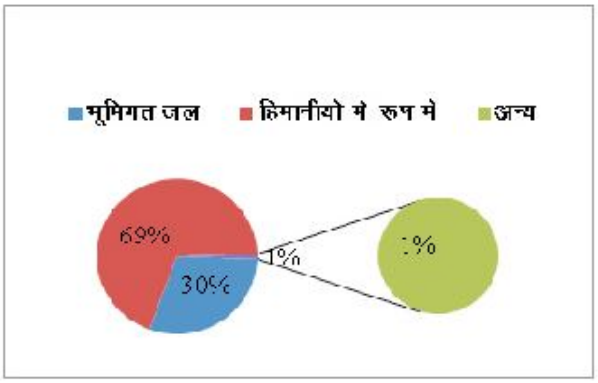

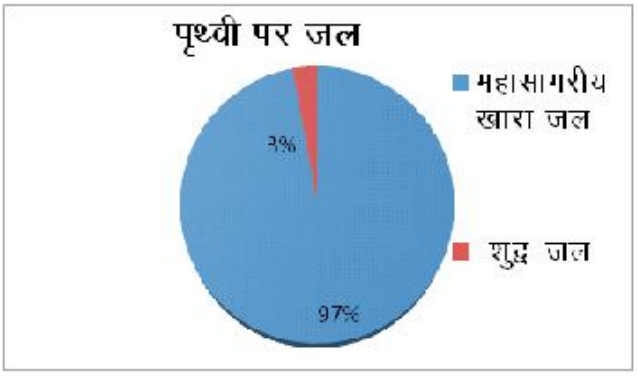

परियोजनाओं को संचालित किया जा रहा है।

भाखड़ा नाँगल परियोजना–

1948 में आरम्भ होकर 1963 में पूर्ण हुई देश की सबसे बड़ी एवं महत्त्वपूर्ण परियोजना जो सतलज नदी पर हिमाचल प्रदेश में बिलासपुर के निकट स्थापित है।

यह पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान की संयुक्त परियोजना है। इसका उद्देश्य सतलज तथा यमुना के मध्यवर्ती भागों में सिंचाई, विद्युत व पेयजल की आपूर्ति के द्वारा आर्थिक विकास करना है। इस योजना के तहत दो बांध पंजाब के अंबाला जिले में बनाए गए है। पहला भाखड़ा बांध जो कि 518.16 मीटर लम्बा तथा 167.64 मीटर ऊँचा है। सीमेंण्ट तथा कंकरीट से निर्मित विश्व के सीधे खड़े बांधों में यह सबसे बड़ा बांध है। दूसरा भाखड़ा बांध से 13 किमी. नीचे नाँगल नामक स्थान पर बनाया गया है जो कि भाखड़ा बांध के अतिरिक्त जल को संचित करने के उद्देश्य के लिए बनाया गया है। इन बांधों से सिंचाई के लिए भाखड़ा नहर, सरहिन्द नहर, नाँगल नहर, बिस्त दोआब नहर तथा नरवाना नहरें निकाली गईं तथा नांगल विद्युत गृह व कोटला तथा गंगवाल में दो विद्युत गृहों का निर्माण किया गया है।

"भाखड़ा नाँगल परियोजना में कुछ आश्चर्यजनक है, कुछ विस्मयकारी है, कुछ ऐसा है जिसे देखकर आपके दिल में हिलोरें उठती हैं। भाखड़ा पुनरूत्थित भारत का नवीन मन्दिर है और यह भारत की प्रगति का प्रतीक है"।

जवाहर लाल नेहरू

दामोदर घाटी परियोजना –

स्वतंत्र भारत की प्रथम महत्त्वपूर्ण परियोजना जो कि पश्चिमी बंगाल व झारखण्ड की संयुक्त परियोजना है, इसे पश्चिमी बंगाल में शोक कही जाने वाली दामोदर नदी पर 1948 में आरम्भ किया गया। यह नदी पश्चिमी बंगाल में मार्ग परिवर्तन, अपरदन तथा बाढ़ के लिए कुख्यात थी। यह नदी छोटा नागपुर के पठार के पूर्व की ओर बिहार व झारखण्ड में 290 कि.मी. तथा पं. बंगाल में 240 कि.मी. बहकर हुगली नदी में गिरती है। बाराकर, बोकारो व कोनार इसकी सहायक नदियाँ हैं इस नदी के द्वारा 18000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र बाढ़ व अपरदन से प्रभावित होता है। इसलिए भारत सरकार ने अमेरिका की टेनेसी (T.V.C) घाटी परियोजना निगम के प्रारूप के अनुसार भारत में दामोदर घाटी (D.V.S) निगम की स्थापना की। इस परियोजना का उद्देश्य पं. बंगाल व झारखण्ड के नदी घाटी का आर्थिक विकास कर स्थानीय निवासियों के जीवन स्तर में सुधार करना है। इस योजना में, बाराकर नदी पर मेंथान, बाल पहाड़ी व तिलैया बांध, बोकारो नदी पर बोकारो बांध, कोनार नदी पर कोनार तथा दामोदर नदी पर अघर बांध, बर्मो बांध, बाल पहाड़ी आठ बांध, एक दुर्गापुर अवरोधक बांध, बोकारो, चन्द्रपुर तथा दुर्गापुर में तीन जल विद्युत गृहों का निर्माण, तथा 2500 किमी. नहरी प्रणाली का विकास किया गया।

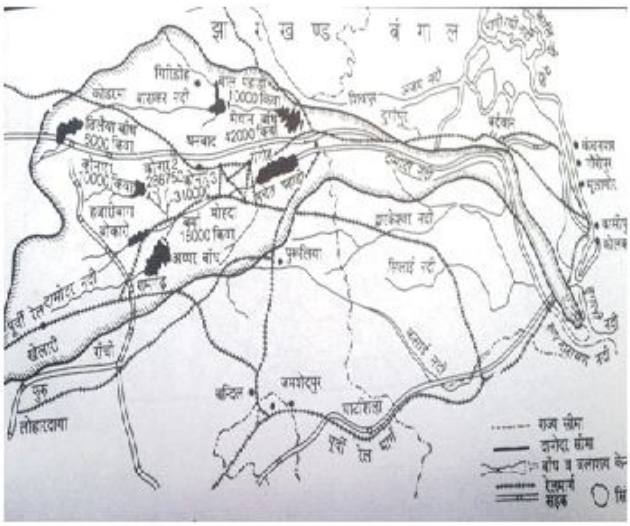

हीराकुण्ड परियोजना–

प्रायद्वीपीय (Peninsular) भारत की महत्वाकांक्षी योजना जो कि उड़ीसा के शोक के नाम से प्रसिद्ध नदी महानदी पर भारत सरकार के द्वारा उड़ीसा राज्य में स्थापित की गई। महानदी जो कि छत्तीसगढ़ में बस्तर की पहाड़ियों से निकल कर उड़ीसा तथा नदी घाटी क्षेत्रों में मानसून काल में बाढ़ की स्थिति पैदा करती है, शेष समय में सूखे तथा अकाल स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भारत सरकार ने 68 करोड़ रुपये की लागत से सम्बलपुर से 14 किलोमीटर ऊपर की ओर हीराकुण्ड बांध बनाया

है। यह विश्व का सबसे लम्बा बांध है जिसकी लम्बाई 4801 मीटर है, जिसमें 810 करोड़ घन मीटर जल संचित होता है। इसके अलावा तिकरपाडा व नराज में दो अन्य बांध बनाए गये हैं। इस योजना को दो चरणो में पूरा किया गया है जिसमें प्रथम चरण में उड़ीसा के सम्भलपुर जिले में हीराकुण्ड बांध बनाकर इसके दाहिनी ओर बोरगढ़ नहर तथा बाँयी ओर सेसन व सम्बलपुर नहर प्रणाली को विकसित किया गया तथा दूसरे चरण में चार विद्युत गृहों का निर्माण किया गया।

राजस्थान में बहुउद्देशीय जल परियोजनाएं–

चम्बल घाटी परियोजना – राजस्थान एवं मध्यप्रदेश की संयुक्त परियोजना चम्बल नदी पर 1953 में आरम्भ हुई। इस नदी के प्रवाह से भूमि अपरदन तथा बाढ़ के कारण तथा अन्य सम्बधित आपदाओ से होने वाली हानि से बचाव के लिए तीन चरणों में आरम्भ की गई इस योजना के प्रथम चरण में मध्यप्रदेश के मन्दसौर जिले में गांधी सागर बांध तथा नहरी प्रणाली का निर्माण किया गया, द्वितीय चरण में राजस्थान के चित्तौड़गढ़ में रावतभाटा नामक स्थान पर राणा प्रताप सागर बांध तथा तीसरे चरण में कोटा बूंदी जिले की सीमा पर जवाहर सागर पिकअप बांध तथा विद्युत गृहों का निर्माण किया गया। कोटा बैराज से राजस्थान में नहरों के माध्यम से सिंचाई की जाती है।

राजस्थान नहर या इन्दिरा गांधी नहर परियोजना –

राजस्थान में थार मरुस्थल में पेयजल आपूर्ति, व्यर्थ भूमि के उपयोग तथा अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर आबादी बसाने के उद्देश्य से सतलज व रावी के संगम पर स्थित हरिके बेराज से इस नहर को निकाला गया है। यह नहर भारत ही नहीं बल्कि एशिया की सबसे बड़ी मानव निर्मित नहर है जिसकी कुल लम्बाई 649 किमी. है जिसमें से 169 किमी. पंजाब तथा 14 किमी. हरियाणा में तथा शेष राजस्थान में है। इस नहर के द्वारा राजस्थान के 9 जिलों, 29 कस्बों तथा 3461 गाँवों को पेयजल की आपूर्ति की जाती है। इस नहर को दो चरणों में पूर्ण किया गया जो क्रमशः राजस्थान फीडर तथा मुख्य नहर है। राजस्थान फीडर जो आरम्भिक स्थल से मसीतावली तक तथा मुख्य नहर मसीतावली से मोहनगढ़ के अन्तिम बिन्दु तक का

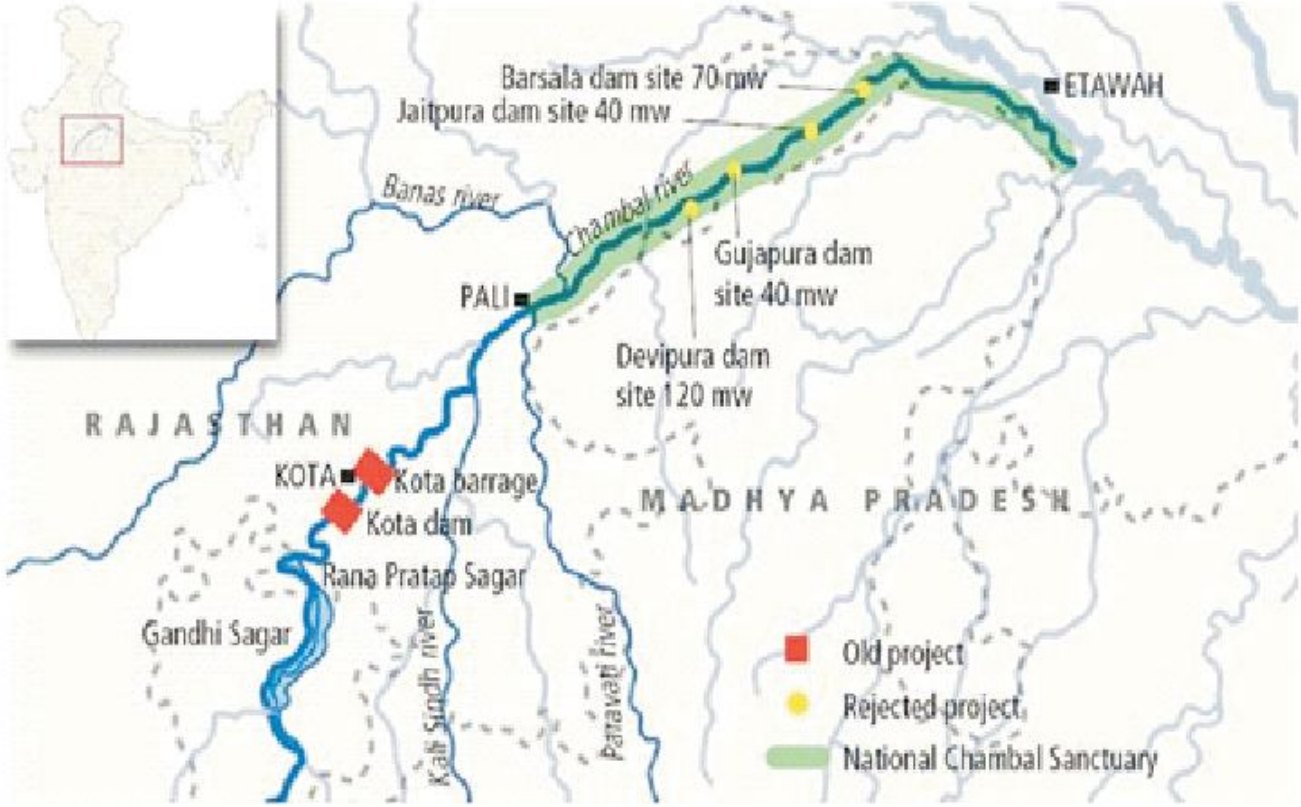

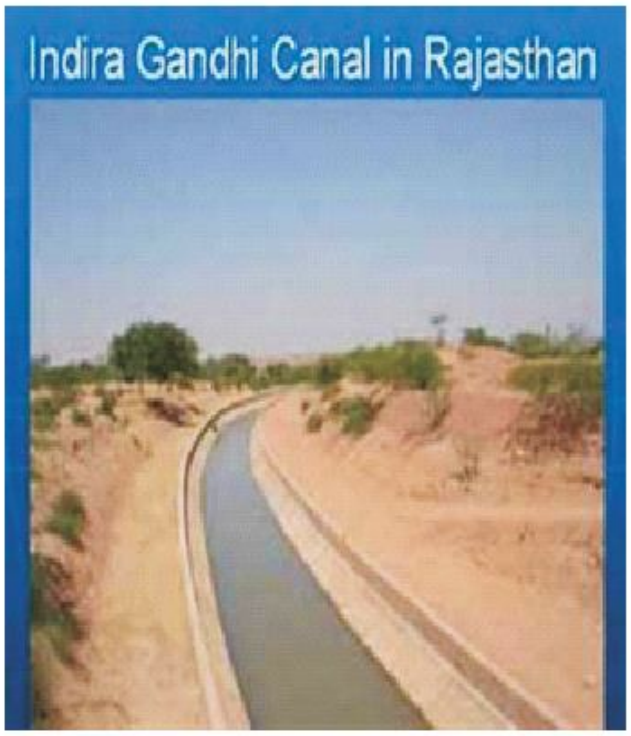

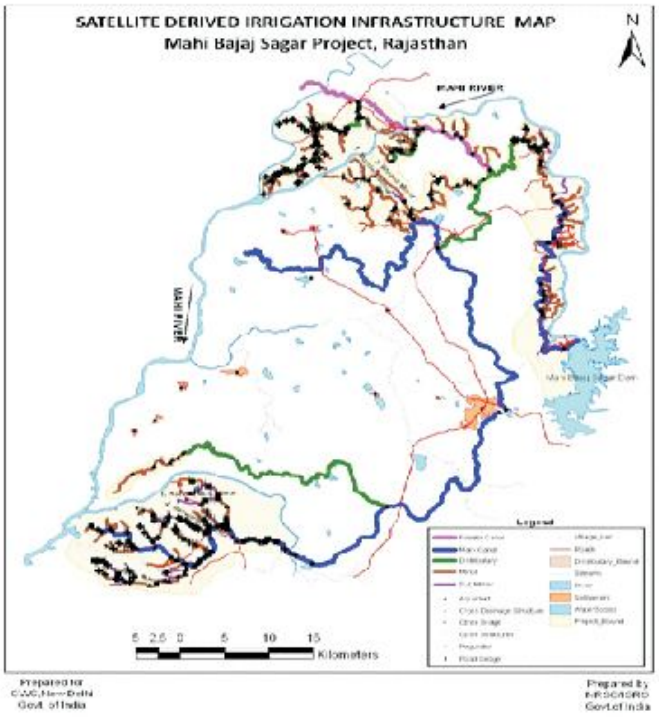

भाग है जो क्रमशः 204 किमी. तथा 445 किमी. है। इस नहर के द्वारा थार के मरूस्थल में सिंचित क्षेत्र का विकास करने के उद्देश्य से विभिन्न शाखाएं तथा लिफ्ट नहरें निकाली गयी हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सीमा की ओर अर्थात् पश्चिमी सीमा पर 09 शाखाएं ढाल के अनुरूप तथा पूर्व की ओर ऊँचाई अधिक होने के कारण जल को ऊपर उठा कर छोटी नहरों में डाला जाता है जिसे लिफ्ट नहर कहा जाता है। इन लिफ्ट नहरों के माध्यम से विभिन्न कस्बों तथा शहरों को पेयजल उपलब्ध कराया जाता है। लिफ्ट नहरों की कुल संख्या 07 है। इस नहर के माध्यम से 17.41 करोड़ हैक्टेयर भूमि को सिंचित किया जाएगा। अब इस परियोजना को बाड़मेर के गडरा रोड़ तक बढ़ा दिया गया है।

माही बजाज सागर परियोजना–

राजस्थान एवं गुजरात की यह संयुक्त परियोजना विन्ध्याचल पर्वत से निकलने वाली माही नदी पर 1971 में आरम्भ हुई। यह परियोजना इस नदी के प्रवाह मार्ग में डूँगरपुर तथा बांसवाड़ा के आदिवासी क्षेत्रों के आर्थिक विकास हेतु सिंचाई तथा विद्युत सुविधाओं के विकास हेतु आरम्भ की गई। इस योजना के अन्तर्गत राजस्थान के बांसवाड़ा के बोरखैड़ा नामक स्थान पर माही बजाज सागर बांध बनाया गया तथा गुजरात में गुजरात सरकार की लागत से कडाना बांध बनाया गया। नहरी प्रणाली को विकसित करने के उद्देश्य से मुख्य बांध से 500 मी. नीचे कागदी पिकअप बांध बनाया गया और विद्युत तंत्र के विकास हेतु मुख्य बांध पर दो विद्युत गृहों का निर्माण किया गया।

बीसलपुर परियोजना–(1997–1998)

यह बहुउद्देशीय जल परियोजना (सिंचाई व पेयजल) है। इस योजना में टोंक जिले के टोडारायसिंह कस्बे के पास बीसलपुर स्थान पर बनास नदी पर 574 मीटर लम्बा तथा 39.5 मीटर ऊँचा बांध बनाया गया है। इस बांध के दायें तथा बायें किनारे से दो नहरें निकाली गयी है। इस योजना के माध्यम से सवाईमाधोपुर जिले को सिंचाई, जयपुर शहर तथा अजमेर, केकड़ी, सरवाड, ब्यावर एवं रास्ते में आने वाले गाँवो को पेयजल आपूर्ति तथा टोंक जिले के 256 गाँवों में सिंचाई हेतु जल उपलब्ध करवाया जाएगा।

राजस्थान की अन्य परियोजनाएँ–

1. जाखम परियोजना –

जाखम नदी पर चित्तौड़गढ़ तथा उदयपुर व प्रतापगढ़ के आदिवासी क्षेत्रो में विकास हेतु सिंचाई योजना लिए अनूपपुरा में जाखम बाँध बनाया गया है इससे 13 किमी. दूर नागरिया गाँव में पिकअप से नहर प्रणाली का विकास किया गया।

2. 'सोम–अम्बा–कमला' परियोजना –

सोम नदी पर बांगड़ क्षेत्र के सिंचित क्षेत्र विकास हेतु कमला अम्बा गाँव में बांध का निर्माण किया गया है जिससे डूँगरपुर जिले की आसपुर तथा उदयपुर की सलूम्बर तहसील के गाँवों को सिंचाई की सुविधा मिलेगी।

3. मेजा बांध–

भीलवाड़ा जिले की माण्डलगढ़ तहसील के मेजा गाँव में कोठारी नदी पर सिंचाई के लिए मेजा बाँध बनाया गया है। बाँध से

मत्स्यपालन व नहर प्रणाली का विकास किया गया।

4. सिद्धमुख परियोजना –

रावी–व्यास के अतिरिक्त जल का उपयोग गंगानगर तथा हनुमानगढ की नोहर–भादरा तथा चूरू जिले की तारानगर व राजगढ़ तहसीलों में 33 हजार हेक्टेयर भूमि को सिंचित करने में इस परियोजना किया जाता है।

5. नर्मदा परियोजना –

सरदार सरोवर बाँध के जल से बाड़मेर तथा जालोर को पेयजल की आपूर्ति होती है।

6. जवाई बाँध परियोजना –

पश्चिमी राजस्थान में लूणी की सहायक जवाई नदी पर ऐरिनपुरा (पाली) में बाँध बनाया गया है। इससे 176 किमी. नहर निकाल कर पाली व जालोर में सिंचाई की जाती है।

7. पांचना बाँध –

करौली जिले में गुडला गाँव के समीप पांच नदियों बरखेडा, भद्रावती, माची, मैसावट तथा अटा के संगम पर मिट्टी का बाँध बनाया है, जिससे टोडाभीम, हिण्डौन, गंगापुर के गाँवों को सिंचित किया जाता है।

उपरोक्त परियोजनाओं के अलावा भी लगभग 40 लघु परियोजनाएं राजस्थान के विभिन्न भागों में क्रियाशील है जिससे स्थानीय स्तर पर बेहतर जल के प्रबंधन का कार्य किया गया है।

जल संरक्षण–

किसी स्थान पर वर्षा जल का उचित जल प्रबंध कर संग्रहण करना ही उस स्थान का जल संरक्षण है ताकि मानसून काल के अतिरिक्त जल को बाँधों, तालाबों तथा झीलों अथवा छोटे जलस्त्रोत में इकट्ठा करके शेष अवधि में प्रयोग लिया जा सके। भारतीय संस्कृति में जल को अमृत के समान माना है जिसके प्रति संवेदनशीलता के कारण देश के शासकों, सेठ साहूकारों तथा स्थानीय नागरिकों ने गाँवों तथा नगरों में कुंए, बावड़ी, तालाब, तथा झीलों का निर्माण कराया है। प्राचीन भारत में जलसंरक्षण के प्रति सद्भावना थी। इसी कारण भारत में सिन्धु सभ्यता की खुदाई से कुण्ड, कूप तथा नहरों के साक्ष्य मिले है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य ने सुदर्शन झील का निर्माण कराया था। दक्षिण भारत में चालुक्य शासकों द्वारा विभिन्न ऐनिकटों तथा बांधों का निर्माण कराया गया।

राजस्थान में जल संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता परम्परागत रही है क्योंकि वर्षा की कमी तथा सूखे की आशंका यहाँ हमेंशा से बनी रही है। इसी कारण स्थानीय राजाओं तथा साहूकारों द्वारा बावड़ी, झालरा, नाडी, कुएं, कुईं तथा जोहड़ों का निर्माण करवाया गया जो कि स्थानीय जनता के पेयजल स्त्रोत रहे हैं। साथ ही छोटे व बड़े बाँध, खड़ीन तथा एनीकट पेयजल के साथ–साथ सिंचाई के लिए भी उपयोगी रहे।

राजस्थान में परम्परागत जल संरक्षण के रूप –

01. बावड़ी–

चतुष्कोणीय, गोल व वर्तुल आकार में निर्मित जल स्त्रोत जिसके प्रवेश मार्ग से मध्य मार्ग तक ईंटों तथा कलात्मक पत्थरों का प्रयोग किया गया है, इनके आगे आंगननुमा भाग होते हैं। इन भागों तक पहुँचने के लिए सीढ़ियां बनी रहती है। इन सीढ़ियों पर कलात्मक मेंहराब व स्तम्भ व झरोखे होते हैं। इन झरोखों में स्थानीय जलदेवता की मूर्तियाँ होती है। राजस्थान में बावड़ियों का निर्माण व उपयोग व्यक्तिगत अथवा सामाजिक होता है। बावड़ियों राज्य के सभी जिलों में मिलती है। बूंदी शहर को बावड़ियों की अधिकता के कारण सदैव सिटी ऑफ स्टैप वेल्स कहा जाता है। इसके अलावा जोधपुर की तापी बावड़ी, दौसा की भाड़ारेंज बावड़ी, चित्तौड़ की विनाता की बावड़ी व आभानेरी की चान्द बावड़ी प्रसिद्ध है।

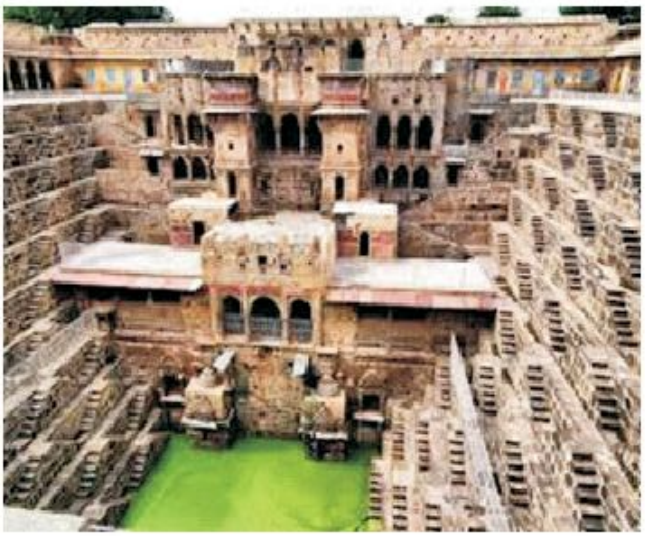

02.तालाब–

तालाब में वर्षा जल को एकत्रित किया जाता है जो पशुधन तथा मानव के पेयजल का स्त्रोत रहा है। अधिकांश तालाबों का निर्माण ढालू भाग के समीप किया गया है। इन तालाबों के निर्माण में धार्मिक तथा सामाजिक भावना जुड़ी रहती है। इस कारण इनका संरक्षण तथा सुरक्षा आसानी से हो जाती है। राजस्थान के प्रमुख तालाब जो तत्कालीन समय में जल स्त्रोत रहे है। पाली में हेमाबास तालाब, सरेरी तथा मेजा तालाब भीलवाड़ा में, बानकिया तथा सेनापानी तालाब चित्तौड़ जिले में, गडीसर व गजरूपसागर जैसलमेर जिले में प्रसिद्ध रहें हैं।

03.झीलें–

झीलें राज्य में बहते हुए जल का संरक्षण करने में सर्वाधिक प्रचलित स्त्रोत रही है। इन झीलों का निर्माण स्थानीय शासकों, साहूकारों एवं बनजारों के द्वारा किया गया था। ये पेयजल के साथ–साथ सिंचाई के साधन के रूप में प्रचलित रही है। इन झीलों से नहरें निकाल कर समीप के भागों में सिंचाई कार्य किया जाता था। यह झीलें जहाँ स्थानीय आर्थिक तथा सामाजिक विकास में सहायक रही वहीं अकाल तथा सूखे में जीवनदायिनी रही है। इन झीलों में अजमेर की आनासागर, उदयपुर की पिछौला तथा फतेहसागर, चुरू की तालछापर, जालोर का बाकली बांध, टोंक का टोरडीसागर, पाली का सरदारसमन्द, बूंदी की नवलखा झील तथा राजसमन्द की नौ चौकी झील प्रसिद्ध है।

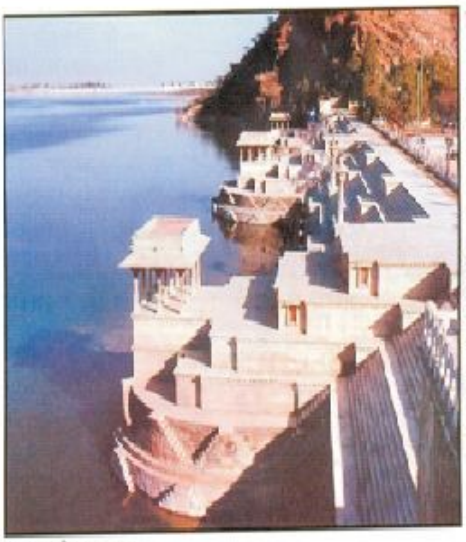

राजसमन्द (राजसमन्द)

वर्षा जल संरक्षण के पुनीत उद्देश्य से बनायी गई राजसमन्द झील राणा राज सिंह ने बनवायी थी। प्रकृति की अनुकम्पा को सहेजती राजसमन्द झील की पाल, नौचौकी व इस पर बनी छतरियों की छतों, स्तम्भों तथा तोरण द्वार पर की गई मूर्तिकला एवं नक्काशी देखकर स्वतः ही दिलवाड़ा के जैन मंदिरों की याद आ जाती है।

राजसमन्द झील, राजसमन्द

04.नाडी–

सामान्यतः तालाब का छोटा रूप होता है जो प्रायः पश्चिमी राजस्थान में अधिकाशतः पायी जाती है। नाडी में रेतीले मैदानी भाग में वर्षा जल को एकत्रित किया जाता है। सामान्य रूप से 4 से 5 मीटर गहरी होती है। इसमें छोटा आकार तथा कम गहराई तथा वर्षा जल के साथ आने वाली मिट्टी के कारण वर्षा जल अल्प काल के लिए इकट्ठा होता है। इन नाडियों की मिट्टी को प्रतिवर्ष निकाला जाकर और नाड़ियों को गहरा किया जाता है। ये प्रायः पश्चिमी राजस्थान में ग्रामीण जनसंख्या, पशुओं तथा वन्य जीवों के पेयजल का मुख्य स्त्रोत रही है।

4.टांका–

पश्चिमी राजस्थान में परम्परागत जलसंग्रहण तथा जलसंरक्षण स्त्रोत जो कि प्रत्येक घर तथा खेत में भूमि में 5 से 6 मीटर गहरा गढ्ढ़ा खोदकर बनाया जाता है। इसके ऊपरी भाग को पत्थरों अथवा स्थानीय उपलब्ध संसाधनों से ढक दिया जाता है।

इसमें घरों की छत तथा आगोर से आने वाले वर्षा जल का संग्रहण कर दिया जाता है। इसके आन्तरिक भाग में राख तथा बजरी का लेप कर दिया जाता है जो जल रिसाव व तली के कटाव को रोकता है। राजस्थान में जलस्वावलम्बन योजना तथा अन्य योजनाओं में इन टांकों का निर्माण किया जा रहा है।

5.जोहड़ –

शेखावाटी क्षेत्र तथा हरियाणा में वर्षा जलसंग्रहण का साधन है। इसका रूप सामान्यतः टांके के सामान ही है परन्तु इसका ऊपरी भाग टांके से बड़ा तथा गोलाकार और खुला होता है जिसमें बहते हुए वर्षा जल को इसके आगोर के माध्यम से इकटठा किया जाता है। ये जोहड़ पशुओं तथा मानव के लिए पेयजल का उत्तम स्रोत है।

6.बेरी या छोटी कुई –

यह पश्चिमी राजस्थान में तालाब तथा खड़ीन में आगोर

भूमि में 5 से 6 मीटर गहरा गढ्ढ़ा खोदकर बनाई जाती है। इसका व्यास 2 से 3 फीट होता है तथा इसकी दीवारो को पत्थरों से बांधा जाता है जिससे भूमिगत जल रिस कर आता रहे। इसका उपयोग ग्रीष्म ऋतु में वर्षा जल के सूखने के बाद किया जाता है इसे स्थानीय भाषा में बेरी कहा जाता है। राजस्थान में बेरियाँ बाड़मेर व जैसलमेर में पाई जाती है।

7.खड़ीन–

खड़ीन वस्तुतः जैसमेर जिले में मध्यकाल में पालीवाल ब्राह्मणों द्वारा अपनाई गई जलसंरक्षण तथा जल प्रबंधन की ऐसी तकनीक है जो कृषि तथा पेयजल के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानी गयी है। इसमें पहाड़ी भागों में वर्षा काल में बहते हुए जल को ढालू भागों पर कच्ची अथवा पक्की मेड़ या दीवार बनाकर रोका जाता है तथा अतिरिक्त जल को इस दीवार के एक भाग से निकाल दिया जाता है जिससे इससे लगते दूसरे खड़ीन भूमि को जल मिल सके। इस खड़ीन भूमि में वर्षा जल से भूमिगत जल में वृद्धि, मिट्टी

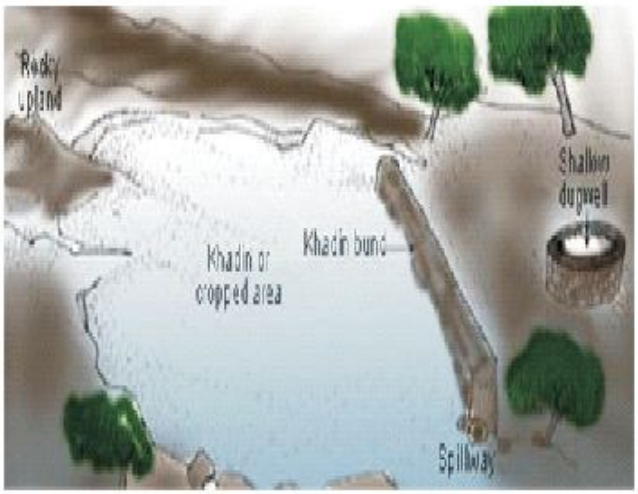

संरक्षण तथा मिट्टी में नमी बनी रहती है। इससे रबी तथा खरीफ की दोनों फसलें आसानी से पैदा होती है साथ ही इसके किनारो तथा आगोर पर बनी बेरियो से ग्रीष्मकाल में पेयजल मिलता रहता है।

वस्तुतः राजस्थान में जल संरक्षण तथा जल प्रबंधन परम्परागत रहा है क्योंकि अकाल व सूखे की आशंका यहाँ पर बनी रहती है। इस कारण स्थानीय जनता तथा शासको ने वर्षा जल की एक एक बूंद सहेज कर अधिकतम उपयोग की मानसिकता से इन विभिन्न तकनीकों को जन्म दिया। धार्मिक आस्था से जुड़े होने से स्वतः ही संरक्षित होते रहे जिसके कारण ये स्त्रोत लम्बे समय तक स्थानीय जीव जन्तुओं व प्राकृतिक वनस्पति और मानव के लिए पेयजल की आपूर्ति करते रहे।

जल स्वालम्बन –

वर्तमान में भूमिगत गिरते जलस्तर तथा स्थानीय स्तर पर प्रचलित जलस्त्रोतों की दुर्दशा तथा बड़े बाँधों में बढ़ती मिट्टी की गाद तथा वर्षा की कमी के कारण जलसंकट की विकट परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगी। साथ ही बढ़ती जनसंख्या से जल की बढ़ती माँग के कारण संकट और भी गंभीर हो गया है इस कारण भारत सरकार ने जल क्रान्ति अभियान तथा राजस्थान सरकार ने मुख्यमंत्री जल स्वावलम्बन कार्यक्रम आरम्भ किये हैं। इन कार्यक्रमों को आरम्भ करने का मुख्य उद्देश्य स्थानीय स्तर पर जल का समुचित प्रबंधन किया जाना है।

सामान्यत जल का प्रबंधन तथा संरक्षण परम्परागत रूप से प्रत्येक ढाणी, गाँव, कस्बे में नाडी, तालाब, कुएं, बावड़ी, जोहड़ व बेरी आदि विभिन्न रूपों में अपनाया गया है। ये जल स्रोत तत्कालीन समय के अनुसार स्थानीय स्तर पर जल प्रबंधन तथा संरक्षण का अनुपम उदाहरण थे जो कि लम्बे समय तक स्थानीय स्तर पर जल प्रदान करते थे। जल प्रबंधन की परम्परागत सुव्यवस्थित तकनीकों से राजस्थान के पश्चिमी भाग में अकाल के समय में भी पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध हो जाता था, परन्तु इन स्त्रोतों की वर्तमान में उपयोगिता कम होने तथा पर्याप्त संरक्षण के अभाव में ये जर्जर स्थिति में रह गये हैं।

वर्तमान समय में जल की कमी से उत्पन होने वाले संकट से मुक्ति के लिए जल स्वावलम्बन आवश्यक हो गया है जिसके अन्तर्गत स्थानीय स्तर पर जल की बचत तथा जल के उपयोग को व्यवस्थित करना तथा वर्षा जल को स्थानीय स्तर पर संरक्षित कर उसका समुचित प्रबंधन करना है। इसमें इन परम्परागत स्त्रोतों का स्थानीय स्तर पर पुनर्विकास करके उसका सिंचाई तथा अन्य कार्यों में उपयोग किया जाए। साथ ही स्थानीय स्तर पर वर्षा जल व भूजल का इस प्रकार से उपयोग किया जाए जिससे भविष्य में स्थानीय स्तर पर जल उपलब्ध हो सके।

मुख्यमंत्री जल स्वावलम्बन योजना –

राजस्थान सरकार के द्वारा मुख्यमंत्री जल स्वावलम्बन योजना में ग्रामीण स्तर पर जलग्रहण क्षेत्र को प्राकृतिक संसाधन मानते हुए स्थानीय स्तर पर राज्य सरकार तथा भामाशाहों के सहयोग से जल प्रबन्धन कर आत्मनिर्भर करना है। इस योजना में भू–जल स्तर में वृद्धि व गुणवत्ता में सुधार कार्य करने के साथ साथ प्राचीन स्त्रोतों जैसे कुएं, तालाब, नाडी तथा लुप्त हो रहे जल संसाधनों को पुनर्जीवित करने का कार्य किया जाएगा। इसमें पंचायत स्तर पर नाडियों, तालाबों व कुओं की खुदाई तथा इनकी दीवारों को ठीक करने का कार्य करना तथा इन जल स्त्रोतों के जल प्राप्ति क्षेत्रों में आने वाले अवरोधों को हटा कर जल प्राप्ति के मार्ग को दुरूस्त करने का कार्य किया जाना है। इस अभियान की

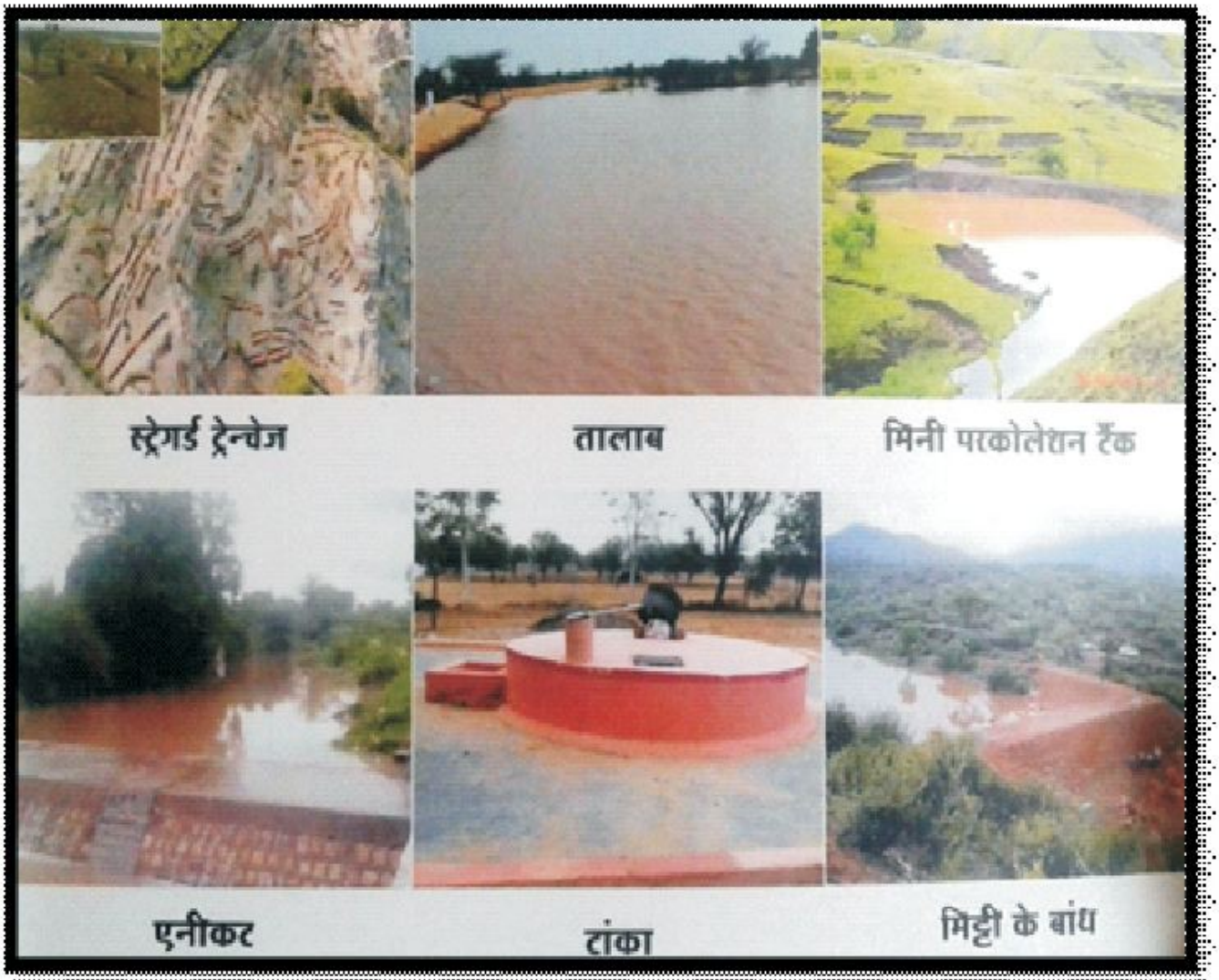

अवधि 4 वर्ष होगी जिसमें राज्य द्वारा विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित कर 21000 गाँवों को लाभान्वित किया जाएगा। इस कार्यक्रम में गैरसरकारी संगठनों, धार्मिक ट्रस्टों, अप्रवासी ग्रामीण भारतीयों व स्थानीय ग्रामीणों की भागीदारी से जलग्रहण क्षेत्रों के उपचार जिसमें डीप कन्टीन्यूअस कन्टूर ट्रेन्चेज, स्ट्रेगर्ड, फार्म पोण्ड, मिनि परकोलेशन टेन्क, संकन गली पिट, खडीन, जोहड़, टांका निर्माण करना है। श्रृंखलाबद्ध छोटे–छोटे एनिकट, मिट्टी के चेकड्रेम एवं जल संग्रहण ढाँचा, नाला स्थरीकरण के कार्य करना है। इसके अलावा माईनर ईरिगेशन टैंक की मरम्मत, नवीनीकरण, सुदृढ़ीकरण कार्य एवम जलस्त्रोतों को नालों से जोड़ना, चारागाह विकास तथा वृक्षारोपण कार्य, कृत्रिम भू–जल पुनर्भरण संरचनाओं के पुर्नजलभरण कार्य एवं फसल व उद्यानिकी में उन्नत तकनीकों को बढ़ावा देना है। साथ ही ग्रामीणों में इन जल स्रोत के संरक्षण के प्रति जागरूकता बनाए रखने के उद्देश्य से इनके महत्ता का प्रचार प्रसार विभिन्न नुक्कड़ नाटकों तथा मेलों व रैलियों के माध्यम से किया जाएगा।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

01. पृथ्वी पर केवल एक प्रतिशत जल ही मानव के पेयजल, सिंचाई तथा आर्थिक क्रियाओं के लिए उपयोगी है।

02. जल प्रबंधन में जल के वितरण,विकास व सुव्यवस्थित उपयोग के लिए की गई सभी तकनीक, योजनाएं सम्मिलित होती है जो जल की मांग व पूर्ति में सामंजस्य स्थापित करती है।

03. जल संरक्षण में वर्षा जल को स्थानीय स्तर पर संग्रहित करने के लिए अपनाई गई तकनीक व विधियाँ होती है।

04. जल स्वावलम्बन में भू–जल तथा सतही जल का स्थानीय स्तर पर जल का प्रबंधन व संरक्षण कर आत्मनिर्भर होना है।

05. भाखड़ा बाँध जो कि 518.16 मीटर लम्बा तथा 167.64 मीटर ऊँचा है, सीमेण्ट तथा कंकरीट से निर्मित विश्व के सीधे खड़े बाँधों में सबसे बड़ा बाँध है।

06. हीराकुण्ड बाँध जो विश्व का सबसे लम्बा बाँध अर्थात् 4801 मीटर लम्बा बाँध है जिसमें 810 करोड़ घन मीटर जल संचयित

होता हैं।

07. भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने देश की नदी घाटी परियोजनाओ को भारत का नवीन मंन्दिर बताया है

08. पिकअप बाँध से विभिन्न बाँधों से छोड़े जाने वाले पानी को रोकने का कार्य करता है इसके बाद समान रूप से वितरित किया जाता है।

09.बैराज से तात्पर्य जहाँ से सिंचाई के लिए नहरों को निकाला जाता है जैसे हरिके बैराज तथा कोटा बैराज।

10.इन्दिरा गांधी नहर– भारत ही नहीं एशिया की सबसे लम्बी मानव निर्मित नहर है जिसकी कुल लम्बाई 649 किमी. है।

11.पांचना बाँध– करौली जिले केगुड़ला गाँव के समीप पाँच नदियों बरखेड़ा, भद्रावती, माची, भैसावट तथा अटा के संगम पर मिट्टी का बाँध बनाया है।

12.खड़ीन– खड़ीन वस्तुतः कृषि भूमि होती है जो जैसलमेर जिले में मध्यकाल में पालीवाल ब्राहमणो द्वारा अपनाई गई। जलसंरक्षण तथा जल प्रबंधन की ऐसी तकनीक जो कृषि तथा पेयजल के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानी गयी है।

13. जोहड़ – शेखावटी क्षेत्र सीकर, झुंझनू व चुरू वर्षा के जल संग्रहण का स्वरूप है।

14. जल स्वावलम्बन के उद्देश्य से भारत सरकार ने जल क्रान्ति अभियान तथा राजस्थान सरकार ने मुख्यमंत्री जल स्वावलम्बन कार्यक्रम आरम्भ किये है ।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

06. जल प्रबंधन से क्या ताप्तर्य है ?
07. भारत की सबसे लम्बी मानव निर्मित नहर कौन सी है ?
08. भारत का सबसे लम्बा बाँध कौन सा है ?
09. बैराज से क्या तात्पर्य है ?
10. राजस्थान में जल संग्रहण हेतु टांके का निर्माण किन क्षेत्रों में किया जाता है ?
11. गडीसर व गजरूपसागर किस जिले में प्रसिद्ध रहे है ?
12. राजस्थान में आदिवासी क्षेत्रों के विकास के लिए कौनसी बहुउद्धेशीय परियोजना है ?
13. मिट्टी से निर्मित बाँध कौनसा है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

14. भारत में कौनसी परियोजनाओं का संचालन राज्यों तथा केन्द्र सरकार के माध्यम से किया जाता है?
15. जल स्वावलम्बन की आवश्यकता क्यों है ?
16. बावड़ी क्या है? प्रकाश डालिए।
17. खड़ीन क्या है? प्रकाश डालिए।
18. भाखड़ा नाँगल परियोजना का वर्णन कीजिए।
19. राजस्थान में जल संरक्षण तकनीक को क्यों अपनाया गया था?
20. बीसलपुर परियोजना पर प्रकाश डालिए।

निबंधात्मक प्रश्न–

21. राजस्थान में जल संरक्षण के विविध रूपों के बारे में वर्णन कीजिए।
22. राजस्थान में इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के बारे में वर्णन कीजिए।
23. मुख्यमंत्री जल स्वावलम्बन योजना के बारे में वर्णन कीजिए।
24. भारत सरकार किन्हीं दो प्रमुख परियोजनाओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।

अध्याय 9

भारतीय कृषि

परिचय–

भारत कृषि प्रधान देश है, यहाँ पर कुल जनसंख्या का 54.6 प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आश्रित है तथा देश के सकल घरेलू उत्पात का 17.4 प्रतिशत भाग कृषि से प्राप्त होता है । भारत में कृषि कार्य जीवन निर्वहन के लिए किया जाता है जिसमें कृषक अपनी परम्परागत तकनीक के द्वारा कृषि भूमि पर उदर पूर्ति हेतु खाद्यान्न फसलों को उगाता है, जिसमें अतिरिक्त भाग को बेच कर अन्य आवश्यक उपभोग की वस्तुएं प्राप्त करता है। भारत में कृषि कार्य लगभग सात हजार वर्ष पूर्व मोहनजोदड़ो तथा सरस्वती सिन्धु सभ्यता से होता रहा है। इस कृषि कार्य पर समय काल तथा परिस्थिति के प्रभाव के कारण इसके स्वरूप तथा विविध आयामों में परिवर्तन होता रहा हैं। इस कारण से भारतीय कृषि के विविध स्वरूप है इन विविध स्वरूपों को निम्न आधारों के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है।

भारतीय कृषि के विविध रूप

01. भारतीय कृषि के ऋतुओं के आधार पर रूप–

भारत में कृषि को ऋतुओं के आधार पर तीन भागों में बाटाँ गया है –

01. खरीफ फसल
02. रबी फसल
03. जायद फसल

अ. खरीफ फसल– ऐसी फसलें जो जून–जुलाई में बोयी जाती है तथा अक्टूबर–नवम्बर में काटी जाती है। ऐसी फसलों में चावल, मक्का, बाजरा, मूँगफली, मूँग, उड़द, गन्ना, सोयाबीन, इत्यादि प्रमुख है। ये फसलें मानसून से होने वाली वर्षा पर निर्भर होती है, परन्तु वर्तमान में कुछ भागों में सिंचाई के द्वारा भी बुआई की जाती है ।

ब. रबी– ऐसी फसलें जो अक्टूबर–नवम्बर में बोई जाती है तथा मार्च–अप्रैल में काटी जाती है। ऐसी फसलों में गेहूँ, चना, जौ, तिलहन (अलसी, सरसों) जीरा, धनिया, अफीम, इसबगोल की फसलें प्रमुख है। इसमें अधिकांश फसलें सिंचाई के विविध स्रोतों से उत्पादित होती है ।

स. जायद – इसमें मुख्य रूप से हरी सब्जियां एवं चारे की फसलें होती हैं जिसे फरवरी–अप्रैल में बोई जाती है जून–जुलाई में काटी जाती है। इसमें तरबूज, लौकी, ककड़ी खीरा आदि की फसलें ली जाती हैं।

02.भारत में कृषि विधियों के उपयोग के आधार रूप–

- खाद्यान्न फसलें – ऐसी फसलें जिनका उपयोग खाने या भोजन के रूप में किया जाता हो, जैसे चावल, गेहूँ, मक्का, ज्वार, बाजरा, जौ व दालें इत्यादि प्रमुख है।
- व्यावसायिक या औद्योगिक फसलें – ऐसी फसलें जिनका उपयोग व्यावसायिक कार्यों के लिए या उद्योग में कच्चे माल के रूप में किया जाता हो इन्हें मुद्रादायिनी फसलें कहा जाता है, इसमें गन्ना, कपास, जूट, तम्बाकू तथा तिलहन आदि फसलें सम्मिलित की जाती है ।
- बागानी फसलें – ऐसी फसलें जिसे विशाल बागानों में उत्पादित की जाती हो तथा पेय व औद्योगिक कार्यों में उपयोग में ली जाती हो जैसे चाय, काफी, रबड़, सिनकोना, गर्म मसाले इत्यादि।
- उद्यान फसलें –इसमें फल व सब्जियों को सम्मिलित किया जाता है।

भारत की प्रमुख खाद्यान्न फसलें –

01.गेहूँ–

उत्तरी भारत की प्रमुख रबी फसल जो भारत के समशीतोष्ण भागों में बोई जाती है जिसके लिए 100 से 250 सेन्टीग्रेड तापमान तथा 25 से 75 सेन्टीमीटर वर्षा तथा हल्की दोमट व चिकनी मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। भारत का 70 प्रतिशत गेहूँ उत्पादन पंजाब (21%), हरियाणा (6.17%) उत्तरप्रदेश (32.68%) तथा अन्य राज्यों में मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार में किया जाता है। राजस्थान में गेहूँ का उत्पादन गंगानगर, हनुमानगढ़, अलवर, भरतपुर, जयपुर, कोटा आदि में किया जाता है। भारत गेहूँ उत्पादन की दृष्टि से विश्व में चीन व अमेरिका के

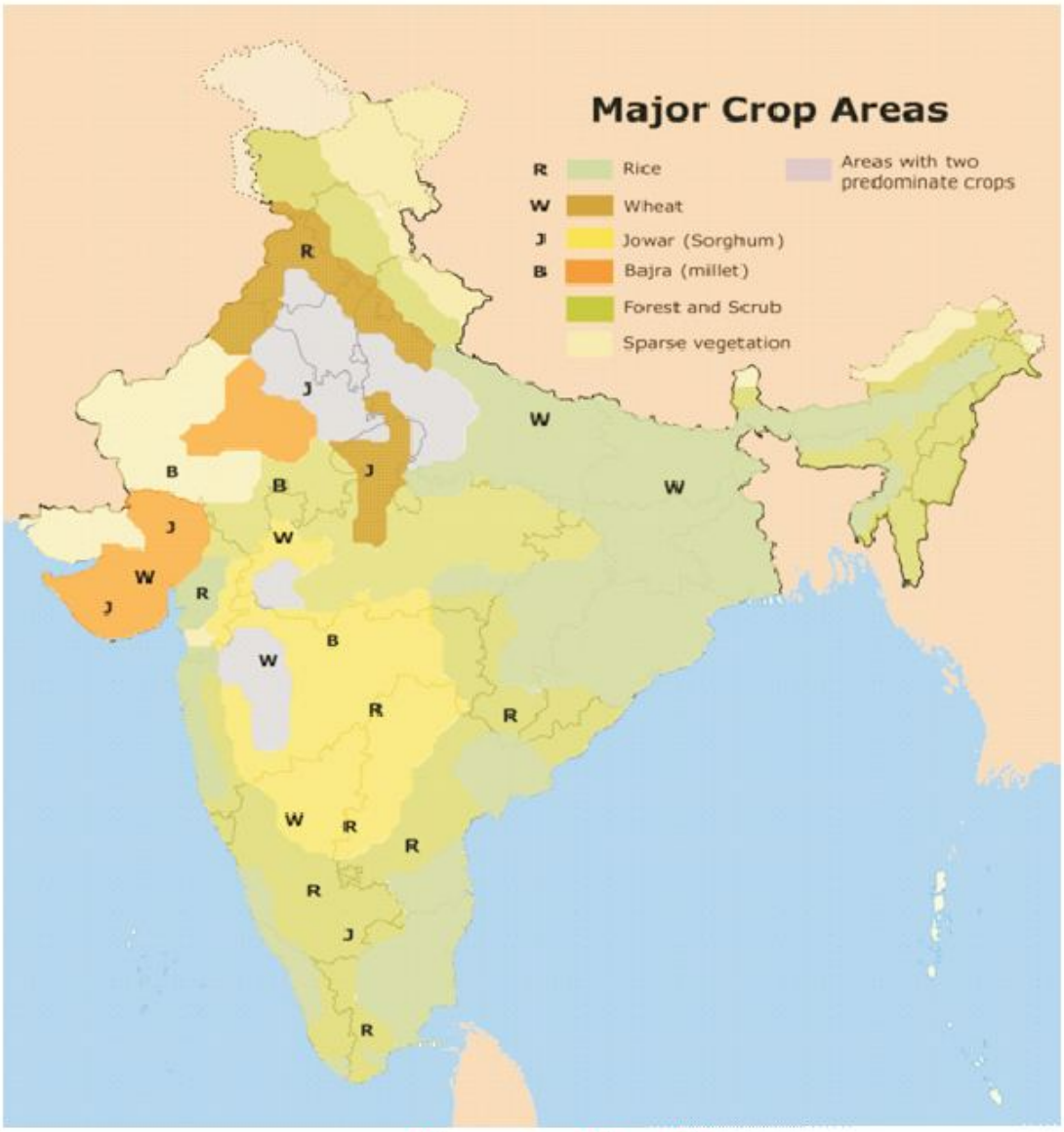

भारत में प्रमुख फसलों का वितरण

बाद तीसरा बड़ा देश है। भारत में हरित क्रान्ति के प्रभाव से उत्पादन, उत्पादकता तथा उत्पादन क्षेत्र में वृद्धि के कारण से आज देश आत्मनिर्भर है।

02.चावल–

चावल भारत की मुख्य खाद्यान्न फसलों में से एक है। यह फसल वर्षा ऋतु में देश के अधिकांश भागों में बोई जाती है। इस कारण यह खरीफ की मुख्य फसल है। भारत में चावल की पैदावार उष्ण कटिबंधीय भागों में जहाँ पर तापमान 190 से 270 सेन्टीग्रेड तथा वर्षा 75 से 200 सेन्टीमीटर के मध्य होती हो, उन भागों में की जाती है, इस फसल के उत्पादन के लिए नदी घाटी क्षेत्रों की चिकनी दोमट तथा कछारी मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। भारत में मौसम के अनुसार वर्ष भर में चावल की तीन फसलों अमन (मानसून कालीन), ओस (शीत कालीन), बोरो (ग्रीष्म कालीन) को पैदा किया जाता है। यद्यपि देश का 86 प्रतिशत उत्पादन अमन अर्थात मानसून काल में होता है, इस कारण इसे खरीफ की फसलों की श्रेणी में रखा गया है देश में चावल के कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत भाग पं. बंगाल (15.22%), आन्ध्रप्रदेश (14.3%), उत्तरप्रदेश (11.78%), उड़ीसा (9.2%), बिहार (8.0%), तमिलनाडु (8.2%) तथा अन्य राज्यों में मध्यप्रदेश (8.1%) आसाम, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, महाराष्ट्र, पंजाब में किया जाता है । राजस्थान में चावल का उत्पादन गंगानगर, हनुमानगढ़, कोटा व बूंदी में सिंचाई के द्वारा अल्प मात्रा में होता है। भारत चावल के

उत्पादन की दृष्टि विश्व में चीन के बाद दूसरा बड़ा देश है ।

03.मक्का–

यह खाद्यान्न फसल के साथ औद्योगिक फसल है, जो स्टार्च व ग्लूकोज निर्माण करने वाले उद्योगों को कच्चा माल प्रदान करती है, साथ ही चारे तथा खाद्यान्न के रूप में भी उपयोग में ली जाती है भारत में उत्पादित की जाने वाली चावल के बाद यह दूसरी प्रमुख खरीफ की फसल है, जिसे 17वीं. सदी में पुर्तगालियों के द्वारा भारत में लाया गया था। मक्का की फसल के लिए 120 से 350 सेन्टीग्रेड तापमान तथा वर्षा 50 से 100 सेन्टीमीटर तथा नाइट्रोजन युक्त गहरी मिट्टी जिसमें जल निकासी पर्याप्त मात्रा में हो, ऐसी दशा अच्छी मानी जाती है। देश में मक्का के कुल उत्पादन का 60 प्रतिशत भाग आन्ध्रप्रदेश (19.3%), कर्नाटक (16.78%), राजस्थान (10.34%), उत्तरप्रदेश (10%), गुजरात (7.0%) तथा मध्यप्रदेश पंजाब में उत्पादित की जाती है। शेष उत्पादन देश के अन्य राज्यों में किया जाता है। राजस्थान में मक्का का उत्पाादन कोटा, बूंदी ,बारा, झालावाड़, उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा चित्तौड़, अजमेर, गंगानगर तथा हनुमानगढ़ में किया जाता है। भारत मक्का के उत्पादन की दृष्टि से विश्व का दसवां बड़ा देश है। परन्तु इस फसल का उत्पादन कम होने के कारण इसका निर्यात नहीं किया जाता है।

04.बाजरा–

इस फसल को चारा तथा खाद्यान्न दोनों के लिए उत्पादित किया जाता है। बाजरा की खेती गर्म तथा शुष्क जलवायु में जून से अक्टूम्बर के मध्य की जाती है। यह खरीफ की फसल है जिसे 250 से 350 सेन्टीग्रेड तापमान तथा वर्षा 40 से 60 सेन्टीमीटर तथा हल्की मिट्टी जिसमें जल निकासी की उपयुक्त दशा वाले भागों में बोया जाता है, साथ ही यह सभी प्रकार की मिट्टी में बोई जा सकती है। देश में कुल बाजरा के उत्पादन का, राजस्थान (42%), महाराष्ट्र (20%), गुजरात (12.5%), उत्तरप्रदेश (11%) व शेष भाग अन्य राज्यों में आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, कर्नाटक व पंजाब में किया जाता है। राजस्थान में बाजरा का उत्पादन जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर, सीकर, गंगानगर, सीकर, झुंझुनूं, अलवर, जयपुर तथा जालोर जिलों में किया जाता है। भारत का उत्पादन की दृष्टि विश्व में प्रथम स्थान है।

भारत की प्रमुख दलहन फसलें (दालें) –

भारत की अधिकांशतः जनसंख्या शाकाहारी है। इस कारण प्रोटीन के स्रोत के रूप में दालों का उपयोग किया जाता है। साथ ही दलहन की फसलों को किसानों द्वारा भूमि की उर्वरता बनाए रखने के कारण भी बोया जाता रहा है। भारत में दालें खरीफ तथा रबी दोनों मौसम में बोई जाती है। मूंग, मोठ, उड़द, अरहर आदि खरीफ के मौसम तथा मटर, चना, मसूर आदि रबी के मौसम में उत्पादित की जाती है। भारत में दालों के उत्पादन में भी एक तिहाई भाग चने की दाल का है। यह मुख्यतः उत्तरी भारत में पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, प. बंगाल के मैदानी भागों में पैदा की जाती है। राजस्थान में चना का उत्पादन गंगानगर, हनुमानगढ़ व बीकानेर के नहरी सिंचाई वाले भागों में किया जाता है। चने के बाद दूसरी प्रमुख दलहन फसल अरहर है, जो कि ज्वार बाजरा व राई के साथ बोई जाती है। इस फसल का उत्पादन महाराष्ट्र (प्रथम), उत्तरप्रदेश (द्वितीय), कर्नाटक (तृतीय), बिहार, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश में किया जाता है।

उड़द तथा मूंग को ज्वार, बाजरा व कपास के साथ प्रायद्विपीय भागों में बोया जाता है। राजस्थान मूंग के उत्पादन में

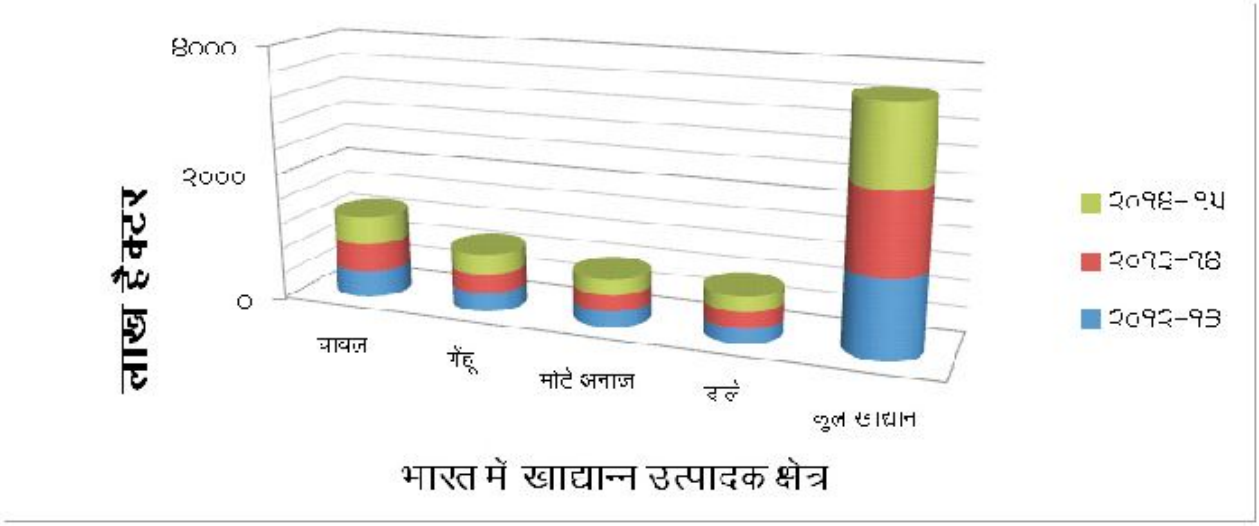

भारत में खाद्यान्न उत्पादक क्षेत्र

देश में प्रथम है। यहां पर मूंग का उत्पादन अर्द्ध शुष्क मरूस्थलीय भागों में जालोर, नागौर, जोधपुर व पाली में किया जाता है। इसी प्रकार राजस्थान में उड़द को हाड़ौती में कोटा, बून्दी, झालावाड, तथा मेवाड़ में चित्तौड, उदयपुर, भीलवाड़ा, तथा दक्षिण राजस्थान में बांसवाड़ा में बोया जाता है। मसूर की दाल को रबी की फसलों के साथ पूर्वी राजस्थान में अलवर, भरतपुर व धौलपुर में बोया जाता है ।

भारत की प्रमुख मुद्रादायिनी या वाणिज्यिक या नकदी फसलें–

भारत में कुल कृषि भूमि के एक चौथाई भाग पर मुद्रादायिनी फसलों का उत्पादन किया जाता है। ये फसलें जहां किसानों की आय का साधन है वहीं उद्योगों को कच्चा माल भी प्रदान करती है। इन व्यावसायिक फसलों में गन्ना, कपास, तिलहन जूट व तम्बाकू प्रमुख है।

01.गन्ना–

गन्ना भारतीय मूल का पौधा व बाँस वनस्पति का वंशज है। यह जहाँ देश की व्यावसायिक फसलों में प्रथम स्थान रखता है वहीं उत्पादन तथा उत्पादक क्षेत्र की दृष्टि से भी भारत विश्व में प्रथम स्थान रखता है। भारत विश्व के 50 प्रतिशत गन्ने का उत्पादन करता है। भारत में गन्ने का उत्पादन उष्ण कटिबंधीय भागों में किया जाता है। गन्ने के उत्पादन के लिए 150 से 400 सेन्टीग्रेड तापमान तथा 100 से 200 सेन्टीमीटर वर्षा तथा नदी घाटी क्षेत्रों की नमी युक्त चिकनी, दोमट तथा कछारी मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। गन्ने के उत्पादन क्षेत्र में सर्वाधिक उतरी भारत जबकि उत्पादन या पैदावार की दृष्टि से दक्षिणी भारत

Sugar Map of India

अग्रणी है। क्योंकि दक्षिण भारत की आर्द्र जलवायु गन्ने में रस की मात्रा को बढ़ाती है जिससे उत्पादन अधिक होता है भारत में गन्ने के प्रमुख उत्पादक राज्यों में उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश व गुजरात प्रमुख है। राजस्थान में गन्ना उदयपुर, गंगानगर, भीलवाड़ा, चित्तौड़ व बून्दी में पैदा किया जाता है । भारत में गन्ने का उपयोग गुड़, चीनी व एल्कोहल बनाने के लिए किया जाता है

02.कपास–

भारत में सूती वस्त्र के प्रयोग के सम्बन्ध में उल्लेख

भारत में खाद्यान्न फसलों का उत्पादन

कृषिगत फसलें	क्षेत्र लाख हैक्टेयर			उत्पादन (मिलियन टन)			उत्पादकता किलोग्राम प्रति हैक्टर		
वर्ष	2012.13	2013.14	2014. 15	2012.13	2013.14	2014. 15	2012.13	2013.14	2014. 15
चावल	427.54	441.36	438.56	105.24	106.65	104.8	2461	2416	2390
गेंहू	300.03	304.73	309.69	93.51	95.85	88.94	3117	3145	2872
मोटे अनाज	247.57	252.2	241.49	40.04	43.29	41.75	1617	1717	1729
दाले	232.56	252.13	230.98	18.34	19.25	17.2	789	764	744
कुल खाद्यान्न	1207.7	1250.42	1220.72	257.13	265.04	252.69	1996	2010.5	1933.75

मनुस्मृति तथा ऋग्वेद में मिलता है जो यह दर्शाता है कि भारतीयों को कपास से सूती वस्त्र बनाने का ज्ञान प्राचीन समय से रहा है। देश की कुल कृषि भूमि के 6.7 प्रतिशत भाग पर कपास की फसल पैदा की जाती है। भारत में कपास खरीफ के मौसम में बोया जाता है। इस फसल के लिए तापमान 200 से 350 सेन्टीग्रेड के मध्य तथा वर्षा 80 से 150 सेन्टीमीटर तथा गहरी तथा काली मिटटी व चूने व पोटाश की मात्रा वाली भूमि उपयुक्त मानी जाती है। भारत में कपास की तीन किस्में बोई जाती हैं।

1. लम्बे व महीन रेशे वाली कपास (अमेरिकन कपास) जो कि कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत है जिसका पंजाब, हरियाणा व राजस्थान में उत्पादन होता है।
2. मध्यम रेशे वाली कपास जो कि कुल उत्पादन का 40 प्रतिशत है जिसका गुजरात, महाराष्ट्र, हरियाणा, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु में उत्पादन होता है।
3. छोटे रेशे वाली कपास जो कि कुल उत्पादन का 10 प्रतिशत है जिसे देश के सभी राज्यों में अल्प मात्रा में बोया जाता है।

देश में कपास उत्पादन व उत्पादन क्षेत्र की दृष्टि से गुजरात प्रथम स्थान पर, महाराष्ट्र द्वितीय स्थान पर व तीसरे स्थान पर आन्ध्रप्रदेश हैं। कपास का उत्पादन माँग से कम होने के कारण तथा माँग की अधिकता के कारण अमेरिका, सूडान, केनिया, तथा मिश्र से आयात करता है। राजस्थान में कपास का उत्पादन गंगानगर, हनुमानगढ़, बीकानेर, कोटा, बून्दी तथा झालावाड़ में किया जाता है ।

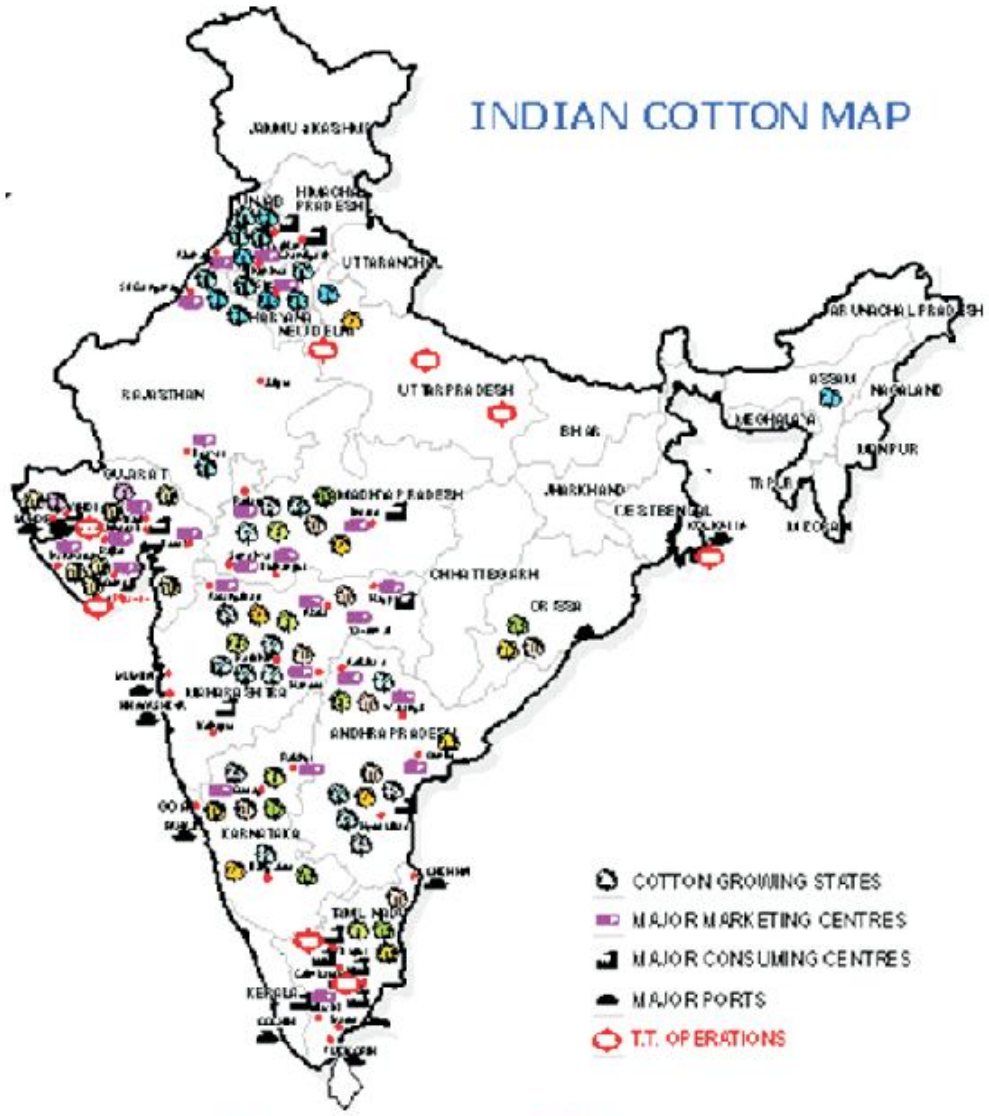

भारत में कपास उत्पादक तथा सम्बधित क्षेत्र

03.तिलहन–

भारत में विश्व के 10 प्रतिशत तिलहन का उत्पादन किया जाता है। तिलहन फसलें खरीफ तथा रबी दोनों मौसम में उत्पादित की जाती है। भारत में तिलहन की मुख्य फसलों के रूप में मूंगफली, सरसों, तिल, सूरजमुखी, अलसी, अरण्डी, सोयाबीन है। मूंगफली तथा सरसों दोनों फसलें कुल तिलहन उत्पादन का 80 प्रतिशत भाग रखती है।

• मूंगफली–

यह ब्राजील मूल की फसल है। विश्व का 30 प्रतिशत भाग भारत में ही उत्पादित किया जाता है जो भारत में खरीफ के मौसम में बोई जाती है। देश की कुल तिलहन फसल का 45 प्रतिशत भाग मूंगफली से प्राप्त किया जाता है। देश में मूंगफली की 85 प्रतिशत पैदावार गुजरात (प्रथम), आन्ध्रप्रदेश (द्वितीय), तमिलनाडु (तृतीय), महाराष्ट्र (चतुर्थ) तथा कर्नाटक राज्यों में होती है। राजस्थान में चित्तौड़, सवाईमाधोपुर, भीलवाड़ा, जयपुर, गंगानगर, बीकानेर, हनुमानगढ़ तथा राजस्थान नहर के सिंचाई क्षेत्रों में उत्पादित की जाती है।

• सरसों –

विश्व की 70 प्रतिशत सरसों भारत में उत्पादित की जाती है तथा देश की कुल तिलहन फसल का 35 प्रतिशत भाग सरसों से प्राप्त किया जाता है। देश की 85 प्रतिशत सरसों उतरी भारत में उत्पादित की जाती है। उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान देश का 41 प्रतिशत भाग रखने के कारण प्रथम स्थान पर है। यह उत्तरप्रदेश (द्वितीय), मध्यप्रदेश (तृतीय), गुजरात (चतुर्थ), तथा पंजाब हरियाणा में भी पैदा की जाती है। राजस्थान में अलवर, भरतपुर, हनुमानगढ़, गंगानगर, सवाईमाधोपुर, भीलवाड़ा, जयपुर, बीकानेर तथा राजस्थान नहर के सिंचाई क्षेत्रों में उत्पादित की जाती है।

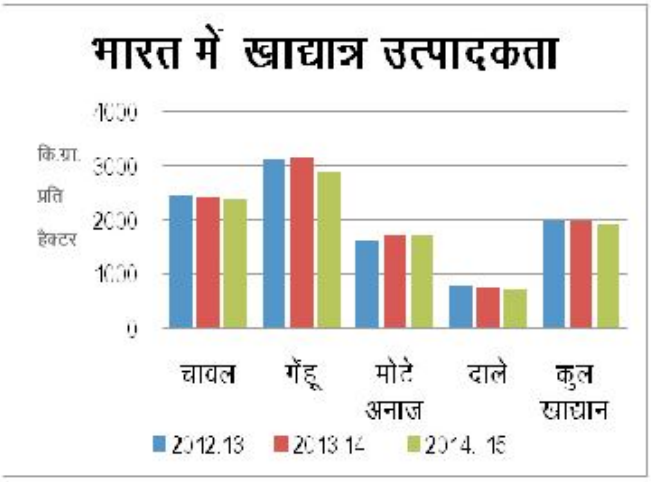

• अन्य तिलहन फसलें –

इनमें अरण्डी जो मशीनों में स्नेहक (लूब्रीकेंट), साबुन बनाने तथा चमड़ा शोधन के काम में ली जाती है। अरण्डी उत्पादन का 65 प्रतिशत गुजरात तथा 25 प्रतिशत राजस्थान में किया जाता है। देश में सोयाबीन उत्पादन का 70 प्रतिशत मध्यप्रदेश, 20 प्रतिशत महाराष्ट्र व 10 प्रतिशत भाग राजस्थान में पैदा होता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान

1. रोजगार का साधन–

कृषि भारत में 55.8 प्रतिशत जनसंख्या का प्रत्यक्ष रूप से रोजगार का साधन है। कृषि सहायक कारकों जैसे पशुपालन, मत्स्यपालन व वानिकी रोजगार के साथ उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति करती है जो कि अप्रत्यक्ष आजीविका स्रोत है।

2. सकल घरेलू उत्पाद में सहायक–

भारत में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि व सहायक कारकों का योगदान अधिक रहा है। 1951 में जो योगदान 1993–94 की कीमतों पर 55.11 प्रतिशत था वह 1990 में 44.26 प्रतिशत रह

भारत में मुद्रादायिनी फसलों का उत्पादन

कृषिगत फसलें	क्षेत्र लाख हैक्टेयर			उत्पादन (मिलियन टन)			उत्पादकता किलोग्राम प्रति हैक्टर		
वर्ष	2012.13	2013.14	2014. 15	2012.13	2013.14	2014. 15	2012.13	2013.14	2014. 15
तिलहन	264.84	280.51	257.27 7	30.94	32.74	26ण्68	1168	1168	1037
गन्ना	49.99	49.93	51.44	341.20	352.14	359.33	68254	70522	69857
कपास	119.77	119.60	130.83	34.22	35.90	35.48	486	510	461

नोट–कपास की एक गांठ 170 किलो ग्राम की होती है। इसमें उत्पादन लाख गांठों में है।
(यह आंकडे कृषि मंत्रालय भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट 2015–16 से लिए गये हैं।)

गया। वर्ष 2007–08 में 1999–2000 की कीमतों पर 17.8 प्रतिशत तथा 2015–16 में 2011–12 की कीमतों पर 15.35 प्रतिशत रह गया। इस कमी का कारण औद्योगिक विकास में द्वितीय व तृतीय क्षेत्रों में उत्तरोतर वृद्धि रहा है।

3. विदेशी व्यापार में योगदान–

भारत वैश्विक कृषि उत्पादों के निर्यात में 2.07 प्रतिशत योगदान रखता है। भारत कृषि उत्पादों के निर्यात की दृष्टि से विश्व का दसवां बड़ा देश है। यह भारत के कुल निर्यात का चौथा बड़ा सेक्टर है। निर्यात के रूप में चाय, चीनी, तिलहन, तम्बाकू, मसाले, ताजे फल व बासमती चावल आदि प्रमुख उत्पाद है। अन्य कृषि सामग्री जैसे जूट, कपड़े, मुर्गीपालन आदि उत्पाद भी इसमें सम्मिलित है, जबकि आयात में खाद्यान्न सम्मिलित किया जाता है।

4. उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति–

भारतीय कृषि आधारित उद्योग जैसे कपड़ा उद्योग, चीनी उद्योग, वनस्पति तेल उद्योग, जूट उद्योग, रबड़ उद्योग तथा मसाला उद्योग को कच्चा माल कृषि फसलों से मिलता है।

5. औद्योगिक उत्पादों के लिए बाजार–

भारत की 60 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जो कि कृषि पर निर्भर है। कृषि से सम्बन्धित यंत्रों जैसे ट्रैक्टर, जुताई उपकरण तथा खाद व कीटनाशकों के लिए यह क्षेत्र बाजार उपलब्ध कराता है।

भारतीय कृषि का आकलन करें तो हम यह पायेंगे कि कृषि जहाँ भारत की अर्थव्यवस्था का आधार है वहीं रोजगार तथा आय सृजन का बड़ा साधन है, परन्तु कृषि पर मानसून की निर्भरता तथा उसकी अनिश्चितता व अनियमितता तथा बाढ़ व सूखे की विभिषिका के कारण उत्पादन कम होता है। यदि भारत में कृषि का विकास करना है तो हमें कृषि के प्राचीन स्वरूप व उत्पादन का जीवन निर्वाहन प्रयोजन में परिवर्तन करना होगा साथ ही कृषको में अशिक्षा, गरीबी, तथा ऋणग्रस्तता को दूर करना होगा, तभी भारतीय कृषि व कृषकों का विकास होगा।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

01. भारत की 54.6 प्रतिशत जनसंख्या वर्तमान में भी कृषि तथा सम्बन्ध क्षेत्रों से आजीविका प्राप्त करती है।

02. भारत में कृषि को ऋतुओं के आधार पर तीन भागों में बांटा गया है।

03. स्थानान्तरित अथवा झूंमिग कृषि –भारत के आदिवासी क्षेत्रों में जहाँ जंगलों को जलाकर उस स्थान पर कृषि कार्य किया जाता है।

04. औद्योगिक फसलें– ऐसी फसलें जिनका उपयोग व्यावसायिक ऋतुओं कार्यों के लिए या उद्योग में कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जाता हो, इन्हें मुद्रादायिनी या नकदी फसलें भी कहा जाता है।

05. भारत में हरित क्रान्ति के प्रभाव से गेहूँ की फसल के उत्पादन, उत्पादकता तथा उत्पादन क्षेत्र में सर्वाधिक वृद्धि दर्ज हुई हैं।

06. मिट्टी में नमी बनाए रखने के लिए कृत्रिम रूप से फसलों को जल प्रदान किया जाता है जिसे सिंचाई कहा जाता है।

07. भारत में चावल की तीन फसलों अमन (मानसून कालीन), ,ओस (शीतकालीन) , बोरो (ग्रीष्म कालीन) को पैदा किया जाता है।

08. मक्का की फसल को चारे, खाद्यान्न व औद्योगिक तीनों रूप में उपयोग में लिया जाता है। भारत में उत्पादित की जाने वाली चावल के बाद दूसरी प्रमुख खरीफ की फसल है।

09. दक्षिण भारत की आर्द्र जलवायु के कारण गन्ने की उत्पादकता दक्षिण भारत में अधिक है।

10. लम्बे व महीन रेशे वाली कपास (अमेरिकन कपास) जो कि कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत है। यह पंजाब, हरियाणा , राजस्थान में नरमा के नाम से जानी जाती है।

11. देश की 41 प्रतिशत सरसों राजस्थान में उत्पादित की जाती है राजस्थान के पूर्वी मैदानी भाग सरसों उत्पादन में अग्रणी है ।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. भारतीय कृषि को ऋतुओं के आधार पर कितने रुपों में विभाजित किया है ?
2. भारत में बागानी फसलें कौन–कौन सी है ?
3. मुद्रादायिनी फसलों से क्या आशय है ?
4. भारत में चावल की कितनी फसलें ली जाती है ?
5. राजस्थान में शुष्क कृषि किन जिलों में की जाती है?
6. सिंचित कृषि से क्या तात्पर्य है ?
7. भारत में सर्वाधिक कपास का उत्पादन किन राज्यों में होता है ?
8. नरमा से आप क्या समझते हैं ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

9. भारत में कृषि फसलों को उपयोग के आधार पर उनका वर्गीकरण कीजिए।
10. मक्का की फसल के बारे में वर्णन कीजिए।

11. तिलहन की फसलों में सरसों का योगदान बताइए।
12. स्थानान्तरित कृषि पर प्रकाश डालिए।
13. मुद्रादायिनी फसलों में कपास के योगदान का वर्णन कीजिए।
14. बाजरे की फसल के बारे में वर्णन कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न –

15. भारत में कृषि फसलों में दलहन का योगदान बताइए।
16. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के योगदान पर प्रकाश डालिए।
17. भारत में कृषि को प्रयोग में लाई जाने वाली विधियों के अनुसार वर्गीकृत कीजिए।
18. भारत में खाद्यान्न फसलों पर प्रकाश डालिए।

अध्याय 10

खनिज व ऊर्जा संसाधन

परिचय – खनिज से तात्पर्य भूमि से खनन क्रिया के द्वारा निकाले गये रासायनिक तथा भौतिक गुण पदार्थ होते हैं जो कि मानव के लिए उपयोगी होते हैं, उसे खनिज संसाधन कहा जाता है ,जिसके निर्माण में भौतिक तथा जैविक कारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। इस कारण इन्हें अजैविक तथा जैविक खनिज के रूप में विभाजित किया जाता है, जैसे– कोयला व प्राकृतिक तेल जैविक खनिज में तथा लोहा, मैगनीज अजैविक खनिजों की श्रेणी मे आते हैं। भारत खनिज संसाधन की दृष्टि से सम्पन्न देश है। यहां की भूगर्भिक संरचना ने विविध खनिजों के पदार्थों को प्रदान किया है। देश के 96 प्रतिशत खनिजों का भंडार मुख्यतः प्रायद्वीपीय पठारी भाग, अरावली पर्वतीय क्षेत्र, ब्रह्मपुत्र घाटी, हिमालय क्षेत्र तथा दक्षिण तटीय प्रदेश में स्थित है।

भारत में खनिजों को भौतिक तथा रासायनिक गुणों के आधार पर निम्न भागों में विभाजित किया जाता है–

01. धात्विक खनिज–

ऐसे खनिज जिसमें किसी धातु का अंश हो, उसे धात्विक खनिज कहा जाता है। इसे भी दो प्रकार से विभाजित किया जाता है, जैसे– लौह अयस्क से लौह धातु की मात्रा का पाया जाना तथा धातु की प्रधानता के आधार पर।

अ. लौह धातु प्रधान – जिसमें लोहे के अंश की प्रधानता पायी जाती है, जैसे लौह अयस्क, क्रोमाईट, पाइराइट, टंगस्टन, कोबाल्ट आदि।

ब. अलौह धातु प्रधान– जिसमें लोहे के अंश नहीं पाया जाता है, जैसे सोना, चांदी, ताम्बा, जस्ता, बाक्साइड, टिन, मैग्नीशियम आदि हैं।

02. अधात्विक खनिज–

ऐसे खनिज जिसमें किसी धातु का अंश नहीं होता हो। जैसे– चूना पत्थर, डालोमाइट, अभ्रक, जिप्सम आदि हैं।

ऊर्जा खनिज – ऐसे खनिज जो उष्मा या ऊर्जा प्रदान करते हों। इसे भी दो प्रकार से विभाजित किया जाता है–

अ. ईंधन खनिज– जिसे ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है जिसमें कोयला , पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस आदि।

ब. अणु शक्ति खनिज– जिसमें यूरेनियम, थोरियम, बेरिलियम, इल्मेनाइट आदि।

भारत में धात्विक तथा अधात्विक दोनों प्रकार के 89 खनिज पाये जाते हैं, जिसमें 52 अधात्विक, 10 धात्विक, 23 सूक्ष्म खनिज जैसे– निर्माण सामग्री तथा 04 ईंधन खनिज है जो कि देश के सकल घरेलू उत्पाद का 3.4 प्रतिशत तथा औद्योगिक उत्पादन का 11 प्रतिशत है।

भारत के प्रमुख खनिज–

01. लौह अयस्क– वर्तमान औद्योगिक अर्थव्यवस्था का आधार स्तम्भ आग्नेय चटटानों से प्राप्त किया जाता है। विश्व में भण्डार की दृष्टि से रूस के बाद दूसरा बड़ा राष्ट्र भारत है। भारत में लौह अयस्क के पांच प्रकार मैग्नटाइट, हेमेटाइट, लिमोनाइट, सिडेराइट तथा लेटेराइट मिलते हैं। भारत में कुल 2300 करोड़ टन लोहे के भण्डार अर्थात विश्व का 20 प्रतिशत भाग है, जिसमें मैग्नेटाइट (लोहांश मात्रा 60 से 70 प्रतिशत के मध्य) के 8 % भाग तथा हेमेटाइट (लोहांश मात्रा 70 से 80 प्रतिशत के मध्य) के 85 % भाग तथा 7 % भाग अन्य प्रकार के हैं। भारत में लोहे का उत्पादन तथा वितरण इस प्रकार से है–

उड़ीसा– देश के कुल भण्डार का 30 प्रतिशत तथा उत्पादन का 28 प्रतिशत उड़ीसा राज्य में होता है। यहां पर हेमेटाईट प्रकार के लौह अयस्क के भण्डार मयूरभंज, सुन्दरगढ तथा क्योझर जिलों में स्थित है। मयूरभंज जिले गुरूमहिसीनी, सुलेमपात तथा बादाम पहाड़ तथा क्योझर जिले में बासपानी, ठकुरानी, किरूबुरू है। यहां से लौह अयस्क का निर्यात विशाखापटनम व पाराद्वीप बन्दरगाह से जापान तथा अन्य देशों को किया जाता है।

कर्नाटक – देश के कुल भण्डार का 25 प्रतिशत तथा उत्पादन का 26 प्रतिशत कर्नाटक राज्य में होता है। यहां पर हेमेटाईट प्रकार के लौह अयस्क के भण्डार बेल्लारी, चिकमंगलूर, चित्रदुर्ग तथा शिमोगा जिलों में स्थित है। चिकमंगलूर जिले बाबाबूदन पहाड़ी, कालाहाड़ी केमनगुडी कद्रेमुख है। इस लौह अयस्क का शोधन भद्रावती तथा विजयनगर कारखानों में किया जाता है।

छत्तीसगढ़– देश का तीसरा बड़ा राज्य है। यहां देश के कुल भण्डार का 16 प्रतिशत तथा उत्पादन का 15.02 प्रतिशत इस

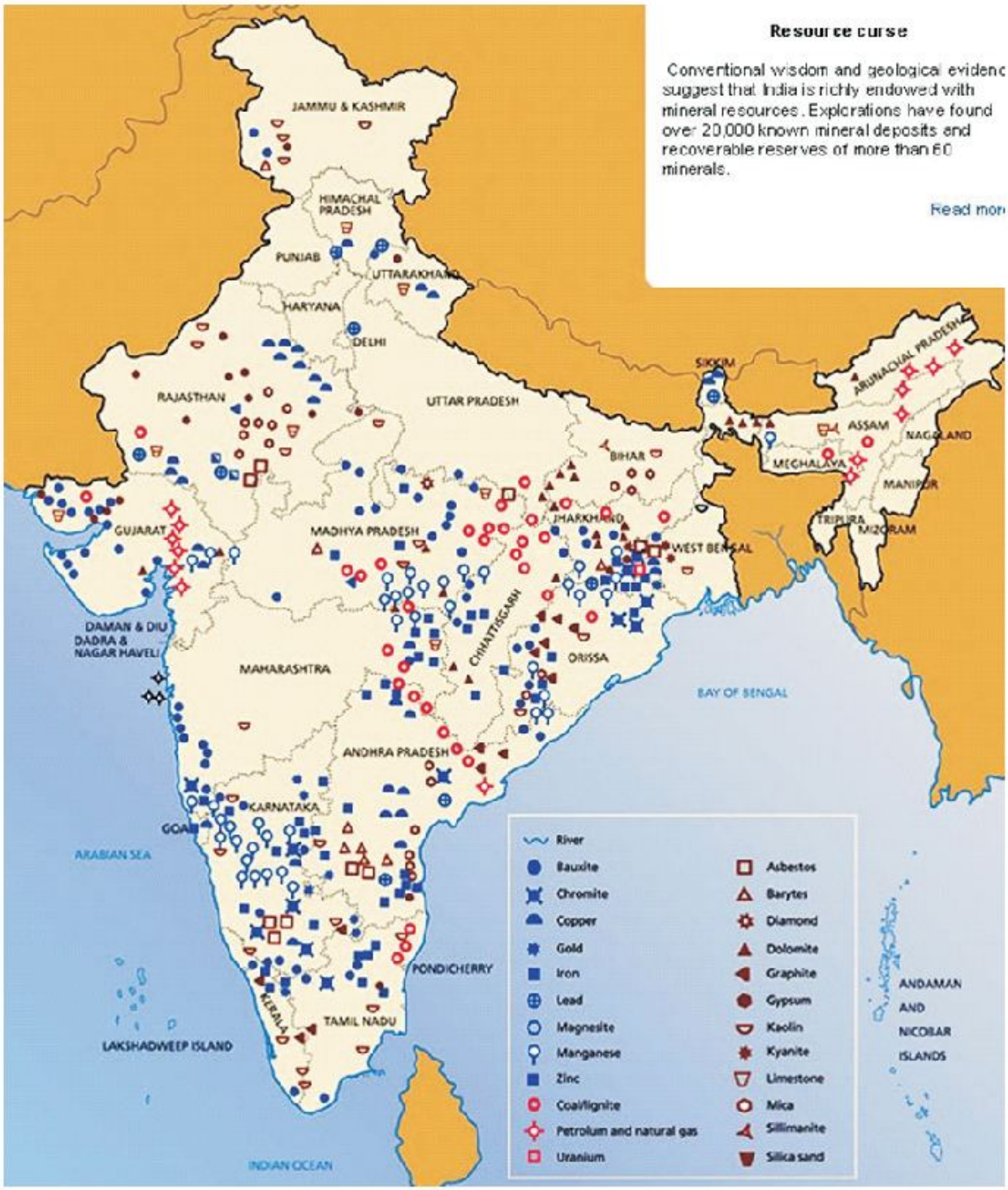

राज्य में होता है। यहां पर हेमेटाईट प्रकार के लौह अयस्क के भण्डार बस्तर, दुर्ग, दांतेवाड़ा, बिलासपुर तथा राजनन्दगांव जिलों में स्थित है। इन जिलों में धल्ली, राजहरा श्रेणी, बेलाडिला क्षेत्र, रावघाट क्षेत्र जगदलपुर क्षेत्र से प्राप्त होता है। इस लौह अयस्क का शोधन भिलाई कारखाने में किया जाता है तथा शेष लौह अयस्क को विशाखापटनम बन्दरगाह से जापान को निर्यात किया जाता है। बेलाडिला खान एशिया की सबसे बड़ी लौह अयस्क खान है।

गोवा – देश का चौथा बड़ा राज्य है। यहां देश के कुल उत्पादन का 13.15 प्रतिशत इस राज्य में होता है। यहां पर लिमोनाइट

राजस्थान में तांबा के भण्डार

जिला	क्षेत्र	भण्डार (लाख मी टन)
अजमेर	हनोतिया, सेवर	5.0
अलवर	भगोनी	1.42
भीलवाड़ा	पुर दरीबा, बनेड़ा, देवपुर ,देवतलाई	7.0
चितौड़	वारो, आलोला	1.00
झुंझुनूं	कोलीहान बसवास, डोलामाला, चिपोली, दुण्ड अंकवाली	105.0
राजसमन्द	मजेरा, कारोली, गोपाकुरा	0.48
सिरोही	गोलिया, पिपेला, देरी, बसन्तगढ	4.2
उदयपुर	अजनी, बेदावल की पाल, चानो, नन्दवेज, अकोला	4.2

लेटेराइट तथा सिडेराइट घटिया किस्म का लोहा मैग्नीज के साथ मिश्रित अवस्था में मिलता है। यहां लौह अयस्क के भण्डार पिरना आदेल, वाले अनेड़ा, कदनेम सुरला, तोसिल्ला बोरगाडोर क्षेत्रों में प्राप्त होता है। यहां से प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण लोहे को मार्मगोवा बन्दरगाह से विदेशों को निर्यात किया जाता है।

झारखण्ड– देश का पांचवां बड़ा राज्य है। यहां देश के उत्पादन का 10.10 प्रतिशत इस राज्य में होता है। यहां पर हेमेटाईट व मैग्नटाइट प्रकार के लौह अयस्क के भण्डार सिंहभूमि तथा पलामू जिलों मे स्थित है। इन जिलों में नौआमुण्डी, गुआ व डाल्टनगंज क्षेत्र से प्राप्त होता है। इस लौह अयस्क का शोधन कुल्टी तथा बर्नपुर कारखाने में किया जाता है। इसी राज्य में सबसे पहले लौह अयस्क का खनन कार्य हुआ था ।

अन्य राज्यों में आन्ध्रप्रदेश का तेलंगाना क्षेत्र, तमिलनाडु का सलेम जिला, राजस्थान के उदयपुर, जयपुर, भीलवाड़ा, अलवर तथा हरियाणा में महेन्द्रगढ में प्राप्त होता है। भारतीय विदेशी व्यापार में लौह अयस्क का तीसरा प्रमुख निर्यात है जो जापान तथा यूरोपियन देशों को किया जाता है।

तांबा – भारत में धारवाड़ व अरावली श्रृंखला की कायान्तंरित चट्टानों की नसों में सल्फाइट तथा चारकापाइराइट अयस्क के रूप में मिलने वाला खनिज है, जो कि विद्युत उद्योग, बेतार उद्योग, प्रशीतलक उद्योग तथा विभिन्न उद्योगों में उपयोग होता है। भारत विश्व का 01 प्रतिशत भंडार है। भारत में 95 प्रतिशत तांबा मध्यप्रदेश में बालाघाट व बेतूल, झारखण्ड में सिंहभूमि, हजारी बाग तथा पलामू जिला, राजस्थान में झुंझुनूं, अलवर, राजसमन्द, भीलवाड़ा तथा उदयपुर जिलों में, आन्ध्रप्रदेश में गुंटूर तथा कुर्नूल कर्नाटक में चित्रदुर्ग जिलों में निकाला जाता है। भारत में तांबे की कोलिहान खान, मंधान खान, मोसाबानी खान, राखा आदि खानें प्रसिद्ध है। भारत में तांबे का शोधन का एकमात्र अधिकार सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी हिन्दुस्तान कॉपर लिमिटेड के पास है। उत्पादन कम होने के कारण अपनी अधिक आपूर्ति हेतु भारत तांबे का विदेशों से आयात करता है।

राजस्थान में तांबा के भण्डार

बाक्साइड–

यह अयस्क है जो कि एल्युमिनियम बनाने के काम में आता है एल्युमिनियिम यह विद्युत उद्योग, मशीनरी उद्योग तथा बर्तन बनाने में उपयोग होता है। भारत में धारवाड़ व विंध्यांचल की क्रम की लावा चट्टानों से प्राप्त होता है।

विश्व में मण्डार की दृष्टि से पांचवां बड़ा राष्ट्र भारत है मण्डार का 95 प्रतिशत भाग उड़ीसा के कोरपुट, कालाहाडी जिलों में, झारखण्ड में रॉंची, पलामू, गिरिडिह, लोहारदगा, मध्यप्रदेश में बालाघाट, कटनी, जबलपुर , गुजरात में खेडा , जामनगर, जूनागढ तथा कच्छ जिला, छतीसगढ़ में सरगुजा रायपुर व बिलासपुर , महाराष्ट्र में कोल्हापुर रत्नागिरि पुणे तथा अन्य राज्यों में कर्नाटक, गोवा व तमिलनाडु में स्थित है। देश का 80 प्रतिशत बाक्साइड एल्युमिनियम बनाने के काम आता है। इसी प्रकार उत्पादित माल की 60 प्रतिशत खपत भारत में हो जाती है। शेष माल को यूरोपियन तथा खाड़ी देशों को निर्यात कर दिया जाता है।

अभ्रक–

अभ्रक उत्पादन में भारत को विश्व में प्रथम स्थान प्राप्त है। विश्व का 70 से 80 प्रतिशत अभ्रक भारत में निकाला जाता है।

यहां मस्कोवाइट या रूबी अभ्रक तथा बायोराइट या गुलाबी अभ्रक आग्नेय व कायान्तरित चट्टानों से निकाला जाता है। यह उच्च ताप सहन करने तथा कुचालक प्रकृति का परतदार तथा चमकीला खनिज होता है, जो कि विद्युत कार्य, वायुयान उद्योग, सैन्य साज सामान में प्रयोग में आता है। भारत में अभ्रक के भण्डार का उपयोग कम होने के कारण सुरक्षित अवस्था है। इसके कुल भण्डार आन्ध्रप्रदेश (देश में प्रथम) के नल्लौर, गुटूर, कुडप्पा, राजस्थान (देश मे दूसरा स्थान) में भीलवाडा , अजमेर, जयपुर, उदयपुर व टोंक, झारखण्ड (देश में तीसरा) में हजारीबाग, कोडरमा, गिरिडिह, धनबाद, बोकारो व पलामू में, बिहार में औरगाबाद, गया, नवादा, बेगूसराय तथा अन्य राज्यों में तमिलनाडु में कोयम्बटूर, मदुरई तथा मध्यप्रदेश में बालाघाट व छिन्दवाडा जिलों में स्थित है ।

सीसा व जस्ता–

यह मिश्रित अवस्था में भारत की अरावली श्रृंखला की अवसादी व परतदार चटटानों में गैलेना अयस्क के रूप में मिलने वाला खनिज है, जिसका उपयोग जस्ता, रसायन, शुष्क बैटरी बनाने जंग रोधक कार्यों के लिए तथा सीसे का उपयोग पीतल बनाने, सैन्य सामग्री, रेल इंजन सहित कई कार्यो में होता है। भारत में 95 प्रतिशत सीसे व जस्ता का भण्डार व उत्पादन राजस्थान में चितौड़, राजसमन्द, भीलवाड़ा तथा उदयपुर जिलों में होता है। सीसे व जस्ते का शोधन कार्य सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड जावर खान उदयपुर जिले के द्वारा किया जाता है। अन्य भण्डार आन्ध्रप्रदेश, झारखण्ड, उडीसा तथा तमिलनाडु में स्थित है।

ऊर्जा खनिज –

ऐसे प्राकृतिक स्रोत जिसे मानव सूर्य, जीवाश्म पदार्थ ,परमाणु घटकों से प्राप्त करता है। इसे कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, जल विद्युत व परमाणु ऊर्जा आदि द्वारा परम्परागत रूप में उपयोग में लाया जाता है।

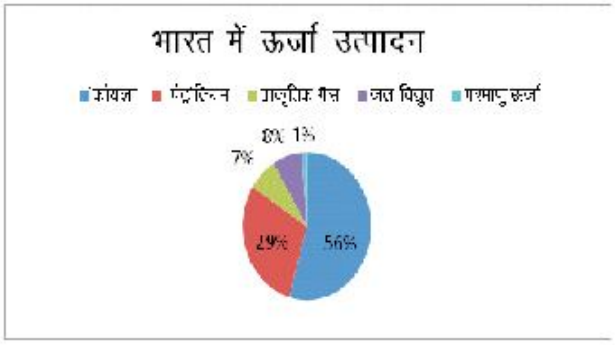

देश में इन संसाधनों को वितरण व उत्पादन निम्न प्रकार पाया जाता है–

01. कोयला –

भारत विश्व का चीन व अमेरिका के बाद तीसरा कोयला उत्पादक देश है। भारत में सर्वप्रथम कोयला 1814 में रानीगंज में निकाला गया था। इसके बाद में इसका विकास 19 शताब्दी में किया तथा देश के अन्य भागों में खोज तथा खनन कार्य किया जाने लगा। भारत में उपयोग में लिए जाने वाले कोयले को उसमें स्थित कार्बन की मात्रा के अनुसार निम्न प्रकार में विभाजित किया जाता है– ऐन्थ्रेसाइट(80 से 90%), बिटुमिनस, (75 से 80%), लिग्नाइट (35 से 50%) तथा पीट (15 से 35%) कोयला। भारत में 98.5 प्रतिशत भण्डार तथा 99 प्रतिशत कोयला उत्पादन गोडवाना कालीन अवसादी चटटानों में स्थित है, जो कि भौगोलिक रूप से महानदी घाटी क्षेत्र, दामोदर घाटी, सोन घाटी, गोदावरी– वर्धा क्षेत्र व ब्राहमणी, इन्द्रावती, कोयल, पंच नदी घाटिया क्षेत्र में स्थित है। यहां पर बिटुमिनस श्रेणी का कोयला 10 मी. से 30 मी. मोटी परतों के रूप में पाया जाता है।

भारत में टर्शियरी कालीन निम्न श्रेणी का लिग्नाइट कोयला जो कि 15 से 60 लाख पूर्व निर्मित है जो कि कुछ भागों में चूना पत्थर के साथ मिश्रित अवस्था में मिलता है, इस प्रकार के कोयले के भंडार आसाम, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा नागालैण्ड व राजस्थान में है।

राजस्थान में लिग्नाइट प्रकार का कोयला पाया जाता है जो कि चूने की चट्टानों के साथ बाड़मेर के कपूरड़ी, जालिप्पा, गिरल, भाडखा, गूंगा तथा शिव तथा बीकानेर की बरसिंगसर, पलाना गुढा, बिठनोक, नागौर में मेड़ता, कसनउ, कुचेरा,

भारत में कोयले के भण्डार , उत्पादन तथा उत्पादन क्षेत्र

राज्य का नाम	देश के कुल भंण्डार का प्रतिशत	देश के कुल उत्पादन का प्रतिशत	प्रमुख क्षेत्र
झारखण्ड	28	22	झरिया ,बोकारो राजमहल देवगढ ,डाल्टनगंज
उडीसा	24	16	ढेकनाल सम्बलपुर तलचर सुन्दरगढ तथा ब्राहमणी घाटी
छतीसगढ	16	15	सरगुजा बिलासपुर रामगढ कोरबा विश्राम पुर
पं.बंगाल	11	6	रानीगंज वर्धमान बाकुण्डा पुरलिया वीरभूमि दार्जिलिग
मध्यप्रदेश	8	13	शहडौल छिन्दवाडा नरसिहपुरा बेतुल
तेलगाना व आन्ध्रप्रदेश	7	9	खम्माम आदिलाबाद वारगल सिगरेली कर्ल्लापल्ली
महाराष्ट्र	4	6	चन्द्रपुर यवतवाल नागपुर
उत्तर प्रदेश	0.50	0.15	सोनभद्र जिला
अन्य राज्य	2	6	पूर्वी राज्य व शेष भारत
टर्शयरी कोयला भारत का कुल कोयला	0.50 100	7 100	आसाम का माकूम नजीरा ,राजस्थान मे पलाना कपूरडी बरसिगसर तथा तमिलनाडु मे नवेली प्रमुख है

भारत मे कोयला उत्पादन

कोयला उत्पादन वर्ष	कोयला उत्पादन (दस लाख टन)
2012.13	556.40
2013.14	565.77
2014.15	612.44
2015.16	447.48

INDIA'S COAL BASINS AND FIELDS

Fig. 3

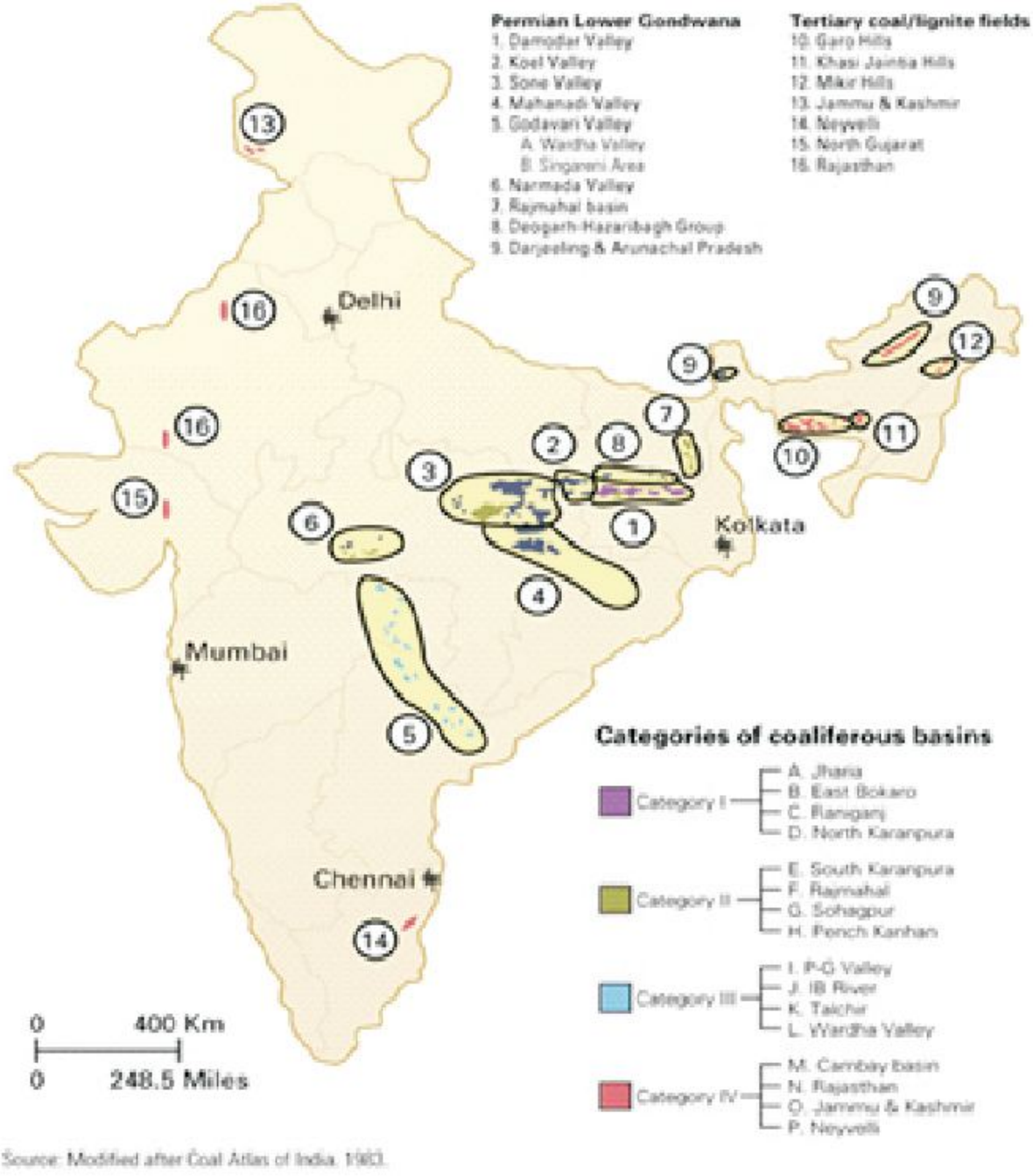

Source: Modified after Coal Atlas of India, 1993.

भारत में पेट्रोलियम पदार्थ के प्रमुख क्षेत्र

राज्य का नाम	प्रमुख क्षेत्र
आसाम	डिगबोइ, लखीमपुर, हंसापुग, बदरपुर, मसीमपुर , पथरिया , नाहर काटिया, हुगरीगंज मोरेन
गुजरात	अंकलेश्वर क्षैत्र ,लुनेल क्षैत्र ,कलोल ,मेहसाना तथा अरब सागर मे अलियाबेट द्वीप क्षेत्र में
महाराष्ट्र	अरब सागर में बाम्बे हाई तथा बसई अपतटीय क्षेत्र में
राजस्थान	बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर
आन्ध्रप्रदेश	गेदावरी बेसिन में केलालुर तथा अमलापुर
तमिलनाडु	मदनम तट , नागपिटम , कोविकोलम

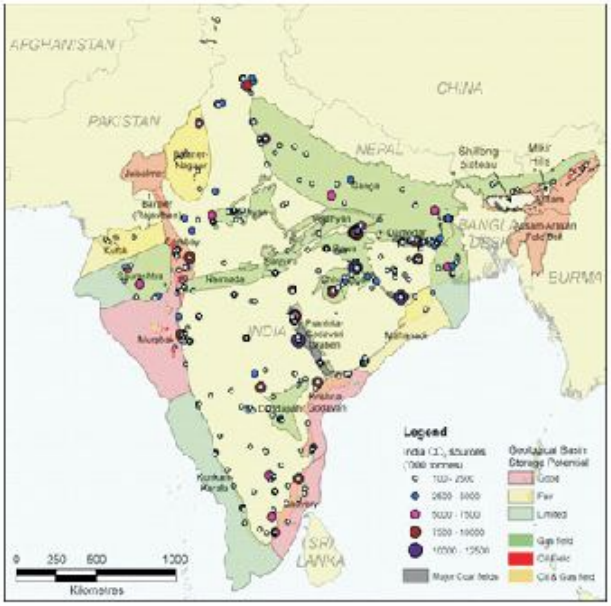

मातासुख में मिलता है। राजस्थान में लिग्नाईट के इस भण्डार का उपयोग स्थानीय तापीय विद्युत संयंत्रों के लिए होता है ।

भारत में कोयले के भण्डार, उत्पादन तथा उत्पादन क्षेत्र

पेट्रोलियम पदार्थ – देश में 17.2 लाख वर्ग किमी क्षेत्र में विस्तृत अवसादी चट्टानी भागों में स्पंज की भांति पाये जाने वाला तथा वनस्पति तथा जीवों के सागरीय भागों में दबने और रासायनिक

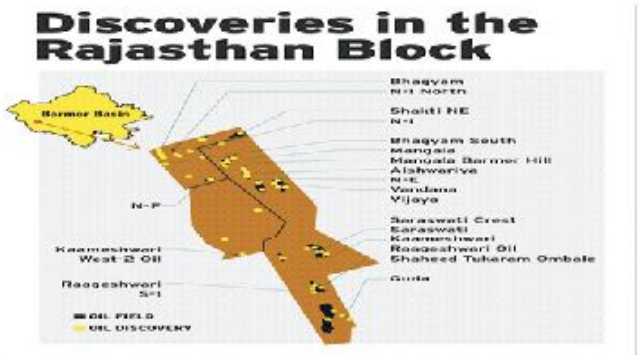

तथा तापीय क्रिया से निर्मित होने वाला जीवाश्म खनिज तेल है जो कि प्राकृतिक गैस से नीचे मिलता है, जिसे परिवहन तथा मशीनरी क्षेत्र में उपयोग लिया जाता है। इसके भण्डार आसाम की ब्रह्मपुत्र घाटी व सुरमा घाटी, पं.बगाल में सुन्दर वन डेल्टा, उड़ीसा का पूर्वी तटीय भाग, राजस्थान व सौराष्ट्र क्षेत्र, हिमालय का तराई भाग, उत्तरी व मध्य गुजरात, मुम्बई बेसिन तथा गोदावरी तथा कावेरी डेल्टा क्षेत्र व अरब सागर में बाम्बे हाई प्रमुख हैं।

भारत में पेट्रोलियम पदार्थ के प्रमुख क्षेत्र

देश के कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत उत्पादन का महाराष्ट्र, आसाम, गुजरात तथा राजस्थान में किया जाता है इस उत्पादित कच्चे तेल को देश की 24 बड़ी रिफायनरी को पाइपलाइन के माध्यम से गुवाहटी, बरौनी, बडौदरा, हल्दिया, मथुरा डिगबोई व जामनगर को भेजा जाता है। इसी प्रकार प्राकृतिक गैस के भण्डार तमिलनाडु, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, पं.बंगाल त्रिपुरा तथा अरूणाचल प्रदेश में है जिसका प्रबन्धन का कार्य भारतीय गैस प्राधिकरण के द्वारा किया जाता है यह कम्पनी देश की कुल प्राकृतिक गैस को विद्युत उत्पादत (38 प्रतिशत), उर्वरक निर्माण (33 प्रतिशत) शेष उद्योग तथा रसोई गैस के कार्य हेतु उपलब्ध करवाती है। देश का 91 प्रतिशत उत्पादन का महाराष्ट्र में, 71 प्रतिशत तथा 11 प्रतिशत गुजरात, आसाम 7 प्रतिशत तथा राजस्थान 2 प्रतिशत में किया जाता है ।

राजस्थान में पेट्रोलियम पदार्थ के भण्डार बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर तथा गंगानगर जिलों में 12 ब्लाकों में मिलते है, जिसमें जैसलमेर ब्लाक, सांचोर–गुडामालानी ब्लॉक, बीकानेर –नागौर ब्लाक , बीकानेर –गंगानगर ब्लाक में संचित भंडार हैं। गुडामालानी तथा सांचौर ब्लाक में विदेशी कम्पनी केयर्न इण्डिया के द्वारा 91 कुंए खोदे गए हैं, जिसमें 12 कुओं में से 2005 से व्यावसायिक उत्पादन शुरू हो चुका है।

परमाणु ऊर्जा खनिज–

परमाणु ऊर्जा के रूप में यूरेनियम–338 तथा 235, 233, प्लूटोनियम–239 तथा थोरियम, बैरिलियम, जिरकन नामक खनिजों का उपयोग किया जाता है। एक औंस यूरेनियम से 100

क्र.सं.	खनिज	क्षेत्रफल (हैक्टर)	उत्पादन (लाख टन)
1.	ताम्बा अयस्क	910708	18214.1600
2.	लौह अयस्क	5767432.59	53979.71
3.	सीसा जस्ता	7653776.82	123030.59
4.	चांदी	283.58085	26792.2735
5.	डोलोमाइट	457821.73	2299.00
6.	फैल्सफार	2308649.02	6905.51
7.	गारनेट	520.00	4.1600
8.	जिप्सम	2768313.48	14002.89
9.	जास्पर	470.00	4.94
10.	लिग्नाइट	10481795.36	98384.89
11.	लाइमस्टोन	61585483.19	116584.17
12.	अभ्रक	4255.50	56.61
13.	राक फास्फेट	1286673.00	25733.46
14.	सोपस्टोन	1699050.83	13562.79
15.	वुलसोनाइट	181941.00	1672.29

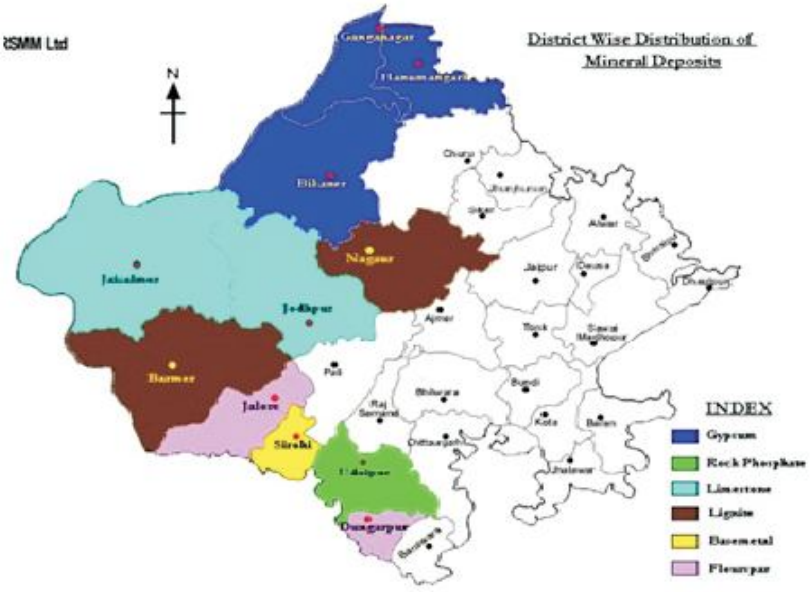

मिट्रिक टन कोयले के बराबर शक्ति उत्पन्न होती है। यद्यपि यह ऊर्जा खर्चीली होती है, परन्तु इससे बनने वाली विद्युत सस्ती होती है। इस कारण 1948 में परमाणु ऊर्जा आयोग का गठन किया गया, जिसके द्वारा देश में 17 परमाणु रियक्टरों की स्थापना की गई। इन परमाणु रियक्टरों द्वारा देश में 4800 मेगावाट विद्युत का उत्पादन किया जाता है। भारत में परमाणु खनिज के भण्डार में यूरेनियम धारवाड तथा आर्कियन चट्टानों में बिहार की सिंहभूमि, राजस्थान के अभ्रक के क्षेत्रों में पेग्मटाइट शैलो में, केरल में समुद्रतटीय भागों में मानोजाईट चट्टानों में, थोरियम के भण्डार केरल तथा बिहार, इल्मेनाइट के भण्डार केरल की बालू में तथा बेरिलियम के भण्डार राजस्थान, बिहार तथा आन्ध्रप्रदेश में स्थित हैं।

राजस्थान में पेट्रोलियम पदार्थों का उत्पादन

वर्ष	कच्चा तेल उत्पादन (एम एम टी)	कच्चा तेल प्रतिशत वृद्धि	प्राकृतिक गैस उत्पादन (बी सी एम)	प्राकृतिक गैस उत्पादन प्रतिशत वृद्धि
2010–11	37.684	11.85	52.21	9. 9.94
2011–12	38.090	1.08	47.559	–8.92
2012–13	37.862	–0.60	40.679	–14.47
2013–14	37.788	–0.19	35.407	–12.96
2014–15	37.461	–0.87	33.656	–4.95
2015–16	37.046	–1.11	35.28	4.83

राजस्थान में प्रमुख खनिज उत्पादक जिले

क.स	खनिज	प्राप्ति क्षेत्र	महत्त्वपूर्ण जिला
1	ताम्बा	खो दरीबा (अलवर), देबारी सलूँम्बर (उदयपुर),भीम रेलमगरा (राजसमन्द),बीदासर(बीकानेर),खेतडी सिघाना (झुँझनू),	झुँझनू
2	सीसा जस्ता	जावर व राजपुरा देबारी (उदयपुर) रामपुरा आगूचा (भीलवाड़ा) पुर बनेड़ा, गुढा किशोरी दास में	भीलवाड़ा व उदयपुर
3	लौह अयस्क	मोरिजा बानोल (जयपुर), डाबला (झुझनू), नीमला रायसेला, नाथरा की पोल,थूर हुन्डैर, बासवाड़ा तथा भीलवाडा में।	जयपुर
4	अभ्रक	भीलवाडा , अजमेर , टोक, जयपुर व सीकर	अभ्रक
5	टगस्टन	डेगाना भाखरी (नागौर), अजमेर पाली सिरोही	नागोर
6	राक फास्फैट	दक्कन कोटडा तथा झामर कोटड़ा (उदयपुर) बिरमानिया (जैसलमेर) सीकर, जयपुर, पाली	उदयपुर
7	जिप्सम	जामसर व लूणकरणसर (बीकानेर) गोठ मागलोद (नागौर) मोहनगढ व नाचना (जैसलमेर)	नागौर
8	तामडा	राजमहल व कल्याण खान (टोंक) सरवाड तथा खरखारी अजमेर, महुवा तथा बागेंश्वर भीलवाडा में	टोंक
9	कोयला	पलाना, गुढा, बरसिगसर, रानेरी हाडला (बीकानेर) कपूरडी जालिप्पा व गिरला (बाडमेर) तथा मेड़ता नागोर	बीकानेर
10	पेट्रोलियम पदार्थ	गुडामालानी (बाड़मेर) जैसलमेर तथा गंगानगर जिलों	बाड़मेर
11	प्राकृतिक गैस	शाहगढ़ तनौट, मनिहारीटिबा, चिमनेवाला घोटाडू व गमनेवाला (जैसलमेर), बाघेवाला (बीकानेर)	जैसलमेर

राजस्थान में खनिज–

राजस्थान को खनिजों का अजायबघर कहा जाता है। राजस्थान में 79 प्रकार के खनिज जिसमें 44 प्रकार के बड़े तथा 23 प्रकार के लघु तथा 12 गौण खनिज पाये जाते हैं। खनिजों की उपलब्धता की दृष्टि से राजस्थान देश में मध्यप्रदेश तथा छतीसगढ के बाद तीसरा बडा राज्य है जो देश का 22 प्रतिशत है। राजस्थान के कुछ नगर या कस्बे खनिजों के कारण ही प्रसिद्ध है जैसे तांबानगरी (खेतड़ी) व संगमरमर नगरी (मकराना)। राजस्थान में कुछ ऐसे खनिज हैं जिसमें हमें लगभग एकाधिकार प्राप्त है, जैसे संगमरमर, सीसा, जस्ता, चांदी, ताम्बा, बोलस्टोनाइट, जास्पर, फलोराइट, जिप्सम, मार्बल, ऐस्बेस्टास, राकफास्फेट, चांदी, टंगस्टन तथा तामड़ा। राजस्थान में खनिजों का वितरण निम्न तालिका में है–

आंकड़े राजस्थान खान विभाग से वर्ष 2014–15 के है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

01. खनिज से तात्पर्य भूमि से खनन किया के द्वारा निकाले गये रासायनिक तथा भौतिक गुण पदार्थ होते हैं, जो मानव के लिए उपयोगी होते हैं उन्हें खनिज संसाधन कहा जाता है।

02. देश के 96 प्रतिशत खनिजों का भंडार मुख्यतः प्रायद्वीपीय पठारी भाग, अरावली पर्वतीय क्षेत्र, ब्रह्मपुत्र घाटी, हिमालय क्षेत्र तथा दक्षिण तटीय प्रदेश में स्थित है।

03. भारत में खनिजों को भौतिक तथा रासायनिक गुणों के आधार पर धात्विक तथा अधात्विक खनिज में विभाजित किया जाता है।

04. लोहा आग्नेय चट्टानों से प्राप्त किया जाता है। विश्व में भण्डार की दृष्टि से रूस के बाद दूसरा बड़ा राष्ट्र भारत है।

05. तांबा– भारत में धारवाड़ व अरावली श्रृंखला की कायान्तरित चट्टानों की नसों में सल्फाइट तथा चारकापाइराइट अयस्क के रूप में मिलने वाला खनिज है। तांबे की कोलिहान खान, मंघान खान, मोसाबानी खान, राखा खान आदि प्रसिद्ध है।

06. भारत में विश्व का सर्वाधिक अभ्रक उत्पादित होता है। यहां मस्कोवाइट या रूबी अभ्रक तथा बायोराइट या गुलाबी अभ्रक आग्नेय व कायान्तरित चट्टानों से निकाला जाता है।

07. भारत में 95 प्रतिशत सीसा व जस्ता का भण्डार व उत्पादन राजस्थान में चित्तौड़, राजसमन्द, भीलवाड़ा तथा उदयपुर जिलों में होता है।

08. भारत में कोयला गोडवाना कालीन अवसादी चट्टानों में स्थित है। यहीं पर देश का 98.5 प्रतिशत भण्डार तथा 99 प्रतिशत उत्पादन होता है।

09. पेट्रोलियम पदार्थ– अवसादी चट्टानी भागों में स्पंज की भांति पाये जाने वाला तथा वनस्पति तथा जीवों के सागरीय भागों में दबने और रासायनिक तथा तापीय किया से निर्मित होने वाला जीवाश्म खनिज तेल है।

10. राजस्थान में पेट्रोलियम पदार्थ के भण्डार बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर तथा गंगानगर जिलों में 12 ब्लाकों में मिलते हैं।

11. परमाणु ऊर्जा के रूप में यूरेनियम–338 तथा 235, 233, प्लूटोनियम –239 तथा थोरियम, बैरिलियम, जिरकन नामक खनिजों का उपयोग किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न–

06. भारतीय खनिजों को किन रूपों में वर्गीकृत किया गया हैं?
07. भारत मे ईंधन खनिज कौन कौनसे हैं?
08. खनिज से क्या आशय हैं?
09. भारत में कौन से लौह अयस्क पाये जाते हैं ?
10. राजस्थान में ईंधन खनिज किन जिलों में पाये जाते हैं?
11. भारत में अभ्रक के अयस्क कौन से पाये जाते हैं?
12. परमाणु खनिज कौन कौन से हैं?
13. जीवाश्म खनिज से आप क्या समझते हैं ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

14. भारत में खनिजों की स्थिति पर प्रकाश डालिए।
15. भारत में बाक्साइड के वितरण के बारे में वर्णन कीजिए।
16. भारत में सीसा जस्ता के वितरण के बारे में वर्णन कीजिए।
17. भारत में अभ्रक के वितरण के बारे में वर्णन कीजिए।
18. भारत में तांबा के वितरण के बारे में वर्णन कीजिए।
19. राजस्थान में लिग्नाइट कोयले के वितरण के बारे में वर्णन कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न–

01. भारत में लौह अयस्क के वितरण के बारे में वर्णन कीजिए।
02. भारतीय अर्थव्यवस्था में खनिजों के योगदान पर प्रकाश डालिए।
03. भारत में पेट्रोलियम खनिज के वितरण के बारे में वर्णन कीजिए।
04. भारत में कोयले के वितरण के बारे में वर्णन कीजिए।

05. निम्नांकित को मानचित्र में अंकित कीजिए–
   01. भारत के कोयला क्षेत्र
   02. राजस्थान में प्रमुख खनिज

अध्याय 11

विनिर्माण उद्योग

परिचय–

कृषि तथा खनन क्रियाओं के द्वारा प्राप्त किये गये पदार्थो को रासायनिक तथा भौतिक गुणों को मानव उपयोग के लिए बहुआयामी रूप में परिवर्तन करने की क्रिया को उद्योग कहा जाता है जैसे कपास से सूती वस्त्रों का निर्माण करना। वर्तमान अर्थव्यवस्था के आधार स्तम्भों में उद्योग महत्वपूर्ण कड़ी है जिससे जहां रोजगार का सृजन होता है वहीं उत्पादन से व्यापार तथा सम्बधित आर्थिक घटकों का विकास होता है जो आधुनिक अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करता है।

भारत में उद्योग साक्ष्य के रूप में सूती कपड़े ,मिटटी के बर्तन तथा काँसे की मूर्तियाँ सिन्धुसभ्यता में मिलना तथा कुतुबमीनार के पास स्थित जंगरोधी लोह स्तम्भ भारतीय प्राचीन औद्योगिक विकास का द्योतक है। यहाँ तक कि भारत तक धातु , वस्त्र, स्वर्ण आभूषण तथा जहाजरानी जैसे कुटीर तथा लघु उद्योगों के विकसित स्वरूप के कारण भारत सोने की चिडियां के नाम से विख्यात था परन्तु अंग्रेजी आगमन तथा उनकी दमनपूर्ण नीतियों के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था के रीढ की हड्डी कहे जाने वाले कुटीर तथा लघु उद्योगो का नष्ट किया गया ।

भारत में आधुनिक उद्योगों को आरम्भ –

1845 मे सूती वस्त्र के मुम्बई में तथा 1855 में जूट उद्योग की स्थापना से भारत में आधुनिक उद्योगों का आरम्भ हुआ। प्रथम विश्व युद्ध तक केवल इन्हीं उद्योगों को विकास हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1948 में प्रथम औद्योगिक नीति को जारी किया गया , जिसमें प्रादेशिक असन्तुलन को कम करते हुए नए रोजगारपरक, कृषि व निर्यात आधारित उद्योगों के विकास पर बल दिया गया, साथ ही धन , कच्चे माल तथा तकनीक की कमी को दूर करके उत्तम श्रेणी व कम लागत उत्पादों का निर्माण करना। योजना आयेाग के माध्यम से विकास का मार्ग प्रशस्त किया गया। योजना आयेाग ने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से लौह इस्पात उद्योग , सूती वस्त्र, सीमेन्ट उद्योग, कागज, उद्योग, चीनी उद्योगों का विकास किया गया।

भारत मे लौह इस्पात उद्योग –

यह उद्योग भारत ही नहीं , विश्व में औद्योगिक विकास का आधार स्तम्भ रहा है साथ ही अन्य उद्योगों की जननी कहा जाने वाला उद्योग जिसकी स्थापना भारत में पश्चिम बंगाल में कुल्टी नामक नगर बाराकर आयरन वर्क्स के नाम से स्थापित हुई। परन्तु वास्तविक शुरूआत जमशेद जी टाटा ने 1907 में सांकची मे टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी नाम से स्थापित की बाद में 1909 आसनसोल के निकट हीरापुर में भारतीय लोहा इस्पात कम्पनी से खोला गया। सन् 1936 में कुल्टी व हीरापुर के दोनों कारखानों को मिला कर इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी मे मिला दिए। सन् 1937 में बर्नपुर में स्टील कॉरपोरेशन आफ बंगाल की स्थापना की गई तथा 1953 में इसे इस्को (IISCO) में मिला दिया । इस प्रकार से लौह इस्पात उद्योग की शुरूआत बीसवीं सदी मे होती है।

स्वतंत्रता के बाद इस उद्योग का विकास विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओ के माध्यम किया गया जिसमे द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे ब्रिटिश सहयोग से दुर्गापुर (पं.बंगाल) में, जर्मनी के सहयोग से राउरकेला (उडीसा) में तथा रूस के सहयोग भिलाई (छतीसगढ) में कारखाने स्थापित किये गये। आरम्भ में इनकी क्षमता 10 लाख टन थी बाद मे इनकी क्षमता बढाकर 16 लाख टन कर दी गई । चौथी पंचवर्षीय योजना में बोकारो (झारखण्ड) में उद्योग स्थापित किया जो कि एशिया का सबसे बड़ा है 1973 में इस उद्योग में गुणात्मक वृद्धि करने के उद्धेश्य से स्टील ओथोरिटी ऑफ इण्डिया अर्थात (SAIL) की स्थापना की गई जो देश के सार्वजनिक क्षैत्र के सभी कारखानों का प्रशासनिक कार्य करता है इसमें तीन और कारखाने विशाखापटनम (आन्ध्रपदेश) सेलम (तमिलनाडु) तथा विजयनगर (कर्नाटक) को शामिल किया गया ।

यह उद्योग कच्चे माल तथा सस्ते परिवहन पर आधारित उद्योग है इस कारण इसकी स्थापना कच्चे माल अर्थात लौह अयस्क , कोयला , मैंगनीज तथा कम परिवहन अर्थात खानों के समीप के क्षेत्रों के समीप होती है भारत में लोह इस्पात उद्योग की निम्न इकाईयाँ स्थापित हैं ।

भारत में लौह इस्पात की इकाईयां

क्रम सं	इकाई का नाम	स्थान	लौह अयस्क प्राप्ति क्षेत्र	कोयला प्राप्ति क्षेत्र	मैगनीज प्राप्ति क्षेत्र	जल प्राप्ति क्षेत्र	बाजार	उत्पादन क्षमता
1	TISCO	जमशेदपुर	नोआमंण्डी तथा गुरूमहिसानी खानो से	झरिया तथा बोकारो से	क्योंझर की जोडा खानो से	स्वर्ण रेखा तथा खारकोइ नदियो से	कोलकता तथा मुम्बई एवम समीप का क्षेत्र	40 लाख टन
2	IISCO	कुल्टी हिरापुर बर्नपुर	सिंहभूमि,मयूरभंज ,कोल्हन क्योंझर खानो से	रानीगंज ,झरिया तथा रामनगर	उडीसा तथा झारखण्ड	दामोदर तथा सहायक नदियों से	कोलकता एवम समीप का क्षेत्र	16 लाख टन प्रत्येक की
3	VISCO	भद्रावती	केमनगुडडी खानो	स्थानीय लकडी के कोयले से	स्थानीय स्तर पर	भदावती नदी	बेंगलौर तथा समीप का क्षेत्र	2 लाख
4	राउरकेला इस्पात कारखाना	राउरकेला	सुन्दरगढ तथा क्योंझर की खानो से	झारिया तथा तलचर की खानो से	बसापानी तथा बोलानी खानो से	ब्राहमनी नदी से	समीप का औद्योगिक क्षेत्र	11 लाख टन
5	भिलाई इस्पात कारखाना	भिलाई	डल्ली राजहरा की खानो से	कोरबा और करगली खानो से	भण्डारा और बालाघाट की खानो से	स्थानीय स्तर	समीप का औद्योगिक क्षेत्र	35 लाख टन
6	दुर्गापुर इस्पात कारखाना	दुर्गापुर	नोआमंण्डी तथा गुआ खानो से	झरिया तथा रानीगंज से	क्योंझर की जामदा खानो से	दामोदर तथा सहायक नदियों से	कोलकता तथा मु समीप का क्षेत्र	15 लाख टन
7	बोकारो इस्पात कारखाना	बोकारो	क्योंझर की किरीबुरू खानो से	झरिया से	क्योंझर की खानो से	दामोदर तथा बोकारो नदियों से	कोलकता तथा मु समीप का क्षेत्र	25 लाख टन
8	विशाखापटनम इस्पात कारखाना	विशाखापटनम	बैलाडिला खानो से	दामोदर घाटी	उडीसा तथा छत्तीसगढ	तटवर्ती भाग से	समीप का औद्योगिक क्षेत्र	3 लाख टन

2015 में भारत विश्वभर में कच्चे लोहा का तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश बन गया है जबकि वर्ष 2003 में वह 8वें स्थान पर था। भारत डायरेक्ट रेड्यूस्ड आयरन (डी आर आई) या स्पंज आयरन का सबसे बड़ा उत्पादक है। चीन और अमेरिका के बाद भारत विश्वभर में तैयार इस्पात का तीसरा सबसे बड़ा उपभोक्ता भी है। इस्पात क्षेत्र देश के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 2 प्रतिशत का योगदान देता है और 6 लाख से अधिक लोग इस क्षेत्र में कार्यरत हैं।

सूती वस्त्र उद्योग –

यह उद्योग भारत का प्राचीन उद्योग रहा है। भारतीय वेदों व सिन्धु घाटी सभ्यता में वस्त्र निर्माण का वर्णन मिलता है। यह ऐसा उद्योग है जिसमे सर्वाधिक रोजगार का सृजन होता है इस कारण यह उद्योग विस्तार, उत्पादन तथा रोजगार की दृष्टि से देश में प्रथम है। विश्व में सूती वस्त्र उत्पादन में भारत चीन के बाद दूसरा बड़ा देश है।

भारत में आधुनिक स्वरूप का पहला कारखाना 1818 में कलकत्ता के फोर्ट ग्लास्टर में खोला गया किन्तु यह प्रयास विफल रहा। 1854 में पहली भारतीय सूती वस्त्र मिल मुम्बई में कवास जी डाबर के द्वारा स्थापित की गई। जिसने 1858 में उत्पादन शुरू किया 1861 तक भारत में 12 मिलें खुल चुकी थीं। 1947 तक भारत में 417 मिलें थी जिसमें 3 लाख श्रमिक कार्य कर रहे थे। वर्तमान में इन मिलों की संख्या लगभग 2000 से अधिक हैं जिसमें 40 लाख लोगो का प्रत्यक्ष रोजगार मिला है। यह उद्योग के सकल घरेलू उत्पाद का 14 प्रतिशत भाग प्रदान करता है।

भारत मे इस उद्योग का स्थानीयकरण कपास उत्पादक क्षेत्रों , सस्ते परिवहन व श्रम तथा नम जलवायु वाले भागों में हुआ है इस दृष्टि से निम्न राज्य में विकास हुआ है।

01. महाराष्ट्र–

सूती वस्त्र उत्पादन में प्रथम राज्य है। यहां 112 मिलें है

जिसमें सर्वाधिक 54 मिलें मुम्बई में है जिसे सूती वस्त्र की राजधानी कहा जाता है। इसके अलावा शोलापुर, अकोला, अमरावती, वर्धा सतारा, कोल्हापुर, सांगली, जलगांव तथा नागपुर में मिलें स्थापित है । यहां की मिलों में पोपलीन मलमल, साड़ी , धोती , चद्दर तथा सूटिंग व शर्टिंग का कपड़ा बुना जाता है । यहां पर काली मिटटी का पृष्ठप्रदेश तथा समुद्र की नम जलवायु और मुम्बई बन्दरगाह के कारण इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है यहां पर देश का 39 प्रतिशत सूती वस्त्र का उत्पादन होता है।

02. गुजरात–

सूती वस्त्र उत्पादन में दूसरा बडा राज्य है। यहां 135 मिलें है जिसमें सर्वाधिक 67 मिलें अहमदाबाद में है, जिसे पूर्व का बोस्टन कहा जाता है। इसके अलावा सूरत, वडोदरा, भावनगर, पोरबन्दर, राजकोट तथा भरूच में मिलें स्थापित है । यहां पर कपास का पृष्ठप्रदेश, सस्ते श्रमिक पूंजी की उपलब्धता और कान्दला बन्दरगाह के कारण इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है। यहां पर देश का 35 प्रतिशत सूती वस्त्र का उत्पादन होता है।

03. तमिलनाडु–

दक्षिणी भारत का सबसे बड़ा सूती वस्त्र उत्पादक राज्य है यहा 205 मिले है जिसमें सर्वाधिक मिलें कोयम्बटूर में है जिसे सूती वस्त्र के साथ सूती धागों की मिलें भी है। इसके अलावा मदुरै,चेन्नई, पेराम्बूर, तिरूचिरापल्ली, रामनाथपुरम में मिलें स्थापित है। यहां पर समुद्र की नम जलवायु और चेन्नई बन्दरगाह के कारण इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है। यहां पर देश का 8 प्रतिशत सूती वस्त्र का उत्पादन होता है।

04. मध्यप्रदेश–

यहां 36 मिलें है जिसमें सर्वाधिक इन्दौर, ग्वालियर उज्जैन, देवास, जबलपुर तथा रतलाम में स्थापित है। यहां पर विभिन्न परिवहन मार्गो से जुड़े होने तथा अधिक जनसंख्या से सस्ते श्रमिक के कारण इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है। यहां पर देश का 5 प्रतिशत सूती वस्त्र का उत्पादन होता है।

05. पं. बंगाल–

यहां 45 मिलें है जिसमें सर्वाधिक केन्द्रीयकरण हुगली नदी क्षेत्रों में कलकत्ता हुगली हावडा व चौबीस परगना में है। यहां कपास की आपूर्ति अन्य राज्यों से होने के बाद भी स्थानीय मांग अधिक होने से तथा कोलकत्ता बन्दरगाह के कारण, परिवहन मार्गो से जुडे होने तथा अधिक जनसंख्या से सस्ते श्रमिक के कारण इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है।

06. राजस्थान–

राजस्थान में सूती वस्त्र उद्योग अभी नूतन अवस्था में है यहां चम्बल व भाखडा नांगल परियोजनाओं से सस्ती विद्युत तथा हाडौती के पठारी तथा सिचित घग्घर के मैदान से कपास के उत्पादन से भीलवाडा, उदयपुर, कोटा, गंगानगर, पाली में सूती मिलें स्थापित है यहां पर नमी बनाए रखने के लिए प्रशीलतकों का प्रयोग किया गया है। यहां देश का 4 प्रतिशत उत्पादन होता है उत्पादन में केवल सूटिंग व शर्टिंग का कपड़ा बनाया जाता है ।

07. अन्य राज्य में–

उत्तरप्रदेश जो पूर्णतया आयातित कपास से सूती वस्त्रों का निर्माण कानपुर मुरादाबाद हाथरस वाराणसी, पंजाब में अमृतसर, लुधियाना तथा फगवाडा , कर्नाटका में, बेल्लारी मेसूर बैगलोर, आन्ध्रप्रदेश में, तेलंगाना क्षेत्र की कपास की सुविधा से हैदराबाद, वारगल , गुन्दूर तथा केरल व बिहार में सूती वस्त्र उद्योग स्थापित है।

भारत में सूती वस्त्र उद्योग ने आजादी के पश्चात 12 गुना वृद्धि की है जहां 1947 में 351 करोड वर्ग मीटर का उत्पादन होता था वहीं वर्तमान लगभग 6500 करोड वर्ग मीटर का उत्पादन हो रहा है। परन्तु स्थानीय अधिक मांग अधिक होने के कारण उत्पादन का अधिकांश भाग देश में खपत हो जाता है। इसके बाद शेष भाग को यूरोपीय देशों, अफ्रीका तथा खाड़ी देशों को निर्यात किया जाता है इसके अलावा भारतीय सूती वस्त्र उद्योग निम्न श्रेणी का कच्चा माल, पुरानी मशीनें व कारखाने, कृत्रिम रेशे से निर्मित उत्पाद तथा उत्पादन से ज्यादा लागत के जैसी समस्याओं से भी ग्रस्त है।

सीमेण्ट उद्योग –

यह एक आधारभूत उद्योग है। इस सीमेण्ट का अविष्कार 1824 में इग्लैण्ड के पोर्टलैण्ड में जोसेफ नामक व्यक्ति द्वारा किया गया था , इस कारण वर्तमान में उपयोग मे ली जा रही सीमेण्ट को पोर्टलैण्ड सीमेण्ट कहा जाता है। भारत में आधुनिक स्वरूप का पहला सीमेण्ट कारखाना 1904 में तमिलनाडु के चेन्नई में खोला गया, जिसमे समुन्द्री सीपियो के द्वारा सीमेण्ट बनाई गई थी किन्तु यह प्रयास भी विफल रहा। 1914 में पहला भारतीय सीमेण्ट कारखाना गुजरात के पोरबन्दर में इण्डियन सीमेण्ट कम्पनी के द्वारा स्थापित किया गया है, इसी समय राजस्थान में लाखेरी (किलिक निक्सन कम्पनी के द्वारा) , मध्यप्रदेश (खटाउ कम्पनी के द्वारा) में सतना में गुजरात के पोरबन्दर (टाटा एण्ड संस कम्पनी के द्वारा) कारखाने स्थापित हुए थे। उत्पादन तथा रोजगार की दृष्टि से देश में इस उद्योग का दूसरा स्थान है। विश्व में भी उत्पादन दृष्टि से भारत चीन के बाद दूसरा बडा देश है। इस उद्योग का स्थानीयकरण कच्चे माल व सस्ते परिवहन भागों में हुआ है क्योंकि एक टन सीमेण्ट बनाने के लिए 1.6 चूना पत्थर, 0.38 टन जिप्सम तथा 3.8 टन कोयले की आवश्यकता होती है। निम्न

राज्यों में इस उद्योग का विकास हुआ है –

1. राजस्थान –

सीमेण्ट उत्पादन में प्रथम राज्य है। राजस्थान में सीमेण्ट उद्योग को आगाज 1912–13 में लाखेरी में स्थापना से होता है इसका केन्द्रीयकरण निम्बाहेडा, चितौड़गढ़, कोटा, बून्दी, सवाई माधोपुर तक एक पेटी में पाया जाता है इसके अलावा उदयपुर नागौर, पाली, सिरोही में भी है राज्य में 16 बड़ी तथा 5 मध्यम तथा 130निजी क्षेत्र की इकाइयां हैं। सीमेण्ट की 06 बड़ी इकाईयां चितौडगढ जिले में है इस कारण इसे राज्य की सीमेण्ट नगरी कहा जाता है। राजस्थान राज्य देश के कुल उत्पादन का 16 प्रतिशत भाग है । राज्य में 90 प्रतिशत पोर्टलैण्ड सीमेण्ट तथा 10 प्रतिशत सफेद सीमेण्ट का निर्माण किया जाता है। राज्य में सफेद सीमेण्ट के कारखाने गोटन (नागौर) तथा खारिया खंगार (जोधपुर) में है। राजस्थान में सीमेण्ट के जे.के.सीमेण्ट, मंगलम सीमेण्ट, बिनानी सीमेण्ट, जे.के.लक्ष्मी सीमेण्ट के कारखाने है।

2. मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ –

सीमेण्ट उत्पादन में दोनों राज्य अग्रणी है यहां से देश के कुल उत्पादन का 22 प्रतिशत है यहां केमूर की पहाड़ियां से कच्चा माल मिल जाता है। सर्वाधिक 17 बडे कारखाने कटनी, सतना, दुर्ग, मंधार, बनमोर, नीमच, रतलाम, देवास, नागदा अकलतारा, जामुल तिल्दा तथा मेहर में हैं।

3. गुजरात–

सीमेण्ट उत्पादन में चौथा राज्य है। यहां सीमेण्ट की 16 बडी इकाईयां है। यहां पर देश का 9.4 प्रतिशत सीमेण्ट उत्पादन होता है। यहां पर अहमदाबाद, भावनगर, पोरबन्दर, राजकोट, ओखा, वेरावल, जामनगर, द्वारका में कारखाने स्थापित है। यहां पर सीमेण्ट समुद्री सीपियों, सस्ते श्रमिक पूंजी की उपलब्धता और कान्दला बन्दरगाह के कारण इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है।

4. तमिलनाडु–

सीमेण्ट उत्पादन में राज्य अग्रणी है। यहां तमिलनाडु के पठार से कच्चा माल मिल जाता है। सर्वाधिक बड़े कारखाने तिरूनवेली, डालमियापुरम, तलायथू, शंकरदुर्ग, राजमलायम मदंकराची ,आत्यिआलर में है।

5. अन्य राज्य–

उतरप्रदेश व झारखण्ड जो कि 4.8 तथा 4.4 प्रतिशत देश का उत्पादन करता है यहां पर चुर्क, चोपन, चुनार , डाला तथा झारखण्ड में पटंल, सिन्दी में कारखाने हैं। कर्नाटक में पश्चिमी घाट तथा कर्नाटक पठार के कारण भद्रावती, बागलाकोट, बैगलोर बीजापुर गुलबर्गा, आन्ध्रपदेश में तेलगाना व रायलसीमा क्षेत्र की कच्चे माल की सुविधा से हैदराबाद, वारगल, आदिलाबाद

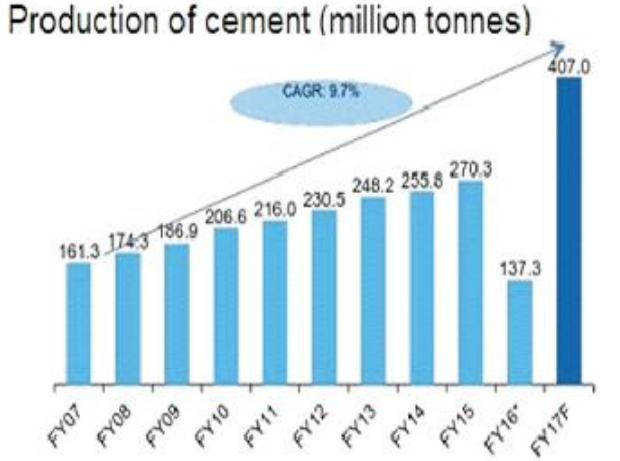

Source: Department of Industrial Policy & Promotion, Office of the Economic Advisor, TechSci Research; FY16*: April-September 2015 ; F - Forecast

विजयवाडा कृष्णा नलकोण्डा में तथा केरल व बिहार में स्थापित है।

भारत में आजादी के समय सीमेण्ट के 23 कारखाने थे जिसमे 05 पाकिस्तान में चले गये जिसकी उत्पादन क्षमता 21.15 लाख टन थी। वहीं वर्तमान में लगभग 124 बड़े तथा 300 छोटे कारखाने है, जिससे 2250 लाख टन का उत्पादन हो रहा है । परन्तु स्थानीय अधिक मांग के कारण अधिकांश भाग देश में खपत हो जाता है। इसके बाद शेष भाग को पुर्वी एशिया तथा अफ्रीकी देशों को निर्यात किया जाता है।

कागज उद्योग –

यह भारत का प्राचीन कुटीर उद्योग रहा है। भारतीय ऋषि मुनियो के द्वारा दिये गये ज्ञान को भोजपत्रों तथा हस्तनिर्मित कागज पर संरक्षित किया गया। यह ऐसा उद्योग है जिसमें कृषि तथा पेड़ों के अवशिष्ट से लुग्दी बना कर कागज तैयार किया जाता है। भारत में 70 प्रतिशत कागज गन्ने की खोई से बनता है। भारत में आधुनिक स्वरूप का पहला कारखाना श्रीरामपुर में लगाया गया। इसके बाद 1810 से 1867 में मद्रास व हुगली में खोला गया किन्तु यह प्रयास विफल रहा 1879 में पहली भारतीय मिल लखनऊ में इण्डियन पेपर मिल के नाम स्थापित हुई। 1881 में टिटागढ पेपर मिल की स्थापना हुई। आजादी के समय 17 कारखाने थे जिसकी उत्पादन क्षमता 19000 टन थी। वर्तमान में लगभग 800 बड़े व छोटे कारखाने है, जिनमें 128 लाख टन का उत्पादन हो रहा है । इस उत्पादित माल का 65 प्रतिशत भाग अखबारी कागज तथा शेष अन्य कार्यो के लिए किया जाता है। देश में इस उद्योग का स्थानीयकरण निर्माण सामग्री के प्राप्ति क्षेत्रों, सस्ते परिवहन वाले भागों में हुआ है इस दृष्टि से निम्न राज्यो में

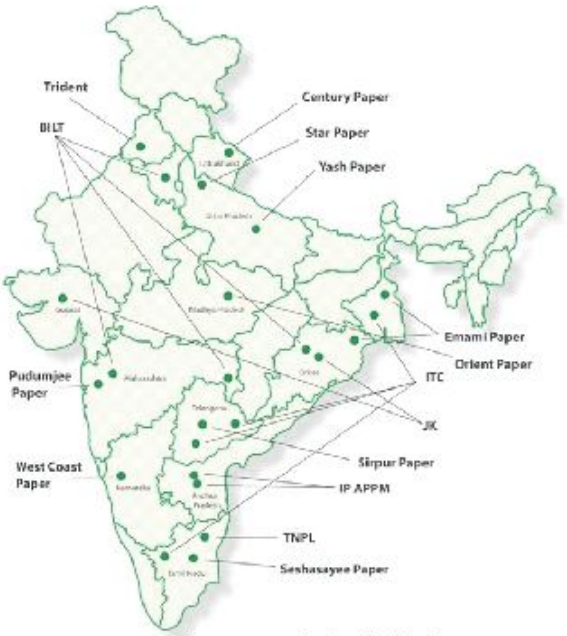

भारत में कागज मीलों की स्थिति

01. पं. बंगाल में टीटागढ , रानीगंज , त्रिवेणी , कोलकता
02. महाराष्ट्र में मुम्बइ पुना चन्द्रपुर खपोली पिपरी तथा काम्पटी में
03. उत्तरप्रदेश में लखनऊ, मेरठ, सहारनपुर, मुजफरनगर, पंतनगर, बस्ती
04. मध्यप्रदेश में भोपाल, रीवा, होसगाबाद, कमलाई
05. कर्नाटक में भद्रावती, बैंगलोर, रामनगर, कृष्णराजसागर
06. गुजरात में सूरत, वापी, बडोदरा, राजकोट में विकास हुआ है।

देश का अखबारी कागज नेपानगर, मध्यप्रदेश तथा होसंगाबाद में नोट छापने के कागज का सरकारी कारखाना है। देश में स्थानीय अधिक मांग के कारण अधिकाश भाग देश में खपत हो जाता है तथा अन्य देशों से भी आयात करना पड़ता है।

औद्योगिक प्रदूषण–

विनिर्माण उद्योग जहां देश के आर्थिक तंत्र में विकास मे सहायक है वही देश में ऐसी परिस्थितियो को जन्म देते है जो मानव सभ्यता तथा प्रकृति में के विनाश में सहायक रहे है देश में जिन क्षेत्रों में औद्योगिकरण हुआ वहा नगरीयकरण भी तीव्र गति से हुआ जैसे दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद, नागपुर सूरत। इन नगरों जल तथा वायु प्रदूषण का स्तर अत्यधिक उच्च है। देश में केन्द्रीय जल मल नियामक बोर्ड के मतानुसार गंगा तथा उसकी सहायक यमुना के किनारे स्थित चमड़ा, कागज, खाद, रसायन तथा औषधि उद्योगों के अपशिष्ट के कारण बहुत अधिक प्रदूषित हो चुकी हैं। इसी प्रकार गोमती नदी लखनउ के समीप कागज तथा गन्ना उद्योग के अपशिष्ट के कारण अत्यधिक विषाक्त हो चुकी है कि अक्सर मछलिया मरी हुई पायी जाती है एक अध्ययन के मुताबिक देश में 30 प्रतिशत महानगरीय जनसंख्या सांस की

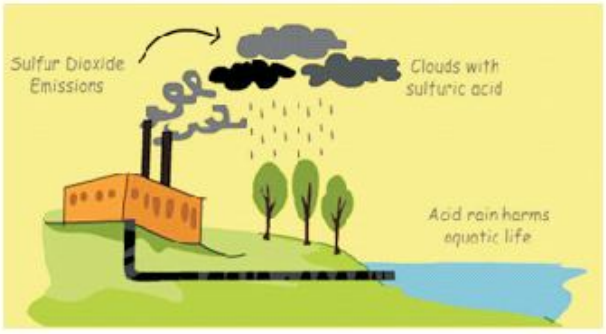

औद्योगिक अपशिष्ट का पर्यायवरण पर प्रभाव

बीमारियां से ग्रसित हो रही है। ये सभी बीमारिया वायु में हानिकारक विषैले तत्वों कार्बन, शीशा, सल्फर व अन्य कारक , नाइट्रोजन व आक्सीजन के साथ क्रिया करके मानव शरीर तथा मृदा तथा जल पर हानिकारक प्रभाव डालते है जिससे मानव में विभिन्न भयानक बीमारियों जैसे कैन्सर ,रक्त तथा चमडी सम्बधी बीमारियों को जन्म देती है ।

औद्योगिक अपशिष्ट जल तथा वायु के माध्यम से समुद्री भागों में पहुंच कर स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करता है जिससे भोजन श्रृंखला प्रभावित होती है और समुद्री जीव जन्तु तथा वनस्पति मरने लगते है। समुद्री जहाजों के अपशिष्ट का निस्तारण , समुद्रों में तेल टेकरों से होने वाली दुर्धटनाएं, समुद्रों में तेल का निकालना और तटों के समीप शोधन करना तथा परमाणु बम्ब के परिक्षण ऐसे कार्य हैं जो समुद्री जल को प्रदूषित कर रहे हैं।

भारत में हर आठ में से एक पक्षी लुप्त होने के कगार पर है क्योंकि औद्योगिकरण व परिवहन के साधनों तथा मार्गो से इनके प्राकृतिक आवास तथा भोजन के स्त्रोत समाप्त होते जा रहे है। इसी प्रकार नगरों में वायु प्रदूषण से अम्ल वर्षा तथा गन्दे जल को प्रवाहित करने से भूमि में विषैले तत्वों के मिलने से उर्वरकता में कमी हो रही है साथ ही तापमान में वृद्धि से सदावाहिनी नदियों के जल स्त्रोत गंगोत्री, यमुनोत्री सुखने के कगार पर है।

यदि औद्योगिकरण का यही रूप रहा तो वो दिन दूर नहीं कि मानव विभिन्न बिमारियों से ग्रसित होकर अकाल, सूखे तथा बाढ जैसी आपदाओं से झूझता नजर आएगा तथा आगामी पीढ़ियों मे पास कुछ भी शेष नहीं रहेगा। अतः हमें सबंर्धित तथा सुविकसित औद्योगिकरण विकास का मार्ग अपनाना होगा ।

राजस्थान में औद्योगिकरण –

राजस्थान औद्योगिक रूप से अन्य राज्यों से पिछडा राज्य है। इसका देश के कुल औद्योगिक उत्पादन में 6 प्रतिशत योगदान है तथा राज्य के सकल घरेलु उत्पाद में उद्योगों का 30 प्रतिशत योगदान है। यहां पर अधिकांश उद्योग खनिज तथा कृषि आधारित है जो कि राजस्थान के अलवर, दौसा, जोधपुर, भीलवाडा, राजसमन्द, कोटा, बारां, अजमेर तथा पाली जिलों में केन्द्रित है। रत्न, आभूषण, संगमरमर उद्योग, सीमेण्ट उद्योग, सीसा जस्ता उद्योग, नमक उद्योग, हस्तशिल्प कला उद्योग तथा तिलहन उद्योग में राजस्थान देश में प्रथम स्थान रखता है।

राजस्थान के प्रमुख उद्योग

01. सीसा जस्ता उद्योग–

राजस्थान की अरावली पर्वत में देश में सर्वाधिक सीसे जस्ते के भंडार होने के कारण यह उद्योग जावर, देबारी (उदयपुर) तथा चन्देरिया (चितौड़) राजपुरा दरीबा तथा रामपुरा दरीबा में स्थापित है। ये उद्योग खानों के पास ही स्थापित हैं। शेष कच्चा माल पुर बनेडा, चौथ का बरवाडा , गुढा किशोरीदास से मंगाया जाता है इन उद्योगों से देश के उत्पादन 95 प्रतिशत राजस्थान से जाता है।

02.सीमेण्ट उद्योग–

राजस्थान सीमेण्ट उत्पादन में प्रथम है। राजस्थान में सीमेण्ट उद्योग की शुरूआत 1912–13 में लाखेरी से हुई। इसका केन्दीयकरण निम्बाहेड़ा चितौड़गढ़, कोटा, बून्दी, सवाई माधोपुर तक एक पेटी में पाया जाता है। इसके अलावा उदयपुर, नागौर, पाली, सिरोही में भी है। राज्य में 16 बड़ी तथा 5 मध्यम तथा 130 निजी क्षेत्र की इकाइयां है। सीमेण्ट की 06 बड़ी इकाईयां चितौड़गढ़ जिले में है इस कारण इसे राज्य की सीमेण्ट नगरी कहा जाता है। देश के कुल उत्पादन का 16 प्रतिशत भाग राजस्थान में होता है । राज्य में 90 प्रतिशत पोटलैण्ड सीमेण्ट तथा 10 प्रतिशत सफेद सीमेण्ट का निर्माण किया जाता है ।

03. हस्तशिल्प उद्योग –

रत्न तराशने तथा आभूषणों का निर्माण कार्य जयपुर, प्रतापगढ व नाथद्वारा, मूर्ति तथा कलात्मक सामान जयपुर जोधपुर, उदयपुर में, लाख का सामान व चूड़ियां जयपुर तथा जोधपुर, रंगाई व छपाई तथा बन्धेज उद्योग बाड़मेर पाली व सागानेर मे, चमडे का सामान जोधपुर, जयपुर, अजमेर तथा बाडमेर में किया जाता है ।

04. मारबल उद्योग –

राजस्थान में उच्च श्रेणी का संगमरमर पाया जाता है। इस कारण मकराना, सिरोही, राजनगर, चितौड़, उदयपुर, किशनगढ में संगमरमर के कटाई, पोलिश व घिसाई करने की इकाइयां लगी है।

05. नमक व रसायन उद्योग –

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों तथा खारे पानी की झीलो से नमक बनाने को कार्य प्राचीन समय से हो रहा है। देश के सबसे बडी खारे पानी की झील सांभर देश सर्वाधिक नमक उत्पादित करती है। इसके अलावा डीडवाना में सोडियम सल्फेट का कारखाना, पचपदरा में मैग्नेशियम सल्फेट का कारखाना स्थापित है ।

06. ऊन उद्योग–

देश की सर्वाधिक भेड़ तथा ऊन सम्बधित पशुओं का पालन राजस्थान में किया जाता है। इस कारण स्थानीय कच्चे माल की उपलब्धता के कारण ऊनी कम्बल तथा नमदे बनने का कार्य बीकानेर, जोधपुर, बाडमेर व पाली में किया जाता है।

07. सूती वस्त्र उद्योग–

राजस्थान में सूती वस्त्र उद्योग अभी नूतन अवस्था में है। यहां चम्बल व भाखड़ा नांगल परियोजनाओं से सस्ती विद्युत तथा हाडौती के पठारी तथा सिंचित घग्घर के मैदान से कपास के उत्पादन से भीलवाड़ा, उदयपुर, कोटा, गंगानगर, पाली में सूती वस्त्र मिलें स्थापित है यहां पर कृत्रिम नमी बनाए रखने के लिए मशीनों का प्रयोग किया जाता है। यहां देश का 4 प्रतिशत उत्पादन होता है। उत्पादन मे सूटिंग व शर्टिंग का कपड़ा प्रमुखता से बनाया जाता है ।

08. तिलहन उद्योग–

देश के तिलहन उत्पादन में राजस्थान प्रथम है। इस कारण मूंगफली , सरसो , सोयाबीन , अलसी , अरण्डी के तेल को निकालने की इकाईयां भरतपुर, अलवर, जयपुर, दौसा, कोटा बून्दी में स्थापित है।

09. अन्य उद्योग में –

चीनी उद्योग बूंदी, चितौड़, भीलवाडा में, ग्वार गम उद्योग चुरू, जोधपुर, बाडमेर, कागज उद्योग घोसूण्डा, कोटा भीलवाड़ा, उदयपुर, बासवाड़ा में स्थापित है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

01. कृषि तथा खनन क्रियाओं के द्वारा प्राप्त किये गये पदार्थो के रासायनिक तथा भौतिक गुणों को मानव के लिए उपयोग हेतु बहुआयामी रूप में परिवर्तन करने की क्रिया को उद्योग कहा जाता है।

02. भारत में औद्योगिक विकास का आधारस्तम्भ तथा अन्य उद्योगों की जननी कहा जाने वाला उद्योग लौह इस्पात उद्योग है।

03. भारत में पंचवर्षीय योजना में ब्रिटिश सहयोग से दुर्गापुर (पं. बंगाल) में, जर्मनी के सहयोग से राउरकेला (उडीसा) में रूस के सहयोग भिलाई (छतीसगढ) में कारखाने स्थापित किये गये।

04. भारत में लौह इस्पात का बोकारो (झारखण्ड) में कारखाना स्थापित है जो कि एशिया का सबसे बड़ा कारखाना है।

05. भारत में आधुनिक स्वरूप का पहला कारखाना 1818 में कलकत्ता के फार्ट ग्लास्टर में खोला गया, किन्तु यह प्रयास विफल रहा 1854 में पहली भारतीय सूती वस्त्र मिल मुम्बई में कवास जी डाबर के द्वारा स्थापित की।

06. महाराष्ट्र– सूती वस्त्र उत्पादन में प्रथम राज्य है यहां 112 मिलें है जिसमें सर्वाधिक 54 मिलें मुम्बई में है जिसे सूती वस्त्र की राजधानी कहा जाता है ।

07. सीमेण्ट का आविष्कार 1824 में इग्लैण्ड के पोर्टलैण्ड में जोसेफ नामक व्यक्ति द्वारा किया गया था, इस कारण वर्तमान में उपयोग मे ली जा रही सीमेण्ट को पोर्टलैण्ड सीमेण्ट कहा जाता है।

08. राजस्थान में सूती वस्त्र के निर्माण में कृत्रिम नमी बनाए रखने के लिए मशीनों का प्रयोग किया जाता है।

09. देश का अखबारी कागज नेपानगर मध्यप्रदेश तथा होशंगाबाद में नोट छापने के कागज का सरकारी कारखाना है।

10. राज्य में सफेद सीमेण्ट का कारखाना गोटन (नागौर) में है।

11. राज्य में देश में रत्न आभूषण, संगमरमर उद्योग, सीमेण्ट उद्योग, सीसा जस्ता उद्योग, नमक उद्योग, हस्तशिल्प कला उद्योग तथा तिलहन उद्योग में देश में प्रथम स्थान रखता है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

01. भारत में लौह इस्पात उद्योग का प्राचीनतम प्रमाण कौन सा है ?

02. भारत में पहला सूती वस्त्र कारखाना कहाँ तथा कब स्थापित हुआ है ?

03. विनिर्माण उद्योग से क्या आशय है ?

04. भारत में पहला लौह इस्पात कारखाना कहाँ स्थापित किया था?

05. राजस्थान में सूती वस्त्र उद्योग किन जिलों में है ?

06. भारत में नोट छापने का कारखाना कहाँ पर है ?

07. भारत में सीसा व जस्ता उद्योग किन राज्यों में स्थापित है ?

08. पूर्व का बोस्टन के नाम से किसे पुकारा जाता है ?

09. मेग्नेशियम सल्फेट तथा सोडियम सल्फेट के कारखाने कहाँ पर है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

10. भारत में सूती वस्त्र उद्योग के विकास पर प्रकाश डालिए ?
11. भारत में लौह इस्पात उद्योग के विकास पर प्रकाश डालिए ?
12. भारत में सीमेण्ट उद्योग के विकास पर प्रकाश डालिए ?
13. भारत में कागज उद्योग के वितरण पर प्रकाश डालिए ?
14. राजस्थान में सीमेण्ट उद्योग के विकास पर प्रकाश डालिए ?
15. राजस्थान में औद्यागिक विकास पर प्रकाश डालिए ?

निबंधात्मक प्रश्न–

01. भारत में लौह इस्पात उद्योग के वितरण तथा उत्पादन प्रकाश डालिए?
02. भारत में सूती वस्त्र उद्योग के वितरण पर वर्णन कीजिए?
03. भारत में औद्योगिक प्रदूषण का वर्णन कीजिए?
04. राजस्थान के प्रमुख उद्योगों का वर्णन कीजिए?

अध्याय 11

विनिर्माण उद्योग

परिचय–

कृषि तथा खनन क्रियाओं के द्वारा प्राप्त किये गये पदार्थो को रासायनिक तथा भौतिक गुणों को मानव उपयोग के लिए बहुआयामी रूप में परिवर्तन करने की क्रिया को उद्योग कहा जाता है जैसे कपास से सूती वस्त्रों का निर्माण करना। वर्तमान अर्थव्यवस्था के आधार स्तम्भों में उद्योग महत्वपूर्ण कड़ी है जिससे जहां रोजगार का सृजन होता है वहीं उत्पादन से व्यापार तथा सम्बधित आर्थिक घटकों का विकास होता है जो आधुनिक अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करता है।

भारत में उद्योग साक्ष्य के रूप में सूती कपड़े ,मिटटी के बर्तन तथा काँसे की मूर्तियाँ सिन्धुसभ्यता में मिलना तथा कुतुबमीनार के पास स्थित जंगरोधी लोह स्तम्भ भारतीय प्राचीन औद्योगिक विकास का द्योतक है। यहाँ तक कि भारत तक धातु , वस्त्र, स्वर्ण आभूषण तथा जहाजरानी जैसे कुटीर तथा लघु उद्योगों के विकसित स्वरूप के कारण भारत सोने की चिडियां के नाम से विख्यात था परन्तु अंग्रेजी आगमन तथा उनकी दमनपूर्ण नीतियों के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था के रीढ की हड्डी कहे जाने वाले कुटीर तथा लघु उद्योगो का नष्ट किया गया ।

भारत में आधुनिक उद्योगों को आरम्भ –

1845 मे सूती वस्त्र के मुम्बई में तथा 1855 में जूट उद्योग की स्थापना से भारत में आधुनिक उद्योगों का आरम्भ हुआ। प्रथम विश्व युद्ध तक केवल इन्हीं उद्योगों को विकास हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1948 में प्रथम औद्योगिक नीति को जारी किया गया , जिसमें प्रादेशिक असन्तुलन को कम करते हुए नए रोजगारपरक, कृषि व निर्यात आधारित उद्योगों के विकास पर बल दिया गया, साथ ही धन , कच्चे माल तथा तकनीक की कमी को दूर करके उत्तम श्रेणी व कम लागत उत्पादों का निर्माण करना। योजना आयेाग के माध्यम से विकास का मार्ग प्रशस्त किया गया। योजना आयेाग ने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से लौह इस्पात उद्योग , सूती वस्त्र, सीमेन्ट उद्योग, कागज, उद्योग, चीनी उद्योगों का विकास किया गया।

भारत मे लौह इस्पात उद्योग –

यह उद्योग भारत ही नहीं , विश्व में औद्योगिक विकास का आधार स्तम्भ रहा है साथ ही अन्य उद्योगों की जननी कहा जाने वाला उद्योग जिसकी स्थापना भारत में पश्चिम बंगाल में कुल्टी नामक नगर बाराकर आयरन वर्क्स के नाम से स्थापित हुई। परन्तु वास्तविक शुरूआत जमशेद जी टाटा ने 1907 में सांकची मे टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी नाम से स्थापित की बाद में 1909 आसनसोल के निकट हीरापुर में भारतीय लोहा इस्पात कम्पनी से खोला गया। सन् 1936 में कुल्टी व हीरापुर के दोनों कारखानों को मिला कर इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी मे मिला दिए। सन् 1937 में बर्नपुर में स्टील कॉरपोरेशन आफ बंगाल की स्थापना की गई तथा 1953 में इसे इस्को (IISCO) में मिला दिया । इस प्रकार से लौह इस्पात उद्योग की शुरूआत बीसवीं सदी मे होती है।

स्वतंत्रता के बाद इस उद्योग का विकास विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओ के माध्यम किया गया जिसमे द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे ब्रिटिश सहयोग से दुर्गापुर (पं.बंगाल) में, जर्मनी के सहयोग से राउरकेला (उडीसा) में तथा रूस के सहयोग भिलाई (छतीसगढ) में कारखाने स्थापित किये गये। आरम्भ में इनकी क्षमता 10 लाख टन थी बाद मे इनकी क्षमता बढाकर 16 लाख टन कर दी गई । चौथी पंचवर्षीय योजना में बोकारो (झारखण्ड) में उद्योग स्थापित किया जो कि एशिया का सबसे बड़ा है 1973 में इस उद्योग में गुणात्मक वृद्धि करने के उद्धेश्य से स्टील ओथोरिटी ऑफ इण्डिया अर्थात (SAIL) की स्थापना की गई जो देश के सार्वजनिक क्षैत्र के सभी कारखानों का प्रशासनिक कार्य करता है इसमें तीन और कारखाने विशाखापटनम (आन्ध्रपदेश) सेलम (तमिलनाडु) तथा विजयनगर (कर्नाटक) को शामिल किया गया ।

यह उद्योग कच्चे माल तथा सस्ते परिवहन पर आधारित उद्योग है इस कारण इसकी स्थापना कच्चे माल अर्थात लौह अयस्क , कोयला , मैंगनीज तथा कम परिवहन अर्थात खानों के समीप के क्षेत्रों के समीप होती है भारत में लोह इस्पात उद्योग की निम्न इकाईयाँ स्थापित हैं ।

भारत में लौह इस्पात की इकाईयां

क्रम सं	इकाई का नाम	स्थान	लौह अयस्क प्राप्ति क्षेत्र	कोयला प्राप्ति क्षेत्र	मैगनीज प्राप्ति क्षेत्र	जल प्राप्ति क्षेत्र	बाजार	उत्पादन क्षमता
1	TISCO	जमशेदपुर	नोआमंण्डी तथा गुरूमहिसानी खानो से	झरिया तथा बोकारो से	क्योंझर की जोडा खानो से	स्वर्ण रेखा तथा खारकोइ नदियो से	कोलकता तथा मुम्बई एवम समीप का क्षेत्र	40 लाख टन
2	IISCO	कुल्टी हिरापुर बर्नपुर	सिंहभूमि,मयूरभंज ,कोल्हन क्योंझर खानो से	रानीगंज ,झरिया तथा रामनगर	उडीसा तथा झारखण्ड	दामोदर तथा सहायक नदियों से	कोलकता एवम समीप का क्षेत्र	16 लाख टन प्रत्येक की
3	VISCO	भद्रावती	केमनगुडडी खानो	स्थानीय लकडी के कोयले से	स्थानीय स्तर पर	भदावती नदी	बेंगलौर तथा समीप का क्षेत्र	2 लाख
4	राउरकेला इस्पात कारखाना	राउरकेला	सुन्दरगढ तथा क्योंझर की खानो से	झारिया तथा तलचर की खानो से	बसापानी तथा बोलानी खानो से	ब्राहमनी नदी से	समीप का औद्योगिक क्षेत्र	11 लाख टन
5	भिलाई इस्पात कारखाना	भिलाई	डल्ली राजहरा की खानो से	कोरबा और करगली खानो से	भण्डारा और बालाघाट की खानो से	स्थानीय स्तर	समीप का औद्योगिक क्षेत्र	35 लाख टन
6	दुर्गापुर इस्पात कारखाना	दुर्गापुर	नोआमंण्डी तथा गुआ खानो से	झरिया तथा रानीगंज से	क्योंझर की जामदा खानो से	दामोदर तथा सहायक नदियों से	कोलकता तथा मु समीप का क्षेत्र	15 लाख टन
7	बोकारो इस्पात कारखाना	बोकारो	क्योंझर की किरीबुरू खानो से	झरिया से	क्योंझर की खानो से	दामोदर तथा बोकारो नदियों से	कोलकता तथा मु समीप का क्षेत्र	25 लाख टन
8	विशाखापटनम इस्पात कारखाना	विशाखापटनम	बैलाडिला खानो से	दामोदर घाटी	उडीसा तथा छत्तीसगढ	तटवर्ती भाग से	समीप का औद्योगिक क्षेत्र	3 लाख टन

2015 में भारत विश्वभर में कच्चे लोहा का तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश बन गया है जबकि वर्ष 2003 में वह 8वें स्थान पर था। भारत डायरेक्ट रेड्यूस्ड आयरन (डी आर आई) या स्पंज आयरन का सबसे बड़ा उत्पादक है। चीन और अमेरिका के बाद भारत विश्वभर में तैयार इस्पात का तीसरा सबसे बड़ा उपभोक्ता भी है। इस्पात क्षेत्र देश के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 2 प्रतिशत का योगदान देता है और 6 लाख से अधिक लोग इस क्षेत्र में कार्यरत हैं।

सूती वस्त्र उद्योग –

यह उद्योग भारत का प्राचीन उद्योग रहा है। भारतीय वेदों व सिन्धु घाटी सभ्यता में वस्त्र निर्माण का वर्णन मिलता है। यह ऐसा उद्योग है जिसमे सर्वाधिक रोजगार का सृजन होता है इस कारण यह उद्योग विस्तार, उत्पादन तथा रोजगार की दृष्टि से देश में प्रथम है। विश्व में सूती वस्त्र उत्पादन में भारत चीन के बाद दूसरा बड़ा देश है।

भारत में आधुनिक स्वरूप का पहला कारखाना 1818 में कलकत्ता के फोर्ट ग्लास्टर में खोला गया किन्तु यह प्रयास विफल रहा। 1854 में पहली भारतीय सूती वस्त्र मिल मुम्बई में कवास जी डाबर के द्वारा स्थापित की गई। जिसने 1858 में उत्पादन शुरू किया 1861 तक भारत में 12 मिलें खुल चुकी थीं। 1947 तक भारत में 417 मिलें थी जिसमें 3 लाख श्रमिक कार्य कर रहे थे। वर्तमान में इन मिलों की संख्या लगभग 2000 से अधिक हैं जिसमें 40 लाख लोगो का प्रत्यक्ष रोजगार मिला है। यह उद्योग के सकल घरेलू उत्पाद का 14 प्रतिशत भाग प्रदान करता है।

भारत मे इस उद्योग का स्थानीयकरण कपास उत्पादक क्षेत्रों , सस्ते परिवहन व श्रम तथा नम जलवायु वाले भागों में हुआ है इस दृष्टि से निम्न राज्य में विकास हुआ है।

01. महाराष्ट्र–

सूती वस्त्र उत्पादन में प्रथम राज्य है। यहां 112 मिलें है

जिसमें सर्वाधिक 54 मिलें मुम्बई में है जिसे सूती वस्त्र की राजधानी कहा जाता है। इसके अलावा शोलापुर, अकोला, अमरावती, वर्धा सतारा, कोल्हापुर, सांगली, जलगांव तथा नागपुर में मिलें स्थापित है । यहां की मिलों में पोपलीन मलमल, साड़ी , धोती , चद्दर तथा सूटिंग व शर्टिंग का कपड़ा बुना जाता है । यहां पर काली मिटटी का पृष्ठप्रदेश तथा समुद्र की नम जलवायु और मुम्बई बन्दरगाह के कारण इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है यहां पर देश का 39 प्रतिशत सूती वस्त्र का उत्पादन होता है।

02. गुजरात–

सूती वस्त्र उत्पादन में दूसरा बडा राज्य है। यहां 135 मिलें है जिसमें सर्वाधिक 67 मिलें अहमदाबाद में है, जिसे पूर्व का बोस्टन कहा जाता है। इसके अलावा सूरत, वडोदरा, भावनगर, पोरबन्दर, राजकोट तथा भरूच में मिलें स्थापित है । यहां पर कपास का पृष्ठप्रदेश, सस्ते श्रमिक पूंजी की उपलब्धता और कान्दला बन्दरगाह के कारण इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है। यहां पर देश का 35 प्रतिशत सूती वस्त्र का उत्पादन होता है।

03. तमिलनाडु–

दक्षिणी भारत का सबसे बड़ा सूती वस्त्र उत्पादक राज्य है यहा 205 मिले है जिसमें सर्वाधिक मिलें कोयम्बटूर में है जिसे सूती वस्त्र के साथ सूती धागों की मिलें भी है। इसके अलावा मदुरै,चेन्नई, पेराम्बूर, तिरूचिरापल्ली, रामनाथपुरम में मिलें स्थापित है। यहां पर समुद्र की नम जलवायु और चेन्नई बन्दरगाह के कारण इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है। यहां पर देश का 8 प्रतिशत सूती वस्त्र का उत्पादन होता है।

04. मध्यप्रदेश–

यहां 36 मिलें है जिसमें सर्वाधिक इन्दौर, ग्वालियर उज्जैन, देवास, जबलपुर तथा रतलाम में स्थापित है। यहां पर विभिन्न परिवहन मार्गो से जुड़े होने तथा अधिक जनसंख्या से सस्ते श्रमिक के कारण इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है। यहां पर देश का 5 प्रतिशत सूती वस्त्र का उत्पादन होता है।

05. पं. बंगाल–

यहां 45 मिलें है जिसमें सर्वाधिक केन्द्रीयकरण हुगली नदी क्षेत्रों में कलकत्ता हुगली हावडा व चौबीस परगना में है। यहां कपास की आपूर्ति अन्य राज्यों से होने के बाद भी स्थानीय मांग अधिक होने से तथा कोलकत्ता बन्दरगाह के कारण, परिवहन मार्गो से जुडे होने तथा अधिक जनसंख्या से सस्ते श्रमिक के कारण इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है।

06. राजस्थान–

राजस्थान में सूती वस्त्र उद्योग अभी नूतन अवस्था में है यहां चम्बल व भाखडा नांगल परियोजनाओं से सस्ती विद्युत तथा हाडौती के पठारी तथा सिचित घग्घर के मैदान से कपास के उत्पादन से भीलवाडा, उदयपुर, कोटा, गंगानगर, पाली में सूती मिलें स्थापित है यहां पर नमी बनाए रखने के लिए प्रशीलतकों का प्रयोग किया गया है। यहां देश का 4 प्रतिशत उत्पादन होता है उत्पादन में केवल सूटिंग व शर्टिंग का कपड़ा बनाया जाता है ।

07. अन्य राज्य में–

उत्तरप्रदेश जो पूर्णतया आयातित कपास से सूती वस्त्रों का निर्माण कानपुर मुरादाबाद हाथरस वाराणसी, पंजाब में अमृतसर, लुधियाना तथा फगवाडा , कर्नाटका में, बेल्लारी मेसूर बैगलोर, आन्ध्रप्रदेश में, तेलंगाना क्षेत्र की कपास की सुविधा से हैदराबाद, वारगल , गुन्दूर तथा केरल व बिहार में सूती वस्त्र उद्योग स्थापित है।

भारत में सूती वस्त्र उद्योग ने आजादी के पश्चात 12 गुना वृद्धि की है जहां 1947 में 351 करोड वर्ग मीटर का उत्पादन होता था वहीं वर्तमान लगभग 6500 करोड वर्ग मीटर का उत्पादन हो रहा है। परन्तु स्थानीय अधिक मांग अधिक होने के कारण उत्पादन का अधिकांश भाग देश में खपत हो जाता है। इसके बाद शेष भाग को यूरोपीय देशों, अफ्रीका तथा खाड़ी देशों को निर्यात किया जाता है इसके अलावा भारतीय सूती वस्त्र उद्योग निम्न श्रेणी का कच्चा माल, पुरानी मशीनें व कारखाने, कृत्रिम रेशे से निर्मित उत्पाद तथा उत्पादन से ज्यादा लागत के जैसी समस्याओं से भी ग्रस्त है।

सीमेण्ट उद्योग –

यह एक आधारभूत उद्योग है। इस सीमेण्ट का अविष्कार 1824 में इग्लैण्ड के पोर्टलैण्ड में जोसेफ नामक व्यक्ति द्वारा किया गया था , इस कारण वर्तमान में उपयोग मे ली जा रही सीमेण्ट को पोर्टलैण्ड सीमेण्ट कहा जाता है। भारत में आधुनिक स्वरूप का पहला सीमेण्ट कारखाना 1904 में तमिलनाडु के चेन्नई में खोला गया, जिसमे समुन्द्री सीपियो के द्वारा सीमेण्ट बनाई गई थी किन्तु यह प्रयास भी विफल रहा। 1914 में पहला भारतीय सीमेण्ट कारखाना गुजरात के पोरबन्दर में इण्डियन सीमेण्ट कम्पनी के द्वारा स्थापित किया गया है, इसी समय राजस्थान में लाखेरी (किलिक निक्सन कम्पनी के द्वारा) , मध्यप्रदेश (खटाउ कम्पनी के द्वारा) में सतना में गुजरात के पोरबन्दर (टाटा एण्ड संस कम्पनी के द्वारा) कारखाने स्थापित हुए थे। उत्पादन तथा रोजगार की दृष्टि से देश में इस उद्योग का दूसरा स्थान है। विश्व में भी उत्पादन दृष्टि से भारत चीन के बाद दूसरा बडा देश है। इस उद्योग का स्थानीयकरण कच्चे माल व सस्ते परिवहन भागों में हुआ है क्योंकि एक टन सीमेण्ट बनाने के लिए 1.6 चूना पत्थर, 0.38 टन जिप्सम तथा 3.8 टन कोयले की आवश्यकता होती है। निम्न

राज्यों में इस उद्योग का विकास हुआ है –

1. राजस्थान –

सीमेण्ट उत्पादन में प्रथम राज्य है। राजस्थान में सीमेण्ट उद्योग को आगाज 1912–13 में लाखेरी में स्थापना से होता है इसका केन्द्रीयकरण निम्बाहेडा, चितौड़गढ़, कोटा, बून्दी, सवाई माधोपुर तक एक पेटी में पाया जाता है इसके अलावा उदयपुर नागौर, पाली, सिरोही में भी है राज्य में 16 बड़ी तथा 5 मध्यम तथा 130निजी क्षेत्र की इकाइयां हैं। सीमेण्ट की 06 बड़ी इकाईयां चितौडगढ जिले में है इस कारण इसे राज्य की सीमेण्ट नगरी कहा जाता है। राजस्थान राज्य देश के कुल उत्पादन का 16 प्रतिशत भाग है । राज्य में 90 प्रतिशत पोर्टलैण्ड सीमेण्ट तथा 10 प्रतिशत सफेद सीमेण्ट का निर्माण किया जाता है। राज्य में सफेद सीमेण्ट के कारखाने गोटन (नागौर) तथा खारिया खंगार (जोधपुर) में है। राजस्थान में सीमेण्ट के जे.के.सीमेण्ट, मंगलम सीमेण्ट, बिनानी सीमेण्ट, जे.के.लक्ष्मी सीमेण्ट के कारखाने है।

2. मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ –

सीमेण्ट उत्पादन में दोनों राज्य अग्रणी है यहां से देश के कुल उत्पादन का 22 प्रतिशत है यहां केमूर की पहाड़ियां से कच्चा माल मिल जाता है। सर्वाधिक 17 बडे कारखाने कटनी, सतना, दुर्ग, मंधार, बनमोर, नीमच, रतलाम, देवास, नागदा अकलतारा, जामुल तिल्दा तथा मेहर में हैं।

3. गुजरात–

सीमेण्ट उत्पादन में चौथा राज्य है। यहां सीमेण्ट की 16 बडी इकाईयां है। यहां पर देश का 9.4 प्रतिशत सीमेण्ट उत्पादन होता है। यहां पर अहमदाबाद, भावनगर, पोरबन्दर, राजकोट, ओखा, वेरावल, जामनगर, द्वारका में कारखाने स्थापित है। यहां पर सीमेण्ट समुद्री सीपियों, सस्ते श्रमिक पूंजी की उपलब्धता और कान्दला बन्दरगाह के कारण इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है।

4. तमिलनाडु–

सीमेण्ट उत्पादन में राज्य अग्रणी है। यहां तमिलनाडु के पठार से कच्चा माल मिल जाता है। सर्वाधिक बड़े कारखाने तिरूनवेली, डालमियापुरम, तलायथू, शंकरदुर्ग, राजमलायम मदंकराची ,आत्यिआलर में है।

5. अन्य राज्य–

उतरप्रदेश व झारखण्ड जो कि 4.8 तथा 4.4 प्रतिशत देश का उत्पादन करता है यहां पर चुर्क, चोपन, चुनार , डाला तथा झारखण्ड में पटंल, सिन्दी में कारखाने हैं। कर्नाटक में पश्चिमी घाट तथा कर्नाटक पठार के कारण भद्रावती, बागलाकोट, बैगलोर बीजापुर गुलबर्गा, आन्ध्रपदेश में तेलगाना व रायलसीमा क्षेत्र की कच्चे माल की सुविधा से हैदराबाद, वारगल, आदिलाबाद

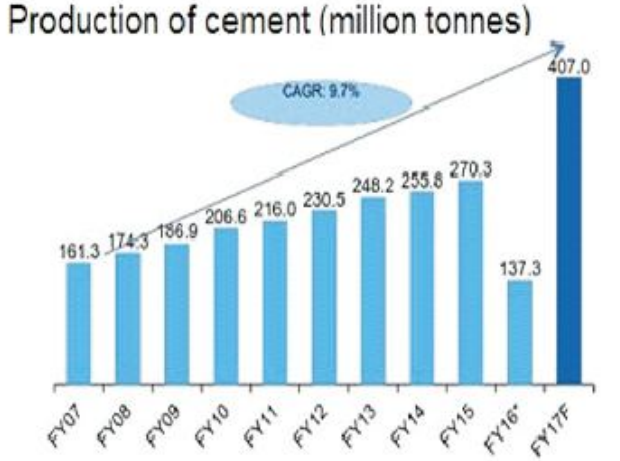

Source: Department of Industrial Policy & Promotion, Office of the Economic Advisor, TechSci Research; FY16*: April-September 2015 ; F - Forecast

विजयवाडा कृष्णा नलकोण्डा में तथा केरल व बिहार में स्थापित है।

भारत में आजादी के समय सीमेण्ट के 23 कारखाने थे जिसमे 05 पाकिस्तान में चले गये जिसकी उत्पादन क्षमता 21.15 लाख टन थी। वहीं वर्तमान में लगभग 124 बड़े तथा 300 छोटे कारखाने है, जिससे 2250 लाख टन का उत्पादन हो रहा है । परन्तु स्थानीय अधिक मांग के कारण अधिकांश भाग देश में खपत हो जाता है। इसके बाद शेष भाग को पुर्वी एशिया तथा अफ्रीकी देशों को निर्यात किया जाता है।

कागज उद्योग –

यह भारत का प्राचीन कुटीर उद्योग रहा है। भारतीय ऋषि मुनियो के द्वारा दिये गये ज्ञान को भोजपत्रों तथा हस्तनिर्मित कागज पर संरक्षित किया गया। यह ऐसा उद्योग है जिसमें कृषि तथा पेड़ों के अवशिष्ट से लुग्दी बना कर कागज तैयार किया जाता है। भारत में 70 प्रतिशत कागज गन्ने की खोई से बनता है। भारत में आधुनिक स्वरूप का पहला कारखाना श्रीरामपुर में लगाया गया। इसके बाद 1810 से 1867 में मद्रास व हुगली में खोला गया किन्तु यह प्रयास विफल रहा 1879 में पहली भारतीय मिल लखनऊ में इण्डियन पेपर मिल के नाम स्थापित हुई। 1881 में टिटागढ पेपर मिल की स्थापना हुई। आजादी के समय 17 कारखाने थे जिसकी उत्पादन क्षमता 19000 टन थी। वर्तमान में लगभग 800 बड़े व छोटे कारखाने है, जिनमें 128 लाख टन का उत्पादन हो रहा है । इस उत्पादित माल का 65 प्रतिशत भाग अखबारी कागज तथा शेष अन्य कार्यो के लिए किया जाता है। देश में इस उद्योग का स्थानीयकरण निर्माण सामग्री के प्राप्ति क्षेत्रों, सस्ते परिवहन वाले भागों में हुआ है इस दृष्टि से निम्न राज्यो में

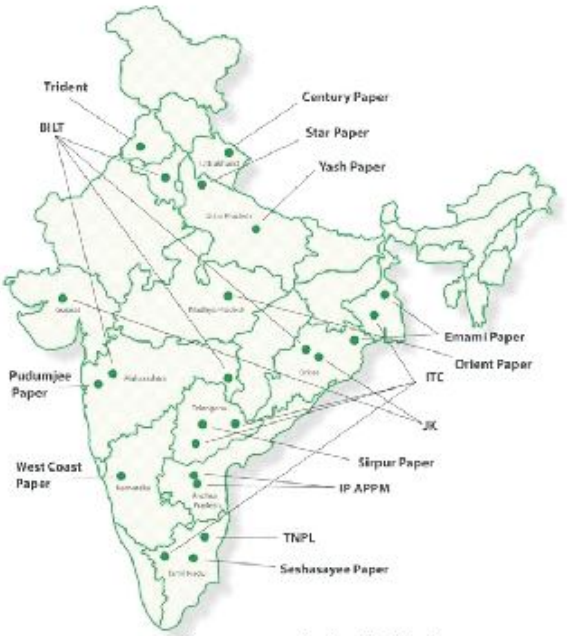

भारत में कागज मीलों की स्थिति

01. पं. बंगाल में टीटागढ , रानीगंज , त्रिवेणी , कोलकता
02. महाराष्ट्र में मुम्बइ पुना चन्द्रपुर खपोली पिपरी तथा काम्पटी में
03. उत्तरप्रदेश में लखनऊ, मेरठ, सहारनपुर, मुजफरनगर, पंतनगर, बस्ती
04. मध्यप्रदेश में भोपाल, रीवा, होसगाबाद, कमलाई
05. कर्नाटक में भद्रावती, बैंगलोर, रामनगर, कृष्णराजसागर
06. गुजरात में सूरत, वापी, बडोदरा, राजकोट में विकास हुआ है।

देश का अखबारी कागज नेपानगर, मध्यप्रदेश तथा होसंगाबाद में नोट छापने के कागज का सरकारी कारखाना है। देश में स्थानीय अधिक मांग के कारण अधिकाश भाग देश में खपत हो जाता है तथा अन्य देशों से भी आयात करना पड़ता है।

औद्योगिक प्रदूषण–

विनिर्माण उद्योग जहां देश के आर्थिक तंत्र में विकास मे सहायक है वही देश में ऐसी परिस्थितियो को जन्म देते है जो मानव सभ्यता तथा प्रकृति में के विनाश में सहायक रहे है देश में जिन क्षेत्रों में औद्योगिकरण हुआ वहा नगरीयकरण भी तीव्र गति से हुआ जैसे दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद, नागपुर सूरत। इन नगरों जल तथा वायु प्रदूषण का स्तर अत्यधिक उच्च है। देश में केन्द्रीय जल मल नियामक बोर्ड के मतानुसार गंगा तथा उसकी सहायक यमुना के किनारे स्थित चमड़ा, कागज, खाद, रसायन तथा औषधि उद्योगों के अपशिष्ट के कारण बहुत अधिक प्रदूषित हो चुकी हैं। इसी प्रकार गोमती नदी लखनउ के समीप कागज तथा गन्ना उद्योग के अपशिष्ट के कारण अत्यधिक विषाक्त हो चुकी है कि अक्सर मछलिया मरी हुई पायी जाती है एक अध्ययन के मुताबिक देश में 30 प्रतिशत महानगरीय जनसंख्या सांस की

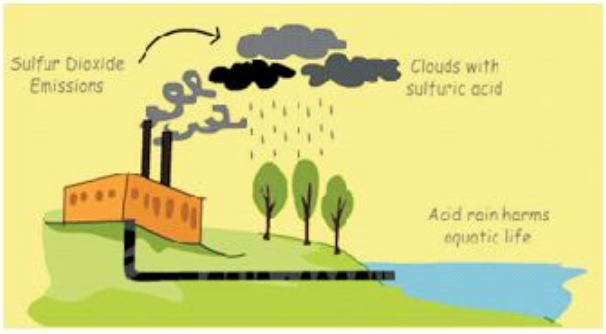

औद्योगिक अपशिष्ट का पर्यायवरण पर प्रभाव

बीमारियां से ग्रसित हो रही है। ये सभी बीमारिया वायु में हानिकारक विषैले तत्वों कार्बन, शीशा, सल्फर व अन्य कारक , नाइट्रोजन व आक्सीजन के साथ क्रिया करके मानव शरीर तथा मृदा तथा जल पर हानिकारक प्रभाव डालते है जिससे मानव में विभिन्न भयानक बीमारियों जैसे कैन्सर ,रक्त तथा चमडी सम्बधी बीमारियों को जन्म देती है ।

औद्योगिक अपशिष्ट जल तथा वायु के माध्यम से समुद्री भागों में पहुंच कर स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करता है जिससे भोजन श्रृंखला प्रभावित होती है और समुद्री जीव जन्तु तथा वनस्पति मरने लगते है। समुद्री जहाजों के अपशिष्ट का निस्तारण , समुद्रों में तेल टेकरों से होने वाली दुर्धटनाएं, समुद्रों में तेल का निकालना और तटों के समीप शोधन करना तथा परमाणु बम्ब के परिक्षण ऐसे कार्य हैं जो समुद्री जल को प्रदूषित कर रहे हैं।

भारत में हर आठ में से एक पक्षी लुप्त होने के कगार पर है क्योंकि औद्योगिकरण व परिवहन के साधनों तथा मार्गो से इनके प्राकृतिक आवास तथा भोजन के स्त्रोत समाप्त होते जा रहे है। इसी प्रकार नगरों में वायु प्रदूषण से अम्ल वर्षा तथा गन्दे जल को प्रवाहित करने से भूमि में विषैले तत्वों के मिलने से उर्वरकता में कमी हो रही है साथ ही तापमान में वृद्धि से सदावाहिनी नदियों के जल स्त्रोत गंगोत्री, यमुनोत्री सुखने के कगार पर है।

यदि औद्योगिकरण का यही रूप रहा तो वो दिन दूर नहीं कि मानव विभिन्न बिमारियों से ग्रसित होकर अकाल, सूखे तथा बाढ जैसी आपदाओं से झूझता नजर आएगा तथा आगामी पीढ़ियों मे पास कुछ भी शेष नहीं रहेगा। अतः हमें सबंर्धित तथा सुविकसित औद्योगिकरण विकास का मार्ग अपनाना होगा ।

राजस्थान में औद्योगिकरण –

राजस्थान औद्योगिक रूप से अन्य राज्यों से पिछडा राज्य है। इसका देश के कुल औद्योगिक उत्पादन में 6 प्रतिशत योगदान है तथा राज्य के सकल घरेलु उत्पाद में उद्योगों का 30 प्रतिशत योगदान है। यहां पर अधिकांश उद्योग खनिज तथा कृषि आधारित है जो कि राजस्थान के अलवर, दौसा, जोधपुर, भीलवाडा, राजसमन्द, कोटा, बारां, अजमेर तथा पाली जिलों में केन्द्रित है। रत्न, आभूषण, संगमरमर उद्योग, सीमेण्ट उद्योग, सीसा जस्ता उद्योग, नमक उद्योग, हस्तशिल्प कला उद्योग तथा तिलहन उद्योग में राजस्थान देश में प्रथम स्थान रखता है।

राजस्थान के प्रमुख उद्योग

01. सीसा जस्ता उद्योग–

राजस्थान की अरावली पर्वत में देश में सर्वाधिक सीसे जस्ते के भंडार होने के कारण यह उद्योग जावर, देबारी (उदयपुर) तथा चन्देरिया (चितौड़) राजपुरा दरीबा तथा रामपुरा दरीबा में स्थापित है। ये उद्योग खानों के पास ही स्थापित हैं। शेष कच्चा माल पुर बनेडा, चौथ का बरवाडा , गुढा किशोरीदास से मंगाया जाता है इन उद्योगों से देश के उत्पादन 95 प्रतिशत राजस्थान से जाता है।

02.सीमेण्ट उद्योग–

राजस्थान सीमेण्ट उत्पादन में प्रथम है। राजस्थान में सीमेण्ट उद्योग की शुरूआत 1912–13 में लाखेरी से हुई। इसका केन्दीयकरण निम्बाहेड़ा चितौड़गढ़, कोटा, बून्दी, सवाई माधोपुर तक एक पेटी में पाया जाता है। इसके अलावा उदयपुर, नागौर, पाली, सिरोही में भी है। राज्य में 16 बड़ी तथा 5 मध्यम तथा 130 निजी क्षेत्र की इकाइयां है। सीमेण्ट की 06 बड़ी इकाईयां चितौड़गढ़ जिले में है इस कारण इसे राज्य की सीमेण्ट नगरी कहा जाता है। देश के कुल उत्पादन का 16 प्रतिशत भाग राजस्थान में होता है । राज्य में 90 प्रतिशत पोटलैण्ड सीमेण्ट तथा 10 प्रतिशत सफेद सीमेण्ट का निर्माण किया जाता है ।

03. हस्तशिल्प उद्योग –

रत्न तराशने तथा आभूषणों का निर्माण कार्य जयपुर, प्रतापगढ व नाथद्वारा, मूर्ति तथा कलात्मक सामान जयपुर जोधपुर, उदयपुर में, लाख का सामान व चूड़ियां जयपुर तथा जोधपुर, रंगाई व छपाई तथा बन्धेज उद्योग बाड़मेर पाली व सागानेर मे, चमडे का सामान जोधपुर, जयपुर, अजमेर तथा बाडमेर में किया जाता है ।

04. मारबल उद्योग –

राजस्थान में उच्च श्रेणी का संगमरमर पाया जाता है। इस कारण मकराना, सिरोही, राजनगर, चितौड़, उदयपुर, किशनगढ में संगमरमर के कटाई, पोलिश व घिसाई करने की इकाइयां लगी है।

05. नमक व रसायन उद्योग –

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों तथा खारे पानी की झीलो से नमक बनाने को कार्य प्राचीन समय से हो रहा है। देश के सबसे बडी खारे पानी की झील सांभर देश सर्वाधिक नमक उत्पादित करती है। इसके अलावा डीडवाना में सोडियम सल्फेट का कारखाना, पचपदरा में मैग्नेशियम सल्फेट का कारखाना स्थापित है ।

06. ऊन उद्योग–

देश की सर्वाधिक भेड़ तथा ऊन सम्बधित पशुओं का पालन राजस्थान में किया जाता है। इस कारण स्थानीय कच्चे माल की उपलब्धता के कारण ऊनी कम्बल तथा नमदे बनने का कार्य बीकानेर, जोधपुर, बाडमेर व पाली में किया जाता है।

07. सूती वस्त्र उद्योग–

राजस्थान में सूती वस्त्र उद्योग अभी नूतन अवस्था में है। यहां चम्बल व भाखड़ा नांगल परियोजनाओं से सस्ती विद्युत तथा हाडौती के पठारी तथा सिंचित घग्घर के मैदान से कपास के उत्पादन से भीलवाड़ा, उदयपुर, कोटा, गंगानगर, पाली में सूती वस्त्र मिलें स्थापित है यहां पर कृत्रिम नमी बनाए रखने के लिए मशीनों का प्रयोग किया जाता है। यहां देश का 4 प्रतिशत उत्पादन होता है। उत्पादन मे सूटिंग व शर्टिंग का कपड़ा प्रमुखता से बनाया जाता है ।

08. तिलहन उद्योग–

देश के तिलहन उत्पादन में राजस्थान प्रथम है। इस कारण मूंगफली , सरसो , सोयाबीन , अलसी , अरण्डी के तेल को निकालने की इकाईयां भरतपुर, अलवर, जयपुर, दौसा, कोटा बून्दी में स्थापित है।

09. अन्य उद्योग में –

चीनी उद्योग बूंदी, चितौड़, भीलवाडा में, ग्वार गम उद्योग चुरू, जोधपुर, बाडमेर, कागज उद्योग घोसूण्डा, कोटा भीलवाड़ा, उदयपुर, बासवाड़ा में स्थापित है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

01. कृषि तथा खनन क्रियाओं के द्वारा प्राप्त किये गये पदार्थो के रासायनिक तथा भौतिक गुणों को मानव के लिए उपयोग हेतु बहुआयामी रूप में परिवर्तन करने की क्रिया को उद्योग कहा जाता है।

02. भारत में औद्योगिक विकास का आधारस्तम्भ तथा अन्य उद्योगों की जननी कहा जाने वाला उद्योग लौह इस्पात उद्योग है।

03. भारत में पंचवर्षीय योजना में ब्रिटिश सहयोग से दुर्गापुर (पं. बंगाल) में, जर्मनी के सहयोग से राउरकेला (उडीसा) में रूस के सहयोग भिलाई (छतीसगढ) में कारखाने स्थापित किये गये।

04. भारत में लौह इस्पात का बोकारो (झारखण्ड) में कारखाना स्थापित है जो कि एशिया का सबसे बड़ा कारखाना है।

05. भारत में आधुनिक स्वरूप का पहला कारखाना 1818 में कलकत्ता के फार्ट ग्लास्टर में खोला गया, किन्तु यह प्रयास विफल रहा 1854 में पहली भारतीय सूती वस्त्र मिल मुम्बई में कवास जी डाबर के द्वारा स्थापित की।

06. महाराष्ट्र– सूती वस्त्र उत्पादन में प्रथम राज्य है यहां 112 मिलें है जिसमें सर्वाधिक 54 मिलें मुम्बई में है जिसे सूती वस्त्र की राजधानी कहा जाता है ।

07. सीमेण्ट का आविष्कार 1824 में इग्लैण्ड के पोर्टलैण्ड में जोसेफ नामक व्यक्ति द्वारा किया गया था, इस कारण वर्तमान में उपयोग मे ली जा रही सीमेण्ट को पोर्टलैण्ड सीमेण्ट कहा जाता है।

08. राजस्थान में सूती वस्त्र के निर्माण में कृत्रिम नमी बनाए रखने के लिए मशीनों का प्रयोग किया जाता है।

09. देश का अखबारी कागज नेपानगर मध्यप्रदेश तथा होशंगाबाद में नोट छापने के कागज का सरकारी कारखाना है।

10. राज्य में सफेद सीमेण्ट का कारखाना गोटन (नागौर) में है।

11. राज्य में देश में रत्न आभूषण, संगमरमर उद्योग, सीमेण्ट उद्योग, सीसा जस्ता उद्योग, नमक उद्योग, हस्तशिल्प कला उद्योग तथा तिलहन उद्योग में देश में प्रथम स्थान रखता है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

01. भारत में लौह इस्पात उद्योग का प्राचीनतम प्रमाण कौन सा है ?

02. भारत में पहला सूती वस्त्र कारखाना कहाँ तथा कब स्थापित हुआ है ?

03. विनिर्माण उद्योग से क्या आशय है ?

04. भारत में पहला लौह इस्पात कारखाना कहाँ स्थापित किया था?

05. राजस्थान में सूती वस्त्र उद्योग किन जिलों में है ?

06. भारत में नोट छापने का कारखाना कहाँ पर है ?

07. भारत में सीसा व जस्ता उद्योग किन राज्यों में स्थापित है ?

08. पूर्व का बोस्टन के नाम से किसे पुकारा जाता है ?

09. मेग्नेशियम सल्फेट तथा सोडियम सल्फेट के कारखाने कहाँ पर है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

10. भारत में सूती वस्त्र उद्योग के विकास पर प्रकाश डालिए ?
11. भारत में लौह इस्पात उद्योग के विकास पर प्रकाश डालिए ?
12. भारत में सीमेण्ट उद्योग के विकास पर प्रकाश डालिए ?
13. भारत में कागज उद्योग के वितरण पर प्रकाश डालिए ?
14. राजस्थान में सीमेण्ट उद्योग के विकास पर प्रकाश डालिए ?
15. राजस्थान में औद्यागिक विकास पर प्रकाश डालिए ?

निबंधात्मक प्रश्न–

01. भारत में लौह इस्पात उद्योग के वितरण तथा उत्पादन प्रकाश डालिए?
02. भारत में सूती वस्त्र उद्योग के वितरण पर वर्णन कीजिए?
03. भारत में औद्योगिक प्रदूषण का वर्णन कीजिए?
04. राजस्थान के प्रमुख उद्योगों का वर्णन कीजिए?

अध्याय – 12

मानव संसाधन

पर्यावरण में उपलब्ध वे सभी वस्तुएं जो हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रयुक्त होती हैं संसाधन कहलाती हैं। मानव अपनी बुद्धि और प्रौद्योगिकी से किसी भी वस्तु को अधिक मूल्यवान संसाधन में परिवर्तित करने में सक्षम है। मानव न सिर्फ नए नए संसाधनों का रचियता है बल्कि वह स्वयं भी एक महत्वपूर्ण संसाधन है।

मानव संसाधन –

मनुष्य स्वयं एक संसाधन है। मनुष्य को मानव संसाधन, उनकी संख्या तथा शारीरिक तथा मानसिक शक्ति बनाती है। मनुष्य में शारीरिक तथा मानसिक शक्ति का विकास शिक्षा, तकनीक, स्वास्थ्य तथा कौशल की सहायता से होता है। इनकी सहायता से ही मनुष्य नई वस्तुओं का निर्माण करने योग्य बनता है।

मानव संसाधन वह अवधारणा है जो जनसंख्या को अर्थव्यवस्था पर दायित्व से अधिक परिसंपत्ति के रूप में देखती है। मानव जनसंख्या को जब शिक्षा, प्रशिक्षण, चिकित्सा व अन्य सेवाओं में निवेश किया जाता है तो इस निवेश के परिणामस्वरूप मानव जनसंख्या मानव संसाधन के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

क्या आप मानव रहित विश्व की कल्पना कर सकते हैं? प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग व सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण मानव ही करता है। समाज तथा अर्थव्यवस्था के विकास में मानव का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। मानव संसाधनों का निर्माण एवं उपयोग तो करते ही है, वे स्वयं भी विभिन्न गुणों वाले संसाधन होते है। कोयला एक चट्टान का टुकड़ा ही था तब तक कि मानव ने उसे प्राप्त करने की तकनीक का आविष्कार कर उसे संसाधन नहीं बनाया।

संसाधन के रूप में लोग वर्तमान उत्पादन, कौशल उत्पादन के संदर्भ में किसी देश के कार्यरत लोगों का वर्णन करने का एक तरीका है। उत्पादक पहलू की दृष्टि से जनसंख्या पर विचार करना राष्ट्रीय सकल उत्पादन के सृजन में उनके योगदान की क्षमता पर बल देता है। दूसरे संसाधनों की भाँति ही जनसंख्या भी एक संसाधन है। "संसाधन" विशाल जनसंख्या का एक सकारात्मक पहलू है।

जनसंख्या –

जनसंख्या से तात्पर्य किसी निश्चत स्थान में एक निश्चित समय में रहने वाले व्यक्तियों की कुल संख्या से होता है। सामाजिक अध्ययन में जनसंख्या आधारी तत्व है। यह एक संदर्भ बिन्दु है जिसके द्वारा दूसरे तत्त्वों का अवलोकन किया जाता है तथा उसके अर्थ एवं महत्व ज्ञात किये जाते हैं। 'संसाधन' 'आपदा' एवं 'विनाश' का अर्थ केवल मानव के लिए ही महत्वपूर्ण है। उनकी संख्या, वृद्धि, वितरण एवं विशेषताएँ या गुण पर्यावरण के सभी स्वरूपों को समझने तथा उनकी विवेचना करने के लिए मूल पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं। मानव पृथ्वी के संसाधनों का उत्पादन एवं उपयोग करता है। अतः यह जानकारी आवश्यक है कि किस देश में कितने लोग निवास करते हैं? वे कहाँ एवं कैसे रहते हैं? उनकी संख्याओं में वृद्धि क्यों हो रही है तथा उनकी कौन–कौनसी विशेषताएँ हैं?

भारतीय जनगणना हमारे देश की जनसंख्या से संबंधित जानकारी हमें प्रदान करती है। जनसंख्या की परिभाषा में तीन प्रमुख बिन्दुओं पर विचार करते है :

1. **जनसंख्या का आकार, वितरण एवं घनत्व : व्यक्तियों की कुल संख्या अर्थात पुरुष, महिला एवं बच्चे तथा किसी निश्चित स्थान पर कितने व्यक्ति निवास करते हैं।**
2. **जनसंख्या वृद्धि एवं जनसंख्या परिवर्तन : किसी स्थान पर जनसंख्या में निश्चित समय अवधि में जनसंख्या में वृद्धि तथा उसमें परिवर्तन व उसका कारण।**
3. **जनसंख्या के गुण एवं विशेषताएँ – व्यक्तियों की उम्र, लिंगानुपात अर्थात पुरुषों व महिलाओं की संख्या का अनुपात, उनका साक्षरता स्तर, व्यावसायिक संरचना एवं स्वास्थ्य की अवस्था इत्यादि।**

जनसंख्या का आकार एवं वितरण –

भारत की जनसंख्या का आकार बहुत बड़ा है। विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है तथा तीसरे चौथे व पाँचवे स्थान पर क्रमशः संयुक्त राज्य अमेरिका, इंडोनेशिया एवं ब्राजील है।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 1,21,01,93,422 थी जो कि विश्व की कुल जनसंख्या का 17.3 प्रतिशत लगभग था। यह जनसंख्या भारत के 32.8 लाख वर्ग किमी (विश्व के स्थलीय भू–भाग का 2.4 प्रतिशत) के विशाल क्षेत्र में असमान रूप से वितरित है।

क्र. सं.	देश	आधार तिथि	जनसंख्या (करोड़ में)	दशकीय वृद्धि (प्रतिशत में)
1.	चीन	01.11.2010	1,34.10	5.43
2.	भारत	01.03.2011	1,21.02	17.64
3.	संयुक्त राज्य अमेरिका	01.04.2010	30.87	7.26
4.	इण्डोनेशिया	31.05.2010	23.76	15.05
5.	ब्राजील	01.08.2010	19.07	9.39
6.	पाकिस्तान	01.07.2010	18.46	24.78
7.	बांग्लादेश	01.07.2010	16.44	16.76
8.	नाइजीरिया	01.07.2010	15.83	26.84
9.	रूसी गणराज्य	01.07.2010	14.04	–4.29
10.	जापान	01.10.2010	12.81	1.1
	अन्य देश	01.07.2010	284.47	15.43
	विश्व	01.07.2010	690.87	12.97

* स्रोत – www.censusindia.gov.in

तालिका 12.1 : विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश

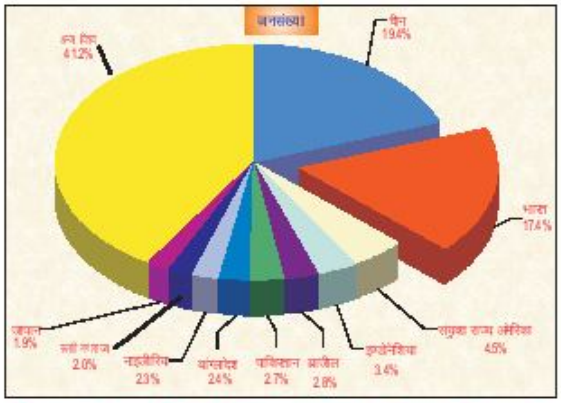

चित्र 12.1 : विश्व की जनसंख्या में भारत का भाग

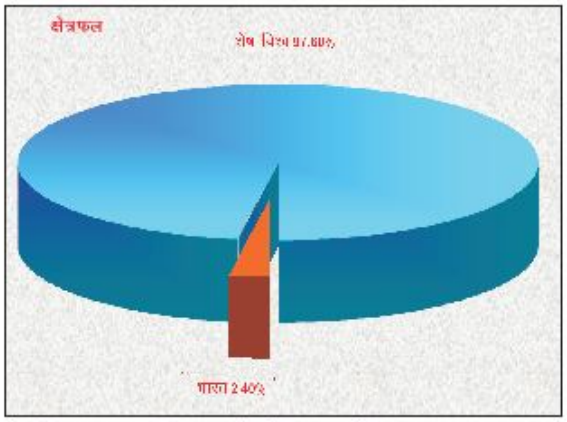

चित्र 12.2 : विश्व के क्षेत्रफल में भारत का भाग

2011 की जनगणना के अनुसार देश की सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य उत्तर प्रदेश है जिसकी कुल जनसंख्या 19,95,81,477 है। उत्तरप्रदेश में देश की कुल जनसंख्या का 16.49 प्रतिशत भाग निवास करता है इसके विपरीत हिमालय क्षेत्र के राज्य सिक्किम की जनसंख्या केवल 6,07,688 है जो देश की कुल जनसंख्या का 0.05 प्रतिशत भाग है। लक्षद्वीप में केवल 64,429 लोग निवास करते है।

भारत की लगभग आधी जनसंख्या केवल पाँच राज्यों उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल एवं आंध्र प्रदेश में निवास करती है। जनसंख्या की दृष्टि से राजस्थान का भारत में आठवाँ स्थान है तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान सबसे बड़ा राज्य है।

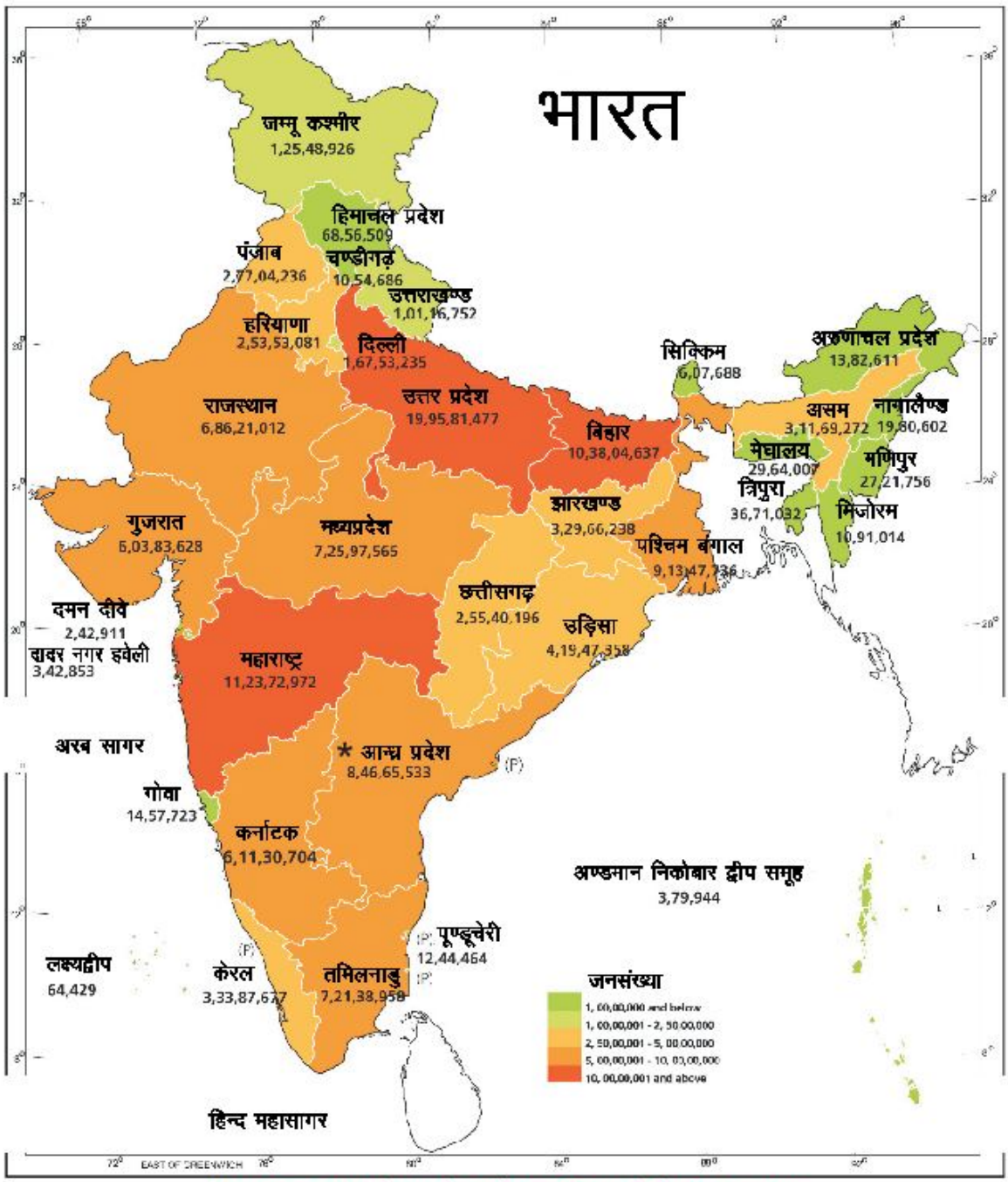

चित्र 12.3 : 2011 में राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों की जनसंख्या

*तेलंगाना की स्थापना 2 जून 2014 में होने के कारण जनसंख्या आंध्रप्रदेश के साथ ही सम्मिलित है।

राज्य में स्थान 2011	जिला	जनसंख्या 2011	जनसंख्या 2001	राज्य में स्थान 2001
1.	जयपुर	6663971	5251071	1
2.	जोधपुर	3685681	2886505	3
3.	अलवर	3671999	2991552	2
4.	नागौर	3309234	2775058	4
5.	उदयपुर	3067549	2481201	5
6.	सीकर	2677737	2287788	6
7.	बाड़मेर	2604453	1964635	10
8.	अजमेर	2584913	2178447	7
9.	भरतपुर	2549121	2100020	8
10.	भीलवाड़ा	2410459	2020969	9
11.	बीकानेर	2367745	1902110	12
12.	झुंझुंनू	2139658	1913689	11
13.	चूरू	2041172	1696039	15
14.	पाली	2036533	1820251	13
15.	गंगानगर	1969520	1769423	14
16.	कोटा	1950491	1568705	16
17.	जालोर	1830151	1448940	18
18.	बांसवाड़ा	1798194	1420601	19
19.	हनुमानगढ़	1779650	1518005	17
20.	दौसा	1637226	1323002	21
21.	चित्तौड़गढ़	1544392	1330360	20
22.	करौली	1458459	1205686	23
23.	टोंक	1421711	1211671	22
24.	झालावाड़	1411327	1180323	24
25.	डूंगरपुर	1388906	1107643	26
26.	सवाईमाधोपुर	1338114	1117057	25
27	बारां	1223921	1021473	27
28	धौलपुर	1207293	983258	28
29.	राजसमंद	1156263	962523	29
30.	बूँदी	1113725	962620	30
31.	सिरोही	1037165	851107	31
32.	प्रतापगढ़*	868231	706807	32
33.	जैसलमेर	672008	508247	33

*नवनिर्मित जिले

तालिका 12.2 : वर्ष 2001 व 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य के जिलों की कुल जनसंख्या व राज्य में उनका स्थान

2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की जनसंख्या 6,86,21,012 है जो देश की कुल जनसंख्या का 5.67 प्रतिशत भाग है तथा यह 3.42 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर असमान रूप से वितरित है। राजस्थान में सर्वाधिक जनसंख्या वाला जिला जयपुर है जिसकी जनसंख्या 66,63,971 तथा सबसे कम जनसंख्या वाला जिला जैसलमेर है जिसकी कुल जनसंख्या 6,72,008 है।

जनसंख्या वृद्धि –

जनसंख्या वृद्धि का अर्थ होता है किसी विशेष समयान्तराल में (जैसे दस वर्षों में) किसी देश/राज्य/स्थान के निवासियों की संख्या में परिवर्तन। इस प्रकार के परिवर्तन को दो प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है– पहला सापेक्ष वृद्धि तथा दूसरा–प्रतिवर्ष या प्रति दस वर्ष में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन के द्वारा।

किसी स्थान की जनसंख्या में वृद्धि या कमी जन्म और मृत्यु के अन्तर एवं प्रवसन के कारण होती है।

प्रत्येक वर्ष या एक दशक में बढ़ी जनसंख्या कुल जनसंख्या में वृद्धि का परिणाम है। पहले की जनसंख्या (जैसे 2001 की जनसंख्या) को बाद की जनसंख्या (जैसे 2011 की जनसंख्या) से घटाकर इसे प्राप्त किया जाता हैं। इसे निरपेक्ष वृद्धि कहते हैं। किसी वर्ष की मूल जनसंख्या में प्रत्येक 100 व्यक्तियों पर हुई व्यक्तियों की वृद्धि जनसंख्या वृद्धि दर कहलाती है अर्थात यदि किसी स्थान या देश की वार्षिक मूल जनसंख्या में प्रत्येक 100 व्यक्तियों पर यदि 4 व्यक्तियों की वृद्धि होती है तो प्रतिवर्ष जनसंख्या वृद्धि दर 4 प्रतिशत होगी।

वर्ष	कुल जनसंख्या मिलियन (दस लाख में)	एक दशक में सापेक्ष मिलियन वृद्धि (दस लाख में)	वार्षिक वृद्धि दर प्रतिशत
1951	361.0	42.43	1.25
1961	439.2	78.15	1.96
1971	548.2	108.92	2.20
1981	683.3	135.17	2.22
1991	846.4	163.09	2.16
2001	1028.7	182.32	1.97
2011	1,21,0.1	131.45	1.64

तालिका 12.3 : भारत की जनसंख्या की वृद्धि का परिमाण एवं दर

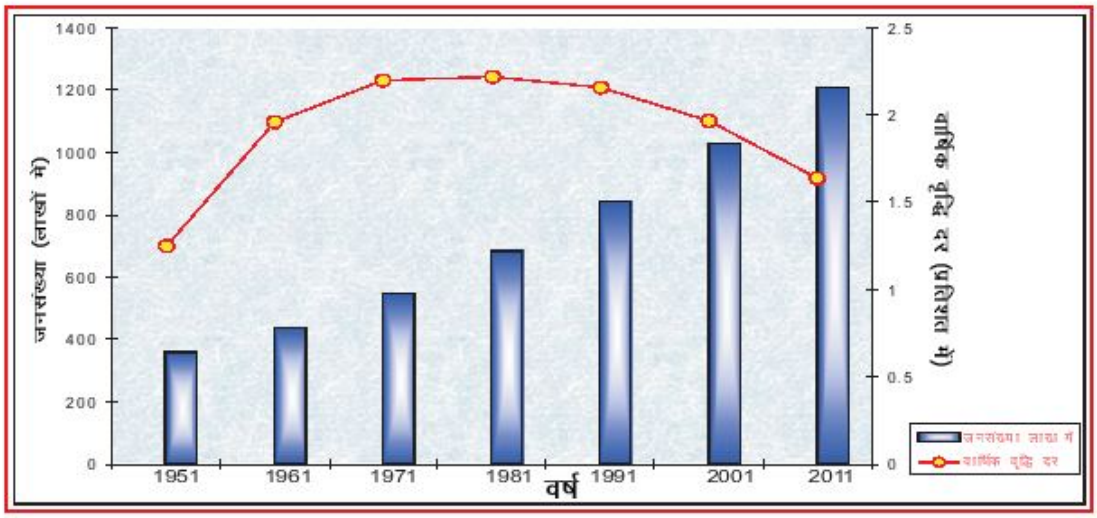

चित्र 12.5 : भारत – कुल जनसंख्या एवं जनसंख्या वृद्धि दर 1951 से 2011

भारत की जनसंख्या 1951 में 3,610 मिलियन से बढ़कर 2011 में 1210.19 मिलियन हो गई है।

सारणी एवं चित्र यह प्रदर्शित करता है कि 1951 से 1981 तक जनसंख्या की वृद्धि दर नियमित रूप से बढ़ रही थी जो 1951 में 3,610 मिलियन से 1981 में 6,830 मिलियन हो गई। ये जनसंख्या में तीव्र वृद्धि की व्याख्या करता है। परन्तु 1981 में वृद्धि दर धीरे–धीरे कम होने लगी। इस दौरान जन्म दर में तेजी से कमी आई।

राजस्थान में भी जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। राज्य की जनसंख्या की दशकीय (दस वर्षों के अन्तराल में) वृद्धि दर 1981 में 32.97 प्रतिशत थी। हालाँकि बाद की जनगणनाओं में जनसंख्या वृद्धि दर कम हुई है। जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर कुछ कम होकर 2001 में 28.41 प्रतिशत तथा 2011 में 21.44 प्रतिशत रही। इसके बावजूद भी यह भारत की 2011 की दशकीय वृद्धि दर 17.64 से बहुत अधिक है। राजस्थान में 2001–2011 के दशक में जनसंख्या वृद्धि दर में बाड़मेर जिले में 32.55 प्रतिशत सबसे अधिक व गंगानगर जिले में 10.06 प्रतिशत सबसे कम रही।

इस बात पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है कि भारत की जनसंख्या बहुत अधिक है। भारत की वर्तमान जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि 122 लाख है जो कि संसाधनों एवं पर्यावरण के संरक्षण को निष्क्रिय करने के लिये पर्याप्त है।

वृद्धि दर में कमी जन्म दर को नियन्त्रित करने के लिये किये गये प्रयासों की सफलता को प्रदर्शित करता है। इसके उपरान्त भी जनसंख्या वृद्धि जारी है तथा 2045 तक भारत चीन को पीछे छोड़ते हुये विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन सकता है।

जनसंख्या वृद्धि के कारण :–

जनसंख्या में होने वाली वृद्धि या परिवर्तन के तीन प्रमुख घटक जन्म दर, मृत्यु दर एवं प्रवास हैं। जन्म दर एवं मृत्यु दर के बीच का अंतर जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि है।

एक वर्ष में प्रति हजार व्यक्तियों में जितने जीवित बच्चों का जन्म होता है उसे जन्म दर कहते हैं। यह वृद्धि एक प्रमुख घटक है क्योंकि भारत में हमेशा जन्म दर, मृत्यु दर से अधिक रही है।

एक वर्ष में प्रति हजार व्यक्तियों में मरने वालों की संख्या को मृत्यु दर कहा जाता है। मृत्यु दर में तेज गिरावट भारत की जनसंख्या वृद्धि दर का प्रमुख कारण है।

1960 तक उच्च जन्म दर एवं मृत्यु दर में लगातार गिरावट के कारण जन्म दर तथा मृत्यु दर में बहुत अधिक अंतर आ गया एवं इसी कारण जनसंख्या वृद्धि दर अधिक हो गई। 1981 से धीरे–धीरे जन्म दर में भी गिरावट प्रारम्भ हो गई जिसके परिणाम स्वरूप जनसंख्या वृद्धि दर में भी गिरावट आई।

जनसंख्या वृद्धि का तीसरा घटक है प्रवास। व्यक्तियों का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में चले जाने को प्रवास कहते हैं। प्रवास आंतरिक (देश के भीतर) या अन्तर्राष्ट्रीय (देशों के बीच) हो सकता है। आंतरिक प्रवास देश जनसंख्या के आकार में

* 1 मिलियन = 10 लाख

कोई परिवर्तन नहीं लाता है लेकिन यह एक देश के भीतर जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करता है। जनसंख्या वितरण एवं उसके घटकों को परिवर्तित करने में प्रवास की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

भारत में अंतरराज्यीय सर्वाधिक प्रवास ग्रामीण से ग्रामीण क्षेत्रों में होता है क्योंकि शादी के बाद महिलाऐं प्रवासित होती हैं। दूसरे नंबर पर प्रवास ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर होता है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में अपकर्षण कारक प्रभावी होते हैं। ये ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी एवं बेरोजगारी की प्रतिकूल अवस्थायें हैं तथा नगर का आकर्षण प्रभाव रोजगार में वृद्धि एवं अच्छे जीवन स्तर को दर्शाता है।

जनसंख्या घनत्व :–

जनसंख्या घनत्व असमान वितरण का चित्रण करता है। प्रति इकाई क्षेत्रफल में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या को जनसंख्या घनत्व कहते हैं।

2011 में भारत का जनसंख्या घनत्व 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था जहाँ राज्यों में बिहार का जनसंख्या घनत्व 1102 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. सर्वाधिक तथा अरुणाचल प्रदेश में 17 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. सबसे कम है।

जनगणना वर्ष	घनत्व प्रति वर्ग कि.मी.)	वास्तविक वृद्धि	प्रतिशत वृद्धि
1901	77	–	–
1911	82	5	6.5
1921	81	–1	–1.2
1931	90	9	11.1
1941	103	13	14.4
1951	117	14	13.6
1961	142	25	21.4
1971	177[1]	35	24.6
1981	216[2]	39	22
1991	267[3]	51	23.6
2001	325[4]	58	21.7
2011	382[5]	57	17.5

तालिका 12.4 : भारत–जनसंख्य घनत्व 1901–2011

राजस्थान का जनसंख्या घनत्व 2011 में 201 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी है। इसमें 2001 में जनसंख्या घनत्व 165 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. की तुलना में 36 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी की वृद्धि हुई है। तालिका 12.6 राज्यस्तरीय जनसंख्या घनत्व के असमान वितरण को दर्शाती है।

राज्य में स्थान 2011	राज्य / जिला	घनत्व (प्रति वर्ग कि.मी)		राज्य में स्थान 2001
		2011	2001	
0	राजस्थान	201	165	0
1.	जयपुर	598	471	1
2.	भरतपुर	503	415	2
3.	दौसा	476	384	3
4.	अलवर	438	357	4
5.	बांसवाड़ा	398	315	7
6	धौलपुर	398	324	5
7.	कोटा	374	301	8
8.	डूंगरपुर	368	294	10
9.	झुंझुनूं	361	323	6
10.	सीकर	346	296	9
11.	अजमेर	305	257	11
12.	राजसमंद	302	258	12
13.	सवाईमाधोपुर	297	248	13
14.	करौली	264	219	14
15.	उदयपुर	242	196	15
16.	भीलवाड़ा	230	193	16
17.	झालावाड़	227	190	17
18	प्रतापगढ़	211	172	18
19.	सिरोही	202	166	22
20.	टोंक	198	168	19
21.	चित्तौड़गढ़	193	168	21
22.	बूंदी	193	167	20
23.	नागौर	187	157	25
24.	हनुमानगढ़	184	157	24
25.	गंगानगर	179	153	23
26.	बारां	175	146	27
27.	जालौर	172	136	28
28.	पाली	165	147	26
29.	जोधपुर	161	126	29
30.	चूरू	148	123	30
31.	बाड़मेर	92	69	31
32.	बीकानेर	78	63	32
33.	जैसलमेर	17	13	33

तालिका 12.5 : राज्य के जिलों में 2001 व 2011 जनसंख्या घनत्व व इनका राज्य में स्थान

राजस्थान के जिलों में जनसंख्या घनत्व के सम्बन्ध में भारी असमानता है। 2011 में राजस्थान का सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व 598 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. जयपुर जिले का व सबसे न्यूनतम जनसंख्या घनत्व जैसलमेर जिले का 17

राजस्थान का
जनसंख्या घनत्व 2011

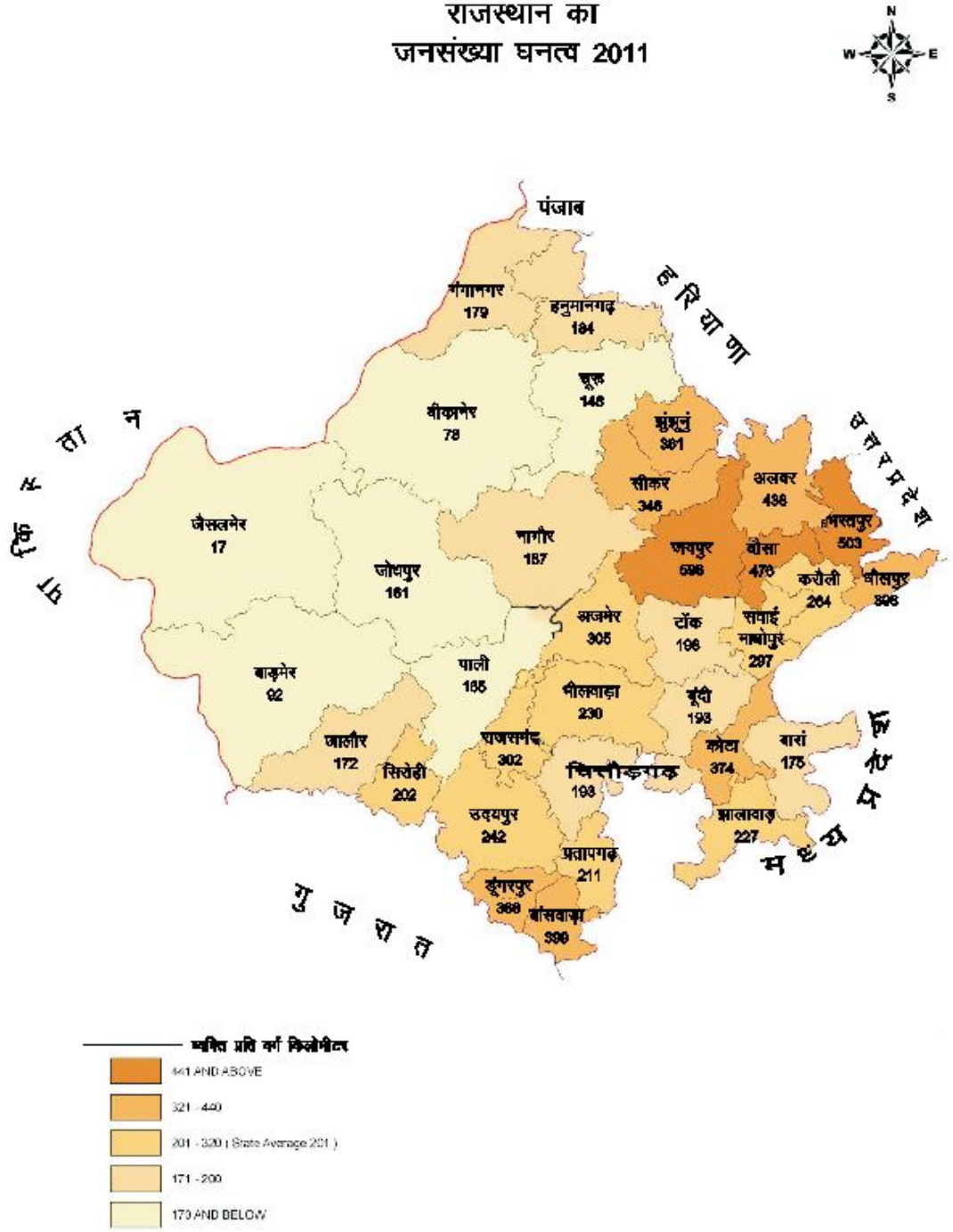

व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है।

राजस्थान के जनसंख्या घनत्व में उत्तरोत्तर वृद्धि के बावजूद भी भारत के जनसंख्या घनत्व से कम है। तालिका राजस्थान के जिलों के जनसंख्या घनत्व को अवरोही क्रम (अधिक से कम की ओर) प्रदर्शित करती है।

असम एवं अधिकतर प्रायद्वीपीय राज्यों का जनसंख्या घनत्व मध्यम है। पहाड़ी, कटे–छटे एवं पथरीले भू–भाग, मध्यम से कम वर्षा, छिछली एवं कम उपजाऊ मिट्टी इन राज्यों के जनसंख्या घनत्व को प्रभावित करती है।

उत्तरी मैदानी भाग एवं दक्षिण में केरल का जनसंख्या घनत्व बहुत अधिक है क्योंकि यहाँ समतल मैदान एवं उपजाऊ मिट्टी पाई जाती है तथा पर्याप्त मात्रा में वर्षा होती है।

जनसंख्या समस्या –

भारत की जनसंख्या बहुत अधिक है इस कारण जनसंख्या में प्रतिवर्ष होने वाली वृद्धि भी बहुत अधिक है जनसंख्या में अधिक वृद्धि देश की आर्थिक संवृद्धि में बाधक है बहुत अधिक जनसंख्या के कारण जीवन की गुणवत्ता पर भी प्रभाव पड़ता है अधिक जनसंख्या वृद्धि के कारण भोजन, कपड़ा, आवास, शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाओं जैसी मूल आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु अधिक संसाधनों का उपयोग करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त बेरोजगारी, गरीबी इत्यादि समस्याएँ भी लगातार बढ़ती जाती हैं व अन्य भौतिक सुख सुविधाओं जैसे पीने के पानी, बिजली, यातायात, आवास आदि की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

भारत की जनसंख्या में मृत्यु दर में तेजी से गिरावट भी एक अच्छी विशेषता रही है।

परन्तु जन्म दर में धीमी गिरावट जनसंख्या समस्या का प्रमुख कारण है। अतः जन्म दर में कमी करके जनसंख्या समस्या का समाधान किया जा सकता है।

साक्षरता दर :–

साक्षरता किसी जनसंख्या का बहुत ही महत्वपूर्ण गुण है। स्पष्टतः केवल एक शिक्षित और जागरुक नागरिक ही बुद्धिमतापूर्ण निर्णय ले सकता है तथा बोध एवं विकास के कार्य कर सकता है। साक्षरता स्तर में कमी आर्थिक प्रगति में एक गंभीर बाधा है।

2011 की जनगणना के अनुसार एक व्यक्ति जिसकी आयु 7 वर्ष या उससे अधिक है जो किसी भाषा को समझकर लिख या पढ़ सकता है उसे साक्षर की श्रेणी में रखा जाता है। भारत की साक्षरता में धीरे–धीरे सुधार हो रहा है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश की साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है जिसमें पुरुषों की साक्षरता दर 82.14 प्रतिशत व महिलाओं की 65.46 प्रतिशत है। 2011 की जनगणना के अनुसार सर्वाधिक साक्षर राज्य केरल है जिसकी साक्षरता दर 93.91 प्रतिशत है तथा सबसे कम साक्षरता दर बिहार की 63.82 प्रतिशत है।

राजस्थान में 2011 की जनगणना के अनुसार 3,89,70,500 व्यक्ति साक्षर है। राज्य की साक्षरता दर 67.07 प्रतिशत है जिसमें पुरुषों की साक्षरता दर 80.51 प्रतिशत व महिलाओं की 52.66 प्रतिशत है। राजस्थान में पिछले दशकों में साक्षरता दर में वृद्धि हुई है किन्तु अभी भी राजस्थान साक्षरता की दृष्टि से राष्ट्रीय औसत से पीछे है। राजस्थान में ग्रामीण क्षेत्रों विशेषकर महिलाओं में साक्षरता का अभाव है। कोटा जिले की साक्षरता दर 77.48 प्रतिशत सर्वाधिक तथा सबसे कम साक्षरता दर जालोर जिले की 55.58 प्रतिशत है।

राज्य में साक्षरता दर की वृद्धि हेतु चलाए गये कई कार्यक्रमों जैसे साक्षरता अभियान, प्रौढ़ शिक्षा, सतत् साक्षरता कार्यक्रम, बालिका शिक्षा पर विशेष ध्यान एवं प्रोत्साहन, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा इत्यादि के कारण संभव हुई है, परन्तु आज भी महिला साक्षरता दर पुरुष साक्षरता दर से बहुत कम है। अब बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु विभिन्न योजनाएँ चलाई जा रही हैं। जिनमें प्रमुख कस्तूरबा गाँधी आवासीय बालिका विद्यालय ग्रामीण बालिकाओं को ट्रांसपोर्ट वाउचर, गार्गी पुरस्कार, आपकी बेटी योजना, देवनारायण छात्रा स्कूटी वितरण व छात्राओं को निःशुल्क साइकिल वितरण योजना व अन्य बालिका प्रोत्साहन योजना प्रमुख है।

लिंगानुपात :–

लिंगानुपात किसी क्षेत्र विशेष यथा देश, राज्य या स्थान के पुरुष व स्त्री की संख्या के अनुपात को लिंगानुपात कहते हैं। किसी भौगोलिक क्षेत्र में प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या को इसका मानक माना जाता है अर्थात प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या को लिंगानुपात कहा जाता है।

यह जानकारी किसी दिये गये समय में समाज में पुरुषों व महिलाओं के बीच समानता की सीमा मापने के लिये एक महत्वपूर्ण सामाजिक सूचक है। देश में लिंगानुपात प्रायः महिलाओं के पक्ष में नहीं होता है। सन् 2011 की जनगणना के

अनुसार हमारे देश का लिंगानुपात 940 है अर्थात् 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 940 ही है। केरल राज्य का लिंगानुपात 1084 सबसे अधिक व हरियाणा का लिंगानुपात में सबसे पिछड़ा राज्य है। यहाँ लिंगानुपात 877 है।

2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान का लिंगानुपात 926 जो कि 2001 के लिंगानुपात 921 की तुलना में बढ़ा है। 2011 का लिंगानुपात 1901 से अब तक की सभी जनगणनाओं में सबसे अधिक है जो राज्य की सामाजिक प्रगति का सूचक है।

ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में लिंगानुपात अधिक रहा है। लिंगानुपात पुरुषों के पक्ष में रहने का प्रमुख कारण भ्रूण हत्या मानी जाती है। सरकार द्वारा भ्रूण हत्या रोकने और लड़कियों के जन्म और उनके जीवित रहने की स्थिति में सुधार लाने के विशेष प्रयास किये जा रहे हैं तथापि इस समस्या का समाधान जनजागृति और शिक्षित समाज से ही संभव हो सकेगा।

राजस्थान में डूंगरपुर व राजसमन्द जिले ऐसे हैं जहाँ प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या राज्य में सबसे अधिक है। डूंगरपुर में 990 तथा राजसमन्द में 988 महिलायें प्रति हजार पुरुष पर है। राज्य में सबसे कम लिंगानुपात धौलपुर जिले का है जहाँ प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 845 है।

नगरीकरण –

नगरीकरण से तात्पर्य जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्र की ओर पलायन करना है। शहरी क्षेत्रों के भौतिक विस्तार जैसे क्षेत्रफल, जनसंख्या इत्यादि का विस्तार भी शहरीकरण कहलाता है।

भारत में शहरीकरण स्वतंत्रता के बाद होने वाली वह घटना है जिसमें भारत में नगरों की संख्या और आकार में तेजी से वृद्धि हुई है और साथ ही कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का प्रतिशत भी बढ़ा है। एक ओर जहाँ नगरीकरण (शहरीकरण) आधुनिक औद्योगीकरण व सामयिक प्रणाली का द्योतक है वहीं दूसरी ओर यह पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों के लिए घातक है।

गत वर्षों की जनगणनाओं में नगर पालिका नगर परिषद, नगर निगम, छावनी बोर्ड, अधिसूचित शहरी क्षेत्र (नोटिफाइड एरिया) आदि सभी को शहरी क्षेत्र की श्रेणी में रखा गया है।

भारत की ग्रामीण जनसंख्या शहरी जनसंख्या से अधिक है भारत की जनसंख्या का तीन चौथाई से थोड़ा कम भाग गाँवों में निवास करता है। यह इस बात को प्रदर्शित करता है कि हमारे देश में कृषि मुख्य व्यवसाय है यद्यपि ग्रामीण जनसंख्या धीरे–धीरे घट रही है तथा शहरी जनसंख्या धीरे–धीरे बढ़ रही है इसके मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्रों से जनसंख्या का रोजगार, शिक्षा एवं अन्य शहरी सुविधाओं हेतु शहर की ओर पलायन करना है।

भारत की 121 करोड़ में से 83.3 करोड़ जनसंख्या ग्रामीण व 37.7 करोड़ जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में निवास करती है अर्थात जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत भाग ग्रामीण है। तालिका 12.6 विभिन्न दशकों में ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या को प्रदर्शित करती है। आंकड़ों से स्पष्ट है कि प्रत्येक दशक में शहरी जनसंख्या का प्रतिशत बढ़ रहा है जो जनसंख्या का शहरों की ओर पलायन को दर्शाता है।

वर्ष	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	
	ग्रामीण	शहरी
1901	89.2	10.8
1911	89.7	10.3
1921	88.8	11.2
1931	88.0	12
1941	86.1	13.9
1951	82.7	17.3
1961	82	18
1971	80.1	19.9
1981	76.7	23.3
1991	74.3	25.7
2001	72.2	27.8
2011	70	30

तालिका 12.6 : भारत–ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या का प्रतिशत

राजस्थान की कुल जनसंख्या का 75.13 प्रतिशत भाग ग्रामीण एवं शेष 24.87 प्रतिशत भाग शहरी क्षेत्र में निवास करता है। हालांकि शहरीकरण की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है परन्तु आज भी राजस्थान की 3/4 जन संख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है तथा कृषि उनका प्रमुख व्यवसाय है।

जनसंख्या नीति –

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चे को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करके, शिशु मृत्यु दर को (प्रति 1000 में) 30 से कम करके, व्यापक स्तर पर टीकारोधी बीमारियों से बच्चों को छुटकारा दिलाने, लड़कियों की शादी की उम्र को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करने तथा परिवार नियोजन को एक जन केन्द्रीय कार्यक्रम बनाने के लिए नीतिगत ढाँचा प्रदान करती है।

परिवारों के आकार को सीमित रख कर एक व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं कल्याण को सुधारा जा सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने 1952 में एक व्यापक परिवार नियोजन कार्यक्रम को प्रारम्भ किया। परिवार कल्याण कार्यक्रम जिम्मेदार तथा सुनियोजित पितृत्व को बढ़ावा देने के लिए कार्यरत हैं। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 कई वर्षों के नियोजित प्रयासों का परिणाम है।

राजस्थान की जनसंख्या नीति –

राजस्थान में जनसंख्या वृद्धि का कारण राज्य की विशेष भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि है। यहाँ का दो तिहाई भाग मरू प्रदेश है और एक बड़ा भाग पर्वतीय एवं जनजाति क्षेत्र है। महिला साक्षरता 52.66 प्रतिशत ही है तथा सामाजिक चेतना शोचनीय स्तर पर है। महिलाएँ आज भी संस्थागत प्रसव की अपेक्षा दाई द्वारा प्रसव कराने को ही अधिक महत्व देती है। बच्चे के स्वस्थ एवं जीवित रहने की कम सम्भावना के कारण अधिक बच्चों का जन्म, कम आयु में विवाह तथा लड़का पैदा करने की चाह के कारण प्रदेश की जन्म दर तथा शिशु मृत्यु दर अधिक रही है।

जनसंख्या वृद्धि की चुनौती का सामना करने के लिए राजस्थान में विभिन्न गतिविधियों एवं योजनाओं के माध्यम से जनसंख्या स्थायित्व के प्रयास किये जा रहे हैं योग्य दम्पत्तियों को उनकी इच्छानुसार परिवार कल्याण की आवश्यक सेवायें उपलब्ध करवाकर परिवार सीमित करने हेतु शिक्षित किया जा रहा है। नियमित टीकाकरण अभियान (मातृ शिशु स्वास्थ्य पोषण दिवस व मुख्यमंत्री पंचामृत अभियान) चलाकर गर्भवती महिलाओं एवं बच्चों को पोषण सेवाएं सुलभ करवाई जा रही है, ताकि शिशु एवं मातृ मृत्यु दर को कम किया जा सके।

जन मंगल योजना के माध्यम से गाँव–गाँव में जन मंगल जोड़ परिवार कल्याण के अंतर्गत साधन उपलब्ध करवा रहे हैं। परिवार कल्याण कार्यक्रम में महिलाओं की अहम भूमिका है। अतः महिला स्वास्थ्य केन्द्रों को सुदृढ़ करने के प्रावधान किये गये हैं ताकि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं को विभिन्न जन स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों की जानकारी हो सके तथा वे इससे लाभान्वित हो सके। विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत सरकार द्वारा दूर दराज के क्षेत्रों में चिकित्सा एवं परिवार कल्याण की सेवाओं को सुलभ करवाया जा रहा है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. मानव संसाधन वह अवधारणा है जो जनसंख्या को अर्थ व्यवस्था पर दायित्व से अधिक परिसंपत्ति के रूप में देखती है।
2. किसी निश्चित स्थान पर एक निश्चित समय में रहने वाले व्यक्तियों की कुल संख्या उस स्थान की जनसंख्या कहलाती है।
3. भारत जनसंख्या की दृष्टि से चीन के पश्चात विश्व में दूसरे स्थान पर है।
4. एक निश्चित समय अन्तराल में जनसंख्या की अधिकारिक गणना जनगणना कहलाती है तथा यह प्रत्येक दस वर्षों के अन्तराल में होती है।
5. 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 1 अरब 21 करोड़, 1 लाख व 3 हजार 422 थी।
6. 2011 की जनगणना के अनुसार सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य उत्तर प्रदेश है तथा जनसंख्या की दृष्टि से राजस्थान का देश में आठवां स्थान है।
7. राजस्थान में सर्वाधिक जनसंख्या वाला जिला जयपुर व सबसे कम जनसंख्या वाला जिला जैसलमेर है।
8. किसी स्थान की 10 वर्षों के भीतर जनसंख्या वृद्धि दर दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर कहलाती है। यह धनात्मक या ऋणात्मक हो सकती है।
9. 2011 की जनगणना से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 2001–2011 के दशक में भारत की जनसंख्या वृद्धिदर 17.64 प्रतिशत है।
10. जनसंख्या में वृद्धि या कमी मुख्यतः जन्म व मृत्यु दर के अन्तर के कारण होती है।
11. प्रति इकाई क्षेत्रफल (प्रति वर्ग कि.मी.) के रहने वाले व्यक्तियों की संख्या को जनसंख्या घनत्व कहते हैं।

12. 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता 74. 04 प्रतिशत है।

13. केरल भारत का सर्वाधिक साक्षर राज्य है जिसकी साक्षरता दर 2011 की जनगणना के अनुसार 93.91 प्रतिशत थी।

14. भारत में साक्षरता दर बढ़ रही है। पुरुष साक्षरता दर स्त्रियों की साक्षरता दर से अधिक है।

15. प्रति एक हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या लिंगानुपात कहलाती है। 2011 की जनगणना में भारत में लिंगानुपात 940 तथा राजस्थान में लिंगानुपात 926 है।

16. बढ़ती जनसंख्या को नियंत्रित करने में परिवार नियोजन कार्यक्रम की महत्वपूर्ण भूमिका है। योजनाओं के माध्यम से सरकार दूर दराज के क्षेत्र में चिकित्सा एवं परिवार कल्याण सेवाएं उपलब्ध करवा रही है।

17. भारत की जनसंख्या का तीन चौथाई से थोड़ा कम भाग गाँवों में निवास करता है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. भारत में सर्वाधिक जनसंख्या किस राज्य की है ?
2. राज्यों के क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का देश में कौनसा स्थान है?
3. सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व वाला राज्य कौन सा है?
4. राजस्थान में 2011 की जनगणना के अनुसार लिंगानुपात कितना है?
5. भारत का जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में कौनसा स्थान है?
6. भारत में जनगणना कितने वर्षों के अन्तराल में होती है?
7. किसी देश या स्थान की जनसंख्या में वृद्धि या कमी के प्रमुख कारण क्या हैं?
8. राजस्थान में सर्वाधिक जनसंख्या वाला जिला कौन सा है?
9. जनसंख्या वृद्धि या परिवर्तन के तीन प्रमुख घटक कौन–कौन से हैं?
10. लिंगानुपात क्या है?
11. 2011 की जनगणना के अनुसार देश की साक्षरता दर कितनी है?
12. परिवारों के आकार को सीमित रखने हेतु सरकार ने कौन सा कार्यक्रम प्रारम्भ किया?
13. राजस्थान का सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व वाला जिला कौनसा है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. साक्षरता दर किसे कहते हैं?
2. संसाधन किसे कहते हैं?
3. जनसंख्या वृद्धि दर क्या है तथा भारत की जनसंख्या वृद्धि दर किस दशक से कम होने लगी और क्यों?
4. किसी देश की जनगणना उस देश की जनसंख्या से सम्बन्धित कौन–कौन सी प्रमुख जानकारियाँ प्रदान करती है।
5. जनसंख्या वृद्धि दर को नियंत्रित करने के उपाय लिखिए।
6. ग्रामीण से शहरी क्षेत्र की ओर जनसंख्या के प्रवास के प्रमुख कारण लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. जनसंख्या नीति की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करो।
2. तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण तथा उससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. नगरीकरण क्या है? इसके लाभ व उत्पन्न होने वाली समस्या का वर्णन करो।
4. जनसंख्या नीति क्या है ?राजस्थान की जनसंख्या नीति का वर्णन करो।

अध्याय — 13

परिवहन एवं संचार

हम अपने दैनिक जीवन में विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं का प्रयोग करते हैं। इनमें से कुछ हमारे आस–पास उपलब्ध होती है तथा कुछ अन्य की आवश्यकताएँ दूसरे स्थानों से प्राप्त कर पूरी की जाती है। कुछ वस्तुओं तथा सेवाओं के आपूर्ति स्थानों से मांग वाले स्थानों तक पहुंचाने हेतु परिवहन की आवश्यकता होती है।

1991 में उदारीकरण के बाद पूँजी एवं प्रौद्योगिकी निवेश की बाढ़ आ जाने से परिवहन के साधनों का तीव्र विकास हुआ है।

आर्थिक विकास में आधारभूत संरचना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आधारभूत संरचना में जो क्षेत्र समृद्ध होते हैं उनमें विकास की गति तीव्र होती है। आधारभूत संरचना को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। (1) आधारभूत ढाँचागत संरचना है। इसमें परिवहन, विद्युत, संचार को सम्मिलित किया जाता है। आधारभूत संरचना का दूसरा भाग आधारभूत सामाजिक संरचना है। इसमें प्रमुख रूप से मानव संसाधन विकास को शामिल किया जाता है। बहुत समय तक व्यापार तथा परिवहन सुविधा एक क्षेत्र तक सीमित थी। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में विकास के साथ व्यापार व परिवहन के प्रभाव क्षेत्र में विस्तृत वृद्धि होने से विश्व में प्रत्येक कोने–कोने पर पहुंचना सम्भव हो गया है। परिवहन का यह विकास संचार साधनों के विकास की सहायता से ही संभव हो सका है। इसलिए परिवहन, संचार व व्यापार एक दूसरे के पूरक हैं।

आज भारत अपने विशाल आकार, विविधताओं, भाषा तथा सामाजिक व सांस्कृतिक बहुलताओं के बावजूद संसार में सभी क्षेत्रों से सुचारू रूप से जुड़ा हुआ है। सड़क, वायु, जल परिवहन, समाचार पत्र, रेडियों, दूरदर्शन, सिनेमा, इंटरनेट आदि इसमें सामाजिक आर्थिक विकास में अनेक प्रकार से सहायक है। परिवहन व संचार के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने अर्थव्यवस्था को जीवन शक्ति दी है। जिससे हमारा जीवन साधन व सुविधापूर्ण हो गया है।

आधारभूत संरचना के अभाव के कारण राजस्थान राज्य विकास को दृष्टि से अग्रणी राज्यों में शामिल नहीं है, जैसे–जैसे राजस्थान में आधारभूत संरचना की स्थिति सुधर रही है वैसे–वैसे राज्य का आर्थिक विकास तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है।

आधुनिक परिवहन व संचार के साधन हमारे देश व राज्य की आधुनिक अर्थव्यवस्था के केन्द्र बिन्दु है। अतः यह स्पष्ट है कि सघन व सक्षम परिवहन का जाल तथा संचार के साधन आज विश्व, राष्ट्र य स्थानीय व्यापार हेतु पूर्ण अपेक्षित है।

परिवहन –

देश के सतत् विकास में सुव्यवस्थित परिवहन प्रणाली एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पिछले कुछ वर्षों में परिवहन के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर विकास देखने को मिला जिसके पश्चात् देश में सुदुर क्षेत्रों तक यातयात क्षेत्रों का विस्तार हुआ है एवं लोगों को इसका लाभ भी प्राप्त हुआ है।

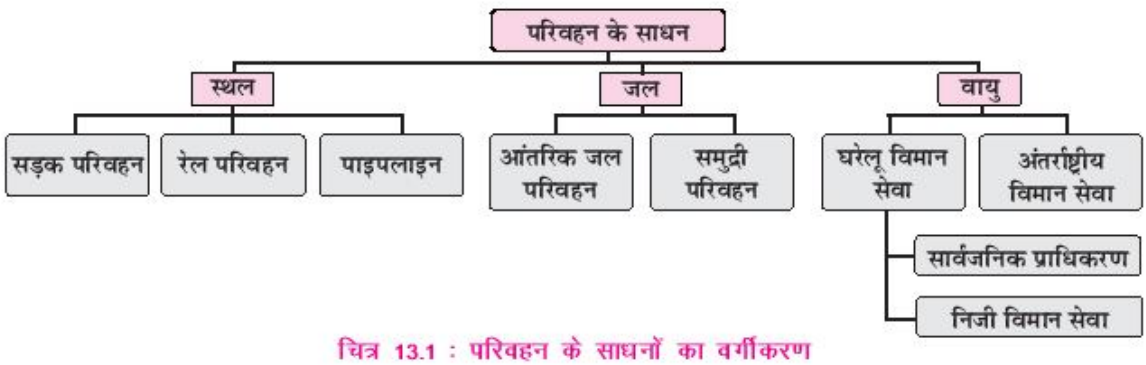

चित्र 13.1 : परिवहन के साधनों का वर्गीकरण

आर्थिक विकास में परिवहन का महत्वपूर्ण स्थान है। औद्योगिक विकास के लिए तो परिवहन आवश्यक है ही साथ ही परिवहन के साधनों से अन्य सभी क्षेत्रों के विकास को भी गति मिलती है। परिवहन प्राकृतिक आपदाओं के समय में अत्यधिक उपयोगिता होती है। स्थल, जल व वायु परिवहन के साधनों को तीन क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

स्थल परिवहन –

भू क्षेत्र के ऊपर वस्तुओं व सेवाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने वाले साधन स्थल परिवहन में आते हैं। जो मुख्यतः सड़क, रेल व पाइप लाइन में रूप में व्यवस्थित हैं।

सड़क परिवहन –

भारत में 3.3 लाख कि.मी. तक सड़कों का एक विशाल जाल है जो विश्व में दूसरा सबसे बड़ा है। परिवहन के क्षेत्र में सड़कों का स्थान अग्रणीय है। वर्तमान अनुमान के अनुसार सड़क परिवहन पर लगभग 65 प्रतिशत माल ढोया जाता है और 80 प्रतिशत यात्री यातायात होता है। सड़कों पर यातायात प्रतिवर्ष 7 प्रतिशत से 10 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है जबकि वाहनों की संख्या में वृद्धि दर विगत कुछ वर्षों में 12 प्रतिशत रही है।

सड़क परिवहन ने भारत के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कम एवं मध्यम दूरी तय करने के लिए यह यातायात का सर्वाधिक सुगम एवं सस्ता साधन भी है। वास्तव में यह सेवा परिवहन में अन्य साधनों की सहायक है, क्योंकि इसकी विश्वसनीयता, शीघ्रता, लचीलापन एवं द्वार तक प्रदान की जाने वाली सुविधा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में भौतिक विशेषताओं के कारण रेल परिवहन एक सीमा तक ही किया जा सकता है अतः सड़कों का महत्व अपने आप बढ़ जाता है।

भारत में मार्च 2015 में सड़कों की कुल लम्बाई बढ़कर 54 लाख 72 हजार कि.मी. हो गई है। इनमें राष्ट्रीय राजमार्ग, राज्य मार्ग, मुख्य जिला सड़कें, अन्य जिला और ग्रामीण सड़के शामिल है। राष्ट्रीय राजमार्गों में एकल लेन, मानक दो लेन और 4 लेन तथा उससे भी ज्यादा चौड़ी सड़के हैं।

रेल परिवहन की अपेक्षा सड़क परिवहन की बढ़ती महत्ता निम्न कारणों से है–

- रेल्वे लाइन की अपेक्षा सड़कों की निर्माण लागत बहुत कम है।
- अपेक्षाकृत उबड़ खाबड़ व विच्छिन्न भू भागों पर सड़के बनाई जा सकती है।
- अधिक बल प्रवणता (ढाल) तथा पहाड़ी क्षेत्रों में भी सड़कें निर्मित की जा सकती है।
- अपेक्षाकृत कम व्यक्तियों, कम दूरी व कम वस्तुओं में परिवहन में सड़कें मितव्ययी है।
- यह घर–घर सेवाएं उपलब्ध कराता है तथा सामान चढ़ाने व उतारने की लागत अन्य परिवहन साधनों की अपेक्षाकृत कम है।
- सड़क परिवहन, अन्य सभी परिवहन साधनों के उपयोग में एक कड़ी के रूप में कार्य करता है। जैसे सड़कें, रेलवे स्टेशन वायु व समुद्री पत्तनों को जोड़ती है।

महानगर व बड़े शहर सामान्यतः रेल और वायु यातायात से जुड़े होते हैं किन्तु गांवों के परिवहन का मुख्य साधन सड़कें ही हैं। सड़कें परिवहन के क्षेत्र में मानव शरीर में धमनी व शिराओं की भांति है।

राजस्थान में जनसंख्या का 3/4 भाग गाँवों में ही बसता है। राज्य के गाँवों में जहाँ–जहाँ सड़कें पहुँचतीं हैं, समृद्धी स्वतः ही नजर आने लगती है। सड़कों में विकास के बिना गाँव अधूरे दिखते हैं। सड़को के अभाव में गाँवों का सामाजिक व आर्थिक विकास गति नहीं पकड़ पाता है।

राजस्थान की योजनाबद्ध विकास में यातायात विकास पर निवेश में वृद्धि हुई है। विभिन्न पंचवर्षीय योजना में यातायात विकास पर खर्च ने उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। वर्तमान में सड़क परिवहन राज्य सरकार का महत्वपूर्ण प्राथमिकता वाला विकास शीर्ष है।

भारत में सड़कों की सक्षमता के आधार पर इन्हें निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया गया है–

स्वर्णिम चतुर्भुज महाराज मार्ग – *Golden quadrilateral Super High Ways*	
राष्ट्रीय राज मार्ग	– *National High Way*
राज्य मार्ग	– *State High Way*
जिला मार्ग	– *District Road*
अन्य सड़कें	– *Other Roads*
सीमांत सड़कें	– *Border Roads*

स्वर्णिम चतुर्भुज महाराज मार्ग :– भारत सरकार ने दिल्ली कोलकत्ता, चैन्नई–मुंबई व दिल्ली को जोड़ने वाली 6 लेन वाली महाराज मार्गों की सड़क परियोजना प्रारंभ की है। इस परियोजना के तहत दो गलियारे प्रस्तावित है प्रथम उत्तर दक्षिण गलियारा जो श्रीनगर को कन्याकुमारी से जोड़ता है। इस महा राजमार्ग का मुख्य उद्देश्य भारत में महानगरों के मध्य की दूरी व परिवहन समय को न्यूनतम करता है। यह राजमार्ग परियोजना–भारत में राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (NHAI) के अधिकार क्षेत्र में है।

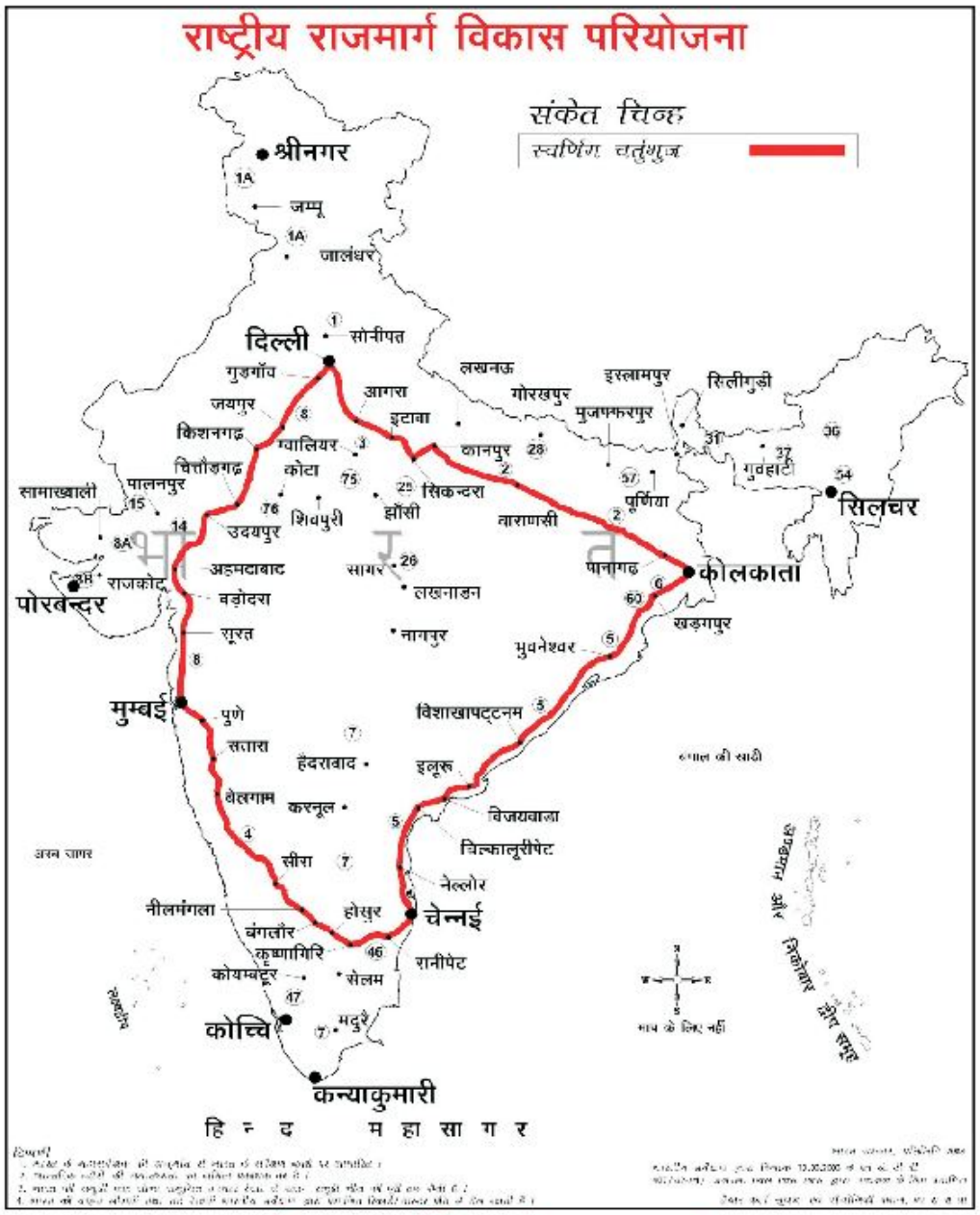

चित्र 13.2 : स्वर्णिम चतुर्भुज महाराज मार्ग

राष्ट्रीय राजमार्ग :

राष्ट्रीय राजमार्ग देश में दूरस्थ भागों को जोड़ते हैं। ये प्राथमिक सड़क तंत्र है जिनका निर्माण व रख रखाव केन्द्रीय लोक निर्माण (CPWD) में अधिकार क्षेत्र में है।

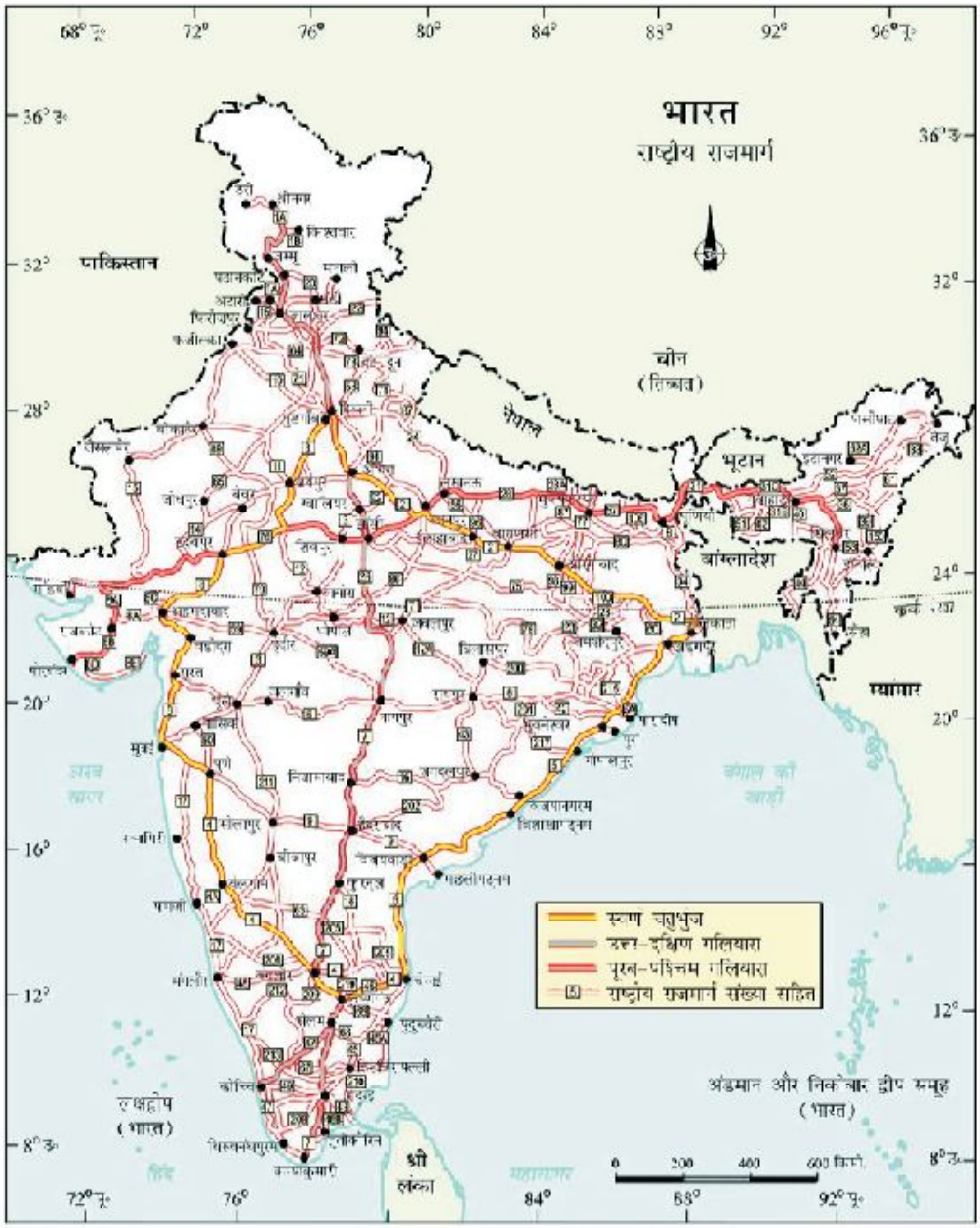

चित्र 13.3 : राष्ट्रीय राजमार्ग

अनेक प्रमुख राष्ट्रीय राजमार्ग उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम दिशाओं में फैले हैं। दिल्ली व अमृतसर के मध्य ऐतिहासिक शेरशाह सूरी मार्ग राष्ट्रीय राजमार्ग–1 के नाम से जाना जाता है।

11वीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय प्रमुख मार्ग विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 4 लेन और 2 लेन वाली कुल 45,974 कि. मी. लम्बी सड़क निर्माण का कार्यक्रम तय किया गया है। इसकी कुल लागत 2,20,000 करोड़ रूपये होगी। सरकार द्वारा इसका कियान्वयन सार्वजनिक–निजी साझेदारी के आधार पर किया जाएगा। 11 वीं योजना के अन्तर्गत सड़कों में विस्तार के लिए प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अधीन 100 जनसंख्या वाले सभी ग्रामों और पहाड़ी क्षेत्रों में 500 जनसंख्या वाले क्षेत्रों को जोड़ा जाएगा। इस कार्यक्रम से भारत के ग्रामों को बाजार अर्थव्यवस्था के अंतर्गत लाया जाएगा।

राजस्थान से कुल सात राष्ट्रीय राजमार्ग गुजरते हैं। इनमें राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 8 सबसे महत्वपूर्ण और व्यस्त राजमार्ग है। राजस्थान में इसकी लम्बाई 685 किलोमीटर है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग दिल्ली से जयपुर, अजमेर, उदयपुर होता हुआ मुम्बई जाता है। राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 11 सुरक्षात्मक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण मार्ग है। यह मार्ग आगरा से भरतपुर, दौसा, जयपुर सीकर होता हुआ बीकानेर जाता है। राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 12 जयपुर से टोंक, बून्दी, कोटा, झालावाड़ होता हुआ भोपाल तक जाता है। राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 14 ब्यावर, पाली, सिरोही, आबूरोड़ होता हुआ कांदला तक जाता है। इसकी राजस्थान में लम्बाई 675 कि.मी. है। राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 3 का केवल 28 कि.मी. भाग राजस्थान से होकर गुजरता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग धौलपुर जिले से गुजरता है। राजस्थान में स्वर्ण चतुर्भुज योजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 8 पर जयपुर से अजमेर 6 लेन में परिवर्तित हुआ है।

राज्य राजमार्ग :–

राज्यों के भीतर वे सड़कें जो राज्य की राजधानी महत्वपूर्ण शहरों, कस्बों तथा जिला मुख्यालय को आपस में तथा राष्ट्रीय राजमार्गों व पड़ौसी राज्य से जुड़ने वाले मुख्य राजमार्गों से जोड़ती है, राज्य राजमार्ग कहलाती है राज्य तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में इनकी व्यवस्था तथा निर्माण का दायित्व राज्यों के सार्वजनिक निर्माण विभाग (*PWD*) का होता है। देश में राज्य राजमार्गों की कुल लम्बाई 1,31,899 कि.मी. है। राजस्थान में कुछ मुख्य राज्य राजमार्गों को मेगा हाइवे प्रोजक्ट से जोड़ा गया है तथा उन्हें मेगा हाइवे के रूप में विकसित कर 2 लेन से 4 लेन में भी परिवर्तित किया जा रहा है। वर्तमान में मेगा हाइवे तथा राजमार्गों को निर्माण व उनकी देख रेख अनुबन्ध के आधार पर किया जा रहा है। इस हेतु अनुबन्धित फर्म उन मार्गों पर चलने वाले वाहनों से शुल्क जिसे टोल कहा जाता है, वसूल करती है। सरकारी वाहनों, एम्बूलेंस, कृषि वाहनों, सैनिक वाहनों व अन्य आपातकालीन वाहनों तथा दुपहिया वाहनों को इस टोल शुल्क से मुक्त रखा जाता है।

मुख्य जिला सड़कें :–

विभिन्न तहसीलों, मुख्य नगरों तथा औद्योगिक क्षेत्रों को जिला मुख्यालय से अथवा आपस में जोड़ने वाली सड़को को मुख्य जिला सड़के कहते हैं।

अन्य सड़कें :–

इस वर्ग में वे सड़कें आती है जो ग्रामीण क्षेत्रों को शहरों से जोड़ती है। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क परियोजना के तहत इन सड़कों के विकास को विशेष प्रोत्साहन मिला है। इस परियोजना का लक्ष्य देश के प्रत्येक गांव को प्रमुख शहरों से पक्की सड़कों द्वारा जोड़ना है। देश के सभी गांवों को प्रमुख सड़कों से जोड़ने के उद्देश्य से प्रधानमंत्री द्वारा 25 दिसम्बर 2000 को प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना घोषित की गई थी। इसके अन्तर्गत 1991 की जनगणना के अनुसार 1000 तथा इससे अधिक आबादी वाले गांवों को वर्ष 2003 तक तथा 500 से 1000 जनसंख्या वाले गाँवों को 2007 तक सड़कों से जोड़ने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। जनजाति क्षेत्रों में 250 से अधिक आबादी वाले गांवों को सड़कों से जोड़ने की योजना है।

सीमांत सड़कें :–

सीमावर्ती सड़कों का निर्माण व देखरेख भारत सरकार प्राधिकरण के अधीन सीमा सड़क संगठन के द्वारा किया जाता है। इस संगठन का गठन भारत में उत्तर तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र में सीमावर्ती इलाकों में सड़क परिवहन का समन्वित तथा तीव्र विकास करके भारत में आर्थिक विकास को तेज करने तथा प्रतिरक्षा सम्बन्धित तैयारियों को मजबूती प्रदान करने के लिए सन् 1960 में किया गया था।

वर्तमान में इसकी विकास सम्बन्धित गतिविधियाँ

राजस्थान, जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, सिक्किम, असम, मेघालय, नागालैण्ड, त्रिपुरा, मणिपुर, मिज़ोरम, अरूणाचल प्रदेश, बिहार, अण्डमान निकोबार द्वीप समूह तथा भूटान से भी प्रारम्भ की जा रही है। इन सड़कों के विकास से दुर्गम क्षैत्रों में अभिगम्यता बढ़ी है। तथा ये इन क्षैत्रों के आर्थिक क्षैत्रों में आर्थिक विकास में भी सहायक हुई है।

राजस्थान में डामर की सड़कों की लम्बाई 31.3.2016 (प्रावधनिक)

(स्त्रोत – सार्वजनिक निर्माण विभाग राजस्थान सरकार की वेबसाइट)

क्र.सं.	सड़कों के प्रकार	लम्बाई (कि.मी. में)
1.	राष्ट्रीय राजमार्ग	8120
2.	राज्य राजमार्ग	14970
3.	मुख्य जिला सड़कें	6596
4.	अन्य जिला सड़कें	27707
5.	ग्रामीण सड़कें	114780
	योग	172175

राजस्थान रोड विज़न 2025 :–

राजस्थान में सड़क तंत्र की काया पलट के लिए राजस्थान रोड विजन 2025 तैयार किया। सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा इक्कीसवी सदी से पहले 25 साल राज्य में सड़कों के विकास के लिए एक दीर्घावधि "विज़न" तैयार किया गया। इसमें सड़कों के विकास के साथ–साथ, सड़कों के रख–रखाव और सड़कों की गुणवत्ता पर बल दिया गया है। रोड विजन 2025 में पहले 15 साल में सभी गांवों को सड़कों से जोड़ने के बाद अगले 10 साल में एक्सप्रेस वे, फ्लाई ओवर, चार लेन के राजकीय मार्ग पर जोर दिया गया है। इस विज़न में धार्मिक महत्व के स्थानों, पर्यटन, खनन और औद्योगिक क्षेत्रों के लिए नये सड़क सम्पर्क विकसित करना जरूरी माना गया है। सड़क परिवहन के सम्बन्ध में राजस्थान को "मॉडल स्टेट" माना जा सकता है।

रेल परिवहन :–

भारत में रेल परिवहन वस्तुओं तथा यात्रियों के परिवहन का प्रमुख साधन है। रेल परिवहन के द्वारा व्यापार व लम्बी दूरी तक हल्के व भारी सामान का परिवहन किया जाता है। प्रमुख परिवहन के साधन में समाविष्ट, पिछले डेढ सौ वर्षो से भी अधिक समय से भारतीय रेल एक महत्वपूर्ण समन्वयक के रूप में जानी जाती है। भारतीय रेलवे देश की अर्थव्यवस्था, उद्योगों व तीव्र विकास के लिए उत्तरदायी है। 31 मार्च 2016 के दिन भारतीय रेल परिवहन मार्ग की लम्बाई 67,312 कि.मी थी। जिस पर 7133 स्टेशन थे तथा इनमें 9213 रेल इंजन, 53220 यात्री सेवा वाहन 6493 अन्य कोच वाहन तथा 2 लाख 29 हजार 3 सौ 81 गाड़ियां सम्मिलित थी।

देश की प्रथम रेलगाड़ी का परिचालन 22 दिसम्बर 1851 को किया गया। भारतीय उपमहाद्वीप में प्रथम रेलगाड़ी महाराष्ट्र में स्थित मुंबई व ठाणे के बीच लगभग 33.6 कि.मी. लम्बे रेलमार्ग पर 16 अप्रैल 1853 को चलाई गई थी। 1951 में भारतीय रेल का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। भारत की पहली विद्युत रेल "डेकन क्वीन" थी जिसे 1929 में गांव पुणे के बीच चलाया गया था। आज सम्पूर्ण देश में रेलों का सघन जाल बिछा हुआ है।

देश में अनेक प्रकार की रेल लाइन विद्यमान है। जिनमें बड़ी लाइन (ब्राडगेज) छोटी लाइन (मीटरगेज) प्रमुख है। जहां प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता है और आर्थिक उत्पादों एवं भारी खनिजों यथा लौह अयस्क, कोयला, खनिज, खनिज तैल एवं उर्वरक का अधिकांश परिवहन बड़ी लाइनों द्वारा ही किया जाता है। किन्तु औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा कच्चे मालों का परिवहन छोटी लाइनों के माध्यम से ही होता है। हालांकि छोटी लाईन का परिवहन अधिक समय लेने वाला व बहुत खर्चीला है। इन समस्याओं में निराकरण के लिए भारतीय रेलवे द्वारा यूनि गेज प्रोजेक्ट या एक समान रेलवे लाइन परियोजना 1992 में प्रारम्भ की गई थी जिसके अन्तर्गत देश की सभी छोटी लाइनों को बड़ी लाईनों में परिवर्तित किया जाना है।

देश में रेल परिवहन में भू–प्राकृतिक, आर्थिक, व प्रशासकीय कारक प्रमुख है। देश में रेलमार्ग पहाड़ी क्षेत्रों,

चित्र 13.4 : रेल द्वारा यात्री परिवहन

चित्र 13.5 : भारत – रेलमार्ग

समतल क्षेत्रों, गुजरात के दलदली भाग, मध्यप्रदेश के वन क्षेत्र, सुरंग इत्यादि से भी रेल मार्ग गुजरते हैं, जिससे सम्पूर्ण देश का कोना–कोना लगभग जुड़ गया है। आज राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में परिवहन में अन्य सभी साधनों की अपेक्षा रेल परिवहन प्रमुख हो गया है। यद्यपि रेल परिवहन समस्याओं से मुक्त नहीं है। बहुत से यात्री बिना टिकट यात्रा करते हैं। रेल संपत्ति को हानि तथा चोरी जैसी समस्याएं भी पूर्णतया समाप्त नहीं हुई है जंजीर खीच कर यात्री कहीं भी अनावश्यक रूप से गाड़ी रोकते हैं। जिससे रेलवे को भारी हानि उठानी पड़ती है।

रेलवे में बढ़ते यात्री व माल भार को देखते हुए लाईनों को दोहरीकरण, विद्युतीकरण एवं छोटी लाइनों को बड़ी लाइनों (ब्रोड गेज) में बदलने का कार्य तेजी से विभिन्न परियोजनाओं के अन्तर्गत किया जा रहा है। मालगाड़ियों के संचालन के लिए समर्पित मालभाड़ा कोरिडोर परियोजना (*Dedicated front Coridor*) के अन्तर्गत 1534 कि.मी दोहरा रेलमार्ग मुम्बई से रेवाड़ी तक बनाया जा रहा है जो मुख्य तौर पर कंटेनर परिवहन की जरूरतों को पूरा करेगा।

राजस्थान में भारत के कुल रेल मार्गों का लगभग 11 प्रतिशत भाग है। राजस्थान में रेल मार्गों की कुल लम्बाई मार्च 2011 में 5784 कि.मी. थी जो देश के रेल मार्गों की कुल लम्बाई 63140 कि.मी. का 9.4 प्रतिशत था। राजस्थान के रेल मार्गों की कुल लम्बाई में ब्रोडगेज का भाग 51.4 प्रतिशत है। जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह 71.4 प्रतिशत है। राजस्थान में 31 मार्च 2002 को प्रति हजार वर्ग कि.मी. में रेल मार्गो की औसतन लम्बाई 17.2 कि.मी. थी जबकि यह राष्ट्रीय स्तर पर 19.2 किलोमीटर थी।

राज्य में मार्च 2011 में रेल मार्गों की कुल लम्बाई 5784 कि.मी. थी जिसमें ब्रोडगेज का भाग 68.37 प्रतिशत मीटर गेज का भाग 30.10 प्रतिशत तथा नैरोगेज का भाग 1.53 प्रतिशत था। राज्य में 31 मार्च 2008 को प्रति हजार वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में रेल मार्गों की औसतन लम्बाई 16.61 कि.मी. थी।

राजस्थान के प्रमुख रेल मार्ग निम्न है –

1.	जयपुर	–	मुम्बई रेल मार्ग
2.	जोधपुर	–	हावड़ा रेल मार्ग
3.	दिल्ली	–	अहमदाबाद रेल मार्ग
4.	उदयपुर	–	दिल्ली रेल मार्ग
5.	बीकानेर	–	दिल्ली रेल मार्ग
6.	जयपुर	–	दिल्ली रेल मार्ग
7.	जयपुर	–	गंगानगर रेल मार्ग
8.	फुलेरा	–	दिल्ली रेल मार्ग
9.	जयपुर	–	सवाई माधोपुर रेल मार्ग
10.	जयपुर	–	आगरा रेल मार्ग
11.	जयपुर	–	जम्मु तवी रेल मार्ग
12.	जोधपुर	–	गुवाहाटी रेल मार्ग
13.	जयपुर	–	लुहारू रेल मार्ग
14	जयपुर	–	चैन्नई रेल मार्ग
15.	जोधपुर	–	हरिद्वार रेल मार्ग

पाईप लाईन परिवहन :–

चित्र 13.6 : पाईप लाइन परिवहन

भारत के परिवहन मानचित्र पर पाईप लाईन एक नया परिवहन का साधन है। पहले पाईप लाईन का उपयोग शहरों व उद्योगों में पानी पहुँचाने हेतु होता था। आज इसका प्रयोग कच्चा तेल, पेट्रोल उत्पाद तथा तेल से प्राप्त प्राकृतिक तथा गैस शोधन शालाओं उर्वरक कारखानों व बड़े ताप विद्युत गृहों तक पहुँचाने में किया जाता है। ठोस व गलनीय पदार्थों को तरल अवस्था में परिवर्तित करके पाइप लाईनों द्वारा ले जाया जाता है। आंतरिक भागों में स्थित शोधनशालाएं जैसे बरौनी, मथुरा, पानीपत तथा गैस पर आधारित उर्वरक कारखानों की स्थापना पाइप लाईनों में जाल के कारण ही संभव हो पाई है। पाईप लाईन बिछाने की प्रारम्भिक लागत अधिक है किन्तु इसको चलाने की लागत न्यूनतम है।

वाहनांतरण देरी तथा हानियाँ इसमें लगभग नहीं के बराबर है। देश में पाईप लाईन परिवहन के तीन प्रमुख जाल है–

- ऊपरी असम के तेल क्षेत्रों से गुवाहाटी बरौनी व इलाहाबाद के रास्ते कानपुर (उत्तर प्रदेश) तक इसकी

एक शाखा बरौनी से राजबंध होकर हल्दिया तक है दूसरी राजबंध से मौरी ग्राम तक गुवाहाटी से सिलिगुड़ी तक है।

- गुजरात में सलावा से वीरम गांव, मथुरा–दिल्ली व सोनीपत के रास्ते पंजाब में जालंधर तक। इसकी अन्य शाखा वड़ौदरा के निकट कोयली को चक्शु व अन्य स्थानों से जोड़ती है।
- गैस पाईप लाईन गुजरात में हजीरा को उत्तर प्रदेश के जगदीशपुर से मिलाती है यह मध्यप्रदेश की विजयपुर के रास्ते से होकर जाती है। इसकी शाखाएँ राजस्थान में कोटा तथा उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर, व बराला व अन्य स्थानों पर है।

जल परिवहन

जल परिवहन किसी भी देश को सबसे सस्ता यातायात प्रदान करता है क्योंकि इसके निर्माण में परिवहन मार्गों का निर्माण नहीं करना पड़ता है और केवल जल परिवहन के साधनों से ही यातायात किया जाता है। इतना अवश्य है कि इसके लिए प्राकृतिक अथवा कृत्रिम जलपूर्ण मार्ग आवश्यक होते हैं। भारत के लोग अनंतकाल से समुद्री यात्राऐं करते रहे हैं। यहाँ नाविकों ने दूर तथा पास के क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति व व्यापार को फैलाया है। जल परिवहन द्वारा भारी एवं स्थूलकाय वस्तुओं को ढोना अनुकूल है। यह परिवहन साधनों में ऊर्जा सक्षम तथा पर्यावरण अनुकूल भी है। हमारे देश में आन्तरिक एवं समुद्रीय दोनों प्रकार का जल परिवहन किया जाता है। आन्तरिक जल परिवहन की दृष्टि से देश में प्राचीनकाल से ही नदियों के माध्यम से यातायात किया जाता था। वर्तमान में देश में लगभग 14,500 कि.मी. लम्बा नौ संचालन जल मार्ग है जिसमें नदियाँ, नहरें, अप्रवाही जल यथा झीलें, संकरी खाड़ियां इत्यादि शामिल हैं। देश की प्रमुख नदियों में 3700 कि.मी. लम्बे मार्ग का उपयोग किया जा रहा है। नहरें 4300 कि.मी. लम्बे नौ संचालन मार्ग में मात्र 900 कि. मी. तक की दूरी नौकाओं द्वारा परिवहन के लिए उपयुक्त है। वर्तमान में आन्तरिक जल परिवहन के माध्यम से लगभग 160 लाख टन माल की ढुलाई प्रतिवर्ष की जा रही है। भारत के 14,500 लम्बे नौ संचालन जलमार्ग में से केवल 5,685 कि.मी. मार्ग ही मशीनीकृत नौकाओं द्वारा तय किया जाता है। भारत के उत्तरी पूर्वी राज्यों में आंतरिक जलमार्ग परिवहन का महत्वपूर्ण साधन है।

राष्ट्रीय जल मार्ग :–

देश की गंगा, हुगली, यमुना, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, ताप्ती, भाण्डवी, गोदावरी, कृष्णा, महानदी, आदि नदियों द्वारा आन्तरिक जलमार्ग की सुविधा उपलब्ध कराई गयी है। निम्न जलमार्गों को भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किया गया है–

- नौगम्य राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 1 :– हल्दिया तथा इलाहाबाद के मध्य गंगाजल मार्ग जो 1620 कि.मी. लम्बा है।
- नौगम्य राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 2 :– सदिया व धुवरी के मध्य 891 किमी. लम्बा ब्रह्मपुत्र नदी जल मार्ग।
- नौगम्य राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 3 :– केरल के पश्चिम–तटीय नहर (कोटापुरम से कोल्लम तक, उद्योग मंडल तथा चंपक्काश नहरें) 205 किमी. लम्बा।
- नौगम्य राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 4 :– काकीनाडा से भरकानन 1100 किमी. लम्बा जलमार्ग।
- नौगम्य राष्ट्रीय जलमार्ग संख्या 5 :– मातई नदी, महानदी के डेल्टा चैनल, ब्राह्मणी नदी और पूर्व तटीय नहर के साथ ब्राह्मणी नदी का विशेष विस्तार 588 किमी. लम्बा जलमार्ग।

कुछ अन्य जलमार्ग भी हैं जिन पर परिवहन होता है इसमें माण्डवी, जुआरी और कम्बरजुआ, सुन्दरवन, बराक, केरल का पश्च जल (backwater) और कुछ नदियों का ज्वरीय विस्तार शामिल है।

देश की अधिकांश नदियाँ वर्षाकाल के अतिरिक्त समय में प्राय: जल की अल्पता का शिकार हो जाती है, जिसके कारण उनमें परिवहन का कार्य रुक जाता है। भारत के भूतल परिवहन मंत्रालय द्वारा कराये गये सर्वेक्षण के अनुसार देश में 10 नदी मार्ग ऐसे हैं, जहाँ वर्षभर पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध रहता है। ऐसे नदी मार्गों को ही राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किया गया है।

प्रमुख समुद्री पत्तन (बन्दरगाह) –

बन्दरगाहों पर समुद्री जहाजों के रुकने, ईंधन लेने तथा सामानों को उतारने चढ़ाने का कार्य किया जाता है। भारत की 7,516.6 कि.मी. लम्बी समुद्री तट रेखा के साथ 12 प्रमुख तथा 187 मध्य व छोटे पत्तन (बन्दरगाह) है। ये प्रमुख पत्तन देश

चित्र 13.7 : हवाई एवं जलमार्ग

का 95 प्रतिशत विदेशी व्यापार संचालित करते हैं।

चित्र 13.8 : जल परिवहन

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कच्छ में कांडला पत्तन पहले पत्तन के रूप में विकसित किया गया। ऐसा देश विभाजन से कराची पत्तन की कमी को पूरा करने तथा मुंबई से होने वाले व्यापारिक दबाव को कम करने के लिए था। कांडला एक ज्वरीय बन्दरगाह है। यह जम्मू–कश्मीर, हिमालच प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान व गुजरात के औद्योगिक तथा कृषि उत्पादों के आयात–निर्यात को संचालित करता है।

मुम्बई वृहतम पत्तन है जिसके प्राकृतिक खुले, विस्तृत व सुचारू पोताश्रय है। मुंबई पत्तन के अधिक परिवहन को ध्यान में रखकर इसके सामने जवाहरलाल नेहरू पत्तन विकसित किया गया जो पूरे क्षेत्र को एक समूह पत्तन की सुविधा भी प्रदान कर सके। लौह अयस्क के निर्यात के संदर्भ में मारमागाओं पत्तन देश का महत्वपूर्ण पत्तन है। यहाँ से देश के कुल निर्यात का आधा (50%) लोहे अयस्क निर्यात किया जाता है। कर्नाटक में स्थित न्यु मैंगलौर पत्तन कुद्रमुख खानों से निकले लौह अयस्क को निर्यात करता है। सुदूर दक्षिण पश्चिम में कोच्ची पत्तन है, यह एक लैगुन के मुहाने पर स्थित है। प्राकृतिक पोताश्रय है।

पूर्वी तट के साथ तमिलनाडु में दक्षिण पूर्वी छोर पर तूतीकोरन पत्तन है। यह एक प्राकृतिक पोताश्रय है तथा इसकी पृष्ठभूमि भी अत्यंत समृद्ध है। अतः यह पत्तन हमारे पड़ोसी देशों जैसे– श्रीलंका मालदीव आदि तथा भारत के तटीय क्षेत्रों की भिन्न वस्तुओं के व्यापार को संचालित करता है। चेन्नई की गणना देश के प्राचीनतम बन्दरगाहों में की जाती है जबकि विशाखापटनम देश का सर्वश्रेष्ठ प्राकृतिक बन्दरगाह है। यहाँ पोत निर्माण एवं उनके मरम्मत की सुविधा भी उपलब्ध है। चेन्नई व्यापार की मात्रा एवं सामान लदान के संदर्भ में देश का दूसरा बड़ा बन्दरगाह है। ओडिशा में स्थित पारा द्वीप पत्तन विशेषतः लौह अयस्क का निर्यात करता है। कोलकाता एक अंतः स्थलीय नदीय पत्तन है। यह सागर तट से 148 किमी. अन्दर हूगली नदी के किनारे स्थित है। ज्वरीय पत्तन होने के कारण तथा हूगली नदी के तलछट जमाव से इसे नियमित रूप से साफ करना पड़ता है। कोलकाता पत्तन पर बढ़ते व्यापार दबाव को कम करने के लिए हल्दिया सहायक पत्तन के रूप में विकसित किया गया है। हल्दिया में पूर्णतः सुसज्जित कोयला एवं तेल कन्टेनर की सुविधा उपलब्ध है। राजस्थान में समुद्री तट व पूर्णकालिक नदियों के अभाव के कारण यहाँ जल परिवहन की सुविधा उपलब्ध नहीं है। राजस्थान के निकटतम बन्दरगाह कांदला व मुम्बई है।

वायु परिवहन :–

वायु परिवहन तीव्रतम, आरामदायक व प्रतिष्ठित परिवहन का साधन है। तीव्रगामी साधन का महत्व भारत जैसे भौतिक दृष्टि से विविधता पूर्ण तथा विशाल देश मे स्वतः स्पष्ट है इसके द्वारा अति दुर्गम स्थानों जैसे– ऊँचे, पर्वत, मरूस्थल, घने जंगलों व लम्बे समुद्री रास्तों को सुगमता से पार किया जा सकता है। वायु परिवहन देश के दूर्गम भागों को जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वायु परिवहन का प्रारम्भ देश में 1911 में हुआ जब इलाहबाद से नैनी के बीच विश्व की सर्वप्रथम डाक सेवा का परिवहन किया गया। सन् 1953 मे वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण किया गया। इंडियन एयर लाइन्स, एलान्स एयर (इंडियन एयर लाइन्स की अनुषांगी) तथा कई निजी एयर लाइन्स घरेलु विमान सेवाएं उपलब्ध करातीं हैं एयर इंडिया अन्तर्राष्ट्रीय वायु सेवाएँ उपलब्ध कराती है। पवनहंस हेलीकॉप्टर लिमिटेड, तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग को आपात आपातिक संकियाओं में तथा अगम्य व दूर्गम भू–भागों जैसे उत्तरी पूर्वी राज्यों तथा जम्मू कश्मीर हिमाचल प्रदेश व उत्तराखंड के आंतरिक क्षेत्रों में हेलीकॉप्टर सेवाएँ उपलब्ध करवाता है। इंडियन एयरलाइन देश के आन्तरिक भागों के अतिरिक्त समीपवर्ती देशो– नेपाल, बांग्लादेश, पाकिस्तान, अफगानिस्तान श्री लंका, म्यामांर तथा मालद्वीप को भी अपनी सेवाएं उपलब्ध करवाता है।

भारत में अन्तर्राष्ट्रय विमान पत्तन प्राधिकरण देश के चार बड़े हवाई अड्डों– मुम्बई, कोलकाता, दिल्ली व चेन्नई का प्रबन्ध करता है जबकि राष्ट्रीय विमान पतन प्राधिकरण देशी

चित्र 13.9 : वायु परिवहन

हवाई अड्डो और रक्षा हवाई अड्डों पर असैनिक उड़ान पट्टियों का प्रबन्ध करता है।

देश के विमान पत्तनों को उनके कार्य, विशेषता, महत्व तथा उनके द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं के आधार पर चार श्रेणीयों में रखा जाता है–

1. **अन्तर्राष्ट्रीय विमान पत्तन–** यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय विमान सेवाएँ उपलब्ध है। देश में निम्न पत्तन अन्तर्राष्ट्रीय विमान सेवाएं उपलब्ध कराते हैं– जवाहर लाल नेहरू विमान पत्तन (सांताकुज हवाई अड्डा मुंबई), सुभाष चन्द्रबोस विमान पत्तन (दमदम हवाई अड्डा, कोलकाता), इन्दिरा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय विमान पतन (दिल्ली) मीनाम्बकम (चेन्नई) तला तिरूअनन्तपुरम।

इनके अतिरिक्त बैंगलोर, हैदराबाद, अहमदाबाद, कोच्चि, तिरुअनन्तपुरम, कैलिकट, कोयम्बटुर, नागपुर, पूणे, जयपुर, लखनऊ, श्रीनगर, गोवा, अमृतसर, गुवाहाटी और नेदुम्बसरी में अन्तर्राष्ट्रीय विमान पत्तन हैं।

2. **प्रधान श्रेणी के विमान पत्तन –** ये छोटे बड़े सभी प्रकार के वायुयानों को उतारने एवं उड़ान भरने की सुविधा प्रदान करते हैं। ये निम्न हैं – अगरतला, अहमदाबाद, राजासेंसी (अमृतसर), आमौसी (लखनऊ) पटना, बेगम पेट (हैदराबाद), सेण्ट थामस (चैन्नई) सफदर जंग (दिल्ली), गुवाहाटी, जयपुर, नागपुर, तिरुचिरापल्ली, बढ़ापानी (शिलांग) आदि।

इनके अतिरिक्त देश मे 38 मध्य श्रेणी 28 छोटी श्रेणी के विमान पत्तन व सरकारी सहायता प्राप्त उड्यन क्लब भी हैं जहाँ चालको को प्रशिक्षण दिया जाता है।

राजस्थान में जयपुर सांगानेर स्थित विमान पत्तन प्रधान श्रेणी का हवाई अड्डा है। यहाँ दो टर्मिनल हैं जहाँ से देश व कुछ विदेशी विमान सेवाओं का संचालन सरकारी एवं निजि विमान कम्पनियों द्वारा किया जाता है। यहाँ से देश के सभी प्रमुख शहरों के लिए विमान सेवाएं उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त रातानाड़ा (जोधपुर) एवं डबोक (उदयपुर) में मध्यम श्रेणी के विमान पत्तन है जहाँ से देश के कुछ प्रमुख शहरों के लिए विमान सेवाएं उपलब्ध हैं। कोटा मे छोटी श्रेणी का विमान पत्तन है तथा अजमेर में भी किशनगढ़ के पास विमान पत्तन का निर्माण किया जा रहा है जहाँ से शीघ्र ही वायु परिवहन सेवाएँ उपलब्ध होगी।

संचार सेवाएं –

जब से मानव पृथ्वी पर अवतरित हुआ है, उसने विभिन्न संचार माध्यमों का प्रयोग किया है। प्रगति के पथ पर मानव बहुत दूर चला आया है। जीवन के हर क्षेत्र मे कई ऐसे मुकाम प्राप्त हो गये है जो हमे जीवन मे सभी सुविधाएं व आराम प्रदान करते हैं। आज संचार मानव की मुट्ठी मे समाया हुआ है तथा संचार क्षेत्र में क्रांतिकारी कदम उठाये गये हैं। अनेक नये स्रोत, नये साधन और नयी सुविधाएं प्राप्त कर ली गई है जो हमे आधुनिकता के दौर मे काफी ऊपर लाकर खड़ा करती है।

संदेश प्राप्तकर्ता या संदेश भेजने वाले के गतिविहीन रहते हुए भी लंबी दूरी का संचार बहुत आसान है। निजी दूरसंचार तथा जन संचार मे दूरदर्शन, रेडियो, समाचार पत्र समूह, प्रेस तथा सिनेमा, इंटरनेट, केबल, मोबाइल उपग्रह आदि देश के प्रमुख संचार साधन है। भारत का डाक संचार तंत्र विश्व का वृहतम है यह पार्सल, निजी पत्र व्यवहार, स्पीड पोस्ट आदि को संचालित करता है। कार्ड व लिफाफा, बंद चिट्ठी,

चित्र 13.10 : डाक सेवा पत्र पेटिका

पहली श्रेणी की डाक समझी जाती है तथा इन्हे विभिन्न स्थानों तक बस, रेल तथा वायुयानों व जल परिवहन की सहायता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाई जाती है।

आधुनिक संचार के साधन मे प्रमुखतः टेलीफोन, इन्टरनेट व मोबाईल सेवाएं है।

इन्टरनेट –

इन्टरनेट की शुरूआत 1969 में हुई थी उस समय एक सीमित क्षेत्र मे ही इन नेटवर्किंग का उपयोग सूचनाओं के आदान प्रदान के लिए होता था 1972 में ई – मेल की शुरूआत ने संचार जगत में क्रांति की शुरूआत की। ई–मेल की सहायता से कोई भी संदेश सूचना इत्यादि कुछ ही सैकण्ड मे विश्व के किसी भी कोने मे भेजी जा सकती है जहाँ इन्टरनेट सेवा उपलब्ध है। ई–मेल के द्वारा एक ही संदेश हजारों व्यक्तियों को एक साथ भेजा जा सकता है। इन्टरनेट की सहायता से विडियों कान्फ्रेन्सिंग भी की जाती है जो कम खर्चीली है तथा समय की बचत करती है इसके द्वारा देश विदेश के अलग जगह बैठे कई व्यक्ति श्रव्य दृश्य के माध्यम से आपस मे वार्तालाप कर सकते है।

इन्टरनेट के माध्यम से चित्र एवं चलचित्र भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी व शीघ्रता से भेजे व देखे जा सकते है विश्व के किसी भी कोने मे घटित प्रमुख घटना की जानकारी एक स्थान से दूसरे स्थान के व्यक्तियों तक शीघ्रता से पहुँच जाती है।

इन्टरनेट सेंवाएं टेलिफोन लाइनो के माध्यम से ब्राड बैण्ड सेवाओं तक मोबाईल सेवाओं के 2जी, 3जी, व 4जी नेटवर्को के माध्यम से प्राप्त होती है।

टेलिफोन –

संचार का एक महत्वपूर्ण साधन टेलिफोन है इसका अविष्कार ग्राहमबेल ने किया इसके पश्चात इसकी कार्य प्रणाली मे तेजी से सुधार आता गया। इसकी सहायता से अलग–अलग स्थानों पर बैठे व्यक्ति आपस मे बात कर सकते है तथा सूचनाओं का आदान प्रदान कर सकते है। टेलिफोन सेवाओं मे एस.टी.डी. व आइ.एस.डी. सेवाओं के आ जाने से देश व विदेश मे सीधे ही नंबर डायल कर व्यक्ति आपस मे बात कर सकते है एस.टी.डी. य आइ.एस.डी. सेवाओं मे देशो व शहरो के अंकिय कोड निर्धारित है जिन्हे टेलिफोन नंबर के पहले डायल कर सीधे ही बिना किसी इंतजार के बात की जा सकती है।

चित्र 13.11 : इन्टरनेट, मोबाइल व उपग्रह सेवाओं हेतु टावर व रडार

मोबाईल –

टेलिफोन संचार सेवाओं के क्षेत्र मे मोबाइल फोन सेवाओं के अविष्कार से एक महत्वपूर्ण क्रान्ति आ गई। मोबाईल सेवाओं से किसी भी व्यक्ति (जो मोबाईल फोन सेवा का उपयोग कर रहा है) से सीधे ही बात की जा सकती है मोबाईल सेवाओं द्वारा तीव्र गति की इन्टरनेट सेवाएं 3जी व 4जी उपलब्ध है जिनके द्वारा विडियों कॉलिंग सुविधा उपलब्ध है विभिन्न मोबाईल ऐपलिकेशन ने भी संचार सेवाओं को आसान व तीव्र बना दिया है तथा दिन प्रतिदिन इन सेवाओं में नई तकनीकी का अविष्कार हो रहा है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. वस्तुओं तथा सेवाओं को आपूर्ति स्थलों से माँग वाले स्थानों तक पहुँचाने हेतु परिवहन की आवश्यकता होती है।
2. परिवहन एवं संचार किसी देश की अर्थव्यवस्था की महत्त्वपूर्ण शक्ति है
3. परिवहन के तीन प्रमुख क्षेत्र है–
   1. स्थल 2. वायु 3. जल
4. स्थल परिवहन सड़क, रेल व पाइपलाइनों के माध्यम से होता है।
5. स्वर्णिम चतुर्भुज महाराज मार्ग देश के प्रमुख चार महा नगरों दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई मुम्बई को आपस में जोड़ता है।

6. राजस्थान से कुल सात राष्ट्रीय राजमार्ग गुजरते है जिनकी लम्बाई 685 किमी. है।
7. राजस्थान से गुजरने वाला राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 8 प्रमुख है जो दिल्ली से जयपुर, अजमेर, उदयपुर होता हुआ मुंबई जाता है।
8. राज्य के भीतर की वे सड़के जो राजधानी को प्रमुख शहरों, कस्बो, जिला मुख्यालयों को आपस मे तथा राष्ट्रीय राजमार्गो व पड़ोसी राज्यों के राजमार्गो से जोड़ती है, राज्यमार्ग कहलाती है।
9. देश मे प्रथम रेलगाड़ी का परिचालन 22 दिसम्बर 1851 को किया गया तथा प्रथम रेलगाड़ी मुम्बई व ठाणे के मध्य 33.6 किमी. मार्ग पर 16 अप्रेल 1853 को चलाई गई।
10. पाईप लाइन परिवहन एक परिवहन का नया साधन है इसकी सहायता से शहरों के भीतर व बाहर पानी का परिवहन होता था परन्तु आज इसका उपयोग कच्चे, तेल, पेट्रोल, डीजल, गैस एवं अयस्कों (घोल के रूप में) के एक स्थान से दूसरे स्थान तक परिवहन मे होता है।
11. जल परिवहन देश का सबसे सस्ता परिवहन का साधन है क्योंकि इसमे परिवहन मार्गो का निर्माण नहीं करना पड़ता है।
12. देश मे पाँच प्रमुख नौ गम्य राष्ट्रीय जल मार्ग तथा कई अन्य जल मार्ग है जिनके द्वारा परिवहन होता है।
13. वायु परिवहन सबसे तीव्रतम एवं आरामदायक परिवहन का साधन है जिसकी सहायता से अतिदुर्गम स्थानों जैसे ऊँचे पर्वत, मरूस्थलों, धने जंगलों व लम्बे समुद्री रास्तों को शीघ्रता एवं सुगमता से पार किया जाता है।
14. राजस्थान मे वायु परिवहन सेवा जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, व कोटा मे उपलब्ध है तथा शीघ्र ही यह अजमेर मे भी उपलब्ध होगी।
15. टेलिविजन, रेडियो, डाक, टेलीफोन, मोबाईल व इंटरनेट सेवाएं संचार के महत्वपूर्ण साधन है।
16. ई–मेल सेवाओं की सहायता से संदेश एक स्थान से दूसरे स्थान पर तुरन्त ही पहुँचाया जा सकता है।
17. मोबाईल सेवाओं तथा इस सेवा में होने वाले प्रतिदिन नये अविष्कार संचार क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. परिवहन क्या है?
2. स्थल परिवहन के प्रमुख क्षेत्र कौन–कौन से है?
3. देश के प्रमुख चार महानगरों के आपस मे जोड़ने वाले महाराज मार्ग का नाम लिखिए?
4. राजस्थान से कितने राष्ट्रीय राजमार्ग गुजरते हैं?
5. भारत की पहली विद्युत रेल का नाम लिखिए।
6. मालगाड़ियों के संचालन हेतु पृथक से निर्माणधीन रेल परियोजन का नाम लिखिए।
7. सबसे सस्ते परिवहन साधन का नाम लिखिए?
8. सबसे तीव्रतम परिवहन कौन–सा है?
9. ई–मेल का पुरा नाम लिखिए।
10. विडियो कॉलिंग हेतु आवश्यक प्रमुख संचार सेवा का नाम लिखिए?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. प्रधान मंत्री ग्राम सड़क योजना क्या है?
2. सड़क परिवहन को किन प्रमुख मार्गों मे वर्गीकृत किया गया है।
3. सीमान्त सड़कों का महत्त्व बताइये?
4. जल परिवहन सबसे सस्ता परिवहन क्यों है?
5. भारत के प्रमुख अन्तराष्ट्रीय विमान पत्तन के नाम लिखिए?
6. पाइप लाइन परिवहन के लाभ बताइये?

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. रेल परिवहन की अपेक्षा सड़क परिवहन की बढ़ती महत्ता के प्रमुख कारण लिखिए?
2. परिवहन तथा संचार किसी देश की जीवन रेखा तथा अर्थव्यवस्था क्यों कहे जाते है? समझाइये।
3. राजस्थान रोड विजन 2025 क्या है?
4. राजस्थान राज्य के परिवहन क्षेत्र में प्रगति का वर्णन करो?
5. आधुनिक संचार साधनों का वर्णन करो?

अध्याय 14

आर्थिक अवधारणाएं एवं नियोजन

14.1 राष्ट्रीय आय का सामान्य परिचय

हम दिन–प्रतिदिन के जीवन में अनेक बार आय शब्द का प्रयोग करते हैं। किसी भी व्यक्ति या परिवार के कल्याण को देखने हेतु सर्वाधिक उपयोगी कारक 'आय' को माना जाता है। हम सब यह जानते हैं कि आय कल्याण का एकमात्र निर्धारक नहीं है किन्तु इसे व्यक्ति के कल्याण के अनेक निर्धारकों में से एक प्रभावशाली कारक अवश्य ही माना जाता है। एक व्यक्ति या परिवार की आय बड़ी सीमा तक उसके भौतिक जीवन, सामाजिक प्रस्थिति तथा आर्थिक प्रगति की व्याख्या कर देती है। व्यक्ति या परिवार की भांति ही एक राष्ट्र की आय भी ज्ञात की जा सकती है। राष्ट्रीय आय की गणना एक अर्थव्यवस्था के लिए निम्नांकित दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती है।

(अ) राष्ट्रीय आय से राष्ट्र की आर्थिक स्थिति तथा आर्थिक प्रगति का ज्ञान होता है।

(आ) राष्ट्रीय आय के आधार पर हम विभिन्न राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं की तुलना कर सकते हैं।

(इ) इससे अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों के योगदान एवं उनके सापेक्षिक महत्त्व की जानकारी मिलती है।

(ई) राष्ट्रीय आय के अनुमानों के आधार पर अर्थव्यवस्था के लिए भावी नीतियों का निर्माण किया जा सकता है।

14.1.1 राष्ट्रीय आय

राष्ट्रीय आय एक अर्थव्यवस्था की आर्थिक निष्पादकता का मौद्रिक माप है । इसे देश के उत्पादन के सभी साधनों द्वारा एक निश्चित अवधि (एक वित्त वर्ष) के दौरान उत्पादित समस्त अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के मौद्रिक मूल्य के रूप में परिभाषित किया जाता है। ध्यान रहे कि राष्ट्रीय आय में देश की अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य को ही शामिल किया जाता है। अन्तिम वस्तु या सेवा वह वस्तु होती है, जिसका उत्पादन प्रक्रिया में पुनः प्रसंस्करण नहीं किया जाता है। साथ ही यह भी महत्त्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय आय देश के उत्पादन के सभी साधनों की आय का योग होती है न कि देश के व्यक्तियों की आय का।

वित्त वर्ष – भारत में वित्त वर्ष 1 अप्रेल से 31 मार्च तक होता है।
उत्पादन – उपयोगिता का सृजन तथा मूल्य वृद्धि का सृजन ही उत्पादन होता है।

देश के सभी साधन अपने संयुक्त प्रयास द्वारा जितने मूल्य की अन्तिम वस्तुयें तथा सेवायें उत्पादित करते हैं देश में उतने ही मूल्य की मूल्य वृद्धि का निर्माण होता है। इस मूल्य वृद्धि को सभी साधनों के स्वामियों को वितरित किया जाता है। साधनों को उनकी सेवाओं का पुरस्कार दिया जाता है। भूमि को लगान, श्रम को मजदूरी, पूँजी को ब्याज तथा उद्यमी को लाभ प्राप्त होता है। राष्ट्र के उत्पादन के साधनों को प्राप्त होने वाला भुगतान उस राष्ट्र के सभी साधनों द्वारा की गयी मूल्य वृद्धि (उत्पादन) के समान होता है। इस प्रकार साधनों द्वारा जो उत्पादन किया जाता है वही उत्पादन के साधनों को आय के रूप में प्राप्त होता है। अतः एक राष्ट्र के लिए सकल राष्ट्रीय उत्पाद तथा सकल राष्ट्रीय आय समान होती है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि एक देश के उत्पादन के सभी साधनों द्वारा एक वित्त वर्ष में उत्पादन प्रक्रिया में योगदान के फलस्वरूप प्राप्त आय का योग राष्ट्रीय आय कहलाती है। राष्ट्रीय आय को घरेलू साधन आय तथा विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय के योग के रूप में भी बताया जा सकता है।

घरेलू साधन आय का तात्पर्य देश की घरेलू सीमाओं के अन्दर उत्पन्न होने वाली साधन आय से है।

राष्ट्रीय आय के अनेक रूप होते हैं, जिन्हें राष्ट्रीय आय अवधारणाएँ कहा जाता है। इन सभी अवधारणाओं के विशिष्ट वैज्ञानिक नाम, अर्थ एवं उपयोगिताएं हैं। इनमें सकल घरेलू उत्पाद, शुद्ध घरेलू उत्पाद, सकल राष्ट्रीय उत्पाद, शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद आदि प्रमुख है। एक–दूसरे से पृथक होते हुए भी ये सभी अवधारणाएँ एक अर्थव्यवस्था की आय को ही प्रदर्शित करती हैं। एक अर्थव्यवस्था की निष्पादकता को मापने हेतु प्रायः सकल घरेलू उत्पाद को अधिक उपयोग में लिया जाता है। एक वित्त वर्ष के दौरान देश की घरेलू सीमाओं में उत्पादित समस्त अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के मौद्रिक मूल्यों का योग सकल घरेलू उत्पाद कहलाता है।

14.1.2 प्रति व्यक्ति आय

राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण का एक उपयुक्त माप नहीं है। यह जनसंख्या में परिवर्तन के प्रभाव को समायोजित नहीं करता है। जनसंख्या में परिवर्तन के प्रभाव को गणना में शामिल करने से

प्रति व्यक्ति आय, राष्ट्रीय आय की तुलना में आर्थिक कल्याण एवं आर्थिक विकास का अधिक उपयुक्त माप बन जाता है। प्रति व्यक्ति आय ज्ञात करने हेतु देश की राष्ट्रीय आय को उस देश की जनसंख्या से विभाजित किया जाता है–

$$\text{प्रति व्यक्ति आय} = \frac{\text{राष्ट्रीय आय}}{\text{जनसंख्या}}$$

14.1.3 भारत में राष्ट्रीय आय की गणना

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में राष्ट्रीय आय की गणना हेतु कोई सरकारी संस्था नहीं थी। भारत में राष्ट्रीय आय की प्रथम गणना श्री दादा भाई नौरोजी द्वारा 1868 ई. में की गयी थी। इनके पश्चात् फिण्डले शिराज, डॉ0 वी0 के0 आर0 वी0 राव, आर0 सी0 देसाई इत्यादि के द्वारा भी राष्ट्रीय आय के अनुमान लगाये गये। इन सभी विद्वानों ने राष्ट्रीय आय की गणना हेतु अलग–अलग विधियों और आधारों का प्रयोग किया। परन्तु इन विद्वानों के पास विश्वसनीय समंकों एवं सूचनाओं का अभाव था तथा इन्होंने उपयुक्त सांख्यिकीय विधियों का भी उपयोग नहीं किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार द्वारा श्री पी0 सी0 महालनोबिस की अध्यक्षता में अगस्त 1949 में राष्ट्रीय आय समिति का गठन किया गया। इस समिति ने अपनी प्रथम रिपोर्ट 1951 ई. में तथा अन्तिम रिपोर्ट 1955 ई. में प्रस्तुत की । इसके द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना का कार्य केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (Central Statistical Organisation-CSO) को सौंप दिया गया, जो वर्ष 1955 से प्रतिवर्ष CSO भारत में राष्ट्रीय आय की गणना का कार्य कर रहा है।

14.2 अर्थव्यवस्था के क्षेत्र

आप लोगों को विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में कार्यरत पाएँगे। इनमें से कुछ गतिविधियाँ वस्तुओं का उत्पादन करती हैं एवं कुछ सेवाओं का सृजन करती हैं। ये गतिविधियाँ हमारे चारों ओर हर समय सम्पादित होती हैं। हम इन गतिविधियों को कैसे समझ सकते हैं ? इन्हें समझने का एक तरीका यह है कि कुछ महत्त्वपूर्ण मानदंडों के आधार पर इन्हें विभिन्न समूहों में वर्गीकृत कर दिया जाए। इन समूहों को अर्थव्यवस्था के क्षेत्र भी कहते हैं।

14.2.1 अर्थव्यवस्था के तीन क्षेत्र

प्राथमिक क्षेत्र में उन गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है, जिनमें प्राकृतिक संसाधनों को प्रत्यक्ष रूप से उपयोग में लेकर उत्पादन किया जाता हैं। प्राकृतिक संसाधनों के प्रत्यक्ष उपयोग पर आधारित अनेक गतिविधियाँ हैं, जैसे–कपास की खेती। यह एक मौसमी फसल है। कपास के पौधों की वृद्धि के लिए हम मुख्यतः प्राकृतिक कारकों जैसे–वर्षा, सूर्य का प्रकाश और जलवायु पर निर्भर है। अतः कपास एक प्राकृतिक उत्पाद है। इसी प्रकार डेयरी, खनन इत्यादि में भी प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके किसी वस्तु का उत्पादन करते हैं इसलिए इन्हें भी प्राथमिक क्षेत्र की गतिविधि कहा जाता हैं। प्राथमिक क्षेत्र को कृषि एवं सहायक क्षेत्र भी कहा जाता है।

द्वितीयक क्षेत्र की गतिविधियों के अन्तर्गत उत्पादों को विनिर्माण प्रणाली द्वारा अन्य रूपों में परिवर्तित किया जाता है। यह प्राथमिक क्षेत्र के बाद का अगला कदम है। यहाँ वस्तुएँ निर्मित की जाती हैं। यह प्रक्रिया किसी कारखाना, किसी कार्यशाला या घर में हो सकती है। जैसे कपास के पौधे से प्राप्त रेशे का उपयोग कर हम सूत कातते हैं और कपड़ा बुनते हैं, गन्ने को कच्चे माल के रूप में उपयोग कर हम चीनी और गुड़ तैयार करते हैं, मिट्टी से हम ईंटें बनाते हैं और ईंटों से घर और भवनों का निर्माण करते हैं। चूँकि यह क्षेत्र क्रमशः संवर्धित विभिन्न प्रकार के उद्योगों से जुड़ा हुआ है, इसलिए इसे औद्योगिक क्षेत्र भी कहा जाता है।

प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्र के अतिरिक्त आर्थिक गतिविधियों की एक तीसरी कोटि भी है, जो तृतीयक क्षेत्र के अन्तर्गत आती है और उपर्युक्त दो क्षेत्रों से भिन्न है। ये गतिविधियाँ प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्र के विकास में सहयोग करती हैं। ये स्वतः वस्तुओं का उत्पादन नहीं करती हैं बल्कि उत्पादन प्रक्रिया में सहयोग करती हैं। जैसे प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तुओं को थोक एवं खुदरा विक्रेताओं को बेचने के लिए ट्रकों और रेलगाड़ियों द्वारा परिवहन की आवश्यकता पड़ती है। कभी–कभी वस्तुओं का गोदामों में भंडारण करने की आवश्यकता होती है। हमें उत्पादन और व्यापार में सहूलियत के लिए टेलीफोन पर वार्तालाप करने, पत्राचार (संवाद) करने या बैंकों से कर्ज लेने की भी आवश्यकता होती है। परिवहन, भण्डारण, संचार, बैंक सेवाएं और व्यापार तृतीयक क्षेत्र की गतिविधियों के कुछ उदाहरण हैं। चूँकि ये गतिविधियाँ वस्तुओं के बजाय सेवाओं का सृजन करती हैं, इसलिए तृतीयक क्षेत्र को सेवा क्षेत्र भी कहा जाता है।

सेवा क्षेत्र में कुछ ऐसी अपरिहार्य सेवाएँ भी हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं के उत्पादन में सहायता नहीं करती हैं। इनमें शिक्षक, चिकित्सक, धोबी, नाई, मोची एवं वकील प्रशासनिक एवं लेखा कार्य करने वालों की सेवाएं सम्मिलित होती है। वर्तमान समय में सूचना–प्रौद्योगिकी पर आधारित कुछ नवीन सेवाएँ इंटरनेट कैफे, ए. टी. एम. बूथ, ई–कियोस्क, कॉल सेन्टर, सॉफ्टवेयर कम्पनी इत्यादि की सेवाएं भी महत्त्वपूर्ण हो गई हैं।

14.2.2 क्षेत्रों में ऐतिहासिक परिवर्तन

सामान्यतया अधिकांश विकसित देशों में यह पाया गया है

कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में प्राथमिक क्षेत्र ही सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। धीरे–धीरे कृषि प्रणाली परिवर्तित होती गई और यह क्षेत्र समृद्ध होता गया व पहले की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन होने लगा। अनेक लोग दूसरे कार्य करने लगे। शिल्पियों और व्यापारियों की संख्या में वृद्धि होने लगी। क्रय–विक्रय की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ गईं। इसके अतिरिक्त अनेक लोग परिवहन, प्रशासन और सैनिक कार्य इत्यादि से भी जुड़ते गये। फिर भी इस अवस्था में अधिकांश वस्तुएँ प्राथमिक क्षेत्र से उत्पादित होती थीं, अधिकतर लोग इसी क्षेत्र में रोजगार प्राप्त करते थे।

विनिर्माण की नवीन प्रणाली के प्रचलन से कारखाने अस्तित्व में आए और उनका प्रसार होने लगा। जो लोग पहले खेतों में काम करते थे, उनमें से बहुत से लोग कारखानों में काम करने लगे। कारखानों में सस्ती दरों पर उत्पादित वस्तुओं का उपयोग होने के कारण कुल उत्पादन एवं रोजगार की दृष्टि से द्वितीयक क्षेत्र सबसे महत्त्वपूर्ण हो गया। इसके फलस्वरूप अतिरिक्त समय में भी काम होने लगा। विगत 100 वर्षों में, विकसित देशों में द्वितीयक क्षेत्र से तृतीयक क्षेत्र की ओर बदलाव हुआ है। कुल उत्पादन की दृष्टि से सेवा–क्षेत्र का महत्त्व बढ़ गया। अधिकांश श्रमजीवी लोग सेवा–क्षेत्र में नियोजित हैं। विकसित देशों में यही स्थिति देखते को मिलती है।

14.2.3 उत्पादन में तृतीयक क्षेत्र का बढ़ता महत्त्व

पिछले वर्षों में अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादन में वृद्धि हुई है परन्तु सबसे अधिक वृद्धि तृतीयक क्षेत्र के उत्पादन में हुई है। परिणामतः भारत में प्राथमिक क्षेत्र को प्रतिष्ठापित करते हुए, तृतीयक क्षेत्र सबसे बड़े उत्पादक क्षेत्र के रूप में उभरा। भारत में यद्यपि सकल घरेलू उत्पाद में तीनों क्षेत्रों की हिस्सेदारी में परिवर्तन हुआ है, फिर भी रोजगार में उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है। प्राथमिक क्षेत्र से रोजगार का स्थानान्तरण क्यों नहीं हुआ ? इसका कारण यह कि द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र में रोजगार के अवसरों का पर्याप्त सृजन नहीं हुआ। परिणामतः देश में लगभग आधे श्रमिक प्राथमिक क्षेत्र, मुख्यतः कृषि–क्षेत्र में काम कर रहे है, जिसका सकल घरेलू उत्पाद में योगदान 15 प्रतिशत से भी कम है। इसकी तुलना में द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सा 85 प्रतिशत से अधिक है। ये क्षेत्र लगभग आधे लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं।

14.3 आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक विकास

जिन देशों की आय अधिक है, उन्हें कम आय वाले देशों से अधिक विकसित समझा जाता है। अधिक आय का अर्थ मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि हेतु अधिक वस्तुओं का उपलब्ध होना है। चूँकि विभिन्न राष्ट्रों की जनसंख्या अलग–अलग होती है, अतः राष्ट्रों के बीच तुलना करने के लिये कुल आय इतना उपयुक्त माप नहीं है। कुल आय की तुलना करने से हमें यह ज्ञात नहीं होता है कि औसत व्यक्ति क्या कमा रहा है, इसीलिए राष्ट्रीय आय की तुलना में औसत या प्रति व्यक्ति आय को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। समय के साथ–साथ राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि को आर्थिक वृद्धि के रूप में परिभाषित किया जाता है। राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय एक देश के विकास स्तर तथा कल्याण को मापने एवं देखने की दृष्टि से अति उपयोगी है, लेकिन यह देश के विकास के स्तर तथा कल्याण का पर्याप्त माप नहीं है।

जब हम व्यक्तिगत आकांक्षाओं और लक्ष्यों को देखते हैं तो पाते हैं कि लोग केवल बेहतर आय ही नहीं चाहते, अपितु वे अपनी सुरक्षा, दूसरों से आदर और समानता का व्यवहार, स्वतन्त्रता इत्यादि भी पाना चाहते हैं। इस प्रकार राष्ट्र के कल्याण के लिए केवल आय ही महत्त्वपूर्ण नहीं है। विकसित सामाजिक संरचना एवं अच्छे पर्यावरण को सिर्फ पैसे से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। लम्बे समय तक यही माना जाता रहा कि जब एक देश की आय में वृद्धि होगी तो वहाँ के लोग ज्यादा सुखी होंगे। धीरे–धीरे यह अनुभव होने लगा कि देश की आय अधिक होने पर भी वहां के लोगों के जीवन की गुणवत्ता निम्न रह सकती है।

यह माना जाने लगा है कि केवल आर्थिक वृद्धि ही ध्येय नहीं है वरन् आर्थिक वृद्धि के साथ–साथ मनुष्यों के सामाजिक, राजनैतिक एवं जीवन के अन्य सभी आयामों में भी सुधार होना चाहिए। आर्थिक वृद्धि के साथ–साथ लोगों के जीवन की गुणवत्ता के अन्य आयामों में सकारात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया को आर्थिक विकास कहा जाता है।

14.3.1 आर्थिक वृद्धि

समय के साथ–साथ राष्ट्र के वास्तविक उत्पादन या आय के स्तर में वृद्धि होना ही आर्थिक वृद्धि कहलाती है। सरल शब्दों में आर्थिक वृद्धि, बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय को सूचित करती है। यह अर्थव्यवस्था के आकार में परिवर्तन का प्रत्यक्ष माप है। आम तौर पर इसे कल्याण के एक मापक के रूप में देखा जाता है। राष्ट्र के प्राकृतिक, भौतिक, मानवीय एवं पूँजीगत संसाधनों की मात्रा तथा गुणवत्ता में वृद्धि कर इनके कुशल उपयोग द्वारा उत्पादन या आय के उच्च स्तर को प्राप्त करने की प्रक्रिया ही आर्थिक वृद्धि कहलाती है। आर्थिक वृद्धि एक दीर्घकालीन मात्रात्मक प्रक्रिया है।

आर्थिक वृद्धि के गुणात्मक आयाम नहीं होते हैं। यह मूल्यविहीन अवधारणा है। आर्थिक वृद्धि में सामाजिक, राजनैतिक,

संस्थागत इत्यादि स्थितियों में होने वाले परिवर्तनों पर कोई विचार नहीं किया जाता हैं।

14.3.2 आर्थिक विकास

आर्थिक विकास, आर्थिक वृद्धि की तुलना में व्यापक अवधारणा है। यह वह प्रक्रिया है, जिसमें एक अर्थव्यवस्था में वास्तविक राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है और इसके साथ–साथ सामाजिक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक स्वरूप, संस्थागत ढांचे, उत्पादन की तकनीक तथा अर्थव्यवस्था की संरचना में भी अनुकूल परिवर्तन होते हैं। आर्थिक विकास की प्रक्रिया राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक कल्याण को सुनिश्चित करती है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया के गुणात्मक आयाम भी होते हैं। इन गुणात्मक आयामों को वास्तविक राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। आर्थिक वृद्धि तथा अनुकूल सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं संस्थागत परिवर्तनों का योग आर्थिक विकास कहलाता है। चूँकि आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण आयाम आर्थिक वृद्धि है, अतः कहा जा सकता है कि बिना वृद्धि के विकास नहीं हो सकता है। किसी भी राष्ट्र के विकास के स्तर तथा कल्याण के मापक के रूप में आर्थिक विकास को आर्थिक वृद्धि की तुलना में अधिक उपयुक्त माना जाता है।

सामाजिक विज्ञान के विकास के क्रम में जब यह स्वीकार किया गया कि राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय का स्तर, विकास या कल्याण को मापने का अपर्याप्त मापदण्ड हैं तो आर्थिक विकास के साथ–साथ विकास की कुछ अन्य अवधारणाएँ यथा–सतत विकास, समावेशी विकास, मानव विकास आदि भी अत्यधिक लोकप्रिय हुई।

सतत विकास या धारणीय विकास या पोषणीय विकास –

सतत विकास वह है, जो भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने की क्षमता से समझौता किये बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करता है। यह वह आर्थिक विकास है जो प्राकृतिक संसाधनों को हानि पहुँचाये बिना किया जाता है। कहा जा सकता है कि प्राकृतिक संसाधनों की निरंतरता को बनाये रखते हुऐ जो आर्थिक विकास किया जाता है वह सतत विकास कहलाता है।

समावेशी विकास –

समावेशी विकास यह सुनिश्चित करता है कि विकास के लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचने चाहिये। अनेक लोग लिंग, भाषा, क्षेत्र के भेदभाव, गरीबी तथा शारीरिक असमर्थता के कारण आर्थिक विकास के लाभों से वंचित रह जाते हैं। समावेशी विकास समाज के वंचित वर्गों को विकास की मुख्य धारा में शामिल करने पर बल देता है। यह एक व्यापक अवधारणा है जो आय की समानता के साथ–साथ अवसर की समानता तथा जीवन के सभी आयामों में समान मानवीय अधिकारों का समर्थन करती है।

मानव विकास –

मानव विकास की अवधारणा 1990 ई. में मानव विकास सूचकांक की रचना के साथ मुखर हुई। महबूब उल हक के नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा तीन व्यापक आयामों यथा ज्ञान, स्वास्थ्य (जीवन–प्रत्याशा) तथा जीवन–स्तर (प्रति व्यक्ति आय) को शामिल करते हुऐ मानव विकास के स्तर को मापने के लिए एक सूचकांक तैयार किया गया। यह सूचकांक इसलिए तैयार किया गया था कि विकास–परिणामों का मूल्यांकन करने की अंतिम कसौटी मनुष्य के लिए विकल्पों का विस्तार होना चाहिए। इस प्रकिया में आर्थिक वृद्धि एक साधन है, साध्य नहीं। इस सूचकांक ने विकास के मुद्दे को अर्थ–केन्द्रित से मनुष्य–केन्द्रित बना दिया। यह राष्ट्रों के कल्याण और विकास के स्तर को मापने तथा विभिन्न राष्ट्रों के बीच तुलना करने हेतु एक प्रभावी सूचकांक है।

14.4 भारत में नियोजन

हम समय, धन आदि संसाधनों का प्रयोग इस प्रकार करना चाहते हैं कि अधिकतम कार्यों को उन संसाधनों के उपयोग द्वारा सही ढ़ंग से सम्पन्न किया जा सके। किसी भी घरेलू कार्यक्रम को सम्पन्न करने के लिए सर्वप्रथम उसकी रूपरेखा तैयार की जाती है। इसके पश्चात् व्यक्ति या परिवार अपने संसाधनों को इस प्रकार से उपयोग में लेने का प्रयत्न करता हैं कि वह श्रेष्ठ ढंग से जी सके।

व्यक्ति या परिवार की भांति ही एक राष्ट्र भी अपने संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करके अनेक लक्ष्यों को पूरा करना चाहता है। नियोजन वह तकनीक है जिसमें उपलब्ध संसाधनों का प्राथमिकता क्रम में निर्धारित विभिन्न लक्ष्यों में अनुकूलतम आवंटन एवं उपयोग करके उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। नियोजन के कुछ महत्त्वपूर्ण घटक होते हैं। प्रथम, इसमें प्राथमिकता क्रम में निर्धारित सुपरिभाषित लक्ष्य एवं उद्देश्य होते हैं। द्वितीय, उपलब्ध संसाधनों का अनुमान लगाया जाता है। तृतीय, अनुमान लगाकर उन संसाधनों का विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अनुकूलतम आवंटन तथा उपयोग किया जाता है। यद्यपि आर्थिक नियोजन की अनेक परिभाषाएँ हैं लेकिन सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि उपलब्ध आर्थिक संसाधनों के उपयोग से, निर्धारित सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का विज्ञान ही आर्थिक नियोजन है। आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण निर्णय केन्द्रीय प्राधिकार द्वारा लिए जाते हैं। अर्थव्यवस्था की गति, दिशा, प्रबंधन एवं निर्धारण केन्द्रीय प्राधिकार के द्वारा तय होता है।

नियोजन संसाधनों का उपयोग करके लक्ष्यों को प्राप्त करने की तकनीक है। इस तकनीक का उपयोग एक राष्ट्र अनेक क्षेत्रों में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कर सकता है, जैसे परिवार–नियोजन, वित्तीय नियोजन आदि। जब नियोजन की तकनीक का उपयोग अर्थव्यवस्था के विकास या वांछित आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया जाता है तो वह आर्थिक नियोजन कहलाता है।

राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक नियोजन की तकनीक सर्वप्रथम सोवियत संघ द्वारा अपनायी गई थी। सोवियत संघ ने 1928 ई. में केन्द्रीय नियोजन की घोषणा की तथा पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास का मार्ग अपनाया तथा इसकी प्रथम पंचवर्षीय योजना अपने आप में एक क्रांति सिद्ध हुई। स्वंतत्रता के पश्चात् भारत भी तीव्र आर्थिक विकास के लिए राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक नियोजन के मॉडल को अपनाने वाले राष्ट्रों की सूची में शामिल हो गया।

आर्थिक नियोजन के विचार ने भारतीय विद्वानों तथा बुद्धिजीवियों को अत्यधिक प्रभावित किया। 1930 ई. से 1940 ई. के दशक में भारत के विभिन्न विद्वानों ने नियोजन हेतु अनेक प्रस्ताव रखे तथा इसके द्वारा विकास का मार्ग अपनाने का समर्थन किया। भारतीय आर्थिक नियोजन के इतिहास में प्रथम प्रयास 1934 ई. में सर एम. विश्वेश्वरैया द्वारा किया गया। इन्होंने अपनी पुस्तक "प्लान्ड इकॉनॉमी ऑफ इंडिया" (Planned Economy of India) में भारत के नियोजित विकास के लिए एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण हेतु भारत सरकार ने एक संकल्प द्वारा मार्च 1950 में योजना आयोग की स्थापना की। इसका मुख्य कार्य देश के संसाधनों का आकलन कर उन्हें बढ़ाना तथा संसाधनों को प्रभावी एवं संतुलित उपयोग के लिए योजनाएं बनाना था। योजनाओं में विभिन्न उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राथमिकताओं का निर्धारण कर संसाधन आवंटन का प्रस्ताव रखना भी योजना आयोग का महत्त्वपूर्ण कार्य था।

योजना आयोग एक संविधानेत्तर तथा सलाहकारी संस्था थी। अगस्त 1952 में भारत सरकार ने एक संकल्प के द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थापना की। इसकी स्थापना का मुख्य ध्येय भारत के राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों को योजना निर्माण एवं क्रियान्वयन में शामिल करना तथा नियोजन की प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण करना था। राष्ट्रीय विकास परिषद् योजना आयोग द्वारा तैयार की गई योजनाओं का अनुमोदन करती है तथा समय–समय पर योजनाओं की प्रगति की समीक्षा करती है। राज्यों के मुख्यमंत्री तथा केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासक अथवा उपराज्यपाल भी इसके सदस्य होते हैं। यह भी एक संविधानेत्तर तथा सलाहकारी संस्था है। योजना आयोग राष्ट्रीय विकास परिषद् के व्यापक मार्गदर्शन के अन्तर्गत कार्य करता है।

14.4.1 भारत में आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

भारत में नियोजन को देश के रूपान्तरण के एक महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में अपनाया गया। स्वतंत्रता से पूर्व भारत के भविष्य के सम्बंध में देखे गये सपनों को साकार करने के लिए नियोजन का मार्ग अपनाया गया। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में अनेक महत्त्वाकांक्षी उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण करके उन्हें प्राप्त करने हेतु प्रयत्न किया गया। सार रूप में भारत में नियोजन के प्रमुख उद्देश्य हैं–

1. आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना।
2. गरीबी की समस्या का समाधान करना।
3. आय की असमानताओं को कम करना। गरीबी तथा आय की

क्र.सं.	पंचवर्षीय योजना	निर्धारित अवधि
1	पहली पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 1951 से 31 मार्च 1956 तक
2	दूसरी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 1956 से 31 मार्च 1961 तक
3	तीसरी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 1961 से 31 मार्च 1966 तक
4	चौथी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 1969 से 31 मार्च 1974 तक
5	पांचवी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 1974 से 31 मार्च 1979 तक
6	छठी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 1980 से 31 मार्च 1985 तक
7	सातवीं पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 1985 से 31 मार्च 1990 तक
8	आठवी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 1992 से 31 मार्च 1997 तक
9	नवीं पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 1997 से 31 मार्च 2002 तक
10	दसवी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 2002 से 31 मार्च 2007 तक
11	ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 2007 से 31 मार्च 2012 तक
12	बारहवीं पंचवर्षीय योजना	1 अप्रैल 2012 से 31 मार्च 2017 तक

असमानता को समाप्त करके सामाजिक न्याय की स्थापना करना।

4. उपलब्ध मानवीय पूँजी का कुशलतम उपयोग करना तथा रोजगार के अवसरों का विस्तार करना।

5. सभी क्षेत्रों में आत्म निर्भरता की प्राप्ति, लेकिन मुख्यतः खाद्यान्न एवं औद्योगिक कच्चे माल के उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना।

6. परम्परागत भारतीय अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण करना।

7. शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार करना और अधिकतम सामाजिक कल्याण की स्थिति को प्राप्त करना।

8. आर्थिक स्थिरता प्राप्त करना, क्योंकि आर्थिक स्थिरता के बिना आर्थिक विकास अर्थहीन हो जाता है ।

9. ग्रामीण विकास, सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाओं का विस्तार, ऊर्जा उत्पादन में वृद्धि इत्यादि ।

10. क्षेत्रीय असमानताओं की समाप्ति।

14.4.2 भारत में पंचवर्षीय योजनाएं

नियोजित आर्थिक विकास की रणनीति के अन्तर्गत भारत में अब तक बारह पंचवर्षीय योजनाएं बनायी गयीं।

भारत–पाकिस्तान युद्ध, लगातार सूखे, मूल्य–वृद्धि तथा संसाधनों के क्षय से तीसरी योजना के पश्चात् योजना बनाने की प्रक्रिया में आई बाधा के कारण 1966 से 1969 ई. के बीच तीन वार्षिक योजनाएं बनाई गयीं। इस अवधि को योजना अवकाश कहा जाता है। तत्कालीन जनता सरकार ने पांचवीं पंचवर्षीय योजना को समय से पहले 1978 ई. में ही समाप्त करके, 1978 से 1983 के लिए अनवरत योजना प्रस्तुत की गई।

1980 में कांग्रेस सरकार ने अनवरत योजना को समाप्त करके 1 अप्रैल 1980 से 31 मार्च 1985 तक के लिए छठी पंचवर्षीय योजना घोषित की। 1978–79 के वित्त वर्ष को पांचवी योजना के साथ जोड़ दिया गया तथा 1979–80 की योजना को एकवर्षीय योजना की तरह देखा गया। इसी प्रकार तेजी से बदलती राजनैतिक स्थिति के कारण 1990 ई. में आठवीं पंचवर्षीय योजना आरम्भ नहीं की जा सकी।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना का आधार अधिक तीव्र, समावेशी और धारणीय विकास रखा गया। इस योजना में 8 प्रतिशत विकास दर का संशोधित लक्ष्य रखा गया है और साथ ही गरीबी निवारण, बेरोजगारी में कमी, शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार आदि निगरानी योग्य लक्ष्य भी रखे गये हैं।

अनवरत योजना– इसमें एक चालू योजना को निश्चित समय अन्तराल के बाद अद्यतन और सम्पादित किया जाता है। इसमें चालू योजना के लक्ष्यों, अनुमानों, संसाधन आवंटन और योजना की समयावधि को परिवर्तित करने की लोचशीलता होती है।

14.4.3 नीति आयोग (NITI AAYOG)

नीति आयोग या बदलते भारत के लिए राष्ट्रीय संस्थान ;की स्थापना केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के एक संकल्प द्वारा 1 जनवरी 2015 को की गई। वर्तमान में नीति आयोग के अध्यक्ष माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी, उपाध्यक्ष श्री अरविन्द पनगडिया तथा मुख्य कार्यकारी अधिकारी श्री अमिताभ कान्त हैं। सभी राज्यों के मुख्यमंत्री तथा केन्द्रशासित राज्यों के उपराज्यपाल नीति आयोग के सदस्य हैं। नीति आयोग भारत सरकार के लिए रणनीतिक तथा दीर्घकालिक नीतियों और कार्यक्रमों के निर्माण के साथ–साथ तकनीकी सलाह भी प्रदान कर रहा है। यह भारत सरकार के लिए थिंक टैंक है। अपने सुधार एजेंडे के तहत भारत सरकार ने योजना आयोग को विस्थापित करके नीति आयोग की स्थापना की है। यह एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है। सभी राज्य राष्ट्रहित में एक साथ कार्य करें, इसके लिए नीति आयोग एक सर्वश्रेष्ठ मंच है। यह सहकारी संघवाद को बढ़ावा देता है। नीति आयोग की स्थापना के मूल में दो केन्द्र हैं–टीम इंडिया हब तथा ज्ञान और नवाचार हब। टीम इंडिया हब राज्य सरकारों को केन्द्र सरकार के साथ शामिल करने का कार्य करता है। ज्ञान और नवाचार हब नीति आयोग की थिंक टैंक क्षमताओं को मजबूत बनाता है। नीति आयोग सहयोगपूर्ण संघवाद पर आधारित एक क्रांतिकारी सुधार है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. एक देश के सभी साधनों द्वारा एक वर्ष में उत्पादन प्रक्रिया में योगदान के फलस्वरूप अर्जित आय का योग राष्ट्रीय आय कहलाता है।

2. एक देश की घरेलू सीमाओं में एक वर्ष में उत्पादित समस्त अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के मौद्रिक मूल्यों का योग सकल घरेलू उत्पाद कहलाता है।

3. एक देश की राष्ट्रीय आय में उस देश की जनसंख्या का भाग देने पर प्रति व्यक्ति आय प्राप्त होती है।

4. भारत में राष्ट्रीय आय की गणना का कार्य केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा किया जाता है।

5. अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन की गतिविधियों को अर्थव्यवस्था के तीन क्षेत्रों (प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र तथा तृतीयक क्षेत्र) में वर्गीकृत किया गया है।

6. प्राथमिक क्षेत्र में कृषि, पशुपालन सम्बद्ध अन्य उत्पादन क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।

7. द्वितीयक क्षेत्र की क्रियाओं में विनिर्माण तथा निर्माण क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।

8. तृतीयक क्षेत्र को सेवा क्षेत्र भी कहा जाता है। यह क्षेत्र

सेवाओं के उत्पादन से सम्बन्धित है।

9. आर्थिक वृद्धि का तात्पर्य बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय से है। यह एक मात्रात्मक अवधारणा है।

10. आर्थिक विकास का तात्पर्य बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ–साथ अर्थव्यवस्था की संरचना, संस्थागत ढांचे, तकनीक एवं सामाजिक दृष्टिकोण आदि में अनुकूल परिवर्तन होने से है।

11. एक अर्थव्यवस्था द्वारा उपलब्ध आर्थिक संसाधनों को उपयोग में लेकर निर्धारण लक्ष्यों को प्राप्त करने का विज्ञान ही आर्थिक नियोजन है।

12. भारत में अब तक बारह पंचवर्षीय योजनाएं बनायी गयी हैं। योजनाएं बनाने का कार्य योजना आयोग द्वारा किया जाता था।

13. योजना आयोग को समाप्त करके 1 जनवरी 2015 को नीति आयोग की स्थापना की गई।

14. नीति आयोग सरकार के लिए विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों का निर्माण तथा सरकार को सलाह प्रदान करने का कार्य करता है।

अभ्यास प्रश्न

(अ) अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. राष्ट्रीय आय की परिभाषा लिखिए।
2. सकल घरेलू उत्पाद को परिभाषित कीजिए।
3. राष्ट्रीय आय की गणना हेतु राष्ट्रीय आय समिति का गठन कब किया गया?
4. भारत में वर्तमान में राष्ट्रीय आय की गणना का कार्य कौन करता हैं?
5. अर्थव्यवस्था को कितने क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है? नाम लिखिए।
6. तृतीयक क्षेत्र में शामिल की जाने वाली तीन सेवाओं के नाम लिखिए।
7. आर्थिक विकास का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
8. श्री एम0 विश्वेश्वरैया की पुस्तक का नाम लिखिए।
9. कौनसी पंचवर्षीय योजना को समय से एक वर्ष पूर्व ही समाप्त कर दिया गया था?
10. नीति आयोग के अध्यक्ष कौन हैं?

(ब) लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. राष्ट्रीय आय की गणना क्यों की जानी चाहिए? कोई तीन कारण दीजिए।
2. भारत में राष्ट्रीय आय की गणना सर्वप्रथम किसने तथा कब की थी?
3. स्वतंत्रता से पूर्व भारत में राष्ट्रीय आय की गणना करने वाले तीन विद्वानों के नाम बताइए।
4. प्रति व्यक्ति आय की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
5. भारत में तृतीयक क्षेत्र के बढ़ते महत्त्व को समझाइये।
6. आर्थिक वृद्धि की अवधारणा को समझाइये।
7. आर्थिक विकास की अवधारणा, आर्थिक वृद्धि की अवधारणा से किस प्रकार अधिक व्यापक हैं?
8. आर्थिक नियोजन की अवधारणा को समझाइये।
9. स्वतंत्रता पूर्व नियोजन हेतु कौन–कौनसे प्रस्ताव रखे गये?
10. बारहवीं योजना की अवधि क्या है? इस योजना में कौनसे लक्ष्य रखे गये?

(स) निबन्धात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय किसे कहते हैं? राष्ट्रीय आय तथा राष्ट्रीय उत्पाद के बीच सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
2. अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को विस्तार से समझाइये।
3. आर्थिक विकास के साथ–साथ अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के महत्त्व में होने वाले परिवर्तन की विवेचना कीजिए।
4. भारत में आर्थिक नियोजन की तकनीक अपनाने के पीछे क्या उद्देश्य थे?
5. नीति आयोग पर एक लेख लिखिए।

अध्याय 15

भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं एवं नवीन प्रवृत्तियां

स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था बहुत दयनीय स्थिति में थी। उपनिवेशकाल में अंग्रेजों ने भारतीय कृषि, उद्योग, व्यापार इत्यादि को अपूरणीय हानि पहुंचाई। जब भारत स्वतंत्र हुआ तो भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती इसे विकास के मार्ग पर तीव्र गति से अग्रसर करने की थी। पिछले दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास हेतु किये गये प्रयत्नों के कारण इसकी प्रकृति मे व्यापक परिवर्तन हुआ है। 1950 के दशक में अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये जिन्होंने, भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति तथा विकास पथ को निर्धारित किया। 1990 के दशक के आर्थिक सुधारों (उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण) ने भारतीय अर्थव्यवस्था के भविष्य को निर्धारित करने में विशेष भूमिका निभाई है। वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था एक अविकसित या पिछड़ी हुई तथा विकासशील अर्थव्यवस्था के मिश्रित लक्षण व्यक्त करती है।

अर्थव्यवस्था– एक देश या क्षेत्र की वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, व्यापार, उपभोग आदि क्रियाओं से जुड़ा तंत्र अर्थव्यवस्था कहलाता है। जैसे– भारतीय अर्थव्यवस्था।

15.1 भारतीय अर्थव्यवस्था एक अविकसित अर्थव्यवस्था के रूप में

प्रति व्यक्ति आय तथा जीवन की गुणवत्ता (जिसे शिक्षा तथा स्वास्थ्य की स्थिति से देखा जा सकता है) का निम्न स्तर अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन को बताता है। कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, उत्पादन की पुरानी तकनीक, छिपी हुई तथा संरचनात्मक बेरोजगारी की अधिकता, उच्च जनसंख्या वृद्धि दर आदि अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन के प्रमुख लक्षण हैं। हमारी अर्थव्यवस्था में अविकसित अर्थव्यवस्था के ये लक्षण विद्यमान हैं।

(i) निम्न प्रति व्यक्ति आय

भारत में प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत कम है जो इसके अविकसित अर्थव्यवस्था होने का प्रतीक है। विश्व बैंक के अनुसार 2015 ई. में भारत की प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय 1590 अमेरिकी डॉलर थी। प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय में भारत का स्थान विश्व में 170 वां रहा। भारत की प्रति व्यक्ति सकल आय न केवल अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी जैसे विकसित देशों से कम है, बल्कि चीन तथा श्रीलंका जैसे पड़ोसी देशों की तुलना में भी कम है। प्रति व्यक्ति आय के निम्न स्तर के फलस्वरूप लोगों का जीवन स्तर भी निम्न बना रहता है।

(ii) जीवन की निम्न गुणवत्ता

शिक्षा और स्वास्थ्य जीवन की गुणवत्ता के दो सबसे प्रभावी निर्धारक और संकेतक हैं। ये मानव कल्याण के अभिन्न अंग हैं। इनके अभाव में आय अर्थहीन हो जाती है। जब लोगों में ज्ञान प्राप्ति तथा स्वस्थ रूप से जीने की क्षमता होती है तभी वह आय का उपयोग करने में सक्षम हो पाते हैं। भारत में शिक्षा का स्तर बहुत कमजोर है जो निम्न साक्षरता दर से प्रतिबिम्बित होता है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत थी। जनसंख्या का लगभग एक चौथाई भाग आज भी निरक्षर है। स्वास्थ्य–स्तर को जन्म के समय जीवन–प्रत्याशा से मापा जा सकता है। विश्व बैंक के अनुसार भारत में वर्ष 2014 में जन्म के समय जीवन–प्रत्याशा 68 वर्ष थी। यह जापान तथा चीन की तुलना में बहुत कम है। शिक्षा तथा स्वास्थ्य का निम्न स्तर भी भारतीय अर्थव्यवस्था के अविकसित स्वरूप को व्यक्त करता है।

जन्म के समय जीवन प्रत्याशा–चालू जनांकिकीय स्थितियों में एक नवजात की प्रत्याशित औसत आयु का सांख्यिकीय माप जन्म के समय जीवन प्रत्याशा कहलाती है।

(iii) गरीबी की समस्या

सभी अविकसित राष्ट्रों की तरह भारत भी गरीबी की समस्या का सामना कर रहा है। सुरेश तेन्दुलकर के अनुमानों के अनुसार वर्ष 2011–12 में भारत में 21.92 प्रतिशत लोग गरीब थे। गरीबी वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपनी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने में भी असफल हो जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् अभी तक गरीबी का निवारण नहीं हो पाया है। इसे भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी चुनौती माना जा सकता है। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में बहुत धीमी प्रगति हुई है। अन्य देशों की तुलना में यह प्रगति प्रभावहीन प्रतीत होती है। विकास के लाभ समाज के निम्न एवं कमजोर वर्गों तक नहीं पहुँच पाये हैं।

आज भी जनसंख्या का लगभग एक चौथाई भाग निर्धनता के दुश्चक्र में फंसा हुआ है। निर्धनता की समस्या के रहते कोई भी राष्ट्र पिछड़ेपन से बाहर नहीं आ सकता। अतः हमारी अर्थव्यवस्था निश्चित ही एक अविकसित अर्थव्यवस्था है।

(iv) कृषि पर अत्यधिक निर्भरता

जैसे–जैसे अर्थव्यवस्था का विकास होता है, कृषि क्षेत्र पर इसकी निर्भरता में कमी आती है तथा उद्योग एवं सेवा क्षेत्र पर निर्भरता में वृद्धि होती है। यद्यपि भारत में भी कृषि पर निर्भरता में कमी आयी है, लेकिन यह कमी धीमी रही है। स्वतंत्रता के समय लगभग 72 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आश्रित थी। आज भी कुल रोजगार का लगभग 49 प्रतिशत कृषि तथा सहायक क्षेत्रों में कार्यरत हैं। कृषि–क्षेत्र से गैर कृषि–क्षेत्र की ओर श्रम का पलायन तो हुआ है, लेकिन यह बहुत धीमा रहा है। कृषि पर अत्यधिक निर्भरता भारतीय अर्थव्यवस्था के अविकसित स्वरूप का प्रतीक है।

(v) जनांकिकीय कारक

अनेक जनांकिकीय कारक भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन को व्यक्त करते हैं। भारत में जन्म–दर बहुत ऊँची हैं। मातृ मृत्यु दर, बाल मृत्यु दर, शिशु मृत्यु दर का ऊँचा स्तर भी बना हुआ है। भारतीय जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत अधिक है। 2001 से 2011 के दशक में भारत की जनसंख्या की वृद्धि दर 17.64 प्रतिशत रही है। ऐसा कहा जा सकता है कि भारत में प्रतिवर्ष होने वाली जनसंख्या की वृद्धि, आस्ट्रेलिया महाद्वीप की कुल जनसंख्या के लगभग बराबर है। भारतीय जनसंख्या का आकार बहुत बड़ा है तथा यह निरन्तर तेजी से बढ़ता जा रहा है।

जनांकिकी– मानव जनसंख्या का वैज्ञानिक तथा सांख्यिकीय अध्ययन जनांकिकी कहलाता है।

(vi) बेरोजगारी की समस्या

अविकसित राष्ट्रों का एक मुख्य लक्षण संरचनात्मक तथा छिपी हुई बेरोजगारी की समस्या है। इन राष्ट्रों की दोषपूर्ण संरचना के कारण तथा लगातार होते संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण यह बेरोजगारी उत्पन्न होती है। विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण मांग की संरचना भी परिवर्तित हो जाती है, जिससे मांग तथा पूर्ति में असंतुलन हो जाता है। भारत की कृषि पर अत्यधिक निर्भरता तथा उद्योगों एवं सेवा क्षेत्र के धीमे विकास के कारण इसे छिपी हुई बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। यद्यपि भारत में बेरोजगारी के सभी प्रकार पाये जाते है, लेकिन यहां संरचनात्मक तथा छिपी हुई बेरोजगारी की समस्या सर्वाधिक गम्भीर है। छिपी बेरोजगारी का अर्थ है कि व्यक्ति रोजगार में लगा हुआ तो दिखाई देता है लेकिन उसका उत्पादन में योगदान बहुत कम अर्थात् लगभग शून्य होता है। भारत में एक कृषक परिवार के सभी सदस्य घरेलू कृषि कार्य में लगे हुए होते हैं, लेकिन उनमें अनेक सदस्यों का योगदान लगभग शून्य रहता है। छिपी बेरोजगारी का सही अनुमान लगाना अत्यधिक कठिन है।

(vii) पिछड़ी हुई तकनीक

अर्थव्यवस्थाओं के पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण उत्पादन की तकनीक का पिछड़ा हुआ होना है। आधुनिक तकनीक के अभाव में उत्पादकता का स्तर निम्न बना रहता है। लम्बे समय तक यह माना जाता है कि प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता ही विकास का सबसे प्रभावशाली कारक है, लेकिन जापान के तीव्र विकास ने तकनीकी के योगदान को सिद्ध कर दिया है। भारत में धीमे आर्थिक विकास का एक कारण नवीन तकनीक का अभाव है। तकनीक विकास हेतु भारत में बहुत कम खर्च किया जाता है। शोध और अनुसंधान को वांछित महत्व नहीं मिल पाने के कारण आज भी भारत तकनीकी दृष्टि से अविकसित है।

(viii) अन्य विशेषताएं

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त निम्न मानव विकास, व्यापक असमानतायें, कमजोर आधारसंरचना आदि भी भारतीय अर्थव्यवस्था के अविकसित रूप को व्यक्त करते हैं। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा तैयार किये गये मानव विकास सूचकांक में वर्ष 2015 की रिपोर्ट में भारत का स्थान 130 वाँ रहा। इस सम्बन्ध में हम मध्यम मानव विकास सूचकांक वाले देशों में सम्मिलित है। अपने पड़ोसी देशों चीन (90 वां स्थान) तथा श्रीलंका (73 वां स्थान) से हम बहुत पीछे हैं। भारत में विद्यमान आर्थिक तथा गैर आर्थिक विषमताएं भी चिन्तनीय हैं। यहाँ आय तथा धन का वितरण भी बहुत अधिक असमानतापूर्ण है तथा सामाजिक संरचना में अनेक असमानताएं व्याप्त हैं। भारत में लिंग के आधार पर भी भारी असमानताएं और शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता में भारी विषमतायें हैं। भारत की आधारसंरचना भी बहुत कमजोर है। जिसके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था निम्न उत्पादकता, ऊँची उत्पादन लागतों तथा उत्पादन में धीमी वृद्धि का शिकार रही है। स्पष्ट है कि भारतीय अर्थ व्यवस्था एक अविकसित अर्थव्यवस्था है।

आधार संरचना –

आधार संरचना का तात्पर्य उन वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धता से है जो अर्थव्यवस्था की कार्य पद्धति को सुगम बनाते हैं। ये उत्पादकता में वृद्धि करते हैं तथा आर्थिक विकास के लिए आधार प्रदान करते हैं। सड़क, विद्युत, शिक्षा, स्वास्थ्य, बीमा, बैंकिंग आदि आधार संरचना के प्रमुख उदाहरण हैं।

15.2 भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में

उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था एक अविकसित अर्थव्यवस्था है, लेकिन यह पूर्णतया सही नहीं हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था तेज गति से विकास के मार्ग पर आगे बढ़ रही है। यहां पिछले वर्षों के दौरान प्रभावी आर्थिक एवं सामाजिक सुधार के साथ अनेक ऐसे अनुकूल परिवर्तन हुए हैं, जिनके फलस्वरूप इसे विकासशील अर्थव्यवस्था कहा जाना अधिक उपयुक्त होगा। भारत की राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय लगातार तेजी से बढ़ रही है तथा संरचनात्मक परिवर्तन अनुकूल दिशा में हो रहे हैं।

(i) राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में सतत् एवं तीव्र वृद्धि

भारत की राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में होने वाली सतत एवं तीव्र वृद्धि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकासशील स्वरूप का सर्वाधिक प्रभावशाली लक्षण है। 1950 से 1980 के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर मात्र 3.5 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। डॉ0 राजकृष्णा ने इसे हिन्दू विकास दर कहा है। 1980 के दशक में विकास दर 5 प्रतिशत से अधिक हो गयी और 1991–2011 के बीच भारतीय अर्थव्यवस्था 6.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की औसत दर से बढ़ी है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012) के दौरान भारत की विकास दर 8 प्रतिशत रही। वर्तमान समय में भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की सबसे तेज बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। भारत की आर्थिक विकास की दर में सुधार 1980 के दशक से ही प्रारम्भ हो गया था, लेकिन उल्लेखनीय प्रगति 1990 के दशक के आर्थिक सुधारों के पश्चात् हुई है। वर्तमान सरकार द्वारा किये गये सुधारों एवं प्रयासों के कारण भारतीय अर्थव्यस्था तीव्रता के साथ आगे बढ़ रही है।

आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण मापदण्ड प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि है। 1950–51 से 1990–91 की अवधि के दौरान भारत की प्रति व्यक्ति आय लगभग 1.6 प्रतिशत वार्षिक की औसत दर से बढ़ी थी। 1990–91 के पश्चात् अधिकांश वर्षों में प्रति व्यक्ति आय की वार्षिक वृद्धि दर 5 प्रतिशत से अधिक बनी हुई है। वर्ष 2015–16 में प्रति व्यक्ति आय में 6.2 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी है। राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय की यह सतत तथा तीव्र वृद्धि भारतीय अर्थव्यवस्था की एक अच्छी उपलब्धि कही जा सकती है।

> सामान्यतः वास्तविक राष्ट्रीय आय या वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर को आर्थिक वृद्धि की दर कहा जाता है।

(ii) अर्थव्यवस्था की संरचना में परिवर्तन

विकास के साथ–साथ अर्थव्यवस्था की संरचना (अर्थव्यस्था के क्षेत्रों की स्थिति) में भी परिवर्तन होता है। जैसे–जैसे अर्थव्यस्था विकसित होती जाती है, राष्ट्रीय आय में प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) का अंश गिरता जाता है तथा द्वितीयक (उद्योग) एवं तृतीयक (सेवा) क्षेत्र का अंश बढ़ता जाता है। भारत में 1950–51 में राष्ट्रीय आय में कृषि का अंश 50 प्रतिशत से अधिक था जो 2015–16 में कम होकर 15 प्रतिशत के लगभग रहा है। राष्ट्रीय आय में उद्योग तथा सेवा क्षेत्र के योगदान में भारी वृद्धि हुई। द्वितीयक (उद्योग) क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में अंश बढ़कर एक चौथाई से अधिक हो गया है। राष्ट्रीय आय में सेवा क्षेत्र का अंश सर्वाधिक तेजी से बढ़ा है। वर्तमान में राष्ट्रीय आय का लगभग 60 प्रतिशत भाग सेवा क्षेत्र द्वारा उत्पादित होता है। स्पष्ट है कि भारत की राष्ट्रीय आय में प्राथमिक क्षेत्र का अंश निरन्तर कम हो रहा है तथा द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र का अंश लगातार बढ़ रहा है। द्वितीयक क्षेत्र की तुलना में तृतीयक क्षेत्र अधिक तेजी से बढ़ा है। अर्थव्यवस्था की संरचना का यह परिवर्तन इसके विकासशील स्वरूप को व्यक्त करता है।

यह माना जाता है कि द्वितीयक क्षेत्र, सेवा क्षेत्र की अपेक्षा अधिक रोजगार सृजन करता है। अतः द्वितीयक क्षेत्र की अपेक्षाकृत धीमी वृद्धि के कारण भारत में बेराजगारी की समस्या अधिक गम्भीर बनी है।

(क) विशाल तथा तेजी से बढ़ता सेवा क्षेत्र

सभी विकसित राष्ट्रों में विशाल सेवा क्षेत्र पाया जाता है। लगातार तेज वृद्धि दर के कारण भारत में भी सेवा–क्षेत्र अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा क्षेत्र बन गया है। वर्तमान में अकेला सेवा–क्षेत्र राष्ट्रीय आय का लगभग 60 प्रतिशत भाग उत्पादित कर रहा है। इसके साथ ही सेवा–क्षेत्र की वृद्धि दर भी कृषि एवं उद्योगों की वृद्धि दर से पर्याप्त ऊँची बनी हुई है। विश्व सेवा व्यापार के मामले में भी भारत विश्व के शीर्ष दस राष्ट्रों में शामिल है तथा इसके सेवा क्षेत्र में एक महाशक्ति के रूप में उभरने की प्रबल सम्भावना है। व्यापक तथा लगातार बढ़ता हुआ सेवा क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था की विकासशीलता का एक महत्वपूर्ण संकेतक है।

(ख) व्यावसायिक संरचना मे परिवर्तन

भारत में व्यावसायिक संरचना मे होने वाले परिवर्तन भी बताते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था है। 1951 में कार्य शक्ति का लगभग 72 प्रतिशत कृषि तथा सहायक क्षेत्रों में कार्यरत था। कृषि पर निर्भरता में लगातार कमी आयी है। वर्तमान कार्यकारी जनसंख्या का 50 प्रतिशत से भी कम भाग कृषि तथा सहायक क्षेत्रों में रोजगाररत है। आज भारत की

आधे से अधिक कार्यशक्ति उद्योग तथा सेवा क्षेत्र में रोजगार प्राप्त कर रही है।

(iii) आर्थिक एवं सामाजिक आधारसंरचना में सुधार

भारत में आर्थिक एवं सामाजिक आधारसंरचना में तेजी से सुधार हो रहा है। विद्युत उत्पादन की भारत की कुल स्थापित क्षमता में पिछले 65 वर्षों में लगभग 100 गुना वृद्धि हुई है। स्वतन्त्रता के समय भारत में सड़कों की कुल लम्बाई लगभग 4 लाख किलोमीटर थी, जो वर्तमान में लगभग 50 लाख किलोमीटर हो गयी है। इसी प्रकार बैंकिंग तथा बीमा सेवाओं का भी व्यापक विस्तार हुआ है। साक्षरता दर 1951 में 18.3 प्रतिशत थी जो 2011 में बढ़कर 74.04 प्रतिशत हो गयी। इसी प्रकार जन्म के समय जीवन प्रत्याशा 1951 में 32.1 वर्ष थी, जो 2014 में 68 वर्ष हो गयी। आर्थिक एवं सामाजिक आधारसंरचना में ये सुधार विकास के आधारस्तम्भ हैं। शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था विकास कर रही है।

(iv) अन्य कारक

यहाँ विदेशी व्यापार की संरचना में सकारात्मक परिवर्तन हो रहे हैं। भारत की जनसंख्या वृद्धि की दर में भी पर्याप्त कमी हुई है। 1981 से 1971 के दशक में भारत में जनसंख्या वृद्धि की दर 24.80 प्रतिशत थी। यह दर 2001 से 2011 के दशक में कम हो कर 17.64 प्रतिशत रह गयी। ये सभी कारक भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के सूचक हैं।

अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था में अविकसित अर्थव्यवस्था के अनेक लक्षण पाये जाते हैं, फिर भी यह विकास के पथ पर तेजी से अग्रसर हो रही है। विकास की इस तीव्र गति के फलस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था निश्चित ही एक दिन विकसित अर्थव्यवस्था बन जायेगी।

15.3 आर्थिक सुधार (उदारीकरण निजीकरण एवं वैश्वीकरण)

स्वतंत्रता के बाद भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढांचे तथा नियोजित विकास की नीति को अपनाया था। सार्वजनिक क्षेत्र को प्रभावशाली स्थान देकर इसे विकास का मुख्य चालक बनाया गया। निजी क्षेत्र को नियंत्रणों के अधीन रखा गया। 1950 से 1990 के दौरान अर्थव्यवस्था के संचालन एवं प्रबंधन हेतु इतने अधिक नियम बनाये गये कि विकास–प्रक्रिया लगभग अवरुद्ध हो गयी। इसके अतिरिक्त सरकार को प्रतिरक्षा तथा सामाजिक क्षेत्र पर भी अपने संसाधनों का एक बड़ा भाग खर्च करना पड़ा। अनेक बार तो अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं तथा अन्य देशों से उधार ली गई विदेशी मुद्रा को सरकार द्वारा अविवेकशील ढंग से उपभोग कार्यों पर खर्च कर दिया गया। सरकार के व्यय, उसकी प्राप्तियों से लगातार ऊँचे बने रहे। इन व्ययों की पूर्ति हेतु सरकार बढ़ती मात्रा में ऋण लेती जा रही थी। इन खर्चों को नियंत्रित करने हेतु कोई सार्थक प्रयास नहीं किया गया। सरकारी नीतियों में राजकोषीय अनुशासन का अभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता था।

> राजकोषीय अनुशासन का तात्पर्य सरकार की उन नीतियों तथा प्रयासों से है जो सरकारी घाटे तथा सरकारी ऋणों के भार को कम करने हेतु अपनाये जाते हैं।

राजकोषीय अनुशासनहीनता के साथ–साथ भारतीय अर्थव्यवस्था बढ़ते व्यापार घाटे की भी शिकार थी। 1990 से पहले बढ़ते आयातों को सीमित करने तथा निर्यात संवर्धन पर भी पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया।

व्यापार घाटा–

एक देश के आयातों का उस देश के निर्यातों पर आधिक्य उसका आर्थिक माप है। यह माप बताता है कि देश के आयातों का मूल्य उस देश के निर्यातों के मूल्य से कितना अधिक है। यह एक देश के वस्तु व्यापार में घाटे का माप है।

1950 से 1990 की आर्थिक नीतियों में उद्योगों को अनावश्यक संरक्षण प्रदान किया गया। फर्मों एवं अर्थव्यवस्था के अन्य निकायों का अकुशल प्रबन्धन किया गया। संसाधनों के उपयोग में कार्यकुशलता का अभाव था। अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण संरचना ही दोषपूर्ण हो गई थी। इससे अर्थव्यवस्था में उत्पादन लागतें बढ़ गयीं तथा उत्पादकता का स्तर बहुत ही निम्न हो गया। उत्पादन की धीमी वृद्धि, अत्यधिक सार्वजनिक व्यय तथा अन्य कारणों ने महंगाई (मुद्रास्फीति) की समस्या उत्पन्न कर दी। वस्तुओं की तेजी से बढ़ती कीमतों ने सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को झकझोर कर रख दिया। इन सभी स्थितियों के कारण भारत का भुगतान संतुलन प्रतिकूल बना रहा तथा विदेशी मुद्रा भण्डार बहुत कम हो गया। नब्बे के दशक के प्रारम्भ में भारत के पास मुश्किल से लगभग दो सप्ताह के आयात के लिए विदेशी मुद्रा भण्डार शेष रह गया था।

भुगतान–संतुलन –

एक देश का, शेष विश्व के साथ, एक वर्ष में समस्त लेन–देन का संक्षिप्त विवरण भुगतान–संतुलन कहलाता है। राजकोषीय असंतुलन, अर्थव्यवस्था की दोषपूर्ण संरचना तथा भुगतान–संतुलन के संकट की स्थितियों को सुधारने के लिए भारत सरकार ने नई आर्थिक नीति के तहत जुलाई 1991 में आर्थिक सुधार लागू किये। यद्यपि आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया 1980 के दशक में ही प्रारम्भ हो गई थी लेकिन तब इन सुधारों को पूर्ण इच्छाशक्ति के साथ लागू नहीं किया गया था। अतः

ये संकट गम्भीर होते गये। इस स्थिति में भारत ने 1991 में दो अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं, विश्व बैंक तथा अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से वित्तीय सहायता की मांग की। इन संस्थानों ने भारत को सशर्त ऋण प्रदान किया। भारत ने इनकी शर्तों की पालना करते हुए 1991 में नई आर्थिक नीति की घोषणा की तथा आर्थिक सुधार लागू किये।

विश्व बैंक –वर्ष 1944 में ब्रेटनवुड्स सम्मेलन के समझौते के द्वारा अन्तरराष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक की स्थापना की गई। इसे सामान्यतः विश्व बैंक के नाम से जाना जाता है।

आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत आर्थिक स्थिरीकरण तथा संरचनात्मक सुधार हेतु उपाय लागू किये गये। आर्थिक स्थिरीकरण के उपाय अल्पकालिक प्रकृति के थे। इनके अन्तर्गत भुगतान संतुलन के संकट तथा मुद्रा स्फीति की समस्या को नियंत्रित करने के उपाय शामिल थे। संरचनात्मक सुधार दीर्घकालीन प्रकृति के थे। इनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था की संरचना में सुधार तथा अर्थव्यवस्था की कुशलता में वृद्धि करना था। इन सुधारों के अन्तर्गत सरकार ने अपनी नीतियों को पुनः परिभाषित किया तथा कई नई नीतियां प्रारम्भ कीं। आर्थिक सुधारों को उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की प्रक्रिया के द्वारा लागू किया गया।

15.3.1 उदारीकरण

अर्थशास्त्र में उदारीकरण का आशय आर्थिक नीतियों, नियमों तथा कानूनों के सरलीकरण की प्रक्रिया से है। 1990 ई. से पूर्व अपनायी गयी विकास रणनीति में सरकार की भूमिका अर्थव्यवस्था के नियंत्रक तथा उत्पादक की थी। इस भूमिका का निर्वहन करने हेतु अनेक नियंत्रण तथा प्रतिबन्ध लगाये गये। सरकार द्वारा 1991 में नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था में अवांछित नियंत्रणों तथा प्रतिबन्धों को समाप्त करने के लिए जो आय लागू किये गये उन्हें उदारीकरण कहा गया। इनके अन्तर्गत जुलाई 1991 में नई औद्योगिक नीति घोषित की गई तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक सुधारों की प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी। इनमें वित्तीय क्षेत्र, बाहरी क्षेत्र, विदेशी विनिमय, कर व्यवस्था आदि में व्यापक सुधार करते हुए अनेक अनावश्यक नियमों तथा नियंत्रणों को समाप्त किया गया।

उदारीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था समाजवादी मिश्रित अर्थव्यवस्था से पूँजीवादी मिश्रित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गई। इससे सरकारी हस्तक्षेप में कमी आई तथा भारतीय अर्थव्यवस्था मुक्त बाजार या पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के स्वरूप की ओर उन्मुख हुई। उदारीकरण से अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक दृढ़तायें समाप्त हो गयीं। अतः कहा जा सकता है कि आर्थिक क्षेत्रों तथा नीतियों में सरकारी बाधाओं को समाप्त करके अर्थव्यवस्था में उत्पादन तथा व्यापार की क्रियाओं को सरल बनाने की प्रक्रिया ही 'उदारीकरण' है।

जिसे भारत में उदारीकरण कहा गया, वस्तुतः वह अर्थव्यवस्था में पश्चिमी अनुप्रयोगों को बिना सोचे समझे लागू करना है। भारत मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी झुकाव रखने के कारण, एक ऐसे दोराहे पर आकर खड़ा हो गया था, जहां से स्वदेशी की मौलिक अर्थ संस्कृति की ओर लौटना असंभव था। इस स्थिति का फायदा पूँजीवादी देशों ने उठाया और भारत विश्व मंच पर आर्थिक उदारवाद के नाम पर एक नई प्रयोगशाला के रुप में उभरकर सामने आया। हमारी विशाल जनसंख्या और उसमें भी सक्षम मध्यम वर्ग पूँजीवादी देशों के निशाने पर आ गया। जिस सरकार ने वैश्वीकरण के नाम पर देश को बाजार का रूप दे दिया था, उसके पीछे आने वाली सरकारों के लिए नए रास्ते पर चलना असंभव था।

15.3.2 निजीकरण

अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की भूमिका में वृद्धि करने की प्रक्रिया निजीकरण कहलाती है। इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र को अधिक अवसर प्रदान किये जाते हैं तथा सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका घटायी जाती है। निजीकरण की प्रक्रिया में उन सभी आर्थिक नीतियों को शामिल किया जाता है जो निजी क्षेत्र के विस्तार को बढ़ावा देती हैं। परम्परागत तौर पर निजीकरण का तात्पर्य सार्वजनिक या राज्य संपत्तियों को निजी स्वामित्व या नियंत्रण में देने की प्रक्रिया से लिया जाता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् 1990 तक अपनाई गयी औद्योगिक नीतियों में अनेक उद्योगों को सिर्फ सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित कर दिया गया था तथा अनेक उद्योगों की स्थापना हेतु लाइसेंस की अनिवार्यता कर दी गई थी। इन नीतिगत निर्णयों ने निजी क्षेत्र के विकास को सीमित कर दिया। फलस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र का अनावश्यक विस्तार हो गया तथा इस क्षेत्र में उत्पादकता बहुत कम हो गयी। सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक उद्यम सरकार पर बोझ बन गये थे। 1991 की औद्योगिक नीति में औद्योगिक लाइसेंसिंग की लगभग समाप्ति तथा सार्वजनिक क्षेत्र के आरक्षण प्राप्त उद्योगों की संख्या में भारी कमी ने निजी क्षेत्र के लिए विकास के नये द्वार खोल दिये। निजीकरण के द्वारा 1991 में अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रों को भी खोल दिया गया, जो अब तक निजी क्षेत्र के लिए वर्जित थे।

निजीकरण के अर्न्तगत सरकारी क्षेत्र में विनिवेश भी किया जाता है। यह भी निजीकरण का एक उपाय है। शुद्ध रूप में विनिवेश सम्पदाओं के तरलीकरण की क्रिया है, लेकिन सामान्य तौर पर इसका अर्थ राज्य द्वारा सार्वजनिक उद्यमों मे अपना अंश निजी क्षेत्र को बेच देने से है। सरकार या राज्य सार्वजनिक उद्यम में अपने हिस्से का एक भाग या सम्पूर्ण हिस्से को निजी क्षेत्र को बेच सकता है। कितना हिस्सा बेचा जाये, यह सरकार के नीतिगत निर्णयों पर निर्भर करता हैं। भारत में भी निजीकरण हेतु 1991–92 में विनिवेश कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। निजीकरण से सरकार को राजकोषीय अनुशासन स्थापित करने में सहायता मिली। इससे अर्थव्यवस्था की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में सुधार हुआ।

15.3.3 वैश्वीकरण

घरेलू अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण वैश्वीकरण कहलाता है। वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का विस्तार उनकी राजनैतिक सीमाओं के बाहर होता है। वैश्वीकरण से आर्थिक खुलेपन तथा देशों के बीच आर्थिक निर्भरता में वृद्धि होती है। वैश्वीकरण के विभिन्न आयामों में विभिन्न राष्ट्रों के बीच वस्तुओं का मुक्त प्रवाह, सेवाओं का मुक्त प्रवाह, पूँजी का निर्बाध प्रवाह एवं समेकित वित्तीय बाजार, श्रम का स्वतन्त्र प्रवाह, प्रौद्यौगिकी का स्वतन्त्र प्रवाह तथा ज्ञान का प्रसार आदि सम्मिलित हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत ने विदेशी व्यापार तथा विदेशी निवेश पर अनेक प्रतिबंध लगाये थे। घरेलू उत्पादकों को विदेशी प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान करने के लिए इसे अनिवार्य माना गया। वर्ष 1991 में सरकार ने यह निश्चय किया कि भारतीय उत्पादकों के लिए विश्व के उत्पादकों से प्रतियोगिता करने का समय आ गया है। यह स्वीकार किया गया कि प्रतियोगिता से उद्यमों की निष्पादकता तथा उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार होगा। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में भारत में विदेशी व्यापार तथा विदेशी निवेश पर से प्रतिबंधों को काफी सीमा तक हटा दिया गया। व्यापार अवरोधकों को हटाकर आयातों का उदारीकरण किया गया कुछ को छोड़कर अधिकांश वस्तुओं के स्वतंत्र व्यापार की अनुमति दे दी गई है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियां वैश्वीकरण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी वह है, जो एक से अधिक देशों में उत्पादन पर नियंत्रण तथा स्वामित्व रखती है। वर्तमान में विभिन्न देशों के बीच सेवाओं में निवेश और प्रौद्योगिकी का आदान–प्रदान हो रहा है। सूचना एवं संचार–प्रौद्योगिकी के विकास ने वैश्वीकरण को तीव्र गति प्रदान की है। इसने विभिन्न देशों के बीच सेवाओं के उत्पादन के प्रसार में मुख्य भूमिका निभायी है। भारत ने भी सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की बदौलत अपनी सेवाओं को अन्तरराष्ट्रीय बाजार में बेचकर वैश्वीकरण के लाभों को भुनाया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने सम्पूर्ण विश्व में संसाधनों के आवंटन में सुधार कर इसे अधिक कार्यकुशल बनाया है। इससे उत्पादन लागतें गिरी हैं तथा उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। वैश्वीकरण की इस लाभदायक प्रक्रिया को लागू करने एवं सफल बनाने में अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन ने उल्लेखनीय भूमिका अदा की है ।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना 1 जनवरी 1995 को हुई। यह राष्ट्रों के बीच व्यापार के नियमों के निर्धारण तथा नियमन का कार्य करता है। यह बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के क्रियान्वयन एवं नियंत्रण का कार्य करता है। यह अपने सदस्य राष्ट्रों को व्यापार समझौतों या विचार–विमर्श के लिए उपयुक्त मंच प्रदान करता है। यह विभिन्न राष्ट्रों के बीच व्यापार संबन्धी विवादों के निपटारे का कार्य भी करता है।

15.4 स्वदेशी की अवधारणा

स्वदेशी की अवधारणा भारत की आर्थिक स्थिति को अधिक सुदृढ़ करने की दृष्टि से एक प्रभावशाली आर्थिक रणनीति है। स्वदेशी शब्द का अर्थ है "स्वयं के देश का"। वैश्वीकरण के इस दौर में अनेक विदेशी कम्पनियां भी भारत में आकर उत्पादन करने लगी हैं। इस बदलते परिप्रेक्ष्य में स्वदेशी शब्द का उपयोग भारतीय कम्पनियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के लिए किया जाने लगा है। अतः वर्तमान समय में स्वदेशी की अवधारणा स्वयं के देश की कम्पनियों तथा उद्योगों द्वारा देश में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को अपनाये जाने तथा विदेशी कम्पनियों द्वारा उत्पादित पर बल देती है। टाटा, गोदरेज, अमूल, हीरो, बजाज, पतंजलि आदि के उत्पाद भारत के स्वदेशी उत्पादों के उदाहरण हैं।

स्वदेशी की भावना भारतीय अर्थव्यवस्था में कोई नया परिवर्तन नहीं है। इस भावना ने अनेक बार राष्ट्र को एकजुट करने का कार्य किया है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में स्वदेशी की भावना ने महती भूमिका अदा की है। स्वतंत्रता के स्वदेशी आंदोलन में ब्रिटिश उत्पादों का बहिष्कार करके घरेलू उद्योग धन्धों को पुनर्जीवित करने की रणनीति अपनायी गयी थी। महात्मा गांधी ने स्वदेशी को स्वतंत्रता आंदोलन में एक हथियार के रूप में काम में लिया। गांधीजी ने जन–जन को जागरूक बनाकर स्वदेशी अपनाने के लिए प्रेरणा दी। महात्मा गांधी का मत था कि भारत स्वतंत्र तथा स्वशासित ही नहीं, आत्मनिर्भर भी होना चाहिए। भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दृष्टि से स्वदेशी की अवधारणा एक

प्रभावशाली अवधारणा है।

1990 के दशक के प्रारम्भ से शुरु हुये वैश्वीकरण के दौर में स्वदेशी का विचार कुछ समय के लिए अपनी उपयोगिता खो बैठा था। धीरे–धीरे विकासशील राष्ट्रों को यह अनुभव हुआ कि विकसित राष्ट्र विश्व व्यापार संगठन के नियमों की अनदेखी करते हैं तथा मुक्त व्यापार की नीति का ईमानदारी से पालन नहीं करते हैं। विकासशील देशों को वैश्वीकरण से कुछ लाभ तो हुए, लेकिन हानियां अधिक हुई। वैश्वीकरण एवं प्रतिस्पर्धा के दबाव में अनेक भारतीय उद्योग–धन्धे बन्द हो गये तथा बेरोजगारी की समस्या अधिक जटिल हो गई। अन्तरराष्ट्रीय नियमों एवं समझौतों के कारण भारत सरकार विदेशी कम्पनियों के आगमन पर प्रभावी नियंत्रण नहीं लगाती है। इन स्थितियों ने भारत की जनता को विचार के लिए बाध्य किया। न्यायसंगत वैश्वीकरण के अभाव में स्वदेशी की भावना पुनः जोर पकड़ने लगी। वर्तमान समय में बढ़ती राष्ट्रवादी भावना ने स्वदेशी को अधिक अर्थपूर्ण बना दिया है।

स्वदेशी की भावना एक सामाजिक आर्थिक क्रांति उत्पन्न करती है। यह देशवासियों में देश के प्रति प्रेम एवं समर्पण की भावना उत्पन्न करती है। 'स्वदेशी' से होने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण लाभ हैं –

1. 'स्वदेशी' की अवधारणा से भारतीय उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं की मांग बढ़ेगी। इससे भारतीय उद्योगों के विकास के लिए अच्छे अवसर उत्पन्न होगें।
2. स्वदेशी उत्पादों को अपनाये जाने से देश के घरेलू उत्पाद तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी।
3. भारतीय कम्पनियां विदेशी कम्पनियों की तुलना में अधिक श्रमशील होती है। अतः स्वदेशी को बढ़ावा मिलने पर भारत में रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि होना सुनिश्चित है।
4. घरेलू उत्पादन बढ़ने से आयातों में कमी आयेगी तथा आयातों पर खर्च होने वाली मूल्यवान विदेशी मुद्रा की बचत होगी।
5. विदेशी कम्पनियां लाभ तथा लाभांश के रूप में भारी धनराशि भारत से अपने देशों में ले जाती हैं। स्वदेशी को अपनाने से इस धन निष्क्रमण पर रोक लगेगी।
6. स्वदेशी को बढ़ावा मिलने से देश की आत्मनिर्भरता में वृद्धि होती है। संकटकालीन स्थितियों में आत्मनिर्भरता देश के लिए बहुत बड़ा सुरक्षा कवच होती है।
7. घरेलू उत्पादन बढ़ने से सरकार को अपेक्षाकृत अधिक राजस्व प्राप्त होता है।
8. स्वदेशी कम्पनियों की कार्य–संस्कृति भी देश की परिस्थितियों के अनुकूल होती है। ये कम्पनियां प्राकृतिक संसाधनों का सीमित उपयोग करती है।
9. कुछ राष्ट्र भारत को सामान बेचकर अत्यधिक लाभ कमाते हैं तथा अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर भारत का विरोध करके भारत के लिए ही समस्याएं उत्पन्न करते हैं। स्वदेशी उत्पादों को अपनाये जाने से ऐसे राष्ट्रों पर दबाव उत्पन्न होगा।
10. स्वदेशी की भावना राष्ट्र–प्रेम को बढ़ाती हैं। राष्ट्रवाद देश के विकास के लिए एक प्रभावशाली तत्व है।

'स्वदेशी' के परिप्रेक्ष्य में हमें यह समझना चाहिए कि 'उदारीकरण', 'भूमण्डलीकरण' और 'वैश्वीकरण' के नाम पर देश के मानव व प्राकृतिक संसाधनों का इस प्रकार शोषण नहीं होना चाहिए कि भविष्य में हमारे लिए कुछ भी शेष न रहे। भारत की सभ्यता और संस्कृति में वैश्वीकरण की अवधारणा पहले से ही इस रूप में विद्यमान है कि सारी दुनिया एक परिवार है और इसका प्रत्येक सदस्य नीरोग एवं सुखी रहना चाहिए। भारतीय परम्परा में दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति के नीरोग एवं सुखी रहने का आधार दूसरे का ध्यान रखने पर केन्द्रित है, जबकि वर्तमान में यूरोप और अमेरिका से वैश्वीकरण को जिस रूप में प्रतिष्ठित किया जा रहा है, वह रूप केवल मुनाफा कमाने पर केन्द्रित है। स्वदेशी अर्थव्यवस्था ही वह अवधारणा है जिसके अन्तर्गत सभी व्यक्ति , परिवार, समाज और राज्य के कल्याण से समस्त विश्व के कल्याण की ओर अग्रसर होने का प्रयास करें। हम सभी व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ें।

15.5 कौशल विकास

उत्पादन के साधनों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन श्रम होता है। जब श्रम को शिक्षा, स्वास्थ्य और प्रशिक्षण के द्वारा योग्यता तथा कौशल प्रदान कर दिया जाये तो वह 'मानव पूँजी' कहा जाता है। मानव पूँजी का तात्पर्य उच्च कौशल, योग्यता, ज्ञान और अनुभवयुक्त मानवीय संसाधन से है। स्पष्ट है कि कौशल एक मानवीय संसाधनों को मानवीय पूँजी में परिवर्तित करने वाला महत्त्वपूर्ण तत्व है। कौशल से श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है। किसी कार्य को अधिक अच्छे तरीके से सम्पन्न करने की योग्यता और क्षमता को कौशल कहा जाता है। कौशल विकास के द्वारा श्रम शक्ति को अधिक उत्पादक बनाया जा सकता है। ज्ञातव्य है कि उच्च उत्पादकता का स्तर श्रम के लिए रोजगार अवसरों तथा गुणवत्ता में वृद्धि करता है। यह कहा जा सकता है कि कौशल की उपलब्धता, श्रम के लाभ उत्पादन तथा कल्याण का मूल्यवान निर्धारक है। आज भारत की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या कार्यकारी आयु वर्ग (15 वर्ष से 64 वर्ष) में शामिल है। जब जनसंख्या उत्पादक होती है तो वह देश के लिए हितकारी होती है, अन्यथा वह अहितकारी होती है। कौशल विकास से व्यक्ति की योग्यता उत्पादकता एवं जीवन की

गुणवत्ता में वृद्धि होती है तथा वह राष्ट्र की आर्थिक वृद्धि में अधिक योगदान दे पाता है ।

कौशल की इस महता को देखते हुये भारत जैसे श्रम–प्रधान देश में कौशल–विकास पर ध्यान दिये जाने की नितांत आवश्यकता है। देश की प्रगति में कौशल–विकास के विशेष महत्व को समझते हुऐ भारत सरकार द्वारा "विश्व युवा कौशल दिवस" के अवसर पर 15 जुलाई 2015 को राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन (National Skill Deveplopment Mission) प्रारम्भ किया गया। इस मिशन का प्रमुख ध्येय कौशल प्रदान करने वाले प्रशिक्षणों के माध्यम से कुशल भारत का लक्ष्य प्राप्त करना है। इस मिशन के मुखिया माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी हैं। स्वतंत्रता के पश्चात यह प्रथम अवसर है कि कौशल विकास के माध्यम से युवाओं को रोजगार–योग्य बनाने के लिए कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय का गठन किया गया है। यह भारत सरकार की एक ऐसी पहल है जिसमें अनेक प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा पाठयक्रमों की सहायता से युवाओं को कौशल प्रदान किया जा रहा है। अकेले प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत लाखों लोगों ने अपने जीवन को समृद्ध बनाया है। कौशल विकास को वर्तमान भारत सरकार द्वारा अपनाये गये विभिन्न जनकल्याणकारी उपायों में से एक उपाय कहा जा सकता है। हम जानते हैं कि राष्ट्र की सफलता सदैव वहाँ की मानव शक्ति की सफलता पर निर्भर करती है। कौशल विकास से भारत की मानव शक्ति को अनेक लाभ तथा अवसर प्राप्त होंगे। इससे भारत का प्रत्येक नागरिक सम्पन्नता तथा सम्मान से युक्त जीवन जीने में सक्षम होगा।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पिछले दशकों में भारत की राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में होने वाली तीव्र एवं सतत वृद्धि इसकी विकासशीलता का लक्षण है।
2. अर्थव्यवस्था के स्वरूप, व्यावसायिक संरचना तथा आधारसंरचना में होने वाले अनुकूल परिवर्तन भी भारतीय अर्थव्यवस्था के विकासशील स्वरूप को स्पष्ट करते हैं।
3. 1991 ई. में भारत ने अपनी विकास रणनीति में बड़ा परिवर्तन करते हुए आर्थिक सुधारों की घोषणा की।
4. राजकोषीय असंतुलन, अर्थव्यवस्था की दोषपूर्ण संरचना, भुगतान संतुलन संकट आदि को सुधारने के लिए नयी आर्थिक नीति के अन्तर्गत आर्थिक सुधारों को अपनाया गया।
5. आर्थिक सुधारों को उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की प्रक्रिया के द्वारा लागू किया गया।
6. अर्थव्यवस्था में अवांछित नियंत्रणों एवं प्रतिबंधों को समाप्त करके सरकार को सुविधा प्रदाता की भूमिका में ले आने की प्रक्रिया उदारीकरण है।
7. निजीकरण का तात्पर्य उन सभी नीतियों से है जो अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र को बढ़ती हुई भूमिका प्रदान करती है तथा सरकार का दायरा सीमित करती है।
8. घरेलू अर्थव्यवस्था के विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण की प्रक्रिया वैश्वीकरण कहलाती है।
9. आर्थिक सुधारों से भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना में सुधार हुआ तथा आर्थिक विकास की दर तेज हुई है।
10. स्वदेशी की अवधारणा भारतीय कम्पनियों के उत्पादों को अपनाने तथा विदेशी कम्पनियों द्वारा उत्पादित एवं आयातित माल का त्याग करने पर बल देती हैं।
11. स्वदेशी उत्पादों को अपनाने से भारत को अनेक सामाजिक एवं आर्थिक लाभ प्राप्त होंगे। स्वदेशी की अवधारणा के प्रोत्साहन से भारतीय अर्थव्यवस्था की आत्मनिर्भरता में वृद्धि होगी।
12. कौशल विकास से श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है। युवाओं को कौशल प्रदान करके रोजगार योग्य बनाने के लिए सरकार द्वारा गम्भीर प्रयास किया जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न

(अ) अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. वर्ष 2015 में भारत की प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय कितनी थी ?
2. जीवन की गुणवत्ता का माप किन कारकों की सहायता से तय किया जाता है ?
3. स्वतंत्रता के समय भारत की कितनी प्रतिशत श्रम शक्ति कृषि में रोजगाररत थी ?
4. 2001–2011 ई. के दौरान भारत में जनसंख्या वृद्धि की दर कितनी रही ?
5. सम्पूर्ण विश्व के लिए मानव विकास रिपोर्ट कौनसी संस्था द्वारा तैयार की जाती है ?
6. भारत सरकार द्वारा आर्थिक सुधार कब लागू किये गये ?
7. उदारीकरण किसे कहते हैं ? बताइये।
8. निजीकरण का अर्थ बताइये।
9. वैश्वीकरण से क्या तात्पर्य है ?
10. मानव पूँजी किसे कहा जाता है ?
11. स्वदेशी की अवधारणा का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(ब) लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. जीवन की निम्न गुणवत्ता किस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था के अविकसित स्वरूप को व्यक्त करती है ?

2. भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन को व्यक्त करने वाली जनांकिकीय विशेषताओं को बताइये।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था की कृषि पर अत्यधिक निर्भरता को समझाइए।
4. पिछले दशकों में भारत की राष्ट्रीय आय में होने वाले परिवर्तन क्या संकेत देते हैं?
5. उदारीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप और संरचना में क्या–क्या परिवर्तन उत्पन्न किए हैं ?
6. विनिवेश से आप क्या समझते हैं ?
7. वैश्वीकरण के विभिन्न आयामों को समझाइये ।
8. वैश्वीकरण के लाभ बताइये।
9. वैश्वीकरण के दौर में स्वदेशी की अवधारणा किन कारणों से प्रासंगिक बन गयी है ?
10. कौशल विकास पर टिप्पणी लिखिए।

(स) निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की विकासशीलता को दर्शाने वाली विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. 1990 के दशक में आर्थिक सुधार अपनाये जाने के क्या कारण थे ? विस्तृत विवेचना कीजिए।
3. नयी आर्थिक नीति के अर्न्तगत अपनाये गये आर्थिक सुधारों का वर्णन कीजिए।
4. स्वदेशी उत्पादों को अपनाये जाने से उत्पन्न होने वाले लाभों को बताइये।
5. कौशल विकास का क्या महत्त्व है? कौशल विकास हेतु सरकार द्वारा कौन–कौन से कदम उठाये गये हैं?

अध्याय 16

भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष चुनौतियां

भारत आज विश्व की सबसे तेज बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में शामिल है तथा सम्पूर्ण विश्व इसकी बढ़ती आर्थिक शक्ति को स्वीकार कर रहा है। लेकिन इस विकास के साथ–साथ भारतीय अर्थव्यवस्था को अनेक चुनौतियों का सामना भी करना पड़ रहा है। समाचारपत्रों, टी.वी. चैनलों, जन सामान्य की चर्चाओं, इंटरनेट आदि से मिलने वाली विभिन्न सूचनाओं पर हम विचार करें तो पाते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष उत्पन्न अनेक चुनौतियों में मूल्यवृद्धि, गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्याएं सम्भवतः सर्वाधिक गम्भीर हैं। ये समस्याएं कमोबेश एक साथ जुड़ी हुई हैं तथा स्वतंत्रता के बाद से अब तक निरन्तर बनी हुई हैं।

गरीबी तथा बेरोजगारी को भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे प्रमुख सामाजिक आर्थिक समस्या कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इन समस्याओं के कारण न केवल अर्थव्यवस्था को नकारात्मक स्थितियों का सामना करना पड़ता है अपितु समाज को भी अनेक हानियां वहन करनी पड़ती हैं। इनके सम्बन्ध में हमारी सामान्य समझ और ज्ञान को व्यापक बनाने की दृष्टि से हमें इनका अर्थ, स्वरूप, कारण, परिणाम तथा रोकने के उपायों की प्रारम्भिक जानकारी होना आवश्यक है।

16.1 मूल्य वृद्धि या मुद्रास्फीति (Inflation)

हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए बाजार से अनेक प्रकार की वस्तुओं एवं सेवाओं को क्रय करते हैं। आपने भी निश्चित ही कपड़े, खिलौने, जूते, चप्पल, मिठाइयां, आइसक्रीम आदि खरीदे होंगे या अपने परिजनों को परिवार की आवश्यकता की वस्तुऐं खरीदते देखा होगा। वस्तुओं के क्रय के दौरान सामान्यतया देखने को मिलता है कि अधिकांश वस्तुओं के लिए हमें पिछले वर्षों की तुलना में अधिक कीमत अदा करनी होती है। इस बढ़ती कीमतों के परिदृश्य को मूल्य वृद्धि के रूप में जाना जाता है। आर्थिक शब्दावली में मूल्य वृद्धि के लिए मुद्रास्फीति शब्द का प्रयोग किया जाता है।

कीमत– मौद्रिक अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु या सेवा की एक इकाई का मुद्रा की जितनी इकाइयों के साथ विनिमय होता है, वह उस वस्तु अथवा सेवा की कीमत कहलाती है।

पारिभाषिक तौर पर सामान्य कीमत स्तर में सतत् वृद्धि की स्थिति मुद्रास्फीति कहलाती है। यह अनेक वस्तुओं अर्थात् वस्तु समूह के लिए कीमत में औसत वृद्धि को बताती है। यह सम्भव है कि बाजार में आप सब्जियों की कीमतों में वृद्धि अनुभव कर रहे हों तथा समाचार पत्र कम होती मूल्य वृद्धि या मुद्रास्फीति बता रहे हों। इसके विपरीत यह भी सम्भव है कि आप किसी वस्तु या कुछ वस्तुओं की कीमतों में कमी महसूस कर रहे हों लेकिन समाचार पत्र बढ़ती मुद्रास्फीति बता रहे हो। मुद्रास्फीति का सम्बन्ध अर्थव्यवस्था में अनेक वस्तुओं (वस्तु समूह) की कीमतों के औसत स्तर (सामान्य कीमत स्तर) में वृद्धि से है न कि किसी एक वस्तु की कीमत में वृद्धि मात्र से।

सामान्य कीमत स्तर का तात्पर्य अनेक वस्तुओं या एक वस्तु समूह की कीमतों के औसत स्तर से है। अतः सामान्य कीमत स्तर किसी एक वस्तु की कीमत को नहीं बताता अपितु यह तो एक निश्चित वस्तु समूह की औसत कीमत को व्यक्त करता है।

16.1.1 मुद्रास्फीति का माप

मुद्रास्फीति की हानियों से बचने के लिए तथा इसके प्रभावी नियंत्रण हेतु इसे मापा जाना आवश्यक है। अतः सभी अर्थव्यवस्थाएं मुद्रास्फीति की दर के मापन हेतु भिन्न–भिन्न प्रकार के कीमत सूचकांक बनाती है। सामान्य कीमत स्तर में परिवर्तन को मापने के लिए भारत में भी अनेक प्रकार के कीमत सूचकांक तैयार किये जाते हैं। इन सूचकाकों में थोक मूल्य सूचकांक, उपभोक्ता मूल्य सूचकांक तथा राष्ट्रीय आय अवस्फीति कारक प्रमुख हैं। ये सूचकांक एक निश्चित वस्तु समूह की कीमतों में होने वाले औसत परिवर्तन का माप करते हैं। मुद्रास्फीति को किसी निर्धारित कीमत सूचकांक में समय के साथ–साथ होने वाले आनुपातिक परिवर्तन या प्रतिशत परिवर्तन से मापा जाता है।

सूचकांक अलग–अलग पैमाने पर मापनीय इकाइयों का औसत व्यक्त करते हैं। सूचकांक दिये गये आधार के सापेक्ष किसी चर के आकार में परिवर्तन को दर्शाते हैं।

16.1.2 भारत में मुद्रास्फीति

भारत में मुद्रास्फीति की दर को सामान्यतः थोक मूल्य सूचकांक से मापा जाता है। स्वतंत्रता के पश्चात से ही उच्च मुद्रास्फीति की दर भारत में एक गम्भीर समस्या रही है यद्यपि

1950 ई. के दशक में मुद्रास्फीति की औसत दर मात्र 1.7 प्रतिशत थी। लेकिन 1960 के दशक में यह 6.4 प्रतिशत हो गयी। सत्तर के दशक में यह 9 प्रतिशत से ऊपर पहुंच गयी। ऊँची मुद्रास्फीति का यह दौर 1995 ई. तक चलता रहा । इसके पश्चात मुद्रास्फीति में कुछ कमी देखने को मिली। वर्ष 2000–01 से 2011–12 के मध्य यह लगभग 4.7 प्रतिशत बनी रही।

16.1.3 मुद्रास्फीति से हानियाँ

एक सामान्य व्यक्ति यह अनुभव करता है कि मूल्य वृद्धि या मुद्रास्फीति के कारण उसे पहले की तुलना में अधिक कीमत अदा करनी पड़ती है। लेकिन वास्तव में समस्या यहीं पर समाप्त नहीं होती। मूल्यवृद्धि व्यक्ति एवं राष्ट्र दोनों के लिए हानि की एक श्रृंखला का निर्माण करती है। इससे मुद्रा के मूल्य में कमी आती है। मुद्रास्फीति के कारण मुद्रा की एक निश्चित मात्रा से पूर्व के वर्षों की तुलना में कम मात्रा में वस्तुयें और सेवायें खरीदी जा सकती हैं। लगातार बढ़ती मुद्रास्फीति मुद्रा के मूल्य को तेजी से गिराती है।

> मुद्रा के मूल्य का तात्पर्य मुद्रा की क्रय शक्ति से है जो कि मुद्रा द्वारा वस्तुओं और सेवाओं को क्रय करने की क्षमता को बताता है।

मुद्रास्फीति के कारण निश्चित वेतन तथा मजदूरी प्राप्त करने वाले वर्ग को भी हानि होती है। इस वर्ग को उनके समान कार्यों एवं सेवाओं के लिए प्राप्त समान राशि की मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है। मुद्रास्फीति को अन्यायपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इससे बचतकर्ता की बचत का मूल्य गिरता है तथा ऋणी को मुद्रास्फीति से लाभ होता है क्योंकि उसे कम मूल्यवाली मुद्रा वापस चुकानी होती है।

मुद्रास्फीति का प्रभाव आर्थिक विकास की दर, गरीबी, बेरोजगारी, आय एवं धन के वितरण आदि पर भी पड़ता है जिसका अध्ययन आगे की कक्षाओं में किया जायेगा। सार रूप में यह कहा जा सकता है कि मुद्रास्फीति विकास के लाभों को समाप्त कर देती है अतः इसे नियंत्रण में रखे जाने की आवश्यकता होती है।

16.1.4 मुद्रास्फीति का माँग प्रेरित तथा लागत प्रेरित स्वरूप

मुद्रास्फीति को कौन निर्धारित करता है अर्थात मुद्रास्फीति के क्या कारण है। यह कभी कम तो कभी ज्यादा क्यों होती है ?इन सभी प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए समग्र माँग तथा समग्र पूर्ति की अवधारणाओं के द्वारा मूल्य वृद्धि के माँग प्रेरित तथा लागत प्रेरित स्वरूप को समझना आवश्यक है। एक देश में उत्पादित अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं पर प्रत्याशित व्यय का योग समग्र माँग कहलाता है। समग्र माँग का स्तर उपभोग हेतु माँग, निवेश हेतु वस्तुओं की माँग, सरकार द्वारा वस्तुओं के क्रय तथा विदेश क्षेत्र को विशुद्ध निर्यात का योग होता है। समग्र पूर्ति का तात्पर्य उत्पादन की उस मात्रा से है जिसे अर्थव्यवस्था दिये गये संसाधनों तथा उपलब्ध तकनीक से उत्पादित कर सकती है।

अर्थव्यवस्था में समग्र माँग तथा समग्र पूर्ति के बीच उत्पन्न होने वाले असंतुलन कीमतों में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। जब समग्र माँग में वृद्धि होती है या समग्र पूर्ति में कमी आती है या दोनों स्थितियाँ एक साथ उत्पन्न हो जाती है तो अर्थव्यवस्था में कीमतों पर ऊपर की ओर दबाव बनता है। समग्र माँग में वृद्धि के कारण जब मुद्रास्फीति बढ़ती है तो इसे माँग प्रेरित मुद्रास्फीति कहते हैं। लागतों में वृद्धि के कारण समग्र पूर्ति में गिरावट से जो मुद्रास्फीति उत्पन्न होती है उसे लागत प्रेरित मुद्रास्फीति कहते हैं।

16.1.5 मुद्रास्फीति के कारण

मुद्रास्फीति का कोई एक सुस्पष्ट तथा निश्चित कारण नहीं है। यह अनेक कारणों का संयुक्त परिणाम होती है। मुद्रास्फीति के लिए उत्तरदायी कुछ प्रमुख कारक अग्रांकित हैं–

(क) मुद्रा की पूर्ति में तेज वृद्धि–

विश्व के अनेक अर्थशास्त्रियों का मत है कि मुद्रास्फीति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण मुद्रा की पूर्ति का आवश्यकता से अधिक होना है। अर्थव्यवस्था में जब वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन की तुलना में मुद्रा की पूर्ति तेजी से बढ़ती है तो अत्यधिक मुद्रा अपेक्षाकृत कम वस्तुओं के पीछे दौड़ती है इससे दिये गये कीमत स्तर पर समग्र माँग का स्तर समग्र पूर्ति से अधिक हो जाता है और कीमतों में वृद्धि की प्रवृति उत्पन्न हो जाती है।

(ख) औद्योगिक तथा कृषिगत उत्पादन में धीमी वृद्धि–

स्वतंत्रता के पश्चात अधिकांश वर्षों में भारत में औद्योगिक विकास की दर अपेक्षित दर से कम रही। 1985 से 1985 के मध्य तो उद्योगों का निष्पादन बहुत निराशाजनक रहा। अनेक कारणों से औद्योगिक उत्पादों की माँग में लगातार वृद्धि होती रही, लेकिन उद्योग इस माँग को संतुष्ट करने में असफल रहे। औद्योगिक क्षेत्र में माँग के आधिक्य ने कीमतों को तेजी से बढ़ाया।

अनेक सुधारों और क्रांतियों के बावजूद भारतीय कृषि की उत्पादकता बहुत नीची है। इसके साथ भारतीय कृषिगत उत्पादन माँग को संतुष्ट करने में असफल रहा। ऐसी स्थिति में कृषि उत्पादों की उच्च माँग इनकी कीमतों को लगातार तेजी से

बढ़ा रही है।

(ग) सार्वजनिक व्यय का उच्च स्तर–

विकास के साथ–साथ बढ़ते दायित्वों के कारण सरकारी व्ययों में लगातार वृद्धि हुई है। सरकारी व्यय की यह वृद्धि समाज के लिए पूर्णतः लाभदायक नहीं है। सरकार द्वारा किया जाने वाला अनुत्पादक व्यय समग्र पूर्ति को नहीं बढ़ाता, लेकिन जनता को क्रय शक्ति प्रदान करके समग्र माँग को बढ़ा देता है। इससे मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(घ) अन्य कारण–

बढ़ती जनसंख्या के कारण भारत में वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए माँग का स्तर सदैव उच्च बना रहता है, जो कीमतों को तेजी से बढ़ाता है। अनेक वस्तुओं का मूल्य सरकार द्वारा तय किया जाता है। जब सरकार अपने घाटे को कम करने के लिए इन वस्तुओं की कीमतों को बढ़ाती है, तो अर्थव्यवस्था में मूल्यवृद्धि की समस्या देखने को मिलती है। महंगे आयात, कृषिगत उत्पादों की ऊँची न्यूनतम समर्थन कीमत तय करना, आय का बढ़ता स्तर, अप्रत्यक्ष करों का ऊँचा स्तर, मजदूरी दरों में वृद्धि, औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि में बाधायें इत्यादि कारणों से भी मुद्रास्फीति बढ़ती हैं।

16.1.6 मुद्रास्फीति के नियन्त्रण के उपाय

मुद्रास्फीति का कोई एक कारण नहीं है इसलिए इसे नियंत्रित किया जाना भी सरल नहीं है। मुद्रास्फीति देश के सामने अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं। अतः इसे रोका जाना आवश्यक होता है। मुद्रास्फीति के नियंत्रण हेतु किए जा सकने वाले उपाय निम्नलिखित हैं –

(क) मौद्रिक उपाय–

मुद्रास्फीति के नियंत्रण हेतु केन्द्रीय बैंक (भारत का केन्द्रीय बैंक भारतीय रिजर्व बैंक है।) द्वारा मौद्रिक उपाय अपनाये जाते हैं। इन उपायों के अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक मुद्रा की मात्रा, साख की उपलब्धता तथा ब्याज दरों को प्रभावित करके समग्र माँग को कम करने तथा समग्र पूर्ति को बढ़ाने का प्रयत्न करती है। जब मुद्रा की मात्रा या साख की उपलब्धता में कमी आती है तो समग्र माँग भी कम हो जाती है जिससे मुद्रास्फीति भी कम हो जाती है।

(ख) राजकोषीय उपाय–

सरकार द्वारा राजकोषीय उपाय किए जाते हैं। इन उपायों में सरकार करारोपण, सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक ऋणों में परिवर्तन करके समग्र माँग को नियंत्रित करने तथा समग्र पूर्ति को बढ़ाने का प्रयत्न करती है। सरकार प्रत्यक्ष कर बढ़ाकर तथा सार्वजनिक व्यय में कमी करके तथा सार्वजनिक ऋण लेकर समग्र माँग को नियंत्रित करके मुद्रास्फीति को कम कर सकती है। सरकार अप्रत्यक्ष करों को कम करके एवं उत्पादक निवेश बढ़ाकर समग्र पूर्ति में वृद्धि के माध्यम से भी मुद्रास्फीति को नियंत्रित कर सकती है।

(ग) अन्य उपाय–

उपर्युक्त वर्णित उपायों के अतिरिक्त आवश्यक वस्तुओं को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से उचित मूल्य की दूकानों पर उपलब्ध करवा कर, आधिक्य माँग वाली वस्तुओं का आयात करके, प्रशासनिक कीमतों में कमी करके भी मूल्य वृद्धि को रोका जा सकता है। सरकार द्वारा कृषि एवं उद्योगों को दिया जाने वाला निवेश प्रोत्साहन भी समग्र पूर्ति को बढ़ाकर मूल्यवृद्धि पर नियंत्रण में उपयोगी होता है।

16.2 गरीबी

गरीबी वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति जीवन–निर्वाह न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने में भी असफल हो जाता है। गरीबी एक व्यापक अवधारणा है, जिसके अनेक आयाम हैं लेकिन सामान्य तौर पर गरीबी शब्द का तात्पर्य आर्थिक अपवेचन से लिया जाता है अर्थात् धन तथा सम्पदा के अभाव को गरीबी कहा जाता है।

हम देखते हैं कि एक ओर कुछ लोग ऐसे घरों में रहते हैं जो बहुत बड़े और सुन्दर हैं एवं दूसरी ओर कुछ लोगों के पास घर ही नहीं होते हैं या कच्चे घर होते हैं। आपने अनेक ऐसे बच्चों को देखा होगा जो विद्यालय आने में समर्थ नहीं हैं। उन्हें अपनी तथा परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए काम पर जाना पड़ता है। हम कह सकते हैं कि समाज में कुछ लोग अमीर होते हैं तथा कुछ लोग गरीब होते हैं। गरीबों के पास धन का अभाव होता है तथा वे अपने जीवन के लिए आवश्यक भोजन, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का न्यूनतम स्तर भी प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

16.2.1 निरपेक्ष गरीबी तथा सापेक्ष गरीबी

निरपेक्ष गरीबी–

इसमें जीवन निर्वाह हेतु न्यूनतम या मूलभूत आवश्यकताओं का एक मानक स्तर तय कर लिया जाता है। इसके पश्चात् उन लोगों को निरपेक्ष गरीबी की स्थिति में माना जाता है जो न्यूनतम आवश्यकताओं के मानक स्तर को प्राप्त नहीं कर पाये। अतः निरपेक्ष गरीबी वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाता। निरपेक्ष गरीबी का विचार अविकसित राष्ट्रों में अधिक उपयोगी है। भारत जैसे राष्ट्रों में जब गरीबी शब्द का उपयोग किया जाता है, तो इसका तात्पर्य निरपेक्ष गरीबी से ही होता है।

न्यूनतम या मूलभूत आवश्यकताओं का मानक स्तर सभी राष्ट्रों में अलग अलग होता है। यह मानक स्तर राष्ट्र के विकास

की स्थिति, लोगों के जीवन स्तर, अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की स्थिति आदि पर निर्भर करता है। ये कारक सभी राष्ट्रों में अलग–अलग हैं अतः सभी राष्ट्रों में निरपेक्ष गरीबी के निर्धारण हेतु न्यूनतम आवश्यकताओं का मानक स्तर अर्थात् गरीबी रेखा भी भिन्न–भिन्न होती है।

सापेक्ष गरीबी–

समाज या राष्ट्र के विभिन्न वर्गों के बीच आय या धन या उपभोग व्यय के वितरण में सापेक्षिक असमानताओं का माप, सापेक्षिक गरीबी कहलाती है। यह विचार विकसित राष्ट्रों में अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी है।

16.2.2 भारत में गरीबी का माप

भारत में गरीबी के मापन हेतु प्रथम प्रयास दादा भाई नौरोजी ने 1868 ई. में किया था। स्वतंत्रता पूर्व राष्ट्रीय नियोजन समिति द्वारा भी गरीबी के अनुमान प्रस्तुत किये गये थे। स्वतंत्रता के पश्चात गरीबी रेखा के निर्धारण तथा गरीबी को परिभाषित करने हेतु 1962 ई. में योजना आयोग द्वारा एक अध्ययन–दल का गठन किया गया। 1971 में वी0 एम0 दांडेकर तथा नीलकंठ रथ ने गरीबी के लिए एक कसौटी को परिभाषित किया। इस संदर्भ में 1979 का वर्ष महत्त्वपूर्ण है, जब "प्रभावी उपभोग माँग एवं न्यूनतम आवश्यकता पर कार्यदल" जिसे वाई0 के0 अलघ कमेटी भी कहते हैं के द्वारा अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी। इस रिपोर्ट के आधार पर सरकार के द्वारा यह तय किया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति 2100 कैलोरी प्रतिदिन अवश्य मिलनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति उपभोग में इससे कम कैलोरी प्राप्त करता, तो उसे गरीब माना जाता था। इसे कैलोरी या उपभोग आधारित गरीबी रेखा कहा गया। इसके पश्चात डी. टी. लकड़ावाला, सुरेश तेंदुलकर तथा सी. रंगराजन की अध्यक्षता में भी योजना आयोग द्वारा गरीबी के अनुमान लगाने हेतु कार्यदलों का गठन किया गया। लकड़ावाला फार्मूले द्वारा 1993–94 तथा 2004–05 के लिए गरीबी के अनुमान लगाये गये थे।

सुरेश तेंदुलकर तथा सी. रंगराजन के द्वारा गरीबी निर्धारण का आधार उपभोग–व्यय माना गया है। इन्होंने गरीबी रेखा के मापन हेतु खाद्यान तथा गैर–खाद्यान वस्तुओं की न्यूनतम मात्राओं का समूह (गरीबी रेखा बास्केट) तैयार किया तथा यह अनुमान लगाया की बाजार कीमतों के आधार पर वस्तुओं की इस न्यूनतम मात्राओं के समूह (गरीबी रेखा बास्केट)को क्रय करने हेतु कितने उपभोग व्यय की आवश्यकता है।

उन्होंने अपने अनुमानों में पाया की वर्ष 2011–12 में शहरी क्षेत्रों में 1000 रु से कम प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 816 रु से कम प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय करने वाला व्यक्ति गरीब है। सुरेश तेंदुलकर के अनुमान के आधार पर भारत में 21.92 प्रतिशत लोग गरीब हैं अर्थात् लगभग 27 करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं।

सी. रंगराजन ने वर्ष 2011–12 के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में 972 रु प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय तथा शहरी क्षेत्रों में 1407 रु प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय को गरीबी रेखा माना है। इस आधार पर वर्ष 2011–12 में भारत में गरीबी 29.5 प्रतिशत है।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के लिए ऑक्सफॉर्ड निर्धनता एवं मानव विकास पहल ने बहुआयामी निर्धनता सूचकांक बनाया। जिसे 2010 के मानव विकास प्रतिवेदन में जारी किया गया। इस निर्धनता सूचकांक के आकलन हेतु तीन आयामों तथा दस सूचकों का प्रयोग किया गया।

भारत में विश्वसनीय समंकों के संकलन का कार्य राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन द्वारा किया जाता है। इसके द्वारा चलाये गये विभिन्न दौरों में एकत्रित किये गये उपभोग व्यय सम्बंधी समंकों के आधार पर विभिन्न विशेषज्ञ गरीबी का अनुमान लगाते हैं।

रिकॉल अवधि (Recall Period)

गरीबी आकलन एवं अनुमान हेतु किये जाने वाले समंकों के संकलन में दो प्रकार की रिकॉल अवधि का उपयोग किया जाता है। समान रिकॉल अवधि में (Uniform Recall Period-URP) 30 दिन की अवधि के लिए उपभोग व्यय के समंक एकत्र किये जाते हैं। मिश्रित रिकॉल अवधि (Mixed Recall Period-MRP) में खाद्यान्न तथा गैर–खाद्यान्न वस्तुओं पर उपभोग व्यय के समंक एकत्रित करने के लिए दो अलग–अलग संदर्भ अवधियों (30 दिन तथा 365 दिन) का संयुक्त रूप से प्रयोग किया जाता है।

16.2.3 गरीबी के कारण

भारत में गरीबी के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक कारण उत्तरदायी है। इन कारणों का विवेचन निम्नवत है–

(क) सामाजिक कारण

भारत में सामाजिक ढाँचा गरीबी को बढ़ाने वाला रहा है। जन्म, विवाह एवं मृत्यु से सम्बंधित अनेक परम्पराएं ऐसी हैं जो व्यक्ति को कर्जदार बना देती हैं। व्यक्ति जीवनपर्यन्त उस कर्ज के बोझ से बाहर नहीं आ पाता है। इसी प्रकार बेटे के जन्म की चाह ने जनसंख्या वृद्धि में योगदान दिया है जो गरीबी का एक बड़ा कारण है। जातियों में विभाजित ग्रामीण हिन्दू समाज ऐसा

था कि जहाँ समाज के एक बड़े पिछड़े हिस्से को लगातार हीन अवस्था में बनाये रखा गया। इस वर्ग को लम्बे समय तक गरीबी से बाहर आने के लिए कोई अवसर नहीं दिया गया।

गरीबी के कारणों की चर्चा में रेग्नार नर्क्से का नाम अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। नर्क्से ने गरीबी के दुष्चक्र की परिकल्पना प्रस्तुत की और बताया कि एक राष्ट्र इसलिए गरीब होते है कि वह पहले से ही गरीब है। गरीबी के दुष्चक्र का निहितार्थ यह है कि गरीबी का कारण भी गरीबी है तथा गरीबी का परिणाम भी गरीबी ही हैं।

(ख) आर्थिक कारण–

भारत की अधिकांश जनसंख्या आर्थिक पिछड़ेपन का शिकार रही है। आर्थिक पिछड़ेपन की स्थिति में लोग शिक्षा तथा स्वास्थ्य मे निवेश नहीं कर पाते हैं जिससे उनकी गुणवत्ता निम्न बनी रहती है। निम्न गुणवत्ता के कारण इन्हें कम आय प्राप्त होती है और ये गरीबी के दुष्चक्र से बाहर नहीं आ पाते हैं। स्वतंत्रता के पहले अधिकांश भारतीय कृषि पर निर्भर करते थे तथा इनका संसाधन आधार बहुत कमजोर था । निवेश की कमी के कारण कृषिगत उत्पादकता निम्न बनी रही है। इन्हीं कारणों से लघु कृषकों तथा कृषि श्रमिकों को प्राप्त होने वाली आय आज भी जीवन–निर्वाह के न्यूनतम स्तर पर बनी हुई हैं। आर्थिक पिछड़ापन व्यक्ति के पास अवसरों की उपलब्धता कम कर देता है। अवसरों के अभाव में व्यक्ति गरीबी के दुष्चक्र से बाहर नहीं आ पाता है।

(ग) राजनैतिक कारण–

राजनैतिक इच्छाशक्ति की कमी भी भारत में भीषण गरीबी के लिए उत्तरदायी है। पांचवी पंचवर्षीय योजना से पूर्व सरकार द्वारा गरीबी निवारण हेतु कोई विशेष प्रयास नहीं किये गये। गरीबी निवारण हेतु विभिन्न सरकारों द्वारा अनेक योजनाएं बनायी गयीं लेकिन प्रबल राजनैतिक इच्छाशक्ति के अभाव के कारण उन योजनाओं के लाभ लक्षित व्यक्तियों तक नहीं पहुँच पाये। हमारे प्रशासनिक तंत्र में भी अनेक रिसाव हैं। वर्तमान सरकार द्वारा अपनायी जा रही प्रत्यक्ष लाभ–हस्तांतरण की नीति के कारण इन रिसावों में भारी कमी आयी है।

(घ) अन्य कारण–

भारत में भयंकर गरीबी के लिए शिक्षा का निम्न स्तर, उद्यमी प्रवृत्तियों का अभाव, रोजगारपरक तथा व्यावसायिक शिक्षा का अभाव, कमजोर आधारभूत संरचना, पूँजी निर्माण का अभाव, स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता पर उत्तरदायी है। इनसे देश में उत्पादकता तथा आय का स्तर निम्न बना रहता है जो कि गरीबी का बड़ा कारण है। गरीबों में आत्मविश्वास की भी कमी होती है तथा वे आर्थिक जोखिम उठाने की स्थिति में नहीं होते, अतः स्वयं का व्यवसाय स्थापित कर गरीबी के दुष्चक्र से बाहर नहीं आ पाते हैं। मुद्रास्फीति या मूल्य वृद्धि से भी गरीबी बढती है। कीमतों में वृद्धि के कारण अनेक लोग अपने जीवन निर्वाह की मूलभूत आवश्यकताओं से सम्बन्धित वस्तुओं को क्रय नहीं कर पाते तथा गरीबी रेखा के नीचे चले जाते हैं।

पढ़ें:

राजेश अपनी पत्नी, चार बच्चों और वृद्ध माता–पिता के साथ शहर की कच्ची बस्ती में रहता था। अपने परिवार के पालन–पोषण हेतु वह सुबह जल्दी उठकर समाचार–पत्रों का वितरण करता तथा दिन में एक सेठ के कारखाने में काम करता। वह अशिक्षित था, अतः उसे बहुत कम मजदूरी मिलती थी । इस अल्प मजदूरी का बड़ा हिस्सा माता–पिता के स्वास्थ्य की देखभाल पर खर्च हो जाता। सेठ द्वारा नयी मशीनें खरीदे जाने के कारण अब उसे कम लोगों की जरूरत थी। इसी समय अत्यधिक कार्य करने एवं अच्छा भोजन नहीं मिलने के कारण राजेश का स्वास्थ्य भी खराब रहने लगा। सेठ ने उसको नौकरी से निकाल दिया। अशिक्षित होने के कारण उसके पास रोजगार के अन्य अवसरों का अभाव था तथा उसके पास इतनी योग्यता एवं धन भी नहीं था कि वह स्वयं का व्यवसाय कर सके। अब राजेश तथा उसके परिवार के लिए जीवनयापन करना भी दूभर हो गया।

विचार करें

(क) राजेश के परिवार को गरीबी की स्थिति में माना जाये या नहीं।

(ख) क्या बेरोजगारी तथा गरीबी में कोई गहन सम्बंध है ?

(ग) जनसंख्या तथा गरीबी के मध्य क्या सम्बंध है ?

(घ) क्या शिक्षा रोजगार के अवसरों को बढ़ाती है ?

16.2.4 गरीबी निवारण के उपाय

(क) शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं का प्रसार–

समाज में व्याप्त अधिकांश बुराइयों की जड़ अशिक्षा है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य तथा उपलब्ध अवसरों का लाभ प्राप्त नहीं होता है। गरीबी की समस्या के उन्मूलन हेतु सभी वर्गों में शिक्षा का प्रसार किये जाने की आवश्यकता है। शिक्षा प्राप्ति के फलस्वरूप श्रम की कुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है। स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार द्वारा भी गरीबों की कुशलता एवं योग्यता को बढाकर उत्पादकता को बढाया जा सकता है। शिक्षा तथा स्वास्थ्य सामान्य श्रम को मानव पूँजी में परिवर्तित कर देते हैं। मानव पूँजी के कारण ही जापान तथा अमेरिका आर्थिक शक्ति बन पाये हैं। अतः सरकार को गरीब वर्गों में शिक्षा का प्रसार एवं स्वास्थ्य सेवाओं का तेजी से विस्तार करना चाहिए।

(ख) रोजगार के अवसरों में वृद्धि–

बेरोजगारी तथा गरीबी में गहरा सहसम्बध है। इन दोनों समस्याओं का सहअस्तित्व पाया जाता है अतः रोजगार के अवसरों में वृद्धि करके गरीबी की समस्या को समाप्त या कम किया जा सकता है। समाज के जिन व्यक्तियों के पास कौशल या योग्यता है उन्हें स्वरोजगार हेतु प्रोत्साहित करके तथा संसाधन उपलब्ध करवाकर गरीबी के जाल से बाहर निकाला जा सकता है। ऐसे गरीब जिनमें कौशल का अभाव है उन्हें मजदूरी रोजगार प्रदान करके उनकी क्रय शक्ति में वृद्धि की जा सकती है यद्यपि मजदूरी रोजगार एवं स्वरोजगार के अनेक कार्यक्रम वर्तमान तथा पूर्व सरकारों द्वारा चलाये गये हैं लेकिन यह इतने पर्याप्त नहीं थे कि गरीबी की समस्या का समाधान कर सके। गरीबी निवारण हेतु शिक्षा को अधिक रोजगारपरक बनाकर रोजगार के अवसरों का विस्तार करना आवश्यक है।

(ग) सामाजिक कुप्रथाओं पर नियत्रंण की आवश्यकता–

भारतीय समाज में व्याप्त कुप्रथाओं ने समाज के विभिन्न वर्गों एवं व्यक्तियों के लिए अवसरों को सीमित रखा तथा उन्हें लगातार गरीब बनायें रखा। अनेक सामाजिक प्रथाऐं जैसे शादी या मृत्यु के समय किया जाने वाला भारी व्यय अनुत्पादक व्यय है जिससे गरीब व्यक्ति ऋण जाल में फंस जाता है और वह कभी भी गरीबी के चंगुल से मुक्त नहीं हो पाता । भारतीय व्यक्ति गरीबी को भाग्य की देन मानकर भी प्रयासहीन हो जाता है। समाज तथा संस्कृति में व्याप्त इन कुप्रथाओं को जब तक दूर नहीं किया जाता तब तक गरीबी निवारण सम्भव प्रतीत नहीं होता ।

(घ) जनसंख्या पर नियंत्रण–

भारत विश्व का दूसरा सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश है। स्वतंत्रता के पश्चात् स्वास्थ्य सेवाओं के प्रसार ने मृत्यु दर में तेजी से कमी की लेकिन जन्मदर में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ। जन्मदर तथा मृत्युदर के मध्य अन्तर बढ़ने के कारण भारत की जनसंख्या तेजी से बढ़ी है। इस तेज वृद्धि के कारण गरीबों की जो थोड़ी–बहुत सम्पदायें हैं उनका तेजी से विभाजन होता है तथा गरीब व्यक्ति अधिकाधिक गरीब हो जाता है। बच्चों की संख्या अधिक होने के कारण गरीब परिवार उनके लिए शिक्षा तथा स्वास्थ्य में भी निवेश नहीं कर पाता अतः गरीबी निवारण हेतु जनसंख्या वृद्धि दर पर नियंत्रण लगाया जाना आवश्यक है।

(ड) लक्षित व्यक्ति या समूह तक लाभों को पहुँचाना –

गरीबी निवारण हेतु अनेक महत्वाकांक्षी योजनाएं एवं कार्यक्रम चलाये गये लेकिन इन कार्यक्रमों में अनेक रिसाव थे जिससे इनके अपेक्षित परिणाम नहीं मिले। इन रिसावों के कारण गरीबों हेतु आवंटित संसाधनों का एक बडा हिस्सा गैर गरीबों को आवंटित हो जाता है। यदि सरकार गरीबी निवारण हेतु गम्भीर है तो उसे यह सुनिश्चित करना होगा कि योजनाओं का लाभ गरीबों तक पहुँचे।

16.2.5 गरीबी निवारण हेतु अपनाये गये उपाय

1970 के दशक से पहले सरकार द्वारा गरीबी निवारण हेतु सार्थक प्रयास नहीं किये गये। सरकार को यह विश्वास था कि आर्थिक प्रगति के प्रभाव समाज के कमजोर वर्ग तक धीरे–धीरे पहुँच जाएँगे और गरीबी की समस्या का समाधान आर्थिक विकास के साथ स्वतः ही हो जायेगा। बाद में यह स्वीकार किया गया कि भारत की विकास दर बहुत धीमी है तथा इसके लाभ भी अपेक्षित मात्रा में गरीबों तक नहीं पहुँच पाये हैं। 1970 के पश्चात् गरीबी निवारण हेतु भारत में नयी बहुआयामी नीति अपनायी गई। मजदूरी रोजगार एवं स्वरोजगार के अनेक कार्यक्रम चलाए गये तथा रोजगार प्रदान करके गरीबी की समस्या को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया। गरीबी उन्मूलन के लिए सरकार ने गरीबी की रेखा से नीचे (BPL) जीवन यापन करने वाले परिवारों की पहचान करके उन्हें जीवन निर्वाह हेतु आवश्यक वस्तुयें एवं सेवाएं कम कीमत पर या मुफ्त में उपलब्ध करवाने की नीति भी अपनायी। सरकार द्वारा किये गये इन अनेक नीतिगत उपायों से गरीबी में कमी तो आयी लेकिन गरीबी में यह कमी संतोषजनक नहीं है।

16.3 बेरोजगारी

कोई व्यक्ति कार्य के योग्य एवं इच्छुक हो, लेकिन रोजगार प्राप्त करने में असफल हो तो इस स्थिति को बेरोजगारी कहा जाता है। अन्य शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि एक व्यक्ति जो किसी उत्पादकीय क्रिया में लाभकारी तौर पर कार्यरत नहीं है वह बेरोजगार है। भारत युवाओं का देश है लेकिन यह युवा शक्ति तभी लाभदायक होगी जब इसे उचित रोजगार में नियोजित किया जा सके। अपने गाँव या शहर में बहुत से लोग कृषि कार्य में लगे हैं तो अनेक लोग व्यवसाय में कार्यरत है। साथ ही कुछ लोग शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग, बीमा आदि सेवाओं में कार्यरत हैं। प्रत्येक रोजगार प्राप्त व्यक्ति काम से स्वयं धन प्राप्त करता है तथा वह अपने राष्ट्र के लिए भी उत्पादन में योगदान करता है। रोजगार से व्यक्ति को धन की प्राप्ति के साथ अनुभव भी प्राप्त होता है जिससे उसकी कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। यदि व्यक्ति बेरोजगार रहता है तो उसे धन तथा कुशलता की हानि होती है और वह मानसिक अवसाद का सामना भी करता है। बेरोजगारी एक व्यक्ति को अकुशल तथा असामाजिक बना देती है। बेरोजगारी की स्थिति व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के लिए अनेक हानियों का निर्माण करती है।

बेरोजगारी को समझने के लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम श्रमशक्ति, कार्यशक्ति तथा बेरोजगारी की दर को समझा जाये।

श्रमशक्ति का तात्पर्य उस जनसंख्या से है जो वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन हेतु चालू आर्थिक क्रियाओं के लिए श्रम की आपूर्ति करती है। इसमें रोजगारशुदा तथा बेरोजगार दोनों शामिल होते हैं। कार्य शक्ति, श्रम शक्ति का वह भाग है जो रोजगार में है। प्रचलित मजदूरी की दरों पर कार्य करने के इच्छुक व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार कार्य नहीं मिलने पर वह बेरोजगार कहलाता है। बेरोजगारी दर, बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या का श्रम शक्ति में शामिल लोगों की संख्या से अनुपात है।

बेरोजगारी दर के अनुमान तीन अलग–अलग दृष्टिकोण क्रमशः सामान्य स्थिति, साप्ताहिक चालू स्थिति तथा चालू दैनिक स्थिति पर लगाये जाते हैं जिनका अध्ययन हम उच्चतर कक्षाओं में करेंगे।

भारत में बेरोजगारी का अनुमान लगाने हेतु भारतीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन **(NSSO)** द्वारा अलग–अलग दौरों का आयोजन करके आँकड़े जुटाये जाते हैं। बेरोजगारी सम्बंधी आंकड़े जुटाने के लिए इस संगठन ने 2011–12 में 68 वाँ दौर चलाया था। इस दौर में पाया गया कि सामान्य स्थिति के आधार पर प्रति हजार जनसंख्या पर श्रम शक्ति 395 तथा कार्यशक्ति 386 रही व 2011–12 के 68वें दौर में सामान्य स्थिति पर बेरोजगारी दर 2.3 प्रतिशत है।

16.3.1 बेरोजगारी के प्रकार

(क) मौसमी बेरोजगारी –

बहुत से व्यवसाय ऐसे होते हैं जो मौसम बदलने के साथ समाप्त हो जाते हैं। ऐसे व्यवसाय वर्ष की एक निश्चित अवधि या मौसम में ही रोजगार देते हैं। कृषि तथा कृषि आधारित उद्योग इसका श्रेष्ठ उदाहरण हैं। जब मौसम प्रतिकूल होता है तो इन मौसमी व्यवसायों में लगे लोगों को बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। इसे मौसमी बेरोजगारी कहा जाता है।

(ख) संरचनात्मक बेरोजगारी–

विकास के साथ– साथ अर्थव्यवस्था की संरचना बदलती रहती है। किसी एक क्षेत्र में माँग कम होती है तो किसी दूसरे क्षेत्र में माँग बढ़ जाती है। अर्थव्यवस्था की संरचना में परिवर्तन के साथ–साथ माँग का स्वरूप भी बदलता रहता है। इस प्रकार संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण जो बेरोजगारी उत्पन्न होती है वह संरचनात्मक बेरोजगारी कहलाती है।

(ग) तकनीकी बेरोजगारी–

उत्पादन की तकनीक में सुधार तथा नवीन मशीनों के उपयोग के कारण जो बेरोजगारी होती है वह तकनीकी बेरोजगारी कहलाती है।

(घ) घर्षणात्मक बेरोजगारी–

इसे भिन्नात्मक बेरोजगारी भी कहा जाता है। दो रोजगार अवधियों के मध्य उत्पन्न बेरोजगारी को घर्षणात्मक बेरोजगारी कहते हैं। यह कार्य बदलने, हड़ताल, तालाबन्दी आदि के कारण उत्पन्न होती है। यह बेरोजगारी अस्थायी प्रकृति की होती है।

(ङ) चक्रीय बेरोजगारी–

अर्थव्यवस्था में होने वाले नियमित प्रकृति के उतार चढ़ावों (तेजी–मंदी की स्थिति) को व्यापार चक्र कहा जाता है। व्यापार चक्रों मे जब मंदी की स्थिति होती है तो समग्र माँग का स्तर बहुत कम हो जाता है। इससे उत्पादन एवं रोजगार में भी गिरावट हो जाती है। समग्र माँग में कमी या व्यापार चक्रों के कारण चक्रीय बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

(च) छिपी हुई या प्रच्छन्न बेरोजगारी–

कई बार ऐसा भी होता है कि व्यक्ति रोजगार में संलग्न तो दिखाई देता है लेकिन कुल उत्पादन में उसका योगदान शून्य या नगण्य होता है। यदि आधिक्य या अतिरिक्त श्रम को उस कार्य से हटा भी लिया जाये तो कुल उत्पादन की मात्रा में कमी नहीं होती है। इसे छिपी हुई बेरोजगारी कहा जाता है। यह बेरोजगारी अविकसित देशों के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि क्रियाओं में अधिक पायी जाती है।

कृषि प्रधान विकासशील अर्थव्यवस्था होने के कारण यहां संरचनात्मक तथा छिपी हुई बेरोजगारी सर्वाधिक पायी जाती है। विकसित देशों में सामान्यतया चक्रीय तथा घर्षणात्मक बेरोजगारी अधिक देखने को मिलती है।

16.3.2 बेरोजगारी के कारण

बेरोजगारी की समस्या अनेक कारणों का संयुक्त परिणाम है। इसके प्रमुख कारण निम्नांकित हैं–

(क) रोजगारपरक शिक्षा एवं प्रशिक्षण का अभाव–

भारत में साक्षरता एवं शिक्षा का स्तर लगातार बढ़ रहा है और इसके साथ ही शिक्षित बेरोजगारी की नयी समस्या भी दृष्टिगोचर हुई है। भारतीय शिक्षा में रोजगारपरकता का अभाव है। यहां शिक्षा की व्यवहारिक उपादेयता बहुत कम है। यहां शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद छात्र रोजगार प्राप्त करने में असफल हो जाते हैं। इसी प्रकार भारत में कौशल प्रदान करने वाले प्रशिक्षण केन्द्रों का अभाव भी है। प्रशिक्षण व्यक्ति को मानवीय पूंजी बनाता हैं जिससे उसके लिए रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है।

(ख) बढ़ती जनसंख्या तथा श्रम शक्ति–

सरकार द्वारा रोजगार प्रदान करने हेतु अनेक योजनाऐं चलायी जा रहीं हैं लेकिन ये जनसंख्या वृद्धि के साथ बढ़ती श्रम शक्ति को पूरी तरह खपाने में असफल रही है। भारत में श्रम शक्ति लगातार तेजी से बढ़ रही है। इसके लिए रोजगार के अवसरों के

तेजी से सृजन की आवश्यकता है।

(ग) अनुपयुक्त तकनीक–

भारतीय कृषि तथा उद्योगों में आधुनिक तकनीक को तेजी से अपनाया जा रहा है। यह तकनीक पूँजी गहन तथा श्रम बचतकारी है। भारत जैसे देशों के लिए यह तकनीक उपयोगी नहीं है। भारत में ऐसी तकनीक अपनाये जाने की आवश्यकता है जो यहाँ की विशाल श्रम शक्ति को भी उपयोग में ले सके। अत्याधुनिक तकनीक भी भारत में बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी है।

(घ) कृषि का पिछड़ापन–

कृषि का पिछड़ापन तथा धीमा विकास भी भारत में बेरोजगारी का बड़ा कारण है। आज भी लगभग 50 प्रतिशत श्रम शक्ति कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों मे रोजगार प्राप्त करती है। कृषि क्षेत्र का धीमा विकास इस विशाल जनसंख्या के लिए रोजगार के पर्याप्त अवसर पैदा करने में असफल रहा।

(ङ) रोजगार विहीन आर्थिक विकास–

सामान्यतः विकास के साथ रोजगार में भी वृद्धि होती है। भारत ने पिछले 35 वर्षों में तेज गति से विकास किया है, लेकिन इस विकास में सेवा क्षेत्र का योगदान अपेक्षाकृत अधिक रहा। सेवा क्षेत्र की रोजगार गहनता कृषि एवं उद्योगों की तुलना में कम होती है अतः तेज आर्थिक विकास के बावजूद रोजगार के अवसरों मे पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई है।

(च) राजनैतिक इच्छाशक्ति एव व्यवस्थित नियोजन का अभाव–

भारत में विकास के साथ–साथ संरचनात्मक परिवर्तनों के फलस्वरूप आधिक्य श्रम को व्यवस्थित नियोजन के द्वारा अन्य क्षेत्रों में खपाये जाने की आवश्यकता थी। यद्यपि बेरोजगारी निवारण हेतु सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम चलाये गये लेकिन इनमें सामंजस्य का अभाव था। इन कार्यक्रमों में रिसाव बहुत ज्यादा थे अतः इनके समस्त लाभ लक्षित व्यक्तियों तक नहीं पहुँच पाये।

16.3.3 बेरोजगारी निवारण के उपाय

बेरोजगारी एवं गरीबी की समस्यायें इतनी गहनता से जुड़ी हैं कि इनके निवारण हेतु अपनाये जाने वाले उपाय पृथक नहीं हैं। सरकार द्वारा पिछले 40 वर्षों से अनेक मजदूरी रोजगार एवं स्वरोजगार कार्यक्रम चलाकर इनके सहअस्तित्व को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया। मनरेगा जैसी योजनाओं के माध्यम से रोजगार प्रदान करके ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी एवं बेरोजगारी में पर्याप्त कमी लायी गयी है। समानान्तर चल रहे अनेक स्वरोजगार कार्यक्रमों ने शिक्षित एवं कुशल लोगों की बेरोजगारी को कम किया है। अर्थशास्त्रियों का मत है कि बेरोजगारी की दर को शून्य किया जाना सम्भव नहीं है। अर्थव्यवस्था में अल्पमात्रा में संरचनात्मक तथा घर्षणात्मक बेरोजगारी का अस्तित्व अवश्य ही बना रहता है। बेरोजगारी के कारण एक राष्ट्र अपने अधिकतम सम्भव उत्पादन के स्तर को प्राप्त नहीं कर पाता तथा उत्पादन का एक हिस्सा वो हमेशा के लिए खो देता है जिसे वह सभी को रोजगार प्रदान करके उत्पादित कर सकता था। सरकार द्वारा निम्न उपाय अपनाकर बेरोजगारी में पर्याप्त कमी की जा सकती है।

(क) सरकार द्वारा चलाये जा रहे मजदूरी एवं स्वरोजगार कार्यक्रमों में उचित समन्वय हो एवं इनमें न्यूनतम रिसाव हो।

(ख) शिक्षा को रोजगारपरक बनाया जाये तथा युवाओं को प्रशिक्षण एवं कौशल विकास के माध्यम से स्वरोजगार हेतु प्रोत्साहित किया जाये।

(ग) विकास के साथ–साथ कृषि से मुक्त होने वाले आधिक्य श्रम को खपाने के लिए उद्योगों की वृद्धि दर को तेज किया जाये।

सम्भवतः सरकार द्वारा अपनाया गया महत्वाकांक्षी कार्यक्रम "मेक इन इण्डिया" तथा निवेश प्रोत्साहन उपाय उद्योगों की वृद्धि दर को तेज गति प्रदान करेंगे। तीव्र औद्योगिक विकास के द्वारा बेरोजगारी में भारी कमी की जा सकती है।

(घ) कुशल नियोजन की आवश्यकता–

भारत में प्रतिवर्ष लाखों नये युवा श्रम शक्ति में सम्मिलित होते हैं। यह भारत के लिए एक अवसर भी है और चुनौती भी। उचित नीति बनाकर इन युवाओं के लिए रोजगार सृजन की आवश्यकता है। रोजगार सम्बन्धी नीति इस प्रकार बनायी जानी चाहिए कि इसमें वर्तमान बेरोजगारों के साथ साथ श्रम शक्ति में नव प्रवेश करने वालों को भी ध्यान में रखा जाये।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. मुद्रास्फीति का तात्पर्य सामान्य कीमत स्तर में सतत वृद्धि से है।
2. मुद्रास्फीति की दर को ज्ञात करने हेतु भारत में थोक मूल्य सूचकांक एवं अनेक प्रकार के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक बनाये जाते हैं।
3. कीमत तथा मुद्रा के मूल्य में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है।
4. मुद्रास्फीति के नियंत्रण हेतु मौद्रिक तथा राजकोषीय उपाय अपनाये जा सकते हैं।
5. भारत में गरीबी के अनुमान सर्वप्रथम दादा भाई नौरोजी द्वारा 1868 में लगाये गये।
6. सुरेश तेंदुलकर के अनुसार वर्ष 2011–12 में भारत में 21.92 प्रतिशत लोग गरीब थे।
7. निरपेक्ष गरीबी वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाता है।

8. बेरोजगारी वह स्थिति है जिसमें कार्यकारी आयु वर्ग में शामिल कार्य के योग्य एवं इच्छुक व्यक्ति प्रचलित मजदूरी की दरों पर रोजगार प्राप्त करने में असफल हो जाता है।

9. भारत में छिपी हुई बेरोजगारी तथा संरचनात्मक बेरोजगारी अधिक पायी जाती है।

10. गरीबी तथा बेरोजगारी के अनुमान लगाने हेतु समंक संकलन का कार्य राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष उत्पन्न चुनौतियाँ कौनसी हैं ?
2. मुद्रास्फीति की गणना हेतु कौनसे सूचकांक उपयोग में लाये जाते हैं ?
3. मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिए मौद्रिक उपाय किसके द्वारा लागू किये जाते हैं ?
4. भारत में गरीबी के सबसे नये अनुमान किसके द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं ?
5. निरपेक्ष गरीबी की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
6. स्वतंत्रता के पश्चात् गरीबी का अध्ययन करने वाले विद्वानों का नाम लिखिए।
7. भारत में गरीबी को मापने का प्रथम प्रयास किसने तथा कब किया ?
8. श्रम शक्ति को परिभाषित कीजिए।
9. छिपी हुई बेरोजगारी किसे कहा जाता है ?
10. कृषि क्षेत्र में कौनसी बेरोजगारी अधिक पायी जाती है ?
11. विकसित अर्थव्यवस्थाओं में किस प्रकार की बेरोजगारी अधिक पायी जाती है ?
12. भारत में विश्वसनीय समंकों का संकलन करने वाली संस्था कौनसी है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. मुद्रास्फीति किसे कहते हैं?
2. स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियों को समझाइये।
3. मुद्रास्फीति नियंत्रण के राजकोषीय उपायों को समझाइये।
4. मुद्रास्फीति नियंत्रण के मौद्रिक उपाय क्या होते हैं? स्पष्ट कीजिए।
5. निरपेक्ष तथा सापेक्ष गरीबी के मध्य अन्तर बताइये।
6. विभिन्न राष्ट्रों में गरीबी रेखायें अलग–अलग क्यों होती है?
7. भारत में गरीबी के आर्थिक कारणों की विवेचना कीजिए।
8. सुरेश तेंदुलकर द्वारा प्रस्तुत गरीबी के अनुमानों की विवेचना कीजिए।
9. वर्ष 2011–12 के लिए श्रम शक्ति, कार्य शक्ति तथा बेरोजगारी दर के अनुमान क्या हैं?
10. बेरोजगारी से एक व्यक्ति को क्या–क्या हानियाँ होती हैं ?
11. घर्षणात्मक बेरोजगारी से आप क्या समझते हैं ?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. भारत में मुद्रास्फीति के कारणों की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. मुद्रास्फीति से उत्पन्न होने वाली हानियों पर विस्तृत लेख लिखिए।
3. विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा गरीबी के अनुमान लगाने हेतु किये गये प्रयासों की व्याख्या कीजिए।
4. गरीबी निवारण हेतु अपनाये जा सकने वाले उपायों की व्याख्या कीजिए।
5. बेरोजगारी कम करने हेतु क्या उपाय अपनाये गये हैं तथा अन्य कौनसे उपाय अपनाये जा सकते हैं?

अध्याय 17

मुद्रा और वित्तीय संस्थाएं

मुद्रा को मनुष्य जाति द्वारा किए गए महान् आविष्कारों में से एक माना जाता है। आग तथा पहिए के आविष्कार की भांति मुद्रा के आविष्कार ने भी मनुष्य जाति के विकास में विस्मयकारी योगदान दिया है। आम तौर पर, वस्तुओं और सेवाओं के लिए हम जो कुछ भी भुगतान करते हैं, उसे 'मुद्रा' कहा जा सकता है। मुद्रा सामान्य रूप से उपयोग लिया जाने वाला विनिमय का साधन है। भुगतान के साधन या विनिमय के माध्यम के रूप में सामान्य स्वीकृति मुद्रा का एक विशिष्ट गुण है। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला यह विश्वास कि इसे अर्थव्यवस्था में अन्य सभी के द्वारा स्वीकार कर लिया जायेगा, मुद्रा को मुद्रा बनाता है। अतः मुद्रा वह कोई भी वस्तु है, जिसे वस्तुओं और सेवाओं के भुगतान के लिए सामान्य स्वीकृति प्राप्त है।

विनिमय– वस्तु या सेवा का मुद्रा या अन्य किसी वस्तु अथवा सेवा के बदले आदान–प्रदान, विनिमय कहलाता है।

हम सभी बाजार से अनेक प्रकार की वस्तुएं क्रय करते हैं। आपने भी बाजार से वस्तुएं क्रय की होंगी। 10 रु. का पैन या बिस्किट क्रय किया तो, दुकानदार ने बिना किसी विरोध के 10 रु. स्वीकार कर लिए। इसी प्रकार हम या हमारे परिवारजन जब भी बाजार से सामान क्रय करते हैं, तो उस सामान का जो भी मूल्य होता है, उसके उतने रुपये चुका देते हैं और दुकानदार उन्हें सहर्ष स्वीकार कर लेता है। इस आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में भारतीय रुपया ही मुद्रा है।

विचार करें :

क्या अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में वस्तुओं के क्रय के बदले भारतीय रुपये में भुगतान किया जा सकता है ?

वहां बाजार में भुगतान किस माध्यम से होते हैं अर्थात् अमेरिका तथा इंग्लैण्ड की मुद्रा क्या है ?

मुद्रा के अनेक रूप हैं, जो भुगतान के साधन के रूप में प्रयुक्त होते हैं लेकिन आम आदमी के लिए मुद्रा का सामान्य अर्थ केवल करेंसी (बैंक नोट) और सिक्कों से है। इसका यह कारण है कि भारत में भुगतान प्रणाली मुख्यतः करेंसी तथा सिक्कों के इर्द–गिर्द ही घूमती है। भारतीय मुद्रा को "भारतीय राष्ट्रीय रुपया" (Indian National Rupee) कहा जाता है। एक रुपया 100 पैसे के तुल्य होता है। भारतीय रुपये का प्रतीक ₹ है। यह डिज़ाइन देवनागरी अक्षर र और लेटिन के बड़े अक्षर **R** के जैसा है, जिसमें ऊपर दोहरी आड़ी रेखाएं हैं। यह प्रतीक डी0 उदय कुमार द्वारा तैयार किया गया। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका की मुद्रा यू0स0 डॉलर का प्रतीक $ है। ब्रिटेन की मुद्रा पाउण्ड स्टर्लिंग का प्रतीक £ है। यूरोपीय समूह की मुद्रा यूरों का प्रतीक € है तथा जापान की मुद्रा जापानी येन का प्रतीक ¥ है।

17.1 मुद्रा की उत्पत्ति तथा विकास

17.1.1 मुद्रा की उत्पत्ति

अंग्रेजी भाषा में मुद्रा को मनी (Money) कहा जाता है। अंग्रेजी भाषा के शब्द मनी की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द मोनेटा (Moneta) से हुई। रोम में पहली टकसाल देवी मोनेटा के मन्दिर में स्थापित की गयी थी। इस टकसाल से उत्पादित सिक्कों का नाम देवी मोनेटा के नाम पर मनी पड़ गया था और धीरे–धीरे मुद्रा के लिए सामान्य रूप से मनी शब्द का उपयोग किया जाने लगा।

ऐसा माना जाता है कि चीन के साथ–साथ भारत भी विश्व के प्रथम सिक्के जारी करने वाले देशों में से एक है। भारतीय सिक्कों का इतिहास ईसा पूर्व से प्रारम्भ हो जाता है। उत्खनन में मिले मौर्यकाल के चांदी के सिक्के इस बात को सत्य सिद्ध करते हैं कि भारत में ईसा से पूर्व ही सिक्कों का प्रयोग आरम्भ हो गया था। भारत में पहला 'रुपया' शेरशाह सूरी द्वारा (1540–45 ई.) जारी किया गया था।

वर्तमान में भारत में 50 पैसे, 1 रुपया, 2 रुपये, 5 रुपये और 10 रुपये के मूल्यवर्गों के सिक्के जारी किये जा रहे हैं। साथ ही भारत के केन्द्रीय बैंक भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 10रु, 20रु, 50रु, 100रु, 500रु तथा 2000रु मूल्यवर्ग के बैंक नोट जारी किये जा रहे हैं। ₹ 1, ₹ 2 तथा ₹ 5 के बैंक नोटों का उत्पादन वर्तमान में बन्द कर दिया गया है, लेकिन यह चलन में बने हुये हैं। 8 नवम्बर 2016 को प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी ने प्रचलित 500रु तथा 1000रु के नोटों के विमुद्रीकरण की घोषणा कर दी है।

प्रचलित मुद्रा की कानूनी वैधता समाप्त करके उसे प्रचलन से हटाना ही विमुद्रीकरण कहलाता है।

वित्तीय शिक्षा प्रदान करने हेतु भारतीय रिजर्व बैंक ने 'प्रोजेक्ट वित्तीय साक्षरता' प्रारम्भ किया है। इसका उद्देश्य विभिन्न लक्षित वर्गों को केन्द्रीय बैंक तथा सामान्य बैंकिंग अवधारणाओं के सम्बंध में सूचनाएँ प्रदान करना है। यदि हम वित्तीय तंत्र के सम्बन्ध में व्यापक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो हम इंटरनेट पर *https://rbi.org.in/financialeducation/home.aspx* वेबसाइट देख सकते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वित्तीय साक्षरता प्रदान करने हेतु यह बहुत प्रभावी एवं आकर्षक कदम है। भारतीय वित्तीय तंत्र से सम्बंधित अनेक रुचिकर फिल्में, खेल तथा कॉमिक्स इस वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। यहां उपलब्ध होने वाली सूचनाओं तथा ज्ञान की विश्वसनीयता भी अद्वितीय है।

17.1.2 मुद्रा का विकास

मुद्रा के जन्म एवं विकास के सम्बंध में कुछ अध्येता यह मानते हैं कि किसी व्यक्ति ने मुद्रा का आविष्कार नहीं किया है। मुद्रा का आविष्कार एक संयोग मात्र है। पहले वस्तु विनिमय पद्धति प्रारम्भ हुई और फिर मुद्रा का विकास हुआ। दूसरी तरफ अनेक विद्वान यह भी मानते हैं कि वस्तु–विनिमय की कठिनाईयों के कारण मनुष्य जाति ने विनिमय को सुगम बनाने हेतु मुद्रा का विकास किया। मुद्रा का जन्म कैसे भी हुआ हो, सभी विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि मुद्रा के वर्तमान स्वरूप तक पहुँचने का प्रथम चरण निश्चित ही वस्तु–विनिमय पद्धति थी।

(क) वस्तु–विनिमय प्रणाली–

इस प्रणाली में वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं और सेवाओं के बदले में किया जाता है। विनियम के माध्यम के रूप में वस्तु–विनिमय प्रणाली अब लगभग इतिहास हो चुकी है। वस्तु–विनिमय में आवश्यकता के दोहरे संयोग की कठिनाइयाँ पायी जाती थीं। आवश्यकताओं के दोहरे संयोग से अभिप्राय यह है कि एक व्यक्ति जिस वस्तु को बेचना चाहता है उसकी आवश्यकता दूसरे व्यक्ति को हो तथा दूसरे व्यक्ति के पास विक्रय करने के लिए वह वस्तु हो, जिसकी आवश्यकता पहले व्यक्ति को है। वस्तु–विनिमय प्रणाली में विनिमय हेतु आवश्यकताओं के दोहरे संयोगों की इस दुर्लभ स्थिति की अनिवार्यता थी।

वस्तु–विनिमय प्रणाली में मूल्य के एक मानक मापक का भी अभाव था। इस प्रणाली में धन या मूल्य के संचय तथा मूल्य के हस्तांतरण में भी भारी असुविधा का सामना करना होता। वस्तुओं के रूप में धन या मूल्य का हस्तांतरण बहुत जोखिम भरा होता था। वस्तु विनिमय में एक महत्त्वपूर्ण समस्या अविभाज्य वस्तुओं के सम्बंध में उत्पन्न होती थी। यदि किसी व्यक्ति के पास घोड़ा होता तथा उसे एक भेड़ खरीदनी होती तो वह ना तो सम्पूर्ण घोड़ा दे सकता और ना ही उस घोड़े को विभाजित कर उसका भेड़ के साथ विनियम कर पाता। इन वस्तुओं का विभाजन करने पर इनका सम्पूर्ण महत्त्व ही समाप्त हो जाता। वस्तु विनियम प्रणाली की इन सीमाओं के कारण इसे त्याग दिया गया तथा मौद्रिक विनिमय प्रणाली को अपना लिया गया ।

(ख) धातु–मुद्रा–

वस्तु मुद्रा का स्थान धातु मुद्रा ने ले लिया। प्रारम्भ में धातु से बनी वस्तुओं तथा धातुओं के टुकड़ों ने मुद्रा का कार्य किया। इसके पश्चात् इन पर मोहर लगायी जाने लगी तथा मूल्य लिखा जाने लगा। यह माना जाता है कि धातु के सिक्कों का उपयोग चीन, भारत तथा मिस्र में प्रारम्भ हुआ था । धातु मुद्रा का हस्तांतरण सुविधाजनक नहीं था। इनके उत्पादन में अधिक खर्चा आता था और मुद्रा की बढ़ती आवश्यकता को धातु मुद्रा से पूरा किया जाना सम्भव नहीं था ।

(ग) पत्र–मुद्रा–

धातु मुद्रा की सीमाओं के कारण पत्र–मुद्रा का विकास हुआ। पत्र–मुद्रा उन सभी दोषों से मुक्त है, जो धातु–मुद्रा में थे। पत्र–मुद्रा के उत्पादन में बहुत कम खर्चा आता है और इसका हस्तान्तरण भी बहुत सुविधाजनक है। बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए पत्र–मुद्रा की पूर्ति आसानी से बढ़ाई जा सकती है। मुद्रा के विकास के क्रम में वर्तमान में तो पत्र मुद्रा से आगे बढ़कर साख मुद्रा तथा निकट मुद्रा भी मुद्रा की भूमिका अदा करने लगी है। जिनका अध्ययन हम आगे की कक्षाओं में करेंगे।

17.2 मुद्रा के कार्य तथा अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका

मुद्रा के कार्यों को अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका के रूप में देखा जा सकता है। मुख्य तौर पर मुद्रा विनिमय के माध्यम, मूल्य का मापक, विलम्बित भुगतानों के एक मानक तथा मूल्य के भण्डार का कार्य करती है। साथ ही यह अनेक अन्य गतिशील कार्यों को पूरा करके भी अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

मुद्रा के विभिन्न कार्य

(क) विनिमय का माध्यम–

एक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की आधारभूत भूमिका विनिमय के एक माध्यम या भुगतान के एक साधन के रूप में काम करने की होती है। मुद्रा का यह कार्य वस्तु–विनिमय प्रणाली की आवश्यकताओं के दोहरे संयोगों की समस्या को समाप्त कर देता है। यह मुद्रा विनिमय के माध्यम के रूप में कार्य करती है। यही वह विशिष्ट गुण है जो मुद्रा को अन्य संपदाओं से पृथक करता है। मुद्रा का माध्यम के रूप में उपयोग विनिमय क्रिया को सुविधाजनक बना देता है।

(ख) खाते की इकाई या मूल्य का मापक–

इसका तात्पर्य है कि मुद्रा मूल्य के सामान्य मापक का कार्य करती है। इसकी सहायता से सभी वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय मूल्य को मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। विभिन्न पैमानों पर अनेक वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय मूल्य को एक समान इकाई मुद्रा में व्यक्त करके एक उचित लेखा तंत्र बनाया जा सकता है यद्यपि मूल्य के एक मापक के रूप में मुद्रा की सबसे बड़ी समस्या यह है कि इसका स्वयं का मूल्य परिवर्तित होता रहता है।

(ग) विलम्बित भुगतानों की मानक–

मुद्रा वह इकाई है, जिसके द्वारा स्थगित या भावी भुगतान सरलता से निपटाये जा सकते हैं। जो भुगतान तत्काल न करके भविष्य के लिये टाल दिए जाते हैं, वे स्थगित भुगतान कहलाते हैं। चूँकि ऋण भी एक प्रकार का स्थगित भुगतान है। अतः ऋणों को भी मुद्रा के रूप में चुकाया जाना सर्वाधिक सरल है। मुद्रा का मूल्य अन्य सम्पदाओं की तुलना में अधिक स्थिर रहता है तथा इसमें सामान्य स्वीकृति का गुण पाया जाता है अतः मुद्रा को स्थगित भुगतानों का श्रेष्ठ मानक माना जाता है।

(घ) मूल्य का भंडार–

इसका तात्पर्य है कि लोग अपनी धन तथा सम्पदा को मुद्रा के रूप में रख सकते हैं। मुद्रा मूल्य के संचय के रूप में भी कार्य करती है। मुद्रा के मूल्य का तात्पर्य मुद्रा की क्रय शक्ति से है। मुद्रा मूल्य का एक मात्र भण्डार नहीं है। अन्य वस्तुयें तथा सम्पदायें भी मूल्य के भण्डार का कार्य करती हैं तथा इस संदर्भ में मुद्रा से प्रतियोगिता करती हैं। मूल्य के भण्डार के रूप में मुद्रा विशिष्ट है क्योंकि यह सर्वाधिक तरल परिसम्पति है।

इस प्रकार मुद्रा वह वस्तु है, जो सामान्य रूप से विनिमय के माध्यम, मूल्य के मापक, मूल्य के संचय तथा स्थगित भुगतानों के मानक के रूप में प्रयोग की जाती है। वाकर तथा हार्टले विदर्स के अनुसार–"मुद्रा वह है, जो मुद्रा का कार्य करे"। क्राउथर के अनुसार मुद्रा की परिभाषा किसी भी वस्तु के रूप में दी जा सकती है, जिसे साधारणतः विनिमय का माध्यम स्वीकार किया जाता हो और इसके साथ ही जो मूल्य के मापक और मूल्य के संचय का भी कार्य करती हो।

(ङ) मुद्रा के अन्य कार्य तथा अर्थव्यवस्था में भूमिका–

मुद्रा की सहायता से मूल्य का हस्तान्तरण सुविधाजनक हो जाता है। मुद्रा अर्थव्यवस्था में साख का आधार प्रदान करती है। लोग अपनी आय का एक हिस्सा बैंकों में मुद्रा के रूप में जमा करवाते हैं। इस जमा धन से ही बैंक साख का सृजन करते हैं। मुद्रा ने पूँजी को गतिशीलता प्रदान करके भी अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। मुद्रा के कारण ही पूँजी को एक उद्योग से दूसरे उद्योग में तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना संभव हुआ है।

मुद्रा की सहायता से ही बचतों को निवेशों में परिवर्तित किया जाना संभव हुआ। अर्थव्यवस्था में बचतकर्त्ता तथा निवेशक दो अलग–अलग वर्ग हैं। बचतकर्त्ता अपनी बचतों को मुद्रा के रूप में बैंक आदि वित्तीय संस्थाओं में जमा करवा देते हैं। ये संस्थाए व्यवसायियों को निवेश हेतु यह मुद्रा उधार दे देती हैं। फर्में या व्यवसायी मुद्रा को किसी उत्पादकीय निवेश में लगा देते हैं। इससे अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है तथा अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर होती है।

> **निवेश–** निवेश का तात्पर्य उस व्यय से है जो अर्थव्यवस्था में वास्तविक उत्पादक सम्पदा के स्टॉक में वृद्धि करता है।

मुद्रा के द्वारा ही उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि या कल्याण की स्थिति को प्राप्त कर सकता है। चूँकि मुद्रा आसानी से विभाज्य है अतः उपभोक्ता अपनी मुद्रा को विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं पर इस प्रकार व्यय कर सकता है कि उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो। मुद्रा उपभोक्ताओं को वस्तुओं के चुनाव की स्वतंत्रता भी प्रदान करती है।

मुद्रा उत्पादन के क्षेत्र में भी महती भूमिका अदा करती है। मुद्रा के द्वारा श्रम–विभाजन एवं विशिष्टीकरण को अपनाने से बड़े पैमाने पर उत्पादन सम्भव हो पाया है। विशिष्टीकरण तब घटित होता है जब एक आर्थिक संसाधन एक विशिष्ट वस्तु या सेवा को उत्पादित करता है। जब उत्पादक कार्य को विभिन्न श्रमिकों में उपविभाजित कर दिया जाता है तथा प्रत्येक इकाई श्रम वस्तु या सेवा के उत्पादन में एक विशिष्ट कार्य करता है तो इसे श्रम–विभाजन कहा जाता है। श्रम–विभाजन तथा विशिष्टीकरण से उत्पादकीय कुशलता में वृद्धि होती है तथा उत्पादन का उच्च स्तर प्राप्त होता है। मुद्रा के अभाव में समस्या यह थी कि जो उत्पादन प्राप्त हुआ उसका उत्पादन में संलग्न सभी इकाइयों में वितरण कैसे हो? मुद्रा के माध्यम से उत्पादन में संलग्न विभिन्न उत्पादक इकाइयों में उत्पादन का वितरण सम्भव है। प्राप्त कुल उत्पादन या वस्तु को विभाजित किया जाना सदैव सम्भव नहीं है लेकिन उसके मूल्य का मुद्रा के माध्यम से सभी उत्पादक इकाइयों में उचित आर्थिक नियमों का पालन करते हुए वितरण किया जा सकता है। मुद्रा के कारण ही राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापार में तेज वृद्धि सम्भव हुई है। वस्तु विनिमय प्रणाली में व्यापार का क्षेत्र सीमित होता है तथा इतनी अधिक मात्रा में व्यापार सम्भव नहीं होता।

वर्तमान समय में राज्य के कल्याणकारी स्वरूप को अत्यधिक बल मिला है। राज्य या सरकार द्वारा अपनी जनता के कल्याण हेतु अनेक योजनाएँ चलायी जा रही हैं। इन योजनाओं पर

सरकार को अत्यधिक व्यय करना होता है। इस व्यय की पूर्ति सरकार कर एवं सार्वजनिक ऋणों से करती है, जो मुद्रा के रूप में ही प्राप्त किये जा सकते हैं। वर्तमान में मानव का विकास जिस स्तर पर पहुँचा है, वह मुद्रा के आविष्कार से ही सम्भव हुआ है। सम्भवतः मनुष्य के जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहाँ मुद्रा की कोई भूमिका नहीं हो। मुद्रा एक साधन है, वह साध्य नहीं है।

17.3 बचत तथा साख

वित्तीय संस्थाओं के संम्बध में गहनता से जानने के लिए यह आवश्यक है कि बचत एवं साख की अवधारणाओं को समझा जाये। बचत और साख की अवधारणाओं को समझने के लिए हमें निम्नांकित तीन स्थितियों पर विचार करने की आवश्यकता है–

स्थिति–1 पंकज राजस्थान के सीकर जिले के कटराथल गांव में अपने माता–पिता, दो भाई एवं एक बहिन के साथ रहता है। वह एक शिक्षित एवं ऊर्जावान युवक है। उसने एक अच्छे संस्थान से व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त की है तथा वह अपना स्वयं का व्यवसाय स्थापित करना चाहता है। उसके पास व्यवसाय के अनेक विकल्प हैं तथा उसे बाजार की अच्छी समझ है। वह व्यवसाय के तरीकों को भी भली प्रकार जानता है। फिर भी पूँजी के अभाव में वह स्वयं का व्यवसाय स्थापित नहीं कर पा रहा है। उसके पिता एक सामान्य कृषक हैं जो परिवार की आवश्यकताओं को ही पूरा कर पाते हैं। इस स्थिति में व्यवसाय स्थापित करने हेतु पंकज के पास एकमात्र विकल्प है कि वह आवश्यक पूँजी उधार प्राप्त करे।

स्थिति–2 संजय झुन्झुनू जिले के राजपुरा गांव में रहता है। उसके माता–पिता वृद्ध हैं तथा सामान्यतया बीमार रहते हैं। तीन भाई–बहनों में वह सबसे बड़ा तथा परिवार का एकमात्र कमाने वाला सदस्य है। उसके पास 2 हेक्टेयर का छोटा–सा खेत है। वह इसी खेत में कृषि–कार्य करके प्राप्त आय से अपने परिवार का गुजारा चलाता है। परिवार के सभी सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने का दायित्व उसी का है। कृषि–कार्य से प्राप्त होने वाली आय उसके परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु अपर्याप्त है। परिवार की मूलभूत आवश्यकताओं को संतुष्ट करने हेतु आवश्यक है कि संजय किसी व्यक्ति या संस्था से आवश्यक धन उधार प्राप्त करे।

स्थिति–3 नितेश तथा उसकी पत्नी चाँदनी जयपुर में रहते हैं। नितेश एक बैंक कर्मी है तथा उसकी पत्नी भी सरकारी सेवा में है। दोनों मितव्ययी भी हैं तथा उन्हें विरासत में भी अच्छा आर्थिक आधार मिला है। दोनों अपनी आय के छोटे–से हिस्से से अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को संतुष्ट कर लेते हैं। अतः इनके पास आय का एक पर्याप्त हिस्सा बचत के रूप में रह जाता है।

यहाँ स्थिति 1 में पंकज को स्वयं का व्यवसाय स्थापित करने हेतु तथा स्थिति 2 में संजय को उपभोग हेतु उधार प्राप्त करने अर्थात ऋण लेने की आवश्यकता है। अर्थशास्त्र में ऋण या उधार प्रदान करने को ही साख प्रदान करना कहा जाता है। बोलचाल की भाषा में साख शब्द वित्तीय सुदृढ़ता की प्रतिष्ठा को भी बताता है जिसके आधार पर व्यक्ति या संस्था भविष्य में भुगतान के वायदे के आधार पर ऋण प्राप्त कर सकते हैं या बगैर नगद भुगतान किये वस्तुयें तथा सेवायें प्राप्त कर सकते हैं। स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र में साख शब्द का उपयोग ऋण के वित्तीयन (ऋण के लिए वित्त उपलब्ध करवाने) हेतु लिया जाता है। जिस प्रकार विनिमय में एक पक्ष वस्तु क्रय करता है, तो दूसरा पक्ष विक्रय करता है। क्रय तथा विक्रय एक ही सौदे के दो पक्ष हैं। इसी प्रकार वित्त या कोषों के लेने–देन में एक पक्ष उधार या ऋण प्राप्त करता है तो दूसरा पक्ष साख (उधार या ऋण) प्रदान करता है। इस प्रकार वित्तीय लेन–देन में जितनी राशि ऋण की प्राप्त होगी, उतनी ही राशि प्रदत साख की होगी।

स्थिति 3 पर विचार करें, तो हम पाते हैं कि नितेश तथा चाँदनी के पास आय का एक बड़ा हिस्सा अप्रयुक्त रह जाता है। आय का वह भाग जिसे उपभोग नहीं किया गया, बचत कहलाता है। अतः उपभोग पर आय का आधिक्य ही बचत है।

यहाँ अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। पंकज को व्यवसाय स्थापित करने हेतु पूँजी कहाँ से उपलब्ध होगी? संजय को अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ऋण कहाँ से प्राप्त होगा? नितेश तथा चाँदनी अपनी बचतों को कहां सुरक्षित रखेंगे? क्या नितेश तथा चाँदनी अपनी बचतों को सीधे ही पंकज तथा संजय को उधार दे सकते हैं? नितेश तथा चाँदनी द्वारा पंकज तथा संजय को सीधे ही उधार दिया तो जा सकता है लेकिन इसमें अनेक व्यावहारिक समस्याएं उत्पन्न होने की भी प्रबल सम्भावना है। प्रथम यदि नितेश तथा चाँदनी यह नहीं जानते कि पंकज तथा संजय का आर्थिक व्यवहार कैसा है, तो उन्हें ऋण देने पर सदैव अपनी गाढ़ी कमाई के डूबने का भय बना रहेगा। द्वितीय, यदि किसी कारण से उन्हें पैसे की अचानक आवश्यकता होती है तो पंकज तथा संजय अल्पसूचना पर पैसे लौटाने में समर्थ हों या नही हों। तृतीय, यह भी सम्भव है कि नितेश तथा चाँदनी का पंकज तथा संजय से कोई परिचय ही नहीं हो। वास्तविक रूप में ऋण देने वाला तथा अन्तिम रूप से ऋण लेने वाला दो अलग–अलग पक्ष होते हैं और इनके बीच एक सेतु की आवश्यकता होती है, जो इन दोनों पक्षों को जोड़ सके। यह भूमिका वित्तीय मध्यस्थ अदा करते हैं।

वित्तीय मध्यस्थ–

वित्तीय मध्यस्थ वे संस्थान तथा फर्म हैं जो वित्तीय

बाजार में जमाकर्ता तथा उधार लेने वालों के बीच एक सेतु या मध्यस्थ का कार्य करते हैं। ये संस्थान उन व्यक्तियों से धन प्राप्त करते हैं जो अपनी आय से कम खर्च करते हैं अर्थात् बचत करते हैं तथा उन व्यक्तियों एवं संस्थाओं को साख उपलब्ध करवा देते हैं, जिन्हें उत्पादन या उपभोग हेतु धन की आवश्यकता है। जब बचतकर्त्ता अपनी बचतों को इनके पास जमा करवाते हैं, तो उन्हें उचित ब्याज प्राप्त होता है तथा धन डूबने का जोखिम बहुत कम होता है। जमाकर्ताओं के पास यह भी सुविधा होती है कि उन्हें जब जरूरत हो, वे अपनी जमाओं को तुरन्त या अल्पसूचना पर वापस ले सकते हैं। इसी प्रकार उधार लेने वाले व्यक्तियों तथा संस्थाओं को भी वित्तीय मध्यस्थों से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। वित्तीय मध्यस्थों के पास सदैव धन की उपलब्धता बनी रहती है। ये उचित ब्याज दर तथा स्वीकार्य आसान शर्तों पर साख प्रदान करते हैं। बैंक एक महत्त्वपूर्ण वित्तीय मध्यस्थ है।

17.4 साख के संस्थागत तथा गैर संस्थागत स्रोत

अर्थव्यवस्था में अनेक लोग ऐसे होते हैं, जिनके व्यय उनकी आय से अधिक होते हैं। इस आधिक्य व्यय को पूरा करने के लिए उन्हे ऋण लेने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार अनेक लोग जो कि उत्पादन–क्रिया या व्यवसाय में संलग्न है, उन्हें अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाने हेतु अधिक पैसों की आवश्यकता होती है, जिसे वे ऋण लेकर पूरा करते हैं। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लोग विभिन्न वित्तीय स्रोतों से साख प्राप्त कर सकते हैं। दूसरी ओर ऐसे भी लोग होते हैं, जिनके व्यय उनकी आय से कम है। यह अपनी बचतों पर ब्याज कमाना चाहते हैं। अतः ये अपनी बचतों को विभिन्न वित्तीय संस्थाओं मे जमा करवा देते हैं। वित्तीय संस्था वह संस्था होती है, जो वित्तीय लेन–देन के कार्य (जैसे–जमा, ऋण, निवेश आदि) सम्पन्न करती है। जैसे बैंक, सहकारी समिति, साहूकार, देशी बैंकर आदि। इन वित्तीय संस्थाओं को संस्थागत तथा गैर संस्थागत स्रोतों में वर्गीकृत किया जाता है।

संस्थागत साख प्रदान करने वाली संस्थाएं सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक के पास पंजीकृत होती हैं। इनका नियमन, नियंत्रण तथा निर्देशन भारतीय रिजर्व बैंक तथा सरकार द्वारा किया जाता है। ये अपनी सभी क्रियाओं के सम्बन्ध में अपनी नियामक संस्थाओं को सूचित करते हैं। इन संस्थाओं द्वारा केवल लाभ के लिए कार्य नहीं किया जाता है। इन्हें महत्त्वपूर्ण सामाजिक दायित्वों को भी वहन करना होता है। ये संस्थाए गरीब एवं कमजोर वर्ग को भी साख प्रदान करती हैं। आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के वित्तीय समावेशन के द्वारा आर्थिक समानता की स्थापना करने में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

वित्तीय समावेशन–

समाज के गरीब, कमजोर, पिछड़े तथा निम्न आय वर्ग को वहनीय लागत पर वित्तीय सेवायें प्रदान करके उन्हें वित्तीय सेवाओं से जोड़ना वित्तीय समावेशन कहलाता हैं।

17.5 वाणिज्यिक बैंक–

हमने देखा कि नितेश तथा चाँदनी अपनी आय से कम खर्च करते हैं। अपनी इन बचतों को वह इस प्रकार प्रबंधित करना चाहेंगे कि उन्हें धन डूबने का भय भी नहीं हो तथा जमा पूँजी पर उचित ब्याज भी प्राप्त हो। जो लोग थोड़ा–थोड़ा करके बचत करते हैं, वे चाहते हैं कि कोई ऐसी संस्था हो, जो उनकी बचतों को सुरक्षित रख सके तथा उन्हें आवश्यकता होने पर वह अपनी बचतों को आसानी से वापस प्राप्त कर सके। बैंक इस कार्य को सम्पन्न करने वाले महत्त्वपूर्ण वित्तीय मध्यस्थ हैं। बचत करने वालों से रुपये जमा लेकर बैंक यह रुपये उन लोगों को उधार दे देते हैं जिन्हें उत्पादन या उपभोग हेतु धन की आवश्यकता है। बैंक पूँजी का उपयोग करने वालों तथा बचत करने वालों के बीच एक सेतु का कार्य करता है। बैंक एक महत्त्वपूर्ण सुविधा यह भी प्रदान करते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर बचतकर्ता बैंक खातों में जमा धन को निकाल सकता है, इसलिए इस जमा को माँग जमा कहा जाता है। यह सुविधा इसे मुद्रा का महत्त्वपूर्ण लक्षण (विनिमय का माध्यम) प्रदान करती है। आपने नकद की बजाय चैक से भुगतान के बारे में सुना होगा। चैक से भुगतान के लिए भुगतानकर्त्ता, जिसका किसी बैंक में खाता है, एक निश्चित रकम के लिए चैक काटता है। चैक एक ऐसा आदेश–पत्र है, जो बैंक को किसी व्यक्ति के खाते से चैक पर नामित व्यक्ति को एक विशेष राशि के भुगतान का आदेश देता है।

अग्रांकित चैक टैगोर शिक्षण संस्थान ने राजेन्द्र प्रसाद को 500 रु. का भुगतान करने के लिए जारी किया है। इस पर दो समानान्तर तिरछी रेखाएं अंकित की गयी है। यह रेखांकित चैक इस बात का सूचक है कि यह प्राप्तकर्त्ता के खाते में ही जमा होगा। ध्यान से देखें तो स्पष्ट होता है कि रेखांकित चैक में सात पूर्तियां की जाती है–

(1) दो समानान्तर तिरछी रेखाएं
(2) जारी करने का दिनांक
(3) भुगतान प्राप्तकर्त्ता का नाम
(4) भुगतान की राशि अंकों में
(5) भुगतान की राशि शब्दों में
(6) चैक जारी करने वाले की खाता संख्या
(7) चैक जारी करने वाले के हस्ताक्षर

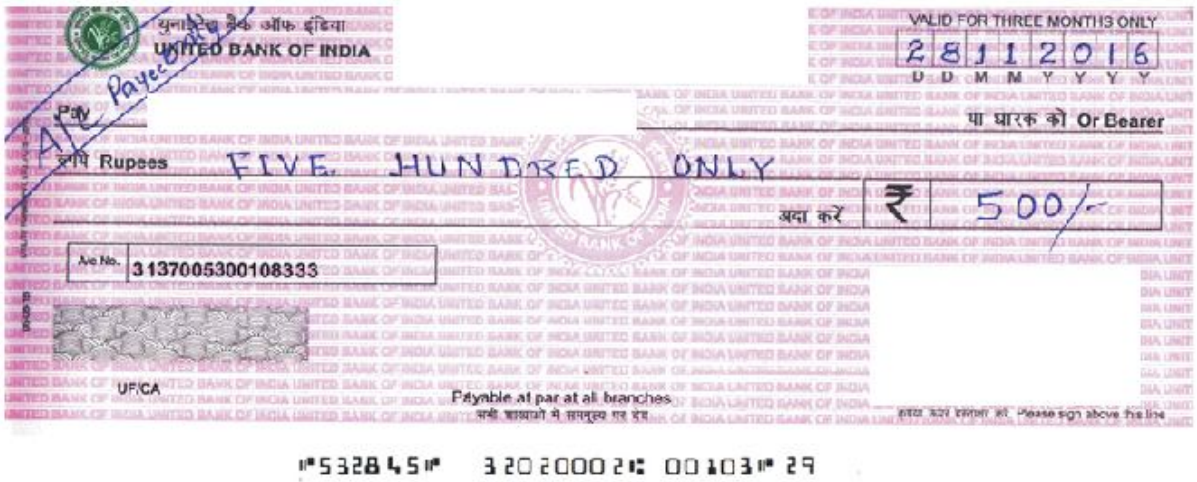

प्रचलन में गैर रेखांकित चैक भी लिखे जाते हैं। इनसे भुगतान प्राप्तकर्त्ता का कोई भी प्रतिनिधि बैंक में जाकर भुगतान प्राप्त कर सकता है। यह चैक लिखना जोखिमपूर्ण होता है।

इस तरह हम देखते हैं कि माँग जमा में मुद्रा के अनिवार्य लक्षण मिलते हैं। माँग जमा के बदले चैक लिखने की सुविधा से बिना नकद का उपयोग किये सीधा भुगतान करना सम्भव हो जाता है । एक बड़ा प्रश्न यह उठता हैं कि बैंक जनता से जो धन जमा खातों में स्वीकार करते हैं, उसका क्या करते हैं ? बैंक जमा रकम का एक छोटा–सा हिस्सा अपने पास नकद रूप में रखते हैं। इस हिस्से का प्रावधान एक दिन में जमाकर्ताओं द्वारा धन निकालने की सम्भावना के आधार पर किया जाता है। चूँकि किसी एक विशेष दिन में केवल कुछ जमाकर्ता ही नकद निकालने के लिए आते हैं इसलिए बैंक का काम इतने नकद से हो जाता है। बैंक जमा राशि के एक बड़े भाग को ऋण देने के लिए उपयोग में लेते हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि बैंक वह संस्थान है, जो जनता से माँगे जाने पर पुनर्भुगतान योग्य या चैक द्वारा निकलवाने योग्य जमाएं स्वीकार करता है तथा ऋण प्रदान करने का कार्य भी करता है। चैक द्वारा निकलवाने योग्य जमाओं को स्वीकार करना बैंक का एक पृथक तथा विशेष कार्य है। एक वाणिज्यिक बैंक वह वित्तीय संस्थान है जो जमाएं स्वीकार करना, व्यावसायिक ऋण प्रदान करना आदि सेवायें प्रदान करता है।

17.5.1 वाणिज्यिक बैंकों की भूमिका–

वर्तमान में अर्थव्यवस्था के विकास एवं सुदृढ़ता में वाणिज्यिक बैंकों का महत्त्व अकथनीय है। आर्थिक विकास में वाणिज्यिक बैंकों के महत्त्व को निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता है–

(1) आर्थिक विकास हेतु ऊंची बचत दर आवश्यक है। वाणिज्यिक बैंक जनता की बचतों को सुरक्षित रखकर उन्हें ब्याज भी प्रदान (2) जनता से जो बचतें जमा होती हैं, उन्हें गतिमान करके बैंक अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादकों तथा निवेशकों तक पहुँचाते हैं। यदि बैंक नहीं होते तो बचतें सदैव बचतकर्त्ता के पास ही पड़ी रहतीं तथा कभी भी उत्पादन हेतु उपयोग में नहीं आतीं।

(3) बैंक संसाधनों का अनुकूलतम आवंटन करते हैं। प्राप्त बचतों को बैंक उन क्षेत्रों को उधार देते हैं, जहाँ लाभ की दर अर्थात प्रतिफल की दर अधिकतम हो। साथ ही बैंक उन क्षेत्रों में भी संसाधन आवंटन करते हैं जो सामाजिक कल्याण की दृष्टि से वांछनीय हो ।

17.5.2 वाणिज्यिक बैंक के कार्य

(क) जमायें स्वीकार करना

बैंक द्वारा प्रदत्त सेवाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और प्रथम कार्य जमायें स्वीकार करना है। बैंक व्यक्तियों, फर्मों एवं अन्य संस्थाओं से जमायें प्राप्त करते हैं। व्यापक रुप से ये जमायें तीन प्रकार की होती है।

(अ) चालू खाते की जमायें,

(ब) बचत खाते की जमायें तथा

(स) स्थायी जमायें।

व्यावसायियों द्वारा चालू खातें में धन जमा करवाया जाता है। वे इसमें बार–बार लेनदेन कर सकते है। बैंक इन चालू जमाओं पर बहुत कम या शून्य ब्याज देते हैं। सामान्य जनता द्वारा अपनी धन राशि बचत खाते में बचत जमा के रूप में रखी जाती है । बचत खाते की जमाओं में से रुपये निकलवाने में तथा बचत खाते में किये जाने वाले लेन–देन पर कुछ प्रतिबंध होते हैं। इन जमाओं पर बैंक उचित ब्याज भी प्रदान करता है। चालू तथा बचत खाते की जमाओं

को संयुक्त रूप से माँग जमायें कहा जाता है। बैंक सर्वाधिक ब्याज स्थायी जमाओं पर प्रदान करते हैं। ये लम्बी अवधि हेतु होती है, अतः इन्हें अवधि या समय जमायें भी कहा जाता है।

(ख) ऋण प्रदान करना–

वाणिज्यिक बैंक अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों जैसे कृषि, उद्योग, व्यापार आदि को ऋण प्रदान करते हैं। यह ऋण नकद साख, अधिविकर्ष आदि अनेक रूपों में प्रदान किया जाता है।

अधिविकर्ष – खाता धारक को खाते में जमा राशि से अधिक राशि निकालने की छूट देकर ऋण प्रदान करना।

बैंक द्वारा विभिन्न व्यक्तियों एवं संस्थाओं को विभिन्न उद्धेश्यों से दिये गये ऋणों पर ब्याज की दर भी अलग–अलग होती है। बैंक जमा पर जो ब्याज देते हैं, उससे अधिक ब्याज दिये गये ऋणों पर लेते हैं। कर्जदारों से लिए गये ब्याज और जमाकर्ताओं को दिये गये ब्याज के बीच का अन्तर बैंकों की आय का प्रमुख स्रोत है।

(ग) अन्य कार्य –

जमायें स्वीकार करने तथा ऋण प्रदान करने के अतिरिक्त बैंक अपने ग्राहकों को कई अन्य प्रकार की सेवायें भी प्रदान करते हैं । बैंक बिलों तथा चेकों का संग्रहण करते हैं। बीमा की किश्त आदि का नियमित भुगतान करते हैं। लॉकर की सुविधा प्रदान करके मूल्यवान वस्तुओं को सुरक्षित रखते हैं। बैंक अनेक सांख्यिकीय सूचनाएं एकत्रित करके उन्हें विभिन्न ऐजेन्सियों को उपलब्ध करवाते हैं। वे धन के हस्तांतरण की सुविधा प्रदान करते हैं। सार रूप में यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास तथा वित्तीय समावेशन में बैंक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

बैंक संस्थागत स्रोत जमाओं पर उचित ब्याज प्रदान करती हैं तथा इनके द्वारा प्रदत्त साख पर ब्याज की दर गैर संस्थागत स्रोतों द्वारा ली जाने वाली ब्याज की दर की तुलना में बहुत कम होती हैं। संस्थागत स्रोत अपने सभी लेन देन का लिखित रिकॉर्ड रखते हैं। इन संस्थाओं के कार्य दिवस तथा कार्य घण्टे निश्चित होते हैं। अतः यह सभी दिनों में सभी समय वित्तीय लेन–देन के लिए उपलब्ध नहीं होते हैं। यद्यपि इनके द्वारा साख प्रदान करने की प्रक्रिया थोड़ी जटिल तथा धीमी होती है, लेकिन ये कभी भी शोषणकारी गतिविधियों में संलग्न नहीं होते हैं। बैंक तथा सहकारी समितियां संस्थागत वित्तीय स्रोत हैं। गैर संस्थागत वित्तीय स्रोत वे वित्तीय संस्थाएं होती हैं जो वित्त के लेन–देन के सम्बन्ध में सरकार तथा भारतीय रिजर्व बैंक के पास पंजीकृत नहीं होती तथा इनके द्वारा जारी दिशा निर्देशों का पालन नहीं करती हैं। ये संस्थाएं मौद्रिक प्राधिकरण के नियमन तथा नियंत्रण से बाहर होती हैं। ऐसा कोई नियामक संगठन या केन्द्र नहीं होता जो इन गैर संस्थागत वित्तीय स्रोतों की गतिविधियों को निर्देशित करता हो।

सामान्यतः गैर संस्थागत स्रोतों द्वारा ऋणियों से ली जाने वाली ब्याज की दर बहुत ऊँची होती हैं। देशी बैंकर, साहूकार, भू–स्वामी, रिश्तेदार आदि को सामान्यतया गैर संस्थागत वित्तीय स्रोतों में शामिल किया जाता हैं। ये संस्थाएं बहुत लोचशील होती हैं। इनकी गतिविधियाँ समय बाधित नहीं होती । इनके द्वारा साख प्रदान करने की प्रक्रिया बहुत सरल तथा सीधी होती है। इनके द्वारा बहुत कम कागजी कार्यवाही की जाती है। इन संस्थाओं द्वारा अपने लेन–देन का बहुत कम रिकॉर्ड रखा जाता हैं इन पर लेनदेन के रिकॉर्ड में हेरा–फेरी के गम्भीर आरोप भी लगते रहते हैं।

गैर संस्थागत वित्तीय स्रोत अधिकाशंतः स्थानीय होते हैं और यह क्षेत्र की संस्कृति, प्रथाओं, रीति–रिवाजों से सुपरिचित होते हैं। अतः ये साख प्रदान करने एवं दिये गए उधार की वसूली में बहुत लोचपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। ये संस्थान ऋणी की क्रियाओं, आर्थिक स्थिति एवं आर्थिक व्यवहार, भुगतान करने की क्षमता आदि से सुपरिचित होते हैं। अतः इनके द्वारा प्रदत्त साख की अधिकांशतः वसूली हो जाती है। साथ ही अपनी मुद्रा को वसूल करने के लिए ये अनेक बार अनुचित साधनों का भी उपयोग भी करते हैं।

17.6 देशी बैंकर

इनके द्वारा भी भारत में बैंकिंग व्यवसाय सम्पन्न किया जाता रहा है। यह निजी फर्म या व्यक्ति होते हैं जो बैंक की तरह कार्य करते हैं। भारत में आधुनिक वाणिज्यिक बैंकों के विकास से पूर्व बैंकिंग का कार्य पूर्णतः इन्हीं के द्वारा सम्पन्न किया जाता था । ये भारत में गैर संस्थागत साख का महत्त्वपूर्ण स्रोत रहे हैं। देशी बैंकर द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले प्रमुख कार्य –

(1) जनता से जमायें स्वीकार करना।

(2) अपने ग्राहकों को विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियाँ गिरवी रखकर उन्हें ऋण प्रदान करना तथा ग्राहक की साख के आधार पर सम्पत्ति को गिरवी रखे बिना भी ऋण प्रदान करना।

(3) एक स्थान से दूसरे स्थान तक कोषों को स्थानान्तरित करना।

(4) बैंकिंग कार्य के साथ–साथ अपना व्यवसाय भी चलाना।

(5) छोटे व्यापारियों तथा छोटे उद्यमियों के साथ लेनदेन करना।

(6) ऋणी को वित्तीय स्थिति एवं व्यवसाय के संबंध में निजी जानकारी के आधार पर ऋण प्रदान करना।

(7) ग्राहकों के लिए बैंकर ही नहीं अपितु मित्र एवं सलाहकार भी बनना।

17.7 साहूकार

साख के गैर संस्थागत स्रोतों में साहूकार की भी

उल्लेखनीय भूमिका होती है। साहूकार शुद्ध रूप से स्वयं की पूंजी को उधार देते हैं। यह जनता से जमायें स्वीकार नहीं करते। यह सामान्यतः छोटे वैयक्तिक ऋण प्रदान करते हैं। इनके द्वारा ग्राहकों से ऊंची ब्याज दर ली जाती है। जिन लोगों की बैंकिंग क्रियाओं तक पहुँच नहीं होती वे सामान्यतः साहूकारों से ही ऋण प्राप्त करते हैं। आमतौर पर साहूकार भी सम्पति को गिरवी रखकर ग्राहकों को ऋण प्रदान करते हैं परन्तु ग्राहक की साख के आधार पर किसी सम्पति को गिरवी रखें बिना भी उधार दे देते हैं।

ऋणियों से ऊँची ब्याज दर वसूल करने के कारण इन्हें शोषक भी माना जाता है। आजकल वित्तीय समावेशन एवं बैंकिंग सेवाओं के विस्तार के फलस्वरूप देशी बैंकर तथा साहूकारों का महत्त्व लगातार घट रहा है। साहूकारों तथा देशी बैंकर के अलावा भूस्वामी, मित्र एवं रिश्तेदार भी गैर संस्थागत साख के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।

17.8 स्वयं सहायता समूह

निर्धन परिवार ऋण के लिए अब भी गैर संस्थागत स्रोतों पर निर्भर हैं। ऐसा क्यों है ? भारत के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी बैंक नहीं हैं। बैंक से कर्ज लेना भी गैर संस्थागत स्रोत से कर्ज लेने की तुलना में ज्यादा मुश्किल हैं। बैंक से कर्ज लेने के लिए ऋणाधार और विशेष कागजातों की जरूरत पड़ती है। ऋणाधार की अनुपब्लधता एक प्रमुख कारण है, जिससे गरीब बैंकों से ऋण नहीं ले पाते। दूसरी ओर, गैर संस्थागत ऋणदाता जैसे साहूकार, इन कर्जदारों को व्यक्तिगत स्तर पर जानते हैं और इस कारण अक्सर बिना ऋणाधार के भी ऋण देने के लिए तैयार हो जाते हैं। कर्जदार जरूरत पड़ने पर पुराना ऋण चुकाए बिना भी, नया कर्ज लेने के लिए साहूकार के पास जा सकते हैं, लेकिन साहूकार ब्याज की दर बहुत ऊँची रखते हैं, लेन–देन की लिखा पढ़ी भी पूरी नहीं करते और निर्धन कर्जदारों को तंग करते हैं। हाल के वर्षों में लोगों ने गरीबों को उधार देने के कुछ नये तरीके अपनाने की कोशिश की है। इन में से एक विचार ग्रामीण क्षेत्रों के गरीबों विशेषकर महिलाओं, को छोटे–छोटे स्वयं सहायता समूहों में संगठित करने और उनकी बचत पूँजी को एकत्रित करने पर आधारित है। एक स्वयं सहायता समूह में 15–20 सदस्य होते हैं, जो नियमित रूप से मिलते हैं और बचत करते हैं। प्रति व्यक्ति बचत 25 रुपये से लेकर 100 रुपये या इससे अधिक हो सकती है। यह परिवारों की बचत करने की उनकी क्षमता पर निर्भर करता है। सदस्य अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए छोटे कर्ज समूह से ही कर्ज ले सकते हैं। समूह इन कर्जों पर ब्याज लेता है, लेकिन यह साहूकार द्वारा लिए जाने वाले ब्याज से कम होता है। एक या दो वर्षों के बाद, अगर समूह नियमित रूप से बचत करता है, तो समूह बैंक से ऋण लेने योग्य हो जाता है। ऋण समूह के नाम पर दिया जाता है और इसका उद्देश्य सदस्यों के लिए स्वरोजगार के अवसरों का सर्जन करना है। उदाहरण के लिए सदस्यों को छोटे–छोटे कर्ज अपनी गिरवी रखी जमीन छुड़वाने के लिए, कार्यशील पूँजी की जरूरतें पूरी करने (बीज, खाद, बाँस और कपड़े खरीदने के लिए), घर बनाने, सिलाई की मशीन, हथकरघा, पशु इत्यादि खरीदने के लिए दिए जाते हैं।

बचत और ऋण गतिविधियों से सम्बन्धी ज्यादातर महत्त्वपूर्ण निर्णय समूह के सदस्य स्वयं लेते हैं। समूह दिए जाने वाले ऋण, उसका लक्ष्य, उसकी रकम, ब्याज दर, वापस लौटाने की अवधि आदि के बारे में निर्णय करता है। इस ऋण को लौटाने की जिम्मेदारी समूह की होती है। एक भी सदस्य अगर ऋण वापस नहीं लौटाता तो समूह के अन्य सदस्य इस मामले को गंभीरता से लेते हैं। इस प्रकार जब निर्धन महिलाएं अपने को स्वयं सहायता समूहों में संगठित कर लेती हैं तो बैंक इन्हें ऋण देने के लिए तैयार हो जाते हैं, यद्यपि उनके पास कोई ऋणाधार नहीं होता।

इस तरह, स्वयं सहायता समूह कर्जदारों को ऋणाधार की कमी की समस्या से उबारने में मदद करते हैं। उन्हें समयानुसार विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं के लिए एक उचित ब्याज दर पर ऋण मिल जाता है। इसके अतिरिक्त यह समूह ग्रामीण क्षेत्रों के गरीबों को संगठित करने में मदद करते हैं। इससे न केवल महिलाएँ आर्थिक रूप से स्वावलम्बी हो जाती हैं, बल्कि समूह की नियमित बैठकों के माध्यम से लोगों को एक आम मंच मिलता है, जहाँ वह विभिन्न के सामाजिक विषयों जैसे, स्वास्थ्य, पोषण और घरेलू हिंसा इत्यादि पर आपस में चर्चा कर पाते हैं।

17.9 चिटफण्ड

भारत में बचत प्रवृत्ति को बढ़ावा देने तथा ऋण उपलब्ध करवाने की दृष्टि से चिटफण्ड कम्पनियों की विशिष्ट भूमिका है। वह कम्पनी जो चिट योजना का प्रबन्ध, संचालन तथा निर्देशन करती है, चिटफण्ड कम्पनी कहलाती है। चिटफण्ड भारत में चलने वाली विशेष बचत एवं ऋण योजना है। यह पारस्परिक लाभ की एक योजना है। इसके अन्तर्गत योजना के सभी सदस्य एक अनुबन्ध का हिस्सा होते हैं जिसमें अपना निर्धारित अंश जमा करवाते हैं। इसमें कुल जमा राशि निविदा निकाल कर या नीलामी द्वारा योजना के किसी एक सदस्य को प्रदान कर दी जाती हैं। निविदा या नीलामी में सभी सदस्य भाग लेते हैं तथा जो सदस्य सबसे ज्यादा बट्टा कटवाकर राशि लेने को तैयार हो उसे पुरस्कृत क्रेता घोषित किया जाता है। यदि कोई भी सदस्य राशि लेने के लिए निविदा या नीलामी में भाग नहीं लेता है तो एक न्यूनतम राशि बट्टा काटकर लॉटरी से चिट निकालकर विजेता का नाम तय कर

लिया जाता है। प्रत्येक माह एक सदस्य को विजेता के रूप में पुरस्कार की राशि मिलती है। जो सदस्य योजना में एक बार विजेता हो जाता है उसे निविदा या नीलामी में पुनः शामिल नहीं किया जाता है अर्थात निविदा या नीलामी में योजना के गैर–पुरस्कृत सदस्य ही भाग ले सकते हैं। बट्टे की राशि ही लाभांश होती है जिसे सभी सदस्यों में समान रूप से बाँट दिया जाता है। लाभांश की राशि को घटाकर अगली किश्त की राशि निर्धारित कर दी जाती है। चिटफण्ड कम्पनी योजना के संचालन, प्रबन्धन एवं निर्देशन के लिए योजना के सदस्यों से अनुबंध में निर्धारित कमीशन प्राप्त करती है। योजना में विजेता को भी चिटफण्ड योजना की निर्धारित अवधि में प्रत्येक माह अपनी किश्त जमा करवानी होती है। चिटफण्ड योजनाएं संगठित वित्तीय संस्थाओं के अतिरिक्त मित्रों एवं रिश्तेदारों आदि असंगठित समूहों द्वारा भी चलाई जाती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. मुद्रा वह होती है, जो विनिमय के माध्यम के रूप में सामान्य स्वीकृत हो। भारत की मुद्रा 'रुपया' है।
2. मुद्रा मुख्य रूप से विनिमय के माध्यम, मूल्य के मापक, मूल्य के संग्रह तथा विलम्बित भुगतानों के आधार का कार्य करती है।
3. भारत का केन्द्रीय बैंक भारतीय रिजर्व बैंक है।
4. मुद्रा के आविष्कार से पहले वस्तु–विनिमय प्रणाली चलन में थी। इस प्रणाली में वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं और सेवाओं के बदले में किया जाता है।
5. आय का वह भाग जिसे उपभोग नहीं किया गया हो, बचत कहलाता है।
6. साख शब्द का तात्पर्य एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को ऋण या उधार प्रदान करने से है।
7. वित्तीय मध्यस्थ वे व्यक्ति, संस्थान तथा फर्म होते हैं जो वित्तीय बाजार में जमाकर्ता तथा उधार लेने वाले के बीच मध्यस्थ का कार्य करते हैं।
8. संस्थागत वित्तीय स्रोत भारत सरकार तथा भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा नियमित, नियंत्रित तथा निर्देशित होते हैं।
9. गैर संस्थागत वित्तीय स्रोत भारत सरकार तथा भारतीय रिजर्व बैंक के नियंत्रण तथा नियमन से बाहर होती है।
10. सूक्ष्म ऋण प्रदान करने की दृष्टि से स्वयं सहायता समूह एक नवीन प्रवृत्ति है।
11. वित्तीय साक्षरता प्रदान करने हेतु भारतीय रिजर्व बैंक अनेक तरीकों से वित्तीय सूचनाओं तथा ज्ञान का प्रसार कर रही है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. मुद्रा किसे कहते हैं?
2. विनिमय का अर्थ बताइये।
3. चैक से क्या आशय है?
4. भारतीय मुद्रा का क्या नाम है?
5. भारत का केन्द्रीय बैंक कौनसा है?
6. बचत से आप क्या समझते हैं?
7. भारतीय मुद्रा का प्रतीक चिह्न क्या है?
8. भारत सरकार द्वारा 2016 ई. में कौन–कौन से नोटों का विमुद्रीकरण किया गया है?
9. वित्तीय मध्यस्थ किसे कहते हैं?
10. ऋण की आवश्यकता किन कार्यों के लिए हो सकती है?
11. संस्थागत वित्तीय स्रोतों का नियंत्रण किसके द्वारा किया जाता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. वस्तु विनिमय प्रणाली किसे कहते हैं?
2. वस्तु विनिमय प्रणाली में क्या कठिनाईयाँ थी?
3. मूल्य के मापक के रूप में मुद्रा के कार्य को समझाइये।
4. साख किसे कहते हैं?
5. धातु मुद्रा की क्या सीमाएं होती हैं?
6. वित्तीय संस्था किसे कहते हैं? उदाहरण सहित बताइये।
7. संस्थागत वित्तीय स्रोत किसे कहते हैं? उदाहरण सहित बताइये।
8. गैर संस्थागत वित्तीय स्रोतों के गुण तथा दोष बताइये।
9. देशी बैंकर किसे कहते हैं? इनकी तीन प्रमुख विशेषताएं बताइये।
10. साख के स्रोत के रूप में साहूकार को समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. मुद्रा के विकास के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए।
2. मुद्रा के प्रमुख कार्यों की विस्तृत विवेचना कीजिए।
3. वाणिज्यिक बैंको के कार्यों का विस्तार से उल्लेख कीजिए।
4. अर्थव्यवस्था में मुद्रा की क्या भूमिका है? स्पष्ट कीजिए।
5. संस्थागत तथा गैर संस्थागत वित्तीय स्रोत में अन्तर बताइये।
6. स्वयं सहायता समूह क्या होते हैं? यह किस प्रकार ऋण प्रदान करने के परम्परागत तरीकों से भिन्न हैं?
7. देशी बैंकर व्यवस्था पर एक लेख लिखिए।

अध्याय–18

उपभोक्ता एवं विधिक जागरूकता तथा सूचना का अधिकार

मानव विकास के साथ–साथ मानवीय आवश्यकताऐं बढ़ने लगीं। आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव ने वस्तुओं का आदान प्रदान शुरू किया, धीरे–धीरे वस्तु विनिमय होने लगा, इसके बाद मुद्रा के रूप में कीमती धातुओं जैसे सोना, चांदी की बनी मुद्राओं का चलन शुरू हुआ। भारतीय इतिहास में वर्णन मिलता है, कि गायों को भी मुद्रा के रूप में प्रयोग किया जाता था। जब व्यक्ति किसी वस्तु या सेवा का मूल्य देकर उसे प्राप्त करके उपभोग करता अर्थात लाभ लेता है, तो वह उपभोक्ता कहलाता है। उप+भोक्ता अर्थात प्राप्त करके उपभोग करने वाला व्यक्ति। उपभोक्ता अधिनियम 1986 के अनुसार उपभोक्ता वह व्यक्ति है :

(i) किसी वस्तु या सेवा के प्रतिफल (मूल्य) का भुगतान कर दिया हो, अथवा भुगतान करने का वचन दिया हो।

(ii) प्रतिफल का आंशिक भुगतान कर दिया हो, अथवा आंशिक भुगतान कने का वचन दिया हो।

(iii) प्रतिफल का भुगतान विलम्बित भुगतान विधि के अनुसार करने का वचन दिया हो।

क्रय की गई वस्तु या सेवा से लाभ या सुविधा प्राप्त करने वाला अन्तिम व्यक्ति उपभोक्ता होता है। उपभोक्ता अधिनियम में उपभोक्ता दो वर्गों में बांटकर लाभान्वित किया गया है। (अ) माल का उपभोक्ता (ब) सेवा का उपभोक्ता

व्यक्ति (Person):–

अधिनियम में व्यक्ति शब्द में निम्नलिखित शामिल है :–

(i) पंजीकृत या अपंजीकृत फर्म

(ii) संयुक्त हिन्दू परिवार

(iii) सहकारी संस्था

(iv) व्यक्तियों का कोई संघ चाहे समितियों के पंजीयन अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत हों अथवा नहीं।

उपभोक्ता शोषण के कारण :–

व्यक्ति, जब किसी वस्तु या सेवा का प्रतिफल (मूल्य) भुगतान कर प्राप्त करता है या भाड़े पर लेता है, क्रेता के मूल्य के अनुसार वस्तु या सेवा से लाभ /सुविधा प्राप्त नहीं होती है, तब उस स्थिति को उपभोक्ता का शोषण कहा जाता है। उपभोक्ता शोषण के निम्नलिखित कारण हैं :–

1. वस्तु या सेवा की गुणवत्ता, मात्रा, शुद्धता तथा मानक पर ध्यान दिए बिना क्रय किया जाना।
2. वस्तु या सेवा के विभिन्न प्रकारों के उपलब्ध होने पर सही वस्तु या सेवा का चयन नहीं होना।
3. वस्तुओं से सम्बंधित लिखित व अलिखित पूर्ण जानकारी का अभाव होना।
4. वस्तुओं की पैकिंग पर लिखित प्रचार पर विश्वास कर लेना।
5. उपभोक्ताओं का अशिक्षित होना।
6. क्रय की गई वस्तु/सेवा के मूल्य के भुगतान की रसीद/केश/विल/क्रय संविदा आदि प्राप्त नहीं करना।
7. दूषित या हानिकारक वस्तु व सेवा के विरूद्ध उपभोक्ता द्वारा लिखित व उचित तरीके से शिकायत नहीं करना।
8. शिकायतों पर शीघ्र निर्णय नहीं होना।
9. उपभोक्ताओं का संगठित नहीं होना।
10. सरकार पर पूँजीपतियों/उद्योगपतियों का प्रभाव होना आदि।

उपभोक्ता शोषण के प्रकार :–

उपभोक्ता का शोषण कई प्रकार किया जाता रहा है। विशेष रूप से शोषण की स्थिति तब होती है जब वस्तुओं का उत्पादन अधिक पूँजीवादी, शक्तिशाली बड़ी कम्पनियाँ करने लगती हैं। शोषण को दो वर्गों में बांटा गया है। माल या वस्तु के रूप में शोषण व सेवा के रूप में शोषण, इनके प्रकार निम्नलिखित हैं :–

(अ) माल या वस्तु :–

1. तौल, मात्रा वजन तथा माप में कमी करना।
2. बताई गई या दर्शाई गई किस्म का नहीं होना।
3. अशुद्धता या मिलावट होना।
4. निर्धारित मूल्य से अधिक मूल्य वसूल करना।
5. वस्तु की अपेक्षित क्षमता व गुणवत्ता में कमी।
6. वस्तु का असुरक्षित होना।
7. वस्तु के दोषों को जानबूझकर छिपाना। जो उपभोग करने पर उजागर होते हैं।
8. वस्तुओं या माल का कृत्रिम अभाव पैदाकर, अधिक मूल्य अथवा घटिया माल ,खरीदने के लिए उपभोक्ता को मजबूर करना आदि।

(ब) सेवा :–

1. सेवा शर्तों के अनुसार समय पर गुणवत्ता युक्त संतोषजनक रूप से सेवा प्रदान नहीं करना।
2. सेवा का असुरक्षित व दोषयुक्त होना।
3. सुविधा / लाभ के स्थान पर हानि पहुँचाना।
4. शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक क्षति पहुँचाना आदि।

उपभोक्ता के अधिकार :–

उपभोक्ता संरक्षण का क्षेत्र माल विक्रय अधिनियम 1930 से शुरू माना जाता है, इसके बाद उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 पारित किया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य उपभोक्ताओं के हितों की श्रेष्ठतर संरक्षण व्यवस्था करना है। अधिनियम 1986 की धारा 6 में उपभोक्ताओं के संरक्षण एवं संवर्धन करने के लिए निम्नलिखित अधिकारों का प्रावधान किया गया है –

1. परिसंकट मय माल के विरूद्ध संरक्षण का अधिकार :–

उपभोक्ताओं को उस माल के विपणन के विरूद्ध संरक्षण दिए जाने का अधिकार होता है, जो माल या सेवा उनके जीवन व सम्पत्ति के लिए संकट पैदा करते हैं। उदाहरण – अपमिश्रित खाद्य पदार्थ जीवन के लिए खतरनाक हैं और कमजोर सीमेन्ट सम्पत्ति व जीवन के लिए खतरनाक है।

2. सूचित किए जाने या सूचना का अधिकार :–

उपभोक्ता जो माल या वस्तु क्रय करता है, उसके गुण, मात्रा, शुद्धता मानक और मूल्यों के बारे में उत्पादक / विक्रेता से सूचना लेने का अधिकार है।

3. विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ या माल विभिन्न प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर पाने का अधिकार :–

उपभोक्ताओं के लाभ के लिए सरकार और प्राधिकारियों द्वारा विभिन्न प्रकार के मालों या वस्तुओं की आपूर्ति विभिन्न प्रकार के मूल्यों पर बाजार में प्रस्तुत कराई जाये। ताकि उपभोक्ता अपनी पसन्द का माल क्रय कर सके और में एकाधिकार समाप्त हो सके।

4. उचित फोरमों के समक्ष ध्यान पाने का अधिकार :–

राष्ट्रीय परिषद् को उपभोक्ताओं को यह आश्वासन दिए जाने का उत्तरदायित्व दिया गया है, कि उन्हें उचित फोरमों के समक्ष सुनवाई का अधिकार होगा और ऐसे फोरमों से उपभोक्ता को ध्यान एवं विचार मिलेगा। उचित परितोष फोरमों द्वारा उसकी समस्या पर सम्यक विचार हो।

5. अनैतिक शोषण के विरूद्ध परितोष प्राप्त करने का अधिकार :–

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 36 में उपभोक्ताओं को अवरोध या अनुचित व्यापारिक व्यवहारों या अनैतिक शोषण के विरूद्ध परितोष प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है।

6. उपभोक्ता शिक्षा पाने का अधिकार :–

राष्ट्रीय उपभोक्ता परिषद को यह दायित्व दिया गया है, कि उपभोक्ताओं को संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत उनके उपचारों के प्रति उचित शिक्षा उपलब्ध कराए। एक बार लोगों को यदि उनके अधिकारों का बोध करा दिया जाए तो वे विनिर्माता और व्यापारियों के द्वारा शोषण के विरूद्ध अपने आपको शक्तिशाली महसूस कर सकते हैं।

उपभोक्ता के कर्त्तव्य –

उपभोक्ता को शोषण या हानि से बचने के लिए वस्तु (माल) या सेवा क्रय करते समय / भाड़े पर लेते समय अपने निम्नलिखित कर्तव्यों का पालन करना होगा–

1. क्रय की गई वस्तु / सेवा के मूल्यों के भुगतान की रसीद / कैश / बिल / क्रय की गई वस्तु / सेवा के मूल्यों के भुगतान की रसीद / कैश / बिल / क्रय संविदा आदि का विवरण आवश्यक रूप से प्राप्त करें।
2. वस्तु से सम्बंधित लिखित या अलिखित पूर्ण जानकारी प्राप्त करें।
3. वस्तुओं से श्रेणीकरण तथा गुणवत्ता के चिन्हों जैसे ISI/AG/ISO/FPO/ECO आदि पर पूरा ध्यान दें।
4. वस्तु व सेवा में कमी / दोष पाये जाने पर विक्रेता को तुरन्त सूचित कर हानि की क्षतिपूर्ति की मांग करें।
5. अपनी शिकायत की पुष्टि में दस्तावेज व प्रमाण जुटाऐं।
6. विनिर्माता या विक्रेता यदि उपभोता की शिकायत पर ध्यान नहीं देता है तो अविलम्ब उपभोक्ता न्यायालय / राज्य सरकार, उपभोक्ता संगठन / मंच से सम्पर्क स्थापित करें।

उपभोक्ता विवाद निवारण के लिए किये गए उपाय :–

उपभोक्ता विवादों के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व माल विक्रय अधिनियम 1930 बनाया गया था। 24 दिसम्बर 1986 को भारतीय संसद ने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 पारित किया गया था। इसीलिए 24 दिसम्बर को भारत में उपभोक्ता दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस अधिनियम में तीन स्तरों पर उपभोक्ता विवाद निवारण की व्यवस्था की गई है।

(1) राष्ट्रीय स्तर पर
(2) राज्य स्तर पर
(3) जिला स्तर पर।

राजस्थान स्तर पर :–

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के आधार पर राजस्थान राज्य उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1987 पारित किया। इसके अनुसार दो स्तरीय व्यवस्था की गई है।

(1) राज्य स्तर

(2) जिला स्तर पर

राज्य आयोग :–

राजस्थान उपभोक्ता संरक्षण नियमावली 1987 के नियम 7 के अनुसार :–

1. राज्य आयोग का कार्यालय राज्य की राजधानी में स्थित होगा।
2. राज्य आयोग के कार्य दिवस तथा कार्यालय समय वहीं होंगे जो राज्य सरकार के हैं।
3. राज्य आयोग की शासकीय मुद्रा तथा सम्प्रतीक ऐसा होगा, जैसा राज्य सरकार विनिर्दिष्ट करें।
4. राज्य आयोग बैठक, जब कभी आवश्यक हो अध्यक्ष द्वारा बुलाई जायेगी।

जिला फोरम :–

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1987 के नियम 4 के अनुसार :–

1. जिला फोरम का कार्यालय जिला मुख्यालय पर स्थापित किया जायेगा।
2. जिला फोरम के कार्य दिवस तथा कार्यालय समय वहीं होंगे जो राज्य सरकार के हैं।
3. जिला फोरम की शासकीय मुद्रा तथा सम्प्रतीक ऐसा होगा जैसा राज्य सरकार विनिर्दिष्ट करें।
4. जिला फोरम की बैठक जब कभी आवश्यक हो, अध्यक्ष द्वारा बुलाई जायेगी।

उपभोक्ता विवाद निवारण के प्रावधान :–

1. वस्तु या सेवा का मूल्य तथा हर्जाने के लिए चाही गई राशि 20 (बीस) लाख रूपये से अधिक नहीं है तो प्रत्येक जिले पर स्थापित जिला फोरम/मंच में उपभोक्ता अपना वाद/शिकायत दर्ज करा सकता है।
2. वस्तु या सेवा का मूल्य तथा हर्जाने के रूप में चाही गई राशि 20 (बीस) लाख से अधिक और एक करोड़ रूपये तक है। तो ऐसे विवादों का निस्तारण कराने के लिए उपभोक्ता द्वारा राज्य आयोग में अपना वाद/शिकायत दर्ज करा सकता है।
3. वस्तु या सेवा का मूल्य एक करोड़ रूपये से अधिक है तो उपभोक्ता द्वारा अपना वाद/शिकायत राष्ट्रीय उपभोक्ता संरक्षण आयोग में वाद/शिकायत दर्ज करा सकता है।

वाद के निर्णय के विरूद्ध अपील करने के क्षेत्र –

(1) जिला फोरम द्वारा 90 दिन की अवधि में निर्णय नहीं देने या दिए गए निर्णय से उपभोक्ता के संतुष्ट नहीं होने पर वह जिला फोरम के निर्णय के विरूद्ध राज्य उपभोक्ता संरक्षण आयोग में अपील कर सकता है। अपील करने की अवधि 30 दिवस रहेगी। (2) राज्य आयोग के निर्णय के विरूद्ध राष्ट्रीय आयोग में अपील की जा सकती है। (3) राष्ट्रीय उपभोक्ता संरक्षण आयोग के निर्णय के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने का प्रावधान है।

विधिक जागरूकता

सर्वप्रथम फ्रान्स में गरीब, निर्धन तथा कंगाल लोगों की कानूनी सहायता के लिए कुछ कानून बनाए गए, तब सन् 1851 में विधिक सहायता आन्दोलन उजागर हुआ। ब्रिटेन में गरीब व जरूरत मन्दों को कानूनी सहायता के लिए कुछ नियम सन् 1944 में बनाए गए। न्याय के समान अवसर विषय पर भारत सरकार ने सन् 1960 में कुछ दिशा–निर्देश जारी किए। सन् 1980 में, राष्ट्रीय स्तर पर विधिक सेवा सहायता विषय पर नियम बनाने के लिए माननीय न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती के निरीक्षण में एक कमेटी बनाई गई। विधिक सेवा सहायता कार्यक्रम को समस्त भारत में एकरूपता से लागू करने के लिए भारत सरकार ने सन 1987 में विधिक सेवा अधिनियम 1987 पारित किया। यह कानून सम्पूर्ण देश में 5 नवम्बर 1995 से प्रभावी हुआ। इसीलिए 5 नवम्बर को राष्ट्रीय विधिक सेवा दिवस मनाया जाता है।

विधिक सेवा अधिनियम 1987 के अधीन नागरिकों को समानता का अवसर देते हुए, तथा न्यायिक व्यवस्था को उन्नत करने एवं आर्थिक विषमता को कम करने के लिए अनेकों योजनाएँ लागू की गई हैं। गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले लोग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति, आदिवासी, विकलांग, श्रमिक, वृद्धजन, महिलाओं, बालकों तथा अन्य कमजोर वर्गों के लोगों को लाभ देने के लिए केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों ने कई जन कल्याणकारी योजनाऐं बना रखी हैं। दूरदराज गांवों–ढाणियों में रहने के कारण तथा अशिक्षा व अज्ञान के कारण वे लोग इन जनकल्याणकारी योजनाओं का लाभ नहीं ले पाते हैं। साथ ही नियमों, कानूनों की अनविज्ञता के कारण आपराधिक कृत्य भी कर देते हैं।

विधिक सेवा प्राधिकरण के संस्थान :–

1. राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण
2. राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण
3. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण
4. तहसील विधिक सेवा समितियाँ

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 के तहत गठित सेवा संस्थानों द्वारा जनकल्याणकारी योजनाओं एवं संशोधित नियम कानूनों की जानकारी समाज के सभी नागरिकों तथा पहुँचाने का कार्य विधिक जागरूकता कहलाती है।

राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण :–

राजस्थान में, राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण की स्थापना अधिनियम 1987 के अधीन की गई है। जिसका मुख्यालय राजस्थान उच्च न्यायालय भवन जयपुर में स्थित है। माननीय मुख्य न्यायाधीश महोदय, राजस्थान उच्च न्यायालय इसके मुख्य संरक्षक एवं वरिष्ठ न्यायाधीश इसके कार्यकारी अध्यक्ष होते हैं। जिनके निर्देश में पूरे राज्य में विधिक सेवा कार्यक्रमों का संचालन होता है।

राजस्थान राज्य प्राधिकरण के कृत्य :–

1. राज्य प्राधिकरण का यह कृत्य होगा कि वह केन्द्रीय सरकार की नीति और निर्देशों को कार्यान्वित करें।
2. ऐसे व्यक्तियों को विधिक सेवा देना, जो इस अधिनियम के अधीन मानदण्डों की पूर्ति करते हैं।
3. लोक अदालतों का, जिनके अन्तर्गत न्यायालय के मामलों के लिए लोक अदालतें भी हैं, संचालन करना।
4. निवारक और अनुकलन विधिक सहायता कार्यक्रमों का जिम्मा लेना।
5. स्थाई लोक अदालतों का संचालन।
6. वैकल्पिक विवाद निराकरण व्यवस्था।
7. विधिक चेतना का प्रचार एवं प्रसार करना।
8. ऐसे कृत्यों का पालन करना जो केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा निर्देशित किये जावें।

राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा दो पैनल अधिवक्ता व दो पैरा लीगल वालिन्टियर्स की विधिक जागरूकता टीमें गठित की गई हैं।

विधिक जागरूकता करने के उपाय :–

1. न्यायिक अधिकाकारीगण व विधिक जागरूकता टीम द्वारा, विद्यालय, महाविद्यालय एवं सार्वजनिक स्थानों पर विधिक साक्षरता शिविरों का आयोजन किया जाता है।

2. 8 मोबाइल वेनों के माध्यम से गांव–गांव में सचल लोक अदालत एवं विधिक जागरूकता अभियान चलाया जाता है।

3. आकाशवाणी, दूरदर्शन व कम्यूनिटीरेडियो पर नियमित "कानून की बात" साप्ताहिक कार्यक्रम का प्रसारण किया जाता है। दूरदर्शन राजस्थान पर प्रत्येक शनिवार को सांय 7:00 बजे से 7:30 बजे तक एवं राजस्थान के सभी आकाशवाणी केन्द्रों पर प्रत्येक रविवार को सांय 5:45 बजे से 6:00 बजे तक "कानून की बात" का विधिक जागरूकता हेतु जनहित में प्रसारण किया जा रहा है।

4. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा पर्चे व लघु–पुस्तिकाऐं छपवाकर वितरित करवाई जाती हैं।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

(राजस्थान) राज्य स्तर पर –

श्रीमान सदस्य सचिव, राजस्थान,
राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, जयपुर
टेलीफोन नम्बर–0141–2227481
फैक्स नं.– 0141–2227602
हैल्पलाइन नम्बर– 0141–2385877

जिलास्तर पर – अध्यक्ष/सचिव, जिला विधिक प्राधिकरण

तहसील स्तर पर– अध्यक्ष–तहसील विधिक सेवा समिति

प्रमुख लामकारी नियम व योजनाएँ –

राजस्थान राज्य सरकार द्वारा निम्नलिखित योजनाऐं चलाई जा रही हैं।

1. दुर्घटना मृत्यु पर सहायता –

असंगठित क्षेत्र के पंजीकृत श्रमिक की दुर्घटना में मृत्यु होने पर 5 लाख रूपये की सहायता दी जाती है।

2. चिकित्सा अनुदान राशि योजना –

पंजीकृत श्रमिकों को इलाज कराने के लिए एक लाख रूपये की राशि सहायता दी जाती है।

3. निर्माण श्रमिकों के बच्चों को छात्रवृति –

पंजीकृत श्रमिकों के कक्षा 6 से 8 तक छात्र को 1000/– रु. व छात्रा को 1500/– रु. छात्रवृत्ति राशि, कक्षा 9 से 12 तक छात्र को 2000/– रु. छात्रा को 2400/– रु. छात्रवृत्ति, स्नातक स्तर पर छात्र को 4000/– रु. छात्रा को 5000/– रु. तथा स्नातकोत्तर स्तर पर छात्र को 6000/– रु. छात्रा को 8000/– रु. छात्रवृत्ति देने की योजना लागू की गई है।

4. प्रसूति सहायता योजना :–

महिला हितकारी योजना में दो प्रसव के लिए प्रति प्रसव 6000/– रु. प्रसूति सहायता दी जा रही है।

5. राजस्थान विश्वकर्मा गैर संगठित कामगार अंशदायी योजना–

पंजीकृत श्रमिकों के जीवन सुरक्षा के लिए अंशदायी पेन्शन लाभ दिया जाता है।

6. मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 –

पंजीकृत महिला श्रमिकों को बच्चे के जन्म से पूर्व 6 साप्ताह और जन्म के बाद 6 सप्ताह का मजदूरी सहित अवकाश पाने का अधिकार है।

7. कर्मचारियों की सुरक्षा के लिए राज्य बीमा व कर्मचारी भविष्य निधि योजना चलाई जा रही है।

8. बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम 2006–

21 वर्ष से कम आयु का लड़का तथा 18 वर्ष से कम आयु की लड़की की शादी बाल विवाह कहलाता है यह दण्डनीय अपराध है नियमानुसार बाल विवाह करने पर माँ व बाप को दो साल तक की कड़ी सजा या एक लाख रुपये जुर्माना या दोनों सजाएँ हो सकती हैं।

9. नकल विरोधी कानून –

राजस्थान सार्वजनिक परीक्षा (अनुचित साधनों पर रोक) अधिनियम 1992 के अनुसार परीक्षाओं के दौरान नकल एवं अनुचित साधनों के प्रयोग करने पर तीन साल तक की सजा का प्रावधान किया गया है नकल करने वाले छात्र के विरूद्ध आपराधिक प्रकरण दर्ज किया जाता है और उसे स्कूल से निष्कासित कर दिया जाता है।

सूचना का अधिकार

भारत के संविधान ने हर नागरिक को बोलने की स्वतंत्रता दे रखी है। जनता टैक्स देती है, इसलिए जनता को यह जानने का अधिकार है कि उसके द्वारा चुकाई गई रकम सही कामों पर खर्च हुई या नहीं?कामों की गुणवत्ता कैसी है?सरकार की जनता के प्रति पूरी जबावदेही है या नहीं? किसी भी नागरिक द्वारा मांगने पर सरकारी अधिकारी/कर्मचारी द्वारा सूचना देनी होगी। सूचना/जानकारी लेना नागरिकों का अधिकार है, यही सूचना का अधिकार है।

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 :–

लोकसभा द्वारा यह कानून 15 जून 2005 को पारित हुआ था राष्ट्रपति की मंजूरी के बाद यह कानून पूरे देश में 13 अक्टूबर 2005 से लागू हो चुका है। सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 के तहत देश के नागरिकों को निम्नलिखित अधिकार दिए गए हैं :–

1. हर नागरिक को यह अधिकार है कि राज्य सरकार और केन्द्र सरकार के किसी भी विभाग अथवा कार्यालय से वह सूचना प्राप्त कर सकता है।
2. कोई भी नागरिक दस्तावेज या रिकार्ड देख सकता है और दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियाँ ले सकता है।
3. कामों को भी देख सकेगा।
4. काम में आने वाली सामग्री के नमूने ले सकेगा।
5. कम्प्यूटर, सी.डी. या फ्लोपी में भी सूचना ले सकेगा।
6. मजदूरी के मस्ट्रोल, लॉग बुक टेण्डर के दस्तावेज, कैश बुक विभाग की योजनाएँ आदि की जानकारी लेने का अधिकार है।

सूचना प्राप्त करने का तरीका :–

कोई भी नागरिक जो सूचना लेना चाहता है उसे निर्धारित प्रपत्र पर आवेदन पत्र देना होगा। आवेदन पत्र के साथ 10/– रु. नकद या पोस्टल ऑर्डर के रूप में जमा कराने होंगे।

1. अगर सूचना बड़े आकार के कागज की नकल की है तो अलग राशि देनी होगी।
2. सी.डी. या फ्लॉपी के लिए 50/– रु. जमा कराने होंगे।
3. फोटोकापी 2/– रु. प्रति पृष्ठ की दर से देने होंगे।
4. रिकार्ड या दस्तावेज देखने के लिए 10/– रु. जमा कराने के बाद एक घण्टा निःशुल्क रिकार्ड देख सकते हैं, उसके बाद हर 15 मिनट या उससे कम समय के लिए 5/– रु. देने होंगे।
5. आवेदन के 30 दिवस के अन्दर सूचना प्राप्त कर सकेगा
6. व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता के बारे में 48 घण्टे में सूचना प्राप्त कर सकेगा।
7. सहायक सूचना अधिकारी 35 दिन में सूचना मंगवाकर देगा।
8. समय अवधि के अन्दर सूचना न मिलने पर सूचना देने से इंकार माना जायेगा।

सूचना नहीं देने पर जुर्माना अथवा पैनल्टी सूचना :–

सूचना देने वाला अधिकारी बिना किसी सही कारण के आवेदन लेने से मना करे, जानबूझकर गलत या अधूरी या भ्रामक सूचना दे, तो 250/– रु. रोजाना कुल 25000/– रु. तक के जुर्माने का प्रावधान है।

सूचना आयोग लोक सूचना अधिकारी के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की सिफारिश भी कर सकता है।

कौन सी सूचना नहीं मिल सकती हैं :–

1. राज्य की सुरक्षा सम्बंधी सूचना।
2. सुरक्षा रणनीति, विज्ञान एवं आर्थिक मामलों की गोपनीय जानकारी।
3. विदेशों से प्राप्त गोपनीय सूचनाएँ।
4. जिससे न्यायालय, संसद या विधानसभा के अधिकार का हनन हो।
5. गुप्तचर ब्यूरो, सीमा सुरक्षा बल, अपराध या जिससे सुरक्षा को खतरा हो।

सूचना अधिकारी :–

1. ग्राम पंचायत में – सचिव या ग्राम सेवक
2. पंचायत समिति में – विकास अधिकारी
3. जिला परिषद में – मुख्य कार्यकारी अधिकारी
4. नगर पालिका में – अधिशाषी अधिकारी
5. राज्य सरकार द्वारा सहायता प्राप्त संस्था में– मुख्य कार्यकारी अधिकारी

6. विश्वविद्यालय में – कुल सचिव
7. सरकारी विभाग में विभागाध्यक्ष के अधीन वरिष्ठतम अधिकारी
8. शासन सचिवालय में – सचिव प्रशासन सुधार विभाग

अपील का समय :–

लोक सूचना अधिकारी से सूचना मिलने के 30 दिन के अन्दर उच्च अधिकारी के समक्ष प्रथम अपील की जा सकती है।

अपील अधिकारी :–

ग्राम सेवक की अपील सरपंच को, विकास अधिकारी की अपील प्रधान को, अतिरिक्त कलेक्टर की अपील–जिला कलेक्टर को, प्रथम अपील की जा सकती है। 30 दिन में सुनवाई नहीं होने पर दूसरी अपील राज्य सूचना आयोग को करनी होगी।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. किसी वस्तु या सेवा का प्रतिफल चुका कर उसे प्राप्त कर अन्तिम उपयोग कर्ता उपभोक्ता कहा जाता है।
2. वस्तु या सेवा क्रय करते समय या भाड़े पर लेते समय उसकी गुणवत्ता, मात्रा शुद्धता उपयोगिता तथा मानक पर ध्यान देना चाहिए।
3. मात्रा, माप, शुद्धता में कमी होने पर तथा निर्धारित मूल्य से अधिक मूल्य मांगने वाले की तुरन्त शिकायत करें।
4. उपभोक्ता अपने अधिकारों व कर्त्तव्यों के प्रति सजग रहे।
5. सरकार द्वारा संचालित कल्याणकारी व लाभकारी योजनाओं की जानकारी रखना विधिक जागरूकता है।
6. सूचना का अधिकार 2005 देश के प्रत्येक नागरिक को अधिकार देता है कि वह केन्द्र या राज्य सरकार के किसी भी विभाग या कार्यालय से सूचना प्राप्त कर सकता है या रिकार्ड देख सकता है।
7. 30 दिवस के अन्दर सूचना नहीं मिलने या सही सूचना नहीं होने, सूचना प्राप्तकर्ता द्वारा उच्च अधिकारियों से शिकायत की जा सकती है।
8. नागरिक को सूचना के विरूद्ध अपील करने का अधिकार है।

अभ्यास प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. उपभोक्ता वस्तु या सेवा किस प्रकार प्राप्त करता है?
2. वस्तुओं के आदान प्रदान की आवश्यकता क्यों हुई?
3. व्यक्ति किसे कहा गया है?
4. विधिक जागरूकता में कौनसी योजनाओं की जानकारी की जाती है?
5. विधिक सेवा प्राधिकरण के कितने स्तर हैं?
6. 'कानून की बात' किस दिन और कितने बजे प्रसारित होता है?
7. सूचना का अधिकार कानून देश में लागू कब हुआ था?
8. 30 दिवस के अन्दर सूचना नहीं मिलने पर क्या करना चाहिए?

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. उपभोक्ता अधिनियम 1986 के अनुसार उपभोक्ता कौन है?
2. उपभोक्ता शोषण किस प्रकार रोका जा सकता है?
3. विधिक जागरूकता किसे कहा जाता है?
4. सरकार ने विधिक जागरूकता के कौनसे उपाय किए हैं?
5. नकल रोकने का कानून क्या है?
6. सूचना का अधिकार 2005 द्वारा नागरिकों को कौन से अधिकार दिए गए हैं?
7. सूचना किस प्रकार प्राप्त की जाती है?
8. सूचना अधिकारियों का प्रावधान किस प्रकार किया गया है?

अध्याय 19

सड़क सुरक्षा–शिक्षा

विषय भूगोल

पाठ परिवहन एवं संचार व्यवस्था

उद्देश्य : यात्रा के साधनों को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण करना

विषय वस्तु :

"बस रैपिड ट्रांजिट कॉरिडार" (B.R.T.) एक ज्वलंत विवाद का विषय बन चुका है।

इस व्यवस्था से सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करने वालों की यात्रा के समय को कम करने के उद्देश्य की पूर्ति होती है।

निम्नलिखित सुझावों की क्रियान्विति से सार्वजनिक परिवहन के अधिकाधिक उपयोग को प्रोत्साहित किया जा सकता है–

(अ) सार्वजनिक परिवहन का अधिकाधिक उपयोग को विचित्र उत्प्रेरक योजनाओं के माध्यम से प्रोत्साहित एवं अभिप्रेरित किया जाए।

B.R.T. गलियारा

सार्वजनिक परिवहन सेवा

(ब) छोटी एवं मध्यम श्रेणी की कारों के अलावा, प्रत्येक वाहन के लिये "बस लेन ही उपयोग करना अनिवार्य हो, ताकि कार लेन में होने वाली भीड़ की समस्या को कम किया जा सके। क्योंकि बस लेन द्वारा काफी स्थान घेर लिया जाता है जबकि दिन में अधिकतर समय यह खाली रहती है।

(स) दुपहिया और तीन पहिया वाहनों द्वारा दुपहिया लेन का ही सख्ती से उपयोग किया जाए।

(द) पैदल चलने वालों द्वारा सड़क पार करना सुविधा जनक बनाने के लिये थोड़ी–थोड़ी दूरी पर 'फुट ओवरब्रिज' का निर्माण कराया जाए।

(य) सड़क, दुर्घटनाओं को कम करने के लिए सड़कों पर परिवहन की सर्वाधिक व्यस्तता के समय प्रत्येक दिशा के आबादी का घनत्व का भलीभाँति, अध्ययन करके, प्रत्येक यातायात सिगनल पर समय निर्धारित किया जाये।

पदयात्री पुलिया

गतिविधि :

सार्वजनिक यातायात के उपयोग के लिए प्रोत्साहित करने हेतु नारा (स्लोगन) लेखन और पोस्टर बनाने की प्रतियोगिता का आयोजन करें।

अभ्यास :

देहली में B.R.T. कॉरीडोर के सही क्षेत्र का पता लगाएँ और भारत के अन्य कस्बों या शहरों में इसके और अधिक सीमा तक विस्तार के बारे में सामान्य परिचर्चा का संचालन करें।

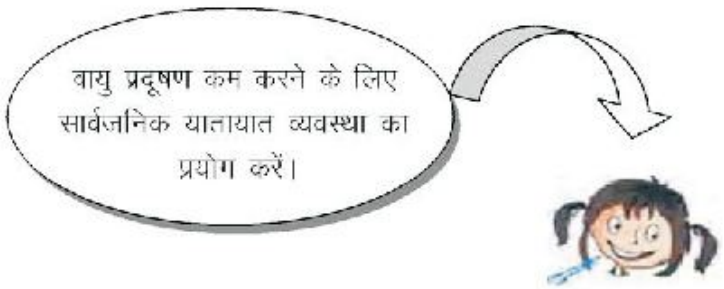

विषय अर्थशास्त्र

पाठ विकास

उद्देश्य : सड़क पर वयोवृद्ध, विशेष योग्यजन और युवाओं की खास आवश्यकताओं को समझना।

विषय–वस्तु : (अ) करबों एवं शहरों में बुनयादी संरचना का विकास समाज के प्रत्येक वर्ग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उचित व्यावहारिक योजना के बाद किया जाना चाहिए। उदाहरण स्वरूप, सभी सड़कों, पगडंडियों, रेलवे स्टेशन और सार्वजनिक स्थानों पर विशेष योग्यजन की आवश्यकतानुसार 'रैम्प सुविधा उनकी सुविधा और सुरक्षा को निश्चित करते हुए बनाने चाहिए । (ब) यात्रियों के चलने फिरने को सरल एवं सुसाध्य बनाने एवं उनके सामान की सुविधा पूर्वक लाने ले जाने के लिए प्रत्येक अंतरराज्यीय बस टर्मिनल, हवाई अड्डों पर पहुंचने की सड़कों, रेलवे स्टेशन आदि पर "रैम्प" व चलती सीढ़ी की सुविधा होनी चाहिए ताकि ऐसे स्थानों पर 'फुट ब्रिज' के ढह जाने अथवा भगदड़ मचने की घटनाओं आदि को कम किया जा सके।

शारीरिक रूप से असहाय व्यक्ति रैम्प के सहारे बस में चढ़ते हुए

विकास व्यक्ति को ज्यादा आर्थिक संसाधन के साथ सशक्त करता है जो व्यक्ति को सामाजिक गतिशीलता एवं आर्थिक सम्पन्नता की ओर ले जाती है। इसके फलस्वरूप शहर की सड़कों पर कारों की संख्या, कार चालकों का अविवेक पूर्ण व्यवहार, अत्यधिक नाबालिगों द्वारा कार चलाने से घातक दुर्घटनाएँ, नशा करके गाड़ी चलाने आदि की संख्या बढ़ी है। ऐसे खतरों के मामले केवल सख्त सजा से ही समाप्त किये जा सकते हैं, जो ऐसे वर्ग के लिये एक उदाहण बन सकें।

अभ्यास :

अपने आप को ऐसी परिस्थिति में रखकर सोचें कि आप को अपने परिवार के किसी वयोवृद्ध सदस्य अथवा विशेष योग्यजन के साथ साधारण यातायात व्यवस्था से आम स्थान जैसे – बैंक, पोस्ट ऑफिस, अस्पताल, हवाई अड्डा, रेलवे स्टेशन आदि पर जाना पड़ सकता है। आप कौन–कौन सी अड़चनों (बाधाओं) का सामना करेंगे और अकस्मात् सामने आने वाली समस्याओं का कैसे समाधान निकालेंगे ?

गतिविधि :

"वयोवृद्ध या विशेष योग्यजन का सडक पर अधिकार" विषय पर एक सार्वजनिक सूचना का अभियान आयोजित करें।

"टक्कर मारकर भागने का प्रकरण :
सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पेरेरा की सजा का समर्थन

CNN-/BN/12 January 11.25 AM.

नई दिल्ली – बृहस्पतिवार के दिन सर्वोच्च न्यायालय ने एलीरटेअर एन्थनी पेरेरा के टक्कर मारकर भागने के प्रकरण में उसे दोषी ठहराये जाते हुए फैसले को यथावत् रखा जिसमें मुंबई में छह साल पहले सात व्यक्ति मारे गये थे। सर्वोच्च न्यायालय ने परेरा की जमानत की अनुमति भी रद्द कर दी और बाम्बे उच्च न्यायालय द्वारा दी गई तीन वर्ष की जेल की सजा भुगतने का आदेश दिया।

R.M. Lodha की अध्यक्षता में सर्वोच्च न्यायालय की बैंच ने उसकी जमानत रद्द कर दी और जेल में शेष अवधि गुजारने के आदेश दिए। न्यायालय ने परेरा द्वारा भेजी गई विशेष अवकाश याचिका, जिसमें बाम्बे उच्च न्यायालय द्वारा उसे दोषी ठहराये जाने के फैसले को चुनौती दी थी, पर निर्णय दिया। धारा 304 के अन्तर्गत तीन वर्ष की सख्त कैद, धारा 333 के अन्तर्गत एक वर्ष और छः माह की कैद, भयंकर चोट पहुंचाने के लिए परेरा को सजा दी गई। फैसला देते समय न्यायालय ने व्यक्त किया कि सभी सजाएँ साथ–साथ चलेंगी।

वर्ष 2006 में 21 वर्षीय परेरा ने बान्द्रा में सड़क की पगडंडी पर सोए हुए पन्द्रह लोगों पर अपनी 'टोयोटो करोला' कार चढ़ाकर कुचल दिया था। वह उस समय नशे में पाया गया था। सात श्रमिक मारे गए थे व अन्य कई घायल हो गए थे। 'सेशन कोर्ट ने बिना दण्ड दिए परेरा को उदारता से छोड दिया, बाद में बाम्बे उच्च न्यायालय ने 'सेशन कोर्ट' के फैसले के सार्वजनिक विरोध से इस मुकदमे को फिर से खोला।

राज्य सरकार ने भी सख्त सजा की मांग करते हुए पुनः परीक्षण प्रार्थना पत्र दिया।

विषय नागरिक शास्त्र

पाठ प्रजातन्त्र के प्रभाव

उद्देश्य : 1. छात्रों को लोकतांत्रिक आवश्यकताओं से अवगत कराना और उन्हें सड़क पर विनम्र और सही उपयोगकर्ता बनाना।

2. उनको जीवन के महत्त्व के बारे में समझाना

विषय–वस्तु :

लोकतन्त्र के परिमाण का सबसे महत्त्वपूर्ण मापदण्ड नागरिक का 'जीने का अधिकार' है।

सड़क दुर्घटनाओं एवं सड़क हिंसा की बढ़ती हुई दुर्घटना/घटनाओं से 'जीने का अधिकार' का उल्लंघन होता है एवं प्रजातंत्र के आधारभूत प्रभाव को कम करने के कारणों में से एक है। इस प्रकार से भावी नागरिकों को यातायात के नियमों एवं सड़क सुरक्षा के बारे में जानकारी देना हमारी जिम्मेदारी हो जाती है। निम्नलिखित गतिविधियाँ व अभ्यास कार्य आपको हमारे, जीवन में सड़क सुरक्षा की महत्ता को महसूस कराएँगी।

चालकों के नशे में वाहन चलाने पर हर वर्ष लोग हादसे के शिकार होते हैं।

मोबाइल फोन, तेज स्वर का संगीत, कार में बच्चों का शोर मचाना आदि चालक को वाहन चलाने में व्यवधान डालते हैं।

सड़क पर क्रोधोन्माद, भारत में सड़क दुर्घटना का एक प्रमुख कारण है।

अभ्यास :

1. मौसम की दशा या शराब का प्रभाव कहाँ तक सड़क हिंसा या क्रोधोन्माद पैदा करते हैं ?
2. क्या बाँई तरफ 'यू टर्न' लेने की अनुमति है ?
3. 'बस लेन' का क्या तात्पर्य है और इन्हे अलग क्यों किया जाता है ?

गतिविधि :

(i) निम्न पर विचार विमर्श और सामान्य चर्चा कीजिए –

(अ) आज के यातायात घटनाक्रम (या व्यवस्था) में नागरिकों का सम्मान व अधिकार अत्यन्त आवश्यक है।

(ब) सड़क क्रोधोन्माद मृत्युकारक है।

(ii) पैदल चलने वालों व वाहन चालकों को पृथक् पृथक् रखते हुए यातायात के लिए प्रयुक्त भू क्षेत्र की गतिविधि का आयोजन अपने सहपाठियों के साथ करें। जैसे – 'जीब्रा क्रासिंग', बस लेन, 'यू टर्न', आदि। इस पर रिपोर्ट तैयार करें।

(iii) समाचारपत्र की कतरनों (Clippings) की मदद से कार्य योजना की फाईल (Project File) तैयार करें, जो हाल ही के 'केसेज' से सम्बन्धित हो, जिसमें जीने का अधिकार व स्वतंत्रता के लिए खतरे की आशंका हो, सड़क क्रोधोन्माद कम करने के तरीके बताइये।

अध्याय–20

स्वच्छता एवं ठोस कचरा प्रबन्धन

स्वच्छता

मानव जीवन मूल्यों में एक मूल्य स्वच्छ रहना भी शामिल है। स्वच्छ (शौच) तो भारतीय संस्कृति है। भारतीय दर्शन में शरीर, आत्मा, मन बुद्धि तथा पर्यावरण का शुद्ध रखना मानव जीवन का महत्वपूर्ण कार्य बताया गया है। प्राचीन शिक्षा पद्धति में यज्ञोपवीत संस्कार के बाद शिष्य को स्वच्छ रहने की शिक्षा दी जाती थी।

बीमारी फैलाने वाले कचरे (गन्दगी) में पारिवारिक व कारखानों का दूषित जल, मानव व पशुओं का ठोस कचरा तथा कृषि सम्बंधी कचरे शामिल हैं। इन सभी प्रकार के कचरे का निस्तारण कार्य स्वच्छता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने स्वच्छता को कई प्रकार से परिभाषित किया है, जैसे :–

1. लोगों को स्वच्छता के लिए शौचालयों व दूषित पानी को स्वयं स्वच्छ रखने के साधनों व उपायों को करने की आवश्यकता है।

2. स्वच्छता का सामान्य आशय उन प्रावधानों, सुविधाओं और सेवाओं से है जो मानव से मल–मूत्र और कचरे आदि का सुरक्षित निस्तारण करते हैं।

3. बहुत से व्यवसायी लोग इस बात पर सहमत हैं कि स्वच्छता पूर्ण रूप में एक बड़ा विचार है, इसमें निम्नलिखित बातें शामिल हैं :–

(1) मानव के मल–मूत्र, कचरे आदि का सुरक्षित संग्रहण, भण्डारण, उपचार निस्तारण तथा पुनः प्रयोग।

(2) ठोस कचरे का पुनः प्रयोग और पुनः चक्रण का प्रबन्धन।

(3) पारिवारिक दूषित जल की निकासी और निस्तारण और पुनः प्रयोग / पुनः चक्रण के उपाय।

(4) तूफान के पानी की निकासी व्यवस्था।

(5) औद्योगिक कचरे का संग्रहण व निस्तारण प्रबन्धन।

(6) खतरनाक कचरा जैसे– रासायनिक कचरा, रेडियोएक्टिव कचरा और अस्पतालों का कचरा आदि का संग्रहण व निस्तारण प्रबन्धन।

स्वच्छता पर ध्यान क्यों?:–

गन्दगी या कचरे का पैदा होना, घनी आबादी क्षेत्रों के लिए कष्टदायी होती जा रही है। विशेष रूप से कमजोर समूहों के बच्चे, जवान और वृद्ध बीमारियों से दुःख पा रहे हैं। जिनकी प्रतिरोधी क्षमता कमजोर है। पर्यावरण को दूषित करने का एक कारण कचरे का खराब नियंत्रण भी है। बहुत से लोगों पर अपनी गन्दगी और कचरे निस्तारण के अभी भी पर्याप्त साधन नहीं है।

अनउपचारित दूषित जल और अतिरिक्त कचरा पर्यावरण में मानव स्वास्थ्य को कई तरह से दुष्प्रभावित करता है। जैसे :–

1. पीने का पानी का दूषित होना।
2. खाद्य श्रृंखला का दूषित होना, उदाहरण फल–सब्जी, मछली आदि का दूषित होना।
3. नहाने व मनोरंजन से जल दूषित होना।
4. मक्खियों एवं अन्य कीटों का बढ़ना जो बीमारी फैलाते हैं।

मानव जब कभी भी अपनी गन्दगी नष्ट करता है तभी स्वच्छता और स्वास्थ्य में प्रगति होती है और अच्छी तरह स्वास्थ्य में सुधार होता है।

स्वच्छता के प्रकार (Types of Sanitation) :–

1. **सामुदायिक स्वच्छता (Community Led Total Sanitation [CLTS])** :– सामुदायिक स्वच्छता (CLTS) का सम्बंध ग्रामीण लोगों की सहज और लापरवाही पूर्ण तरीके से खुले में मल त्याग प्रक्रिया से है। सामुदायिक स्वच्छता के माध्यम से ग्रामीण लोगों को खुले में मल त्यागने से रोकने के लिए अनुदानित सुविधाओं से परिचित कराना है।

2. **शुष्क स्वच्छता (Dry Sanitation)** :– शुष्क स्वच्छता से तात्पर्य शुष्क शौचालय, पैशाबघर आदि अतिरिक्त प्रयासों से है। केवल हाथ धोना ही इसका उददेश्य नहीं है।

3. **पारिस्थितिक स्वच्छता (Ecological Sanitation)** :– पारिस्थितिक स्वच्छता सामान्य रूप से सुरक्षित कृषि उपायों और स्वच्छता के गहन सम्बंध है। दूसरे शब्दों में पारिस्थितिक व्यवस्थाऐं अतिरिक्त संसाधनों के सुरक्षित पुनः चक्रण से है। इसमें पौष्टिक आहार और जैविक फसलों की पैदावार में अनवीनकरण संसाधनों के प्रयोग को कम करना है।

4. **पर्यावरणीय स्वच्छता (Environmental Sanitation)** :– बीमारियों से सम्बंधित पर्यावरण के कारकों का नियंत्रण पर्यावरणीय

स्वच्छता के घेरे में आता है। ठोस कचरा प्रबन्धन, पानी और दूषित जल का उपचार, औद्योगिक कचरा उपचार और ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण इस श्रेणी के लघु अंग हैं।

5. **सुधरी और बिना सुधरी स्वच्छता (Inmproved and Unimbroved Sanitation)** :– इसका सम्बंध हजारों वर्ष पुरानी गृह स्तर पर मानव के मल–मूत्र त्याग नियंत्रण से है इसके अन्तर्गत स्वच्छता और पानी आपूर्ति की देखभाल की जाती है।

6. **स्वच्छता का अभाव** :– इसका सम्बंध सामान्य रूप से शौचालय के अभाव से है जिनका प्रयोग व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक करता है। स्वच्छता अभाव सामान्यतः खुले में मल–मूत्र त्याग और जन स्वास्थ्य विषय से गम्भीर सम्बंध रखता है।

7. **पुष्टिकारक स्वच्छता (Sustainable Sanitation)** :– पुष्टिकारक स्वच्छता का क्षेत्र सम्पूर्ण स्वच्छता मूल्य श्रंखला है। जिसमें उपभोक्ता के अनुभव पर विष्ठा, मल–मूत्र और दूषित जल के परिवहन, उपचार, पुनः उपयोग या निस्तारण के तरीके शामिल हैं। जिनसे पर्यावरण और प्रकृति संसाधनों की सुरक्षा होती है।

स्वच्छ भारत मिशन (S.B.M.G.) :– ग्रामीण स्वच्छता यद्यपि राज्य सरकार का विषय है, किन्तु केन्द्र सरकार ने राज्य के प्रयासों को सहयोग देने के उद्देश्य से 1986 में केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम लागू किया। 01 अप्रैल 1999 से इस कार्यक्रम में संशोधन कर इसे पूर्ण स्वच्छता अभियान (TSC) संज्ञा से अभिहित किया गया। इसके बाद इसका नामकरण निर्मल भारत अभियान कर दिया गया है। इसका उददेश्य सामुदायिक संतुष्टि दृष्टिकोण अपना कर ग्रामीण भारत को निर्मल भारत में परिवर्तित करना और 2022 तक सभी ग्रामीण परिवारों को 100 प्रतिशत स्वच्छ करना था।

02 अक्टूबर 2014 को इसे नया नाम "स्वच्छ भारत मिशन" (ग्रामीण) दिया गया है। इसका लक्ष्य सभी ग्रामीण परिवारों को शौचालय की सुविधा प्रदान करके और स्वच्छता को बढ़ावा देने के लिए सभी ग्राम पंचायतों में ठोस और द्रवित अपशिष्ट प्रबंध क्रियाकलापों के माध्यम से 02 अक्टूबर 2019 तक खुले में शौच मुक्त भारत हासिल करना है। स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) में प्रत्येक परिवार शौचालय के लिए प्रोत्साहन राशि 10000/– रू. से बढ़ाकर 12000/– रू. कर दी गई है।

शहरी अवसंरचना, आवास और स्वच्छता :–

देश में अच्छी शहरी अवसंरचना, आवास और स्वच्छता प्रदान करने के लिए केन्द्र सरकार विभिन्न केन्द्र प्रायोजित योजनाओं के द्वारा राज्य सरकारों को संसाधन आवंटित कर रही है तथा देश में राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों के माध्यम से धन उपलब्ध करा रही है। इस क्षेत्र में की गई कुछ प्रमुख योजनाऐं पहले से चलायी जा रही है, उनमें से कुछ प्रमुख योजनाएँ निम्नलिखित हैं :–

(1) **जवाहरलाल नेहरू शहरी नवीनीकरण मिशन (JNNURM-2005)** :– इस कार्यक्रम के अन्तर्गत शहरी गरीबों को आवास के विकास और क्षमता विकास के लिए सहायता देना।

(2) **शहरी निर्धनों को बुनियादी सेवाऐं कार्यक्रम (BSUP)** :– यह कार्यक्रम शहरों में आवास और गन्दी बस्ती उन्नयन के कार्यक्रम आयोजित कर रहा है।

(3) **राजीव आवास योजना** :– शहरों में स्लम वासियों को सम्पत्ति का अधिकार प्रदान करने का कार्यकम चलाया जा रहा है।

स्वच्छता प्रबन्धन के मापदण्ड :–

1. प्रतिष्ठान प्रबन्धक को प्रदूषण के स्त्रोतों से दूरी बनाकर रखनी चाहिए, प्रदूषण स्त्रोतों में घरेलू जानवर, दूषित पानी, रासायनिक पदार्थ और अन्य प्रदूषक पदार्थ शामिल हैं।
2. प्रबन्धक को चाहिए कि खराब बदबू, हानिकारक गैसों, तेज गन्ध युक्त धुँआ और भाप की निकासी लिए अच्छे रोशनदान या निकास यंत्र लगाए।
3. कार्य स्थल को गन्दगी से अच्छी तरह अलग रखा जाय। दीवारें फर्श और छत को गन्दा न होने दिया जाये।
4. कच्चे माल का प्रोसेसिंग रूम, उत्पादन प्रक्रिया रूम और पैकिंग रूम अलग–अलग होने चाहिए।
5. गन्दे पानी को शुद्ध करने व अन्य गन्दगी व्यवस्था को रोकने के संयंत्र लगाने चाहिए।
6. फर्श, दीवार छत को वाटर प्रूफ पदार्थों से साफ करना चाहिए।
7. प्रवेश द्वार खिड़की रोशनदान और नालियों पर, चूहों, धूल व हानिकारक जीवणुओं को रोकने के उपकरण लगाने चाहिए।
8. खाद्य पदार्थों को बनाते समय तथा पैकिंग करते समय स्वच्छ, रोगाणु रहित तथा कीटाणु रहित स्टील के उपकरणों का उपयोग करना चाहिए।
9. पदार्थों का ठण्डा करने व पुनः अधिक ठण्डा एवं गर्म करने के स्थानों पर थर्मामीटर लगे होने चाहिए।
10. आराम कक्ष में फ्लश टॉयलेट तथा गन्दगी रोकने के उपकरण लगे हो, वाटर प्रूफ सेपिटक टैंक होना चाहिए।
11. रैस्ट रूम में हाथ धोने व पौंछने के लिए वाशिंग स्टेण्ड हो।
12. मैटल डिटेक्टर का प्रयोग किया जाय।
13. भोजन सम्बंधी भण्डार कक्ष, उत्पादन कक्ष तथा पैकिंग कक्ष स्वच्छता पूर्ण तरीके से प्रबन्धित किए जाने चाहिए।

ठोस कचरा प्रबन्धन

आधुनिक काल में तेजी से बढ़ते शहरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा वातावरण प्रदूषण के प्रति लापरवाही ने

शहरों में ठोस कचरा की समस्या पैदा कर दी। जिसके कारण शहरों में गन्दगी जनित बीमारियाँ फैलने लगी। इस समस्या के निवारण के लिए शहरी निकायों में ठोस कचरा प्रबन्धन या कचरा निस्तारण कार्यक्रम शुरू किया। लन्दन में जनस्वास्थ्य एवं सफाई नियंत्रण कानून 1857 ई. में बनाया गया था। इस कानून में सभी शहरी परिवारों के लिए अनिवार्य किया गया था कि वे अपने घरों का कचरा बन्द कूड़े–दानों में रखें।

ठोस कचरा प्रबन्धन कार्यक्रम अभी शहरों तक सीमित है। शहरी क्षेत्रों में नगर निकायों द्वारा बुनियादी एवं आवश्यक सेवाओं में ठोस कचरा प्रबन्ध कार्य शामिल कर दिया गया है। ठोस कचरे से आशय है, कि घरों, कारखानों, उद्योगों, अस्पतालों एवं अन्य संस्थानों से निकलने वाला सूखा व गीला अनुपयोगी सामान (कूड़ा)। इसमें सब्जी व फलों के छिलके, अण्डों के खोल, बचा हुआ खाना, कागज, पैकिंग सामग्री, डिब्बे, आर्गनिक व अन आर्गनिक पदार्थ, बैटरी, सेल बल्ब, टूटे थर्मा मीटर, विषैले पदार्थ, रेडियोएक्टिव पदार्थ तथा विस्फोटक सामग्री आदि आते हैं।

ठोस कचरा प्रबन्धन से आशय है कि वातावरण एवं जन स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ठोस कचरा का उपचार, निस्तारण, पुनः प्रयोग, पुनः चक्रण तथा ऊर्जा में परिवर्तन करने की प्रक्रियाओं का संचालन का प्रबन्धन करना। ठोस कचरा प्रबन्धन पर केन्द्र सरकार ने ठोस कचरा प्रबन्धन नियम बनाए हैं। नए नियमों में राज्य को दायित्व दिया गया है, कि शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के स्थानीय निकायों को ठोस कचरे के प्रबन्धन का प्रशिक्षण, सुझाव एव संसाधन उपलब्ध कराएं और ठोस कचरा प्रबन्धन पर नए–नए शोध कार्य, विकास कार्य, तथा उपयोग की सुविधाएं भी उपलब्ध कराएं। शहरों में जनसंख्या बढ़ने से कचरा उत्पादन में भी वृद्धि हुई है। एक अनुमान के अनुसार एक लाख से पांच लाख की आबादी वाले शहरों में 210 ग्राम कचरा प्रतिदिन प्रति व्यक्ति उत्पादन होता है। पाँच लाख से अधिक आबादी वाले शहरों में प्रतिदिन 500 ग्राम कूड़ा प्रति व्यक्ति दर से उत्पादन होता है।

ठोस कचरा प्रबन्धन प्रक्रिया :–

जनता द्वारा निर्वाचित शहरी निकायों के जन प्रतिनिधियों और अधिकारियों ने ठोस कचरा प्रबन्धन का कार्य निकायों में नियुक्त मुख्य सफाई निरीक्षकों को सौंप रखा है। नियमित एवं ठेका पद्धति पर नियुक्त सफाई कर्मचारी कूडे को घरों, अस्पतालों तथा अन्य प्रतिष्ठानों से लाकर कूडा संग्रहण केन्द्र पर एकत्रित करते हैं। कूड़ा संग्रहण केन्द्रों से परिवहन के विभिन्न साधनों जैसे बन्द ट्रकों, खुले ट्रकों, ट्रैक्टर ट्रालियों तथा घोड़ा गाडियों द्वारा ठोस कचरा निस्तारण केन्द्रों पर ले जाया जाता है। कचरा निस्तारण केन्द्र पर, कचरा उत्पादन स्थलों के अनुसार अलग–अलग श्रेणियों में विभाजित कर रखा जाता है। जैसे घरेलू कचरा, अस्पतालों का कचरा, औद्योगिक कचरा विनिर्माण सामग्री का कचरा तथा व्यापारिक प्रतिष्ठानों का कचरा आदि। इस कचरे में निहित अवयवों के अनुसार अलग–अलग किया जाता है। जैसे जैविक कचरा पदार्थ, अजैविक कचरा पदार्थ, प्लास्टिक शीशी, धातुएँ, कागज, बैटरी, खतरा संभाव्य पदार्थ– विषैले पदार्थ, ज्वलनशील पदार्थ, विस्फोटक पदार्थ, रेडियो धार्मिक पदार्थ, संक्रमण रोग फैलाने वाले पदार्थ आदि।

ठोस कचरा निस्तारण के उपाय :–

ठोस कचरा प्रबन्धन की योजना में नगर निकायों द्वारा विभिन्न उपाय किए जाते हैं। उनमें से कुछ प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं :–

1. कचरा न्यूनीकरण एवं पुनः प्रयोग (Waste reduction and reuse) :–

उत्पादों का न्यूनीकरण व पुनः प्रयोग दोनों ही कचरा निवारण के उपाय हैं। न्यूनीकरण में उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं दोनों को कचरा कम उत्पादित करने को बताया जाता है। जैसे पैकिंग कमकरना, कपड़े या पुनः प्रयोग वाले पदार्थों से बने थैले, पाउच तथा कवर आदि का प्रयोग करना। पुनः प्रयोग विधि में जनता को पुनः उपयोगी सामान क्रय करने को प्रोत्साहित किया जाता है। जैसे कपड़े नैपकिन, प्लास्टिक का सामान, कांच के बने बर्तन आदि आवांछित सामान को फेंकने के बजाय गाड़ देने, बांटने तथा दान देने की प्रेरणा दी जाती है।

2. कचरे का पुनः चक्रण (Recycling of Waste) :–

कचरे को उपयोगी कच्चे माल के रूप में उपयोग करना और कचरे की मात्रा कम करना। पुनः चक्रण कहा जाता है। पुनः चक्रण प्रक्रिया के तीन स्तर होते हैं। (1) संग्रहीत कचरे में से पुनः चक्रणीय पदार्थों व धातुओं को छांटकर अलग एकत्रित करना (2) एकत्रित पदार्थों या धातुओं से कच्चा माल तैयार करना (3) कच्चे माल से नए उत्पाद बनाना।

3. कचरा संग्रहण (Waste Collection) :–

शहरों में स्थानीय निकायों के द्वारा नियुक्त कर्मचारियों द्वारा विशेष गन्दगी वाले कचरे तथा पुनः चक्रीय कचरे को हफ्ते में दो बार संग्रह करवाना चाहिए। ऐसे कचरे जो मक्खियों के प्रजनन व आश्रय स्थल हो या बदबू फैलाने वाले, खुले में फैले कचरे को शीघ्रता से उठवाया जाये।

4. उपचार एवं निस्तारण (Treatment and Disposal) :–

कचरा उपचार तकनीकी यह खोज करती है कि प्रबन्धन फोर्म बदलकर कचरे की मात्रा कम की जाय, जिससे कचरा निस्तारण सरल बन जाये। कचरा निस्तारण की विधियाँ कचरे की मात्रा, प्रकार और रचना के आधार पर प्रयोग में लाई जाती है। जैसे उच्च तापमान पर, जमीन में दबाना तथा जैविक प्रक्रिया अपनाकर कचरे का निस्तारण कराना। उपचार और निस्तारण में से एक विकल्प चुना जाता है। कचरा का अन्तिम रूप देने के लिए प्रबन्धक

तकनीकी कम करना, पुनः चक्रण करना, पुनः उपयोग कर दवाना में से एक तकनीकी काम में ली जाती है।

5. भष्मीकरण (Incineration) :–

भष्मीकरण मुख्य सामान्य थर्मल प्रक्रिया है। कचरे का दहन आक्सीजन की उपस्थिति में किया जाता है। भष्मीरकण के बाद कचरा कार्बन डाइऑक्साइड, पानी की भाप तथा राख में बदल जाता है। यह तरीका ऊर्जा की रिकवरी का साधन है। इसका उपयोग बिजली बनाने के लिए ऊष्मा देने के लिए किया जाता है। भष्मीकरण ऊष्मा देने का अतिरिक्त साधन है। इससे परिवहन की लागत कम की जाती है। ग्रीन हाउस गैस "मीथेन" का उत्पादन कम किया जाता है।

6. गैसीकरण और पाइरोलिसिस (Gasification and Pyrolysis) :–

गैसीकरण और पाइरोलिसिस दोनों समान थर्मल प्रक्रिया हैं। इन प्रक्रियाओं में कचरे के अवयवों को उच्च ताप पर विखण्डित किया जाता है गैसीकरण में कचरे का दहन कम आक्सीजन के क्षेत्रों में किया जाता है और पाइरोलिसिस में कचरे का दहन ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में किया जाता है। ये तकनीकी कम ऑक्सीजन या बिना ऑक्सीजन वाले क्षेत्रों में प्रयोग की जाती है। दहनीय और बिना दहनीय गैसों के मिश्रण से पाइरोलिसिस द्रव्य पैदा किया जाता है। पाइरोलिसिस की विशेषता है कि वायु प्रदूषण किए बिना ऊर्जा का पुनः भरण किया जाता है।

ठोस कचरा प्रबन्धन के लाभ :–

ठोस कचरा प्रबन्धन प्रक्रिया से जनस्वास्थ्य, पर्यावरण तथा परिस्थिति की तंत्र को लाभ होता है। इस प्रक्रिया में जन सहभागिता का बहुत महत्व है। वर्तमान में इतनी तकनीकी दक्षता तथा आर्थिक क्षमता उपलब्ध है कि इस समस्या का काफी हद तक निराकरण किया जाता सकता है जिसके दूरगामी परिणाम होंगे जैसे –

1. अग्नि दुर्घटना, चूहे फैलना, संक्रामक रोगों के कीटों व रोगाणुओं को फैलने पर नियंत्रण तथा आवारा जानवरों पर नियंत्रण किया जा सकता है।
2. रोग नियंत्रित होंगे, जन स्वास्थ्य में सुधार होगा, श्रम करने क्षमता बढ़ेगी, अस्पतालों पर मरीजों का भार कम होगा।
3. जहरीले पदार्थों की निकासी कम होने से जल प्रदूषण नहीं हो सकेगा।
4. सस्ता और अच्छा वानस्पतिक खाद मिलेगा, कृषि की उत्पादन क्षमता बढ़ेगी तथा पैदावार अधिक होगी।
5. बिजली उत्पादन के लिए सस्ती ऊर्जा प्राप्त होगी, जिससे बिजली उत्पादन व्यय कम होगा।
6. कच्चा माल मिलेगा जिससे पुनः चक्रणीय पदार्थों से बनी वस्तुएँ सस्ती मिलेंगी।
7. कार्यों में वृद्धि होने पर रोजगार के अवसर अधिक उपलब्ध होंगे। आय में वृद्धि होगी।
8. कीमती धातुओं की उपलब्धि होती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. स्वच्छ रहना मानव जीवन मूल्य है।
2. सभी प्रकार की गन्दगी को दूर कर, निरोग व आरामदायक जीवन जीना स्वच्छता है।
3. स्वच्छता में मानव के मल–मूत्र व कचरे का सुरक्षित निस्तारण शामिल है।
4. कचरे से जल, वायु एवं मानव स्वास्थ्य दुष्प्रभावित होते हैं।
5. भारत सरकार ने ग्रामीण स्वच्छता तथा शहरी स्वच्छता अभियान कार्यक्रम शुरू किये हैं।
6. ठोस कचरा शहरों में बहुत बड़ी समस्या है।
7. जन स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कूड़े का निस्तारण ठोस कचरा प्रबन्धन कहा जाता है।
8. कचरा प्रबन्धन कार्यक्रम तीन (R) सिद्धान्त (Reduce, Reuse, Recycle) पर काम करता है।
9. कचरा प्रबन्धन से कच्चा माल व ऊर्जा साधनों की पुनः प्राप्ति होती है।
10. कृषि के लिए अच्छा खाद प्राप्त होता है।

अभ्यास प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. मानव के लिए स्वच्छता की क्यों आवश्यकता है?
2. स्वच्छ रहने की शिक्षा कब शुरू की जाती थी?
3. घनी आबादी क्षेत्र किस समस्या से अधिक पीड़ित है?
4. गन्दगी को हमारे तक पहुँचाने वाला कीट कौनसा है?
5. ठोस कचरा प्रबन्धन कहाँ तक सीमित है?
6. घरेलू कचरा क्या होता है?
7. खतरनाक कचरे कौन से हैं?
8. वनस्पतिक खाद्य किसे कहते हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न :–

1. मानव जीवन में स्वच्छता का महत्व क्यों है?
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वच्छता का आशय स्पष्ट करिए।
3. स्वच्छता को कितने प्रकारों में बांटा गया है?
4. ठोस कचरा प्रबन्धन कार्यक्रम के उद्देश्य कौनसे हैं?
5. ठोस कचरा प्रबन्धन के लिए कौन से उपाय किए गए हैं?
6. ठोस कचरा प्रबन्धन से कौनसे लाभ होते हैं?